कृत्-प्रत्ययविश्लेषण

डॉ. गोपबन्धु मिश्र

'कृत्-प्रत्ययविश्लेषण' नामक इस ग्रन्थ में पाणिनीय व्याकरण में विहित १३९ 'कृत्' प्रत्ययों का अकरादि क्रम से पूर्ण विश्लेषण किया गया है। इसमें प्रत्येक प्रत्यय से सम्बद्ध अधिकार, परिभाषा आदि के साथ सामान्य एवं विशेष विधियों को दर्शाया गया है। सम्बद्ध प्रत्यय के योग से प्रातिपदिक बनाने की प्रक्रिया को ससूत्र स्पष्ट करने के साथ कृत्-प्रत्ययान्त के प्रयोगों को विविध प्रामाणिक ग्रन्थ से सोद्धरण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही प्रत्यय से साक्षात् अथवा परम्परया सम्पृक्त सम्बद्धस्थलों को स्पष्ट किया गया है। ये प्रत्यय एक ही आधार में कृदन्त शब्दों के प्रजनन (Generating) में महत्त्वपूर्ण अङ्ग बनते हैं और उनके विविध शास्त्रीय तथा लौकिक व्यवहारगत स्तरों (Stratification) को निश्चित करने में अद्वितीय सामर्थ्य रखते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रत्येक पाणिनीय कृत्-प्रत्यय के पूर्णाङ्ग विश्लेषण द्वारा उसकी उक्त शब्दप्रजनन (Word-generating) क्षमता एवं शब्दस्तरीकरण (Word-stratifying) स्वभाव को सप्रमाण तथा सप्रयोग दर्शाने हेतु उद्दिष्ट है।

पाणि
का अ
इसमें
आदि
गया है
की प्र
प्रत्यया
सोद्धरण
साक्षात्
स्पष्ट वि
कृदन्त श
अङ्ग ब
लौकिक
निश्चित व
प्रस्तु
पूर्णाङ्ग
(Word-g
(Word-s
सप्रयोग द

कृत्-प्रत्ययविश्लेषण

डॉ॰ गोपबन्धु मिश्र

एम॰ए॰, व्याकरणाचार्य, पी-एच्॰डी॰, डी॰लिट्॰

रीडर, संस्कृत विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी

संस्कृतप्रसारपरिषद्, आरा

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त
वित्तीय सहायता से प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 2005

सर्वाधिकार : लेखकाधीन

प्रकाशिका
संस्कृतप्रसारपरिषद्
मारुतिमन्दिरम्, प्रकाशपुरी
आरा (बिहार)-802301

अन्य प्राप्तिस्थान

1. चौखम्भा विद्याभवन, पो॰ब॰नं॰ 1069, चौक, वाराणसी-221001
   E-mail : cvbhawan@satyam. net.in
   दूरभाष : 0542-2420404
2. चौखम्भा ओरियन्टालिया, पो॰ब॰नं॰ 1032, गोकुल भवन K 37/109, गोपालमन्दिर लेन, वाराणसी-221001
   दूरभाष : 0542-2333476, 2334356
3. डॉ. गोपबन्धु मिश्र, रीडर, संस्कृत विभाग
   काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

मूल्य : रू. 204.00

मुद्रक
श्रीजी प्रिंटर्स
जे. 12/5, नाटी इमली, वाराणसी-221001

समर्पणम् ......

परमपूज्यानां गुरुवर्याणां

प्रो॰ उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि' महोदयानां

श्रीचरणकमलेषु

आशीर्भिस्सततं येषां
शून्येऽस्मिन् जीवने मम।
यत् किञ्चिदस्ति तत्सर्वं
तेभ्य एव समर्प्यते॥

लक्षणैस्सार्थकैस्सिद्धैर्नियतं वाङ्मयं यया।
जयतु सैव विश्वस्मिन् पाणिनीया परम्परा॥

—गोपबन्धुमिश्रः

शुभाशय

संस्कृत व्याकरणदर्शन सार्थक शब्दों को सुबन्त (नाम) तथा तिङन्त (आख्यात) के रूप में विभक्त करता है। इनमें प्रथम सत्त्व या द्रव्य की प्रधानता से समन्वित है तो द्वितीय में भाव अर्थात् क्रिया का प्राधान्य अवस्थित होता है (सत्त्वप्रधानानि नामानि, भावप्रधानमाख्यातम्– निरुक्त 1.1)। संस्कृत भाषा की यह विलक्षणता है कि एक-एक आख्यात अनेक नाम-पदों को उत्पन्न करता है। यही कारण है कि यास्क ने 'नामानि' और 'आख्यातम्' में क्रमशः बहुवचन तथा एकवचन का सन्निवेश किया है। नाम-पदों के मूल में 'प्रातिपदिक' हैं तो आख्यात-पदों का मूल 'धातु' है। धातु से तथाकथित कृत् प्रत्यय जुड़ने पर प्रातिपदिक की रचना प्रायिक है, यद्यपि प्रातिपदिक यदा-कदा अव्युत्पन्न भी माना गया है (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, अष्टा॰ 1.2.45)। व्युत्पन्न प्रातिपदिक भी कृदन्त, तद्धितान्त तथा समास के रूप में त्रिविध हैं (कृत्तद्धितसमासाश्च, अष्टा॰ 1.2.46)। प्रातिपदिकों की व्यवस्था में सर्वाधिक महत्त्व कृत्-प्रत्ययों का ही है जो भाषा के लघुतम सार्थक एकांश (unit) रूप धातु से जोड़े जाते हैं। प्राचीन भारत में 'एकपर्व' शब्दों में सबको धातुज ही मानने का भी प्रस्थान (school) विद्यमान था (नामानि आख्यातजानि, निरुक्त, 1.12)। इसका संकेत पतञ्जलि ने भी किया था–

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्॥

(महाभाष्य 3.3.1 सूत्र पर)

यहाँ 'प्रकृति' धातु है और 'प्रत्यय' कृत् ही है। आलंकारिक भाषा में कह सकते हैं कि धातु की दृष्टि कृत्-प्रत्यय पर ही सर्वप्रथम पड़ती है। तिङ् प्रत्यय लगने से उसमें गति आती है तो कृत्-प्रत्यय उसे खड़ा करता है। संस्कृत की प्रशंसा करते हुए हम यदा-कदा इसकी विलक्षण शब्द-रचना-शक्ति की चर्चा करते हैं। उसकी पृष्ठभूमि में कृत्-प्रत्ययों की सबसे बड़ी भूमिका है।

कृत्-प्रत्ययों के विधान में वैयाकरण पाणिनि का योगदान सर्वोपरि है। अपने पूर्वाचार्यों से आगे बढ़कर उन्होंने आहार्य तथा उत्पाद्य दोनों प्रकार के कृत्-प्रत्ययों का विवेचन किया। उनके समक्ष कोई परवर्ती वैयाकरण लोकप्रिय नहीं हो सके। अष्टाध्यायी का तृतीयाध्याय कृत्-प्रत्ययों का अनावरण करता है। इन प्रत्ययों में लगे हुए अनुबन्धों के द्वारा पाणिनि ने कई कार्यों का युगपत् साधन किया है। जैसे– उदात्तादि स्वर का निर्धारण, प्रत्ययान्तर की व्यवस्था, लिङ्ग-निर्धारण इत्यादि।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि संस्कृत भाषा के कर्मठ साधक तथा सारस्वत साधना के मूर्त रूप डॉ॰ गोपबन्धु मिश्र ने प्रस्तुत पुस्तक में पाणिनीय कृत्प्रत्ययों का व्यापक तथा विशद विश्लेषण करते हुए व्याकरण की वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है। आज संस्कृत व्याकरण प्राचीन पठशालाओं की सूत्र-घोषण-विधि के पाश से मुक्त हो भाषा-विश्लेषण की अद्यतन प्रविधियों को आत्मसात् करता जा रहा है। डॉ॰ मिश्र ने यहाँ प्राचीन प्रविधि के सत् पक्ष को रखते हुए भी अद्यतन प्रविधि से अनेक तालिकाओं (tables) का प्रयोग करके कृत्प्रत्यय-विवेचन को शोधपूर्ण तथा सुगम भी बनाया है। समस्त संस्कृत जगत् ऐसे कठिन परिश्रम-साध्य कार्य का स्वागत करेगा।

इस ग्रन्थ में आचार्य पाणिनि द्वारा विहित 139 कृत्प्रत्ययों का एकैकशः वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कृत्प्रत्ययों के विषय में सभी जिज्ञासुओं को इस विवेचन से पूर्ण तृप्ति होगी तथा भविष्य का कोई शोधकार्य इसे उपजीव्य तथा आलोकस्तम्भ के रूप में ग्रहण करेगा।

इस सुन्दर, स्पष्ट तथा प्रवाहपूर्ण विवेचन के लिए मैं डॉ॰ गोपबन्धु मिश्र का इस आशा के साथ साधुवाद करता हूँ कि वे अपने कर्मठ जीवन में इसी प्रकार के कार्य आगे भी करते रहेंगे। शुभमस्तु।

4.7.2005

उमाशंकरशर्मा 'ऋषि'
आचार्य एवं अध्यक्ष (प्राप्तावसर)
संस्कृत विभाग
पटना विश्वविद्यालय
पटना (बिहार)

प्रकाशकीयम्

संस्कृतप्रसारपरिषद्, आरापक्षतः डॉ. गोपबन्धुमिश्रमहोदयस्य 'कृत्-प्रत्ययविश्लेषण' इत्याख्यो ग्रन्थः प्राकाश्यमायातीति विज्ञापयन् परमं मोदमनुभवामि।

संस्कृतभाषाया व्यापकमान्तरिकं बाह्यं च प्रसारमुद्दिश्य विहारप्रान्तस्य 'आरा' इत्याख्येऽस्मिन् प्राचीने ऐतिहासिके च नगरे ज्येष्ठैः शास्त्रशास्त्रान्तरेषु कृतभूरिपरिश्रमैरनेकैः विद्वद्भिः 1987 तमे खीष्टाब्दे संस्थापिता 'संस्कृतप्रसारपरिषद्' इत्यभिहितेयं संस्कृतसेविनी संस्था तत आरभ्य निरन्तरं स्वोद्देश्यपूर्तितत्परा विद्यते। अनेकसंस्कृतप्रशिक्षणसंभाषणशिविरसञ्चालन-संस्कृतसङ्गमानुष्ठान-संस्कृतदिवसोत्सव-संस्कृतविद्वत्सम्मानादीन् विविधान् संस्कृतप्रचारैकलक्ष्यान् बहिरङ्गकार्यक्रमान् सम्पादयन्तीयं परिषद् अन्तरङ्गतया 1994 तमवर्षतो निरन्तरम् 'आरण्यकम्' इत्याख्यम् अर्धवार्षिकं संस्कृतशोधपत्रं (पञ्जीकरणसंख्या RNI-58951/94) प्रकाशयन्ती अस्ति। 1994 खीष्टाब्द एव निबन्धितैषा संस्था (निबन्धनसंख्या 424/1994-95) एतावत्कालावधौ षोडश पुस्तकान्यपि प्रकाशितवत्यस्ति। तेषु भरतचरितम् (महाकाव्यम्), उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम् (वेदान्तग्रन्थः), भावनाविलासशतकम् इत्येते ग्रन्थाः पूर्वम् अप्रकाशिताः प्राथम्येन प्रकाशालोकमागताः विशिष्टमुल्लेख्यत्वमर्हन्ति। तदतिरिच्य प्रतिभाप्रसूतानि हनुमच्चरितम्, चरितरत्नत्रयी, जगन्नाथचरितम् इतिवत् पुस्तकानि प्राकाश्यमानीय परिषदियं महतीं प्रसन्नतामन्वभवदपि।

डॉ॰ गोपबन्धु मिश्रः स्थानीयवीरकुँवरसिंहविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागे 'रीडर'पदे कार्यरतः सन् संस्कृतप्रसारपरिषदः साचिव्यम् आरण्यकस्य सम्पादकत्वं च निर्वहति स्म। परिषदः आस्थापनाकालम् अध्यक्षपदमलङ्कुर्वतां पण्डितव्रजभूषण मिश्र 'आक्रान्त' महोदयानां (2002 तमे वर्षे दिवंप्रयातानां) सत्प्रेरणया डॉ॰ मिश्रः सर्वविधं पारिषदमुत्तरदायित्वं सम्यक् सम्पादयन् आसीत्। गते 2004 तमे वर्षे सितम्बरमासे तस्य विश्वविख्याते काशीहिन्दूविश्वविद्यालये 'रीडर'पदे नियुक्तिं पुरस्कृत्य इतो गमनं प्रवृत्तमस्ति।

परिषदियं तस्योत्तरोत्तरां समृद्धिं कामयमाना सती सद्यः तल्लिखितं 'कृत्-प्रत्ययविश्लेषण' इत्यभिधेयं पुस्तकं प्रकाश्य परमां प्रसन्नतामनुभवति।

पाणिनीयप्रत्ययव्यवस्थाविषये, विशिष्टतया कृत्-प्रत्ययप्रसङ्गे, विदुषां समवायेऽपि बहुविधा विचिकित्सा ऊहाश्च प्रचलन्तो दृश्यन्ते। कृत्-तद्धित-सनादि-स्त्र्याद्याख्यानां सर्वविधप्रत्ययानां विषये प्रत्येकं स्वतन्त्रतया एतादृशो ग्रन्थः स्यात्, तत्र च तत्प्रत्ययसम्बद्धाः सर्वे पक्षाः विवेचिताः स्युरिति प्रसङ्गोऽयं व्याकरणाध्येतृषु सुतरामपेक्ष्यमाणो विद्यते। कृत्-प्रत्ययविश्लेषणाख्येऽस्मिन् पुस्तके डॉ॰ मिश्रमहोदयः महान्तं यत्नं विधाय अकारादिक्रमेण पाणिनीयकृत्-प्रत्ययानाम् एकैकशः पूर्णाङ्गं विश्लेषणं कृतवानस्तीत्येतदर्थं स प्रशंसनीयोऽस्ति। कृत्-प्रत्ययानां नव्यनूतनकृदन्त-शब्दप्रजननसाधनतां तथा च विविधार्थानुसारिकृदन्तशब्दप्रयोगविशिष्टतां दर्शयदिदं पुस्तकं कृत्-प्रत्ययविषयिकां जिज्ञासूनां सर्वविधां जिज्ञासां समाधास्यतीति अस्माकं द्रढीयान् विश्वासः।

'कृत्-प्रत्ययविश्लेषणे'ति पुस्तकस्य भाषा हिन्दी वर्तते। विषयस्य गुरुतया अधिकजनग्राह्यतां समीक्ष्य डॉ॰ मिश्रः एतत् पुस्तकं हिन्द्यैव लिखितवानिति प्रतीयते। संस्कृतप्रसारपरिषदः प्रकाशनसोपानस्य सप्तदशतमां पङ्क्तिम् आरोहदिदं पुस्तकं न केवलं वैयाकरणानां चेतांसि रञ्जयिष्यत्यपितु सर्वेषां संस्कृतभाषाप्रणयिनां कृदन्तशब्दप्रयोगाभीष्टिं सम्यक् साधयिष्यतीति आशास्यते।

पुस्तकस्याऽस्य साफल्यं पुस्तकप्रणेतुश्च सिद्धिं कामयमान एतदीप्सितं पूरयितुं पुस्तकप्रणेत्रधिष्ठानकाशीपुराधीश्वरं भगवन्तं विश्वनाथं संप्रार्थये।

विदुषां वशंवदः
नर्मदेश्वर ओझा
अध्यक्षः
संस्कृतप्रसारपरिषद्, आरा (बिहारः)

प्राक्कथन

शब्द भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। भाव की अनभिव्यक्ति की दशा में अर्थात् केवल भावग्रहण एवं भावनिर्माण की स्थिति में भी शब्द ही साधन है। इस प्रकार, शब्द बुद्धिस्थ होने से अव्यक्त है एवं श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य होने से व्यक्त भी है।

अरणिस्थं यथा ज्योतिः प्रकाशान्तरकारणम्।
तद्वच्छब्दोऽपि बुद्धिस्थः श्रुतीनां कारणं पृथक्॥

(वाक्यपदीयम्, 1.46)

इसी तरह शब्द सिद्ध भी है और साध्य भी। बुद्धिस्थ शब्द सिद्ध एवं श्राव्य शब्द साध्य है। व्याकरणाध्ययन की प्रारम्भिक अवस्था में हमलोगों को रूपसिद्धि सिखायी गयी। सिद्ध 'रामः' आदि की सिद्धि करनी थी। सिद्ध की साधना! आश्चर्य है। जगत् में साध्य को साधना होता है। घड़ा बनाना है तो मिट्टी, चक्र आदि साधनों से उसे साधना होता है। यहाँ तो सिद्ध घड़े को ही साधना जैसा है। अर्थात् घड़े को घड़ा बनाना, तात्पर्य– घट को अघट से पृथक् करना। नया घड़ा बनाना नहीं। इस सिद्ध को साधने वाली बात को उत्तरकाल में महाभाष्य पढ़ते समय कुछ समझा गया। उसमें स्पष्ट लिखा है–

'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'।

शब्द भी सिद्ध, अर्थ भी सिद्ध और शब्द तथा अर्थ का सम्बन्ध भी सिद्ध है। जब ये सब सिद्ध हैं, व्याकरण से किसे साधना है? स्वयं महर्षि पतञ्जलि ने इस पूर्वपक्ष को रखा एवं समाधानवार्तिक में कहा–

"लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः।"

व्याकरणशास्त्र सिद्ध 'घट' को बनाता या साधता नहीं, अपितु केवल अघट से भिन्न 'घट' की सिद्धि अर्थात् साधुता स्पष्ट करता है। 'व्याकरण' की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए आचार्यप्रवर वैयाकरणमूर्धन्य पण्डित

रामयत्नशुक्ल का कथन है–

''असाधुशब्दावधिकसाधुशब्दकर्मकपृथक्कृतिप्रयोजकनियमविशेषो व्याकरणम्।''

सिद्ध गौः, ब्राह्मणः, हस्ती आदि की सिद्धि करना व्याकरण का कार्य है। इसीलिए यह कार्य कठिन है। (साधन मिट्टी से साध्य घड़ा बनाना सरल है। सिद्ध घड़े की 'घड़े' के रूप में सिद्धि कठिन है।)

लोक में शब्द चलते हैं और अपशब्द भी। शब्द एक है तो अपशब्द अनेक हैं। भाष्यकार ने गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि अपशब्दों के रहते 'गो' जैसे शब्द को ही व्याकरण का 'लक्ष्य' बताया। अपशब्दों की उत्पत्ति, स्थिति अथवा विलय का कोई नियम नहीं होता, न ही उनकी संख्या की कोई सीमा होती। उन्हीं के बीच शब्दों को रहना है। और उन्हें सभी प्रकार की अर्थविषयक प्रवृत्ति का साधन बनना है। लक्ष्य के रूप में पुरतो विद्यमान शब्द की नियति को स्पष्ट करते हुए भर्तृहरि ने बताया है–

'अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।' (वा०प० 1.13)

अर्थात् किसी प्रकार का अर्थविषयक व्यवहार शब्द के माध्यम से ही सम्भव है।

शब्द ग्राह्य है और ग्राहक भी। स्फोटाख्य शब्द ग्राह्य है एवं ध्वनिरूप शब्द ग्राहक है।

ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसो यथा ।
तथैव सर्वशब्दानामेते पृथगवस्थिते ॥ (वा० प० 1.55)

ग्राहक शब्द लौकिक, श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य एवं प्रतीतपदार्थक है। भाष्यकार ने इसे परिभाषित कर कहा है–

प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः। (म०भा०, पस्पशा०)

इसी ग्राहक शब्द की अर्थप्रवृत्तिसाधनता स्पष्ट एवं सुनिश्चित करने के लिए शब्दशास्त्र की आवश्यकता रहती है। लोकव्यवहार में 'घटः' यह शब्द घटरूपी अर्थ का विशेषणीभूत होता है। 'घटः' शब्द को ही चरितार्थ माना जाता है क्योंकि 'घटमानय' सुनकर कोई व्यक्ति घटरूपी शब्द को नहीं, घटरूपी वस्तु को ही ले आता है। भर्तृहरि की उक्ति है–

अर्थोपसर्जनीभूतानभिधेयेषु केषुचित् ।
चरितार्थान् परार्थत्वान्न लोकः प्रतिपद्यते ॥ (वा॰प॰ 1.54)

ऐसे शब्द का तत्त्वावबोध शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण के बिना सम्भव नहीं है– **तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते॥'** (वा॰प॰ 1.13) विविध लक्षणों के द्वारा लक्ष्यरूपी शब्दों का तत्त्वावबोध कराना व्याकरण का उत्तरदायित्व है। यह जितना महत्त्वपूर्ण है उतना कठिन है क्योंकि शब्दों का जगत् विराट् एवं व्यापक है। संस्कृतभाषा के सन्दर्भ में यह विशिष्टतर है क्योंकि इसमें प्राचीन वैदिक से अद्यतन लौकिक वाङ्मय तक समधिकव्याप्तिसम्पन्न प्रयोगजगत् है। 'लौकिकानां वैदिकानां च'– यह कहकर शब्दानुशासन के क्षेत्र की व्याप्ति को दर्शाते समय भाष्यकार ने महाभाष्य के प्रारम्भ में ही संस्कृत वाङ्मय के इस अद्वितीय विश्वरूप की विशालता दर्शायी है।

शब्दों का विशाल भण्डार एवं उनके प्रयोगों का विस्तृत क्षेत्र स्वतः ही व्याकरणाध्ययन के विविध आयामों के लिए आधार बनते हैं। शब्दसंसार का एक बहुत बड़ा खण्ड धातु एवं उनसे विहित प्रत्ययों के मेल से बना हुआ अथवा बनने के लिए तैयार खड़ा मिलता है। महर्षि पाणिनि ने ण्वुल् आदि ऐसे प्रत्ययों को कृत् (कृदतिङ् 3.1.93) की संज्ञा दी है। कृ-आदि धातु के साथ इन प्रत्ययों के योग से कृ + ण्वुल् = 'कारक' जैसे कृदन्त प्रातिपदिक बनते हैं। इस प्रकार असंख्य कृदन्त प्रातिपदिक के निष्पादन हेतु अनेक विधि, नियम, परिनियम आदि प्रणीत हुए हैं। इन कृत्-प्रत्ययों के योग से जहाँ एक ओर अगणित शब्दों का प्रजनन होता है वहीं उन शब्दों की अर्थानुसारिणी प्रवृत्ति भी सुनिश्चित हो जाती है। 'करनेवाला' इस कर्ता–अर्थ में कारक, कर्तृ– ये कृदन्त प्रातिपदिक 'कृ' धातु से भिन्न-भिन्न प्रत्ययों (ण्वुल्, तृच्) के योग से निष्पन्न होते हुए भी समान अर्थ के वाचक हैं। वहीं शी + ल्युट् = 'शयनम्' शब्द कभी अधिकरण–अर्थ 'बिछौना' तो कभी भाव-अर्थ 'सोना' का वाचक होता है। एक ही आधार में कृत्-प्रत्यय नये शब्द के प्रजनन का साधन है और किसी अर्थसिद्धि का उपकारक भी। शब्दसिद्धि एवं अर्थप्रवृत्ति– इन द्विविध तत्त्वों को ध्यान में रखकर पाणिन्यादि आचार्यों ने कृत्-प्रत्ययों की कल्पना की, उनमें अनुबन्ध जोड़ा, उनकी विधि से जुड़े अधिकार, अतिदेश,

परिभाषा आदि का निश्चय किया। इतने बड़े एवं सुनियोजित प्रयत्न के बाद भी उक्त उभय तत्त्वों की पुष्टि के अभाव में अपेक्षित शब्दों की निपातनसिद्धि भी दर्शायी। किसी भी रीति से सिद्ध शब्दों को साधना जो है! सहज लक्षणों के अभाव में असहज निपातनसाध्यता क्यों न करना पड़े। शब्द को त्यागना नहीं। महर्षि पाणिनि के अनुरूप महर्षि कात्यायन ने भी कृत्-प्रत्ययों तथा उनसे जुड़ी अन्य प्रक्रियाओं की व्यवस्था दी। इसके बाद भी किसी प्रयोग के सन्दर्भ में इन दो आचार्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के अभाव में महर्षि पतञ्जलि व्याख्यान द्वारा अभीष्ट अर्थ के निमित्त अपेक्षित कृत्-प्रत्ययान्त शब्द की सिद्धि दर्शाते हैं और दृढतया कहते हैं–

व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्। (परिभाषा 1)

कृदन्त शब्दों की निष्पत्ति एवं उनकी अर्थनियतता के लिए उपदिष्ट कृत्-प्रत्ययों के विशाल जगत् के प्रति अध्ययनकाल से ही मेरी एक जिज्ञासु दृष्टि रहती थी। आरा (बिहार) में अध्यापनकाल में तथा वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के कृत्यप्रकरण की 'अलका' टीका (चौखम्भा ओरियंटालिया, वाराणसी से प्रकाशित) के प्रकाशनकाल में इस जिज्ञासा के समाधान की दिशा में गुरुवर प्रो॰ उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि' महोदय के पावन आदेशतुल्य परामर्श प्राप्त हुए। 1990-92 वर्षों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में "A Descriptive Dictionary on Pāṇinian Kṛt & Taddhīta Pratyayas" शीर्षक पर लघु शोध परियोजना (Minor Research Project) का निष्पादन किया। इस परियोजना के अन्तर्गत प्रत्येक पाणिनीय कृत् एवं तद्धित प्रत्यय का पूर्णतः विश्लेषण, विवरण, प्रयोगवैविध्य आदि दर्शाने के उद्देश्य से कार्य किया। कार्य करते समय इसकी व्याप्ति इतनी अधिक हो गयी कि परियोजना की विधिवत् परिसमाप्ति के बाद भी भविष्य में कृत् एवं तद्धित प्रत्ययों से सम्बद्ध ऐसा कार्य पृथक्-पृथक् रीति से पूरा कर ग्रन्थरूप देने का संकल्प मन में आया। समय बीतता गया। वर्ष 2000 में पंजीकृत "पाणिनीय कृत् प्रत्ययों का विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन" शीर्षक पर वर्ष 2004 में शोधप्रबन्ध प्रस्तुत कर मैंने इसी वर्ष वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा से डी॰लिट्॰ उपाधि प्राप्त की। वर्ष 2004 में ही 'कृत्-प्रत्ययविश्लेषण' शीर्षक की पुस्तक के प्रकाशन

निमित्त राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से वित्तीय सहायता का अनुदानपत्र प्राप्त हुआ। इसी वर्ष सितम्बर माह में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के संस्कृत विभाग में रीडर पद पर नियुक्ति पाकर मैंने यहाँ योगदान किया। अतः वर्ष 1990-92 की शोधपरियोजना के समय कल्पित कृत्-प्रत्यय के विश्लेषण पर आधारित स्वतन्त्र पुस्तक प्रकाशन को मूर्तरूप प्राप्त करने का अवसर आ पहुँचा। इसीके परिणामस्वरूप यह 'कृत्-प्रत्ययविश्लेषण' नामक पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

पुस्तक में 139 कृत्-प्रत्ययों (उणादि को छोड़कर, परन्तु केवल 'उण्' प्रत्यय के साथ) का विश्लेषण है। अकारादि क्रम से विश्लेषित प्रत्येक कृत्-प्रत्यय से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बद्ध सभी पक्षों को अपेक्षित सूत्र, वार्तिक, भाष्य, व्याख्यान, उदाहरण, प्रत्युदाहरण, वैशिष्ट्य आदि के साथ दर्शाने का प्रयास किया गया है। अध्ययनकाल में इन प्रत्ययों के अर्थ, इनके अनुबन्ध, इनकी उपयोगिता, प्रत्ययान्तों के प्रयोग की व्याप्ति आदि को लेकर बहुधा सन्देह हुआ करता था। अध्यापनकाल में भी किसी प्रत्यय के सन्दर्भ में सिद्धान्तकौमुदी आदि प्रक्रियाग्रन्थों में एकत्र सभी पक्षों का उल्लेख न होने से उसकी पूर्ण नियति को बताने में वारंवार काठिन्य का अनुभव किया। इन सन्देह एवं काठिन्यों को दूर करने के लिए इस पुस्तक में यथासम्भव प्रयास किया गया है। किसी प्रत्यय की उपस्थापना में उसके विधिसूत्रों की अनेकता की स्थिति में अष्टाध्यायी के क्रम का ही अनुसरण किया गया है। वार्तिक, भाष्य, काशिकावृत्ति, सिद्धान्तकौमुदी आदि के मतों को सन्दर्भानुसार दर्शाया गया है। उदाहरण मुख्यतः काशिकावृत्ति के अनुसार दिये गये हैं। उनके प्रयोगों को अमरकोश अथवा विविध वैदिक एवं लौकिक साहित्य में से दर्शाने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक कृत्-प्रत्यय का पाणिनीय सन्दर्भ में पूर्णाङ्ग अध्ययन इस पुस्तक का लक्ष्य रहा है। अध्ययन की सीमा को केवल पाणिनीय व्यवस्था के अन्तर्गत ही रखा गया है। ध्येय यही रहा है कि सन्दर्भकथित कृत्-प्रत्यय के विषय में अपनी पूरी व्याप्ति के साथ पाणिनीय प्रबन्ध क्या है– यह सुनिश्चित हो।

वाराणसीपुरपति विश्वनाथ एवँ काशीपुराधीश्वरी माता अन्नपूर्णा की असीम अनुकम्पा से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में नियुक्ति तथा तत्समकाल

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु वित्तीय अनुदानपत्र प्राप्त हुए। अतः इस पुस्तक का प्रकाशन इच्छामयी माता की इच्छा की पूर्ति मात्र है। एतदर्थ सर्वप्रथम महाकवि कालिदास की वाणी "जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ" से वागर्थाविव संपृक्त उन दोनों की वन्दना करता हूँ।

स्वर्गीय पिता अपर्ति मिश्र एवं स्वर्गीया माता सुना देवी जी के पुण्यप्रताप से ही इस जन्म में इतने सारे पद, प्रतिष्ठा एवं अवसर प्राप्त हुए हैं। अतः उनके लिए स्मृतिश्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

पुस्तक में यदि कुछ है तो वह सब मेरे परमपूज्य गुरुदेव आचार्यप्रवर प्रो॰ उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि' महोदय का ही कृपाप्रसाद है। उनके चरणकमलों में कोटिशः प्रणामाञ्जलियाँ समर्पित करता हूँ। बड़ी दया से गुरुदेव ने आशीर्वाद स्वरूप शुभाशय प्रदान किये हैं। मैं और मेरा पूरा परिवार एतदर्थ कृतकृत्य हैं। गुरुदेव के घर में मातृमहोदया का अनवरत स्नेह, बहन डॉ॰ वीणा एवं डॉ॰ पूनम तथा भाई डॉ॰ अभयशंकर के मेरे जैसे अकिञ्चन के प्रति समधिक आदर ने मेरे जीवन को धन्य बनाया है।

पुरी में तत्कालीन आचार्य स्व॰ पण्डित वनमालि मिश्र, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन में गुरुजी स्व॰ डॉ. शिवनारायण घोषाल 'शास्त्री' तथा स्व॰ उनकी सहधर्मिणी, सतत प्रेरणास्रोत मेरे स्व॰ अग्रज दीनबन्धु मिश्र, आरा में नित्य अभिभावक स्व॰ पं॰ व्रजभूषण मिश्र 'आक्रान्त', परमशुभेच्छु स्व॰ पं॰ जगदीश्वर प्रसाद मिश्र 'नलिन' जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

वाराणसी में आगमन के पश्चात् स्वनामधन्य वैयाकरण प्राप्तराष्ट्रपतिपुरस्कार प्रो॰ रामयत्न शुक्ल तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रतिकुलपति प्रो॰ नरेन्द्रनाथ पाण्डेय के प्रत्यक्ष शिष्यत्व का अवसर प्राप्त हुआ। उभय विद्वानों को सादर प्रणतियाँ निवेदित करता हूँ।

'तदधीते तद् वेद' (अ॰ 4.2.59) सूत्र के प्रथमांश (तद् 'व्याकरणम्' अधीते) भर में मेरी प्रवृत्ति से सन्तुष्ट तथा उत्साहित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष तथा कला सङ्काय प्रमुख प्रो॰ सुदर्शनलाल जैन के प्रति सतत कृतज्ञ हूँ। साथ ही विभागीय सभी अध्यापकवृन्द तथा शिक्षकेतर मित्रों से निरन्तरप्राप्त सौहार्द्य के प्रति अपनी अधमर्णता व्यक्त करता हूँ।

पुस्तक की पाण्डुलिपि को अपने आकर्षक हस्ताक्षरों से अत्यधिक परिश्रम से मेरे प्रिय शिष्य डॉ॰ सुनीलकुमार प्रधान ने प्रस्तुत किया है। एतदर्थ मैं उनके निकट सर्वदा ऋणी रहूँगा।

आरा, बिहार की संस्कृतप्रसारपरिषद् ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने की सहर्ष सम्मति प्रदान की है। एतदर्थ परिषद् के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और इसके अध्यक्ष, मेरे अभिभावकतुल्य, श्रीमान् नर्मदेश्वर ओझाजी के प्रति नित्य अवनत हूँ।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली ने इस पुस्तक के प्रकाशन के निमित्त वित्तीय अनुदान देकर इस कार्य को सरल बना दिया। एतदर्थ मैं संस्थान के निकट आभारी हूँ।

वाराणसी की नाटी इमली में स्थित श्रीजी प्रिंटर्स ने पुस्तक के मुद्रण का दायित्व अत्यन्त निष्ठापूर्वक निर्वाह किया है। इसके लिए उन्हें साधुवाद देता हूँ।

पुस्तक की प्रस्तुति में अनेक वर्ष लग गये। इस अवधि में पत्नी ज्योत्स्ना और कन्याद्वय रुचि एवं प्राची ने पूर्ण सहयोग दिया। उन्हें भी साधुवाद देता हूँ।

अन्ततः, पाणिनीय परम्परा के उन सभी अनुयायियों, आचार्यों, समीक्षकों तथा अध्येताओं के प्रति सतत नतमस्तक हूँ जिनके सिद्धान्तों के मार्ग पर चलकर इस पुस्तक को प्रस्तुत किया गया। साथ ही अपने श्रद्धालु शिष्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके उत्साह ने मुझे अपने विषय में कुछ करते रहने की निरन्तर प्रेरणा प्रदान की है।

पाणिनीय परम्परा के अनुरागियों के समक्ष यह पुस्तक सश्रद्ध प्रस्तुत है।

॥ जयतामुमाशङ्करौ ॥

गोपबन्धु मिश्र

विषयसूची

	पृष्ठ
(क) भूमिका	i
(ख) अध्ययन के प्रकार	xxxv
(ग) अध्ययनसहायक सङ्केत	xxxvi
(घ) सन्दर्भग्रन्थसङ्केत	xxxvii
(ङ) कृत्-प्रत्यय (अकारादिवर्णक्रम से)	

		पृष्ठ			पृष्ठ
1.	अ	1	19,20.	इक, इकवक	53
2.	अङ्	3	21.	इञ्	54
3.	अच्	8	22.	इण्	56
4.	अण्	19	23.	इत्नु	57
5.	अतृन्	24	24.	इत्र	58
6.	अथुच्	26	25.	इन्	61
7,8.	अध्यै, अध्यैन्	27	26.	इनि	64
9.	अनि	28	27.	इनुण्	67
10.	अनीयर्	29	28.	इष्णुच्	69
11.	अप्	31	29.	इष्यै	72
12.	असुन्	45	30.	इस्	73
13.	असे	46	31.	उ	74
14.	असेन्	47	32.	उकञ्	76
15.	आय्य	48	33.	उण्	79
16.	आरु	49	34.	ऊक	81
17.	आलुच्	50	35.	एश्	82
18.	इक्	52	36.	क	83

		पृष्ठ			पृष्ठ
37.	कञ्	97	64.	क्लुकन्	237
38.	कध्यै	100	65.	क्वनिप्	238
39.	कध्यैन्	101	66.	क्वरप्	241
40.	कप्	102	67.	क्वसु	243
41.	कमुल्	103	68.	क्विन्	248
42.	कसुन्	104	69.	क्विप्	251
43.	कसेन्	106	70.	क्स	261
44.	कानच्	107	71.	क्से	263
45.	कि	109	72.	क्स्नु	264
46.	किन्	114	73.	खच्	266
47.	कुरच्	116	74.	खमुञ्	273
48.	के	118	75.	खल्	274
49.	केन्	119	76.	खश्	279
50.	केन्य	120	77.	खिष्णुच्	288
51.	कै	121	78.	खुकञ्	289
52.	क्त	122	79.	ख्युन्	290
53.	क्तवतु	167	80.	घ	292
54.	क्तिच्	188	81.	घञ्	295
55.	क्तिन्	190	82.	घिनुण्	321
56.	क्त्रि	199	83.	घुरच्	328
57.	क्त्वा	201	84.	ङ्वनिप्	329
58.	क्थन्	219	85.	चानश्	330
59.	क्नु	220	86.	ञ्युट्	332
60.	क्मरच्	221	87.	ट	334
61.	क्यप्	222	88.	टक्	340
62.	क्रु	235	89.	ड	344
63.	क्रुकन्	236	90.	डर	351

	पृष्ठ		पृष्ठ
91. ड्डु	352	118. युच्	475
92. ण	353	119. र	483
93. णच्	360	120. रु	484
94. णमुल्	363	121. ल्यप्	485
95. णिनि	391	122. ल्यु	492
96. ण्यत्	403	123. ल्युट्	496
97. ण्युट्	415	124. वनिप्	500
98. ण्वि	417	125. वरच्	502
99. ण्विन्	419	126. विच्	504
100. ण्वुच्	421	127. विट्	505
101. ण्वुल्	423	128. वुञ्	508
102. तवेङ्	431	129. वुन्	511
103. तवेन्	432	130. श	513
104. तवै	433	131. शतृ	520
105. तव्य/तव्यत्	434	132,133 शध्यै, शध्यैन्	535
106. तुमुन्	437	134. शानच्	536
107. तृच्	445	135. शानन्	543
108. तृन्	449	136. श्तिप्	545
109. तोसुन्	452	137. षाकन्	546
110. त्वन्	455	138,139. से, सेन्	548
111. थकन्	456	च. उपसंहृति	549
112. नङ्	457	छ. परिशिष्ट 1	555
113. नजिङ्	458	प्रयोगसूची	
114. नन्	459	ज. परिशिष्ट 2	585
115. नि	460	सहायकग्रन्थसूची	
116. मनिन्	461		
117. यत्	463		

भूमिका

भाषा व्यवहार के सर्वोत्तम एवं सर्वबृहत् खण्ड को हम 'वाक्य' के रूप में देखते हैं। वाक्य में व्यवहृत होने वाले शब्दखण्ड को 'पद' कहा जाता है। अर्थात् वाक्य में प्रयोगक्षम शब्द ही पद है। सामान्यतः पद एवं शब्द को एकार्थक समझा जाता है, किन्तु भाषाविज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से ये दोनों शब्द भिन्न अर्थवाले हैं। सार्थक ध्वनिसमूह को 'शब्द' कहते हैं। महर्षि पाणिनि ने इसे 'प्रातिपदिक' कहा है, रूढ़ शब्दों को 'अव्युत्पन्न प्रातिपदिक' और यौगिक शब्दों को 'व्युत्पन्न प्रातिपदिक' माना जाता है। अष्टाध्यायी में रूढ़ शब्दों[1] के अतिरिक्त यौगिक शब्दों को भी प्रातिपदिक मानने के लिए सूत्र बनाया गया है– 'कृत्तद्धितसमासाश्च'।[2] शब्द या प्रातिपदिक जबतक पद नहीं बन जाता है, उसका प्रयोग नहीं हो सकता है। पद बनाने के लिए विशेष अर्थों के बोधक विशेष प्रत्यय लगाये जाते हैं। इनके लगाने पर वह शब्द प्रयोग के योग्य होता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है–

'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि प्रत्ययः'[3],

'अपदं न प्रयुञ्जीत।'

अष्टाध्यायी के 'सुप्तिङन्तं पदम्' (1.4.14) सूत्र में सुप्-प्रत्ययान्त = सुबन्त एवं तिङ्प्रत्ययान्त = तिङन्त की 'पद' संज्ञा बतायी गयी है। 'रामः' (राम+सु) एवं 'गच्छति' (गम्+ति) क्रमशः सुबन्त एवं तिङन्त के उदाहरण हो सकते हैं। व्युत्पन्न प्रातिपदिक बनाने हेतु दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं– कृत् एवं तद्धित। धातु से कृत् प्रत्ययों के जुटने पर कृदन्त शब्द या प्रातिपदिक बनते हें, यथा– रम्+घञ्='राम'। शब्दों से विविध अर्थों में तद्धित प्रत्यय होते हैं और तद्धितान्त भी प्रातिपदिक बनते हैं, यथा– अर्थ+इक='आर्थिक'।

अर्थतत्त्व एवं सम्बन्धतत्त्व

भाषाविज्ञान की दृष्टि में प्रत्येक वाक्य की तरह उसके अवयव 'पद' में दो प्रकार के विशिष्ट तत्त्व होते हैं– (1) अर्थतत्त्व (Semanteme) और

---

1. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, अष्टा. 1.2.45
2. अष्टा. 1.2.46
3. महाभाष्यम्, अनभिहिते 2.3.1

(2) सम्बन्धतत्त्व (Morpheme)। अर्थतत्त्व उन तत्त्वों को कहा जाता है जो मानसिक प्रतिमाओं के भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। यथा– कृ+ण्वुल्=कारकः 'करनेवाला'। इसमें धातु से प्रत्यय जोड़ने से आनेवाला कर्तृत्व भाव ही अर्थतत्त्व है।

सम्बन्धतत्त्व उन तत्त्वों को कहते हैं जो उक्त प्रकार के व्यक्त भावों में परस्पर सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे– 'कारकः' में 'ण्वुल्' प्रत्यय, 'सु' विभक्ति। पद में केवल अर्थतत्त्व पूरे भाव की अभिव्यक्ति नहीं कर सकते हैं, अतः सम्बन्धतत्त्वों की आवश्यकता होती है। ण्वुल्='अक' लगाने से ज्ञात होता है यह करनेवाला अर्थात् 'कर्ता' है। दशरथस्य अपत्यं पुमान्=दशरथ+इञ्=दाशरथिः। 'इञ्' को लगाने से ज्ञात होता है यह 'पुत्र' है। अर्थभेद सम्बन्धतत्त्व के द्वारा है। श्लिष्टात्मक भाषा होने से संस्कृत के पदों में सम्बन्धतत्त्व अर्थतत्त्व में समन्वित होकर एकरूप हो जाते हैं।

शब्दप्रजनन (Word-Generation) एवं शब्दस्तरीकरण (Word-Stratification)

सम्बन्धतत्त्व के कारण नये-नये शब्दों को प्रजनन करने की प्रक्रिया होती है और कारक, पाचक, पाठक आदि अनन्त सार्थक शब्द बनते हैं। अर्थतत्त्व के कारण एक शब्द से दूसरे शब्द में अर्थभेद दिखायी पड़ता है, यथा– 'कृ' से ण्वुल्=कारकः 'करनेवाला', 'कृ' से ण्यत्=कार्यम् 'करने योग्य'। जहाँ ण्वुल् प्रत्यय से कारकः, पाठकः, पाचकः, वाचकः आदि एक स्तर के शब्द निर्मित होते हैं, वहीं ण्यत् प्रत्यय से कार्यम्, हार्यम् धार्यम् आदि एक ही स्तर के अनेक शब्द बनते हैं। अतः शब्दों को अर्थ की दृष्टि से एक ही स्तर में बाँधने में प्रत्यय साधन बन जाते हैं। कदाचित् जानाति इति=ज्ञा+क='ज्ञः', इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (3.1.135) में केवल 'ज्ञा' से कर्तृत्व अर्थ के स्तरीकरण हेतु आनेवाला 'क' प्रत्यय क्षिपति इति=क्षिप्+क=क्षिपः, लिखति इति=लिख्+क=लिखः आदि अनेक इगुपध धातुओं से कर्तृत्व अर्थ को स्पष्ट करने हेतु प्रयुक्त होता है। अर्थात् उक्त 'क' प्रत्यय अर्थतत्त्व की दृष्टि से शब्दों के व्यवहार या भाव स्तर को सुनिश्चित करने का साधन बनता है और दूसरी ओर अनेक शब्दों के निर्माण में अपने अनुबन्ध 'क्' एवं अपना आर्धधातुकत्व, अजादित्व आदि सम्बन्धतत्त्वों के प्रयोग के कारण मुख्य सहायक बनता है। अतः प्रत्ययों के विवेचन के प्रसङ्ग

में उनकी शब्द-प्रजनन क्षमता (Word-generating capacity) एवं शब्द-स्तरीकरण क्षमता (Word-stratifying capacity)– इन दोनों का अध्ययन अपेक्षित है। प्रत्यय के योग में होनेवाले लोप, आगम, वर्णविकार आदि का अध्ययन उसकी शब्द-प्रजनन क्षमता के अङ्ग का है और एक प्रत्यय का अनेक अर्थों में प्रयोग, अनेक प्रत्ययों का एक अर्थ में प्रयोग, काल, लिङ्ग आदि के कारण किसी प्रत्यय की प्रयोग-विविधता आदि का अध्ययन उसकी शब्दस्तरीकरण क्षमता से जुड़ा हुआ होता है।

कृत् प्रत्यय

महर्षि पाणिनि ने 'प्रत्ययः' (3.1.1) एवं 'परश्च' (3.2.2)– इन दो अधिकार-सूत्रों की व्याप्ति पञ्चम अध्याय की परिसमाप्ति (निष्प्रवाणिश्च 5.4.160) तक रखी है। प्रत्यय एक संज्ञा है। अतः 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' 3.1.5 से विहित 'सन्' से लेकर 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' 5.4.151 (वही कप् प्रत्यय 5.4.160 तक अन्वित है) से विहित 'कप्' तक की प्रत्यय संज्ञा होती है एवं परश्च 3.1.2 के अनुसार इन प्रत्ययों का विधान यथानिर्देश धातु या प्रातिपदिक से परे होता है।

धातु से विहित किन्तु तिङ् से अतिरिक्त प्रत्ययों को 'कृत्' कहा गया है।[1] कृत् के योग में बने कृदन्तों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।[2] प्रातिपदिकों से सुप् विभक्तियाँ आती हैं।[3] सुप् के योग से बने सुबन्त की 'सुप्तिङन्तं पदम्' 1.4.14 सूत्र से 'पद' संज्ञा होती है। पद का ही प्रयोग होता है। अतः 'कृत्' प्रत्यय के चरणबद्ध कार्यक्रम प्रातिपदिक के मार्ग से पद-निर्माण तक चलते हैं।

'वृत्ति' के रूप में कृत्

वैयाकरणों ने अर्थ के अनुसार शब्दनिर्माण को 'वृत्ति' कहा है। भट्टोजिदीक्षित के अनुसार निर्मीयमाण शब्द के अङ्गीभूत उपादानों से भिन्न अर्थ को बताना ही 'वृत्ति' है।[4] प्रत्यय के योग से अथवा अन्य पद के संसर्ग से

1. कृदतिङ्, अ. 3.1.93
2. कृत्तद्धितसमासाश्च, 1.2.46
3. ङ्याप्प्रातिपदिकात् 4.1.1
4. सिद्धान्तकौमुदी, सर्वसमासप्रकरण– परार्थाभिधानं वृत्तिः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः।

शब्द के अङ्गीभूत वर्णादि से भिन्न एक विशिष्ट अर्थ की उत्पत्ति होती है, वही वृत्ति है। यथा– कृ+(ण्वुल्) अक='कारकः'। यहाँ अक प्रत्यय के योग से 'कृ' धातु के अर्थ (करना) में विशिष्टता आ गयी है और एक निष्पन्न अर्थ हुआ है– 'करनेवाला'। अतः 'कारकः' में एक वृत्ति के अर्थ को बतानेवाला वाक्य 'विग्रह' कहलाता है। यथा– 'कारकः' का विग्रह है 'करोति' अर्थात् जो करता है। व्याकरण के द्वारा शब्द एवं अर्थ उभय की विकृतियों का प्रतिपादन करना होता है। अर्थगत विकृति को विग्रह (ऊपर दर्शाया गया है) कहते हैं। शब्दगत विकृति का सम्बन्ध उभय प्रकृति तथा प्रत्यय से पृथक्-पृथक् रहता है। जैसे– करोति इति='कारकः' में कृ और कारक के अर्थों में जो अन्तर है वही कृत् प्रत्यय 'ण्वुल्' का अर्थ है। इस प्रकार इस वृत्ति में अर्थ की यह विकृति हुई जिसे हम विग्रह कहते हैं। इसमें शब्द-विकृति को देखने से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति 'कृ' में विकृति होकर 'कार्' बनता है एवं प्रत्यय 'ण्वुल्' की विकृति 'अक' के रूप में हुई है। प्रकृति भाग की विकृति के लिए पहले से ही 'ण्वुल्' में णकार को जोड़ा गया है।

वृत्तियाँ पाँच हैं– 1. कृत्, 2. तद्धित, 3. समास, 4. एकशेष और 5. सनाद्यन्त धातु। इन सभी में यथोक्त शब्द एवं अर्थ की विकृतियाँ होती हैं। अर्थ की दृष्टि से कृत् प्रत्ययों की वृत्तिधर्मिता इस प्रकार द्रष्टव्य है– 1. कृ + तव्य = कर्तव्यम्, कृ + अनीयर् = करणीयम्। विग्रह वाक्य है– कर्तुं योग्यम्। 2. कृ + तृच् = कर्ता, कृ + ण्वुल् = कारकः। विग्रह वाक्य है– करोति इति। 3. कृ + ल्युट् = करणम्। विग्रह वाक्य है– क्रियते अनेन। इस प्रकार सभी वृत्तियाँ अन्ततः सुबन्त अथवा तिङन्त के रूप में परिणत हो जाती हैं। इस दृष्टि से वृत्ति एवं पद का सम्बन्ध घनिष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है। वृत्तियों के बिना पदों की सिद्धि अकल्पनीय है। इन वृत्तियों में भी पदनिर्माण के प्रसंग में सर्वप्रथम धातु से जुटनेवाले कृत् प्रत्ययों का ही विवेचन आता है। इसी कारण से पाश्चात्त्य भाषाविज्ञानी कृत् प्रत्ययों को प्राथमिक प्रत्यय (Primary Suffixes) कहते हैं।

कृतों का स्वभाव

कृत् प्रत्ययों के अनुबन्धों के कारण विविध प्रकार के शब्दनिर्माण हो पाते हैं। साथ ही, शब्द से शब्द का भेदनिरूपण हो पाता है। इसके अतिरिक्त

कृतों की अपनी-अपनी संज्ञा, उनके आदि में विद्यमान वर्ण, उनके स्थान में आदेश के रूप में आनेवाले वर्ण आदि के कारण होनेवाले लोप, आगम, वर्ण-विकार आदि शब्दों का स्वरूप निश्चय करते हैं। यहाँ कतिपय सामान्य स्वभावों को हम देख सकते हैं–

1. अजादि सार्वधातुक– यथा-शतृ (=अत्) एवं शानच् (=आन)। अनुबन्धलोप के बाद ये अजादि हैं एवं शित् होने से ये तिङ्शित्सार्वधातुकम् 3.4.113 से 'सार्वधातुक' संज्ञक होते हैं। अतः हु + शतृ = जुह्वन् (जु हु अन्), श्रु + शतृ = शृण्वन् (शृ णु अन्) में हुश्नुवोः सार्वधातुके 6.4.87 से धातु के उकार को यणादेश से वकार होता है।

2. सार्वधातुक ङित्– यथा- शतृ, शानच्। शित् होने से इन दोनों की तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा एवं अपित् सार्वधातुक होने से ये दोनों सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से 'ङित्' माने जाते हैं। अतः कृ + शतृ = कुर्वन् (कृ उ अन् = कर् उ अन् = कुर् उ अन् = कुर् व् अन्), कृ + शानच् = कुर्वाणः (कृ उ आनः = कर् उ आनः = कुर् उ आनः = कुर्वाणः)– इन प्रयोगों में अत उत् सार्वधातुके 6.4.110 से कृ धातु के अकार के स्थान में उकार आदेश होता है।

भिद् + शतृ = भिन्दन् (भिन् द् अन्), अस् + शतृ = सन् (अस् अन्) में श्नसोरल्लोपः 6.4.111 से श्नम् के नकार के अकार का एवं अस् धातु के अकार का लोप हुआ है। क्री + शतृ = क्रीणन् (क्री ना अन्), दा + शतृ = ददत् (दा दा + अत्) में श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.113 से श्ना के आकार का एवं अभ्यस्तसंज्ञक दा धातु के आकार का लोप होता है।

3. सार्वधातुक– यथा- शतृ, शानच्। तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा होती है। अतः शी + शानच् = शयानः (शे + आनः) में शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.21 से धातु के ईकार को गुण से एकार होता है। यहाँ सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से शानच् का ङिद्वद्भाव होने से क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध सम्भावित था। अतः शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.21 से गुण का विशेष प्रावधान किया गया है।

4. आर्धधातुक– धातु से विहित प्रत्ययों की सार्वधातुक अथवा आर्धधातुक संज्ञा होती है। तिङ् के समान शतृ, शानच् जैसे शित् प्रत्ययों की तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा होती है। सार्वधातुक से बचे प्रत्ययों की आर्धधातुकं शेषः 3.4.114 से आर्धधातुक संज्ञा होती है। इस कारण से प्रायः सभी कृत् प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा होती है (केवल शित् प्रत्ययों को छोड़)। अतः चि + यच् = चेयम् जैसे अनेक प्रयोगों में 'यत्' जैसे आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु के इक् को गुण होता है।

5. कित्– (i) द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति 7.4.40 से 'दो' आदि धातु के अन्तिम स्वर के स्थान पर इकार आदेश, यदि तकारादि कित् प्रत्यय बाद में हो। यथा– (क) निर्- दो + क्त = निर्दितः, निर्- दो + क्तवतु = निर्दितवान्। (ख) अव - सो + क्त = अवसितः, क्तवतु = अवसितवान्। (ग) मा - मितः, मितवान्, (घ) स्था-स्थितः, स्थितवान्। शाच्छोरन्यतरस्याम् 7.4.41 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहने पर धातु को विकल्प से इकार आदेश, यथा– नि-शो + क्त = निशितम्, क्तवतु = निशितवान्। अव-छि + क्त = अवच्छितम्, क्तवतु = अवच्छितवान्। इत्व के अभाव पक्ष में– निशातम्, निशातवान्। अवच्छातम्, अवच्छातवान्।

(ii) दधातेर्हिः 7.4.42 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते धा धातु को इकार आदेश, यथा– धा + क्त = हितः, क्तवतु = हितवान्।

(iii) दो दद्घोः 7.4.46 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते दा धातु को दद् आदेश, यथा– दा + क्त = दत्तः, क्तवतु– दत्तवान्।

(iv) अच उपसर्गात्तः 7.4.47 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते अजन्त उपसर्ग से परवर्ती घुसंज्ञक 'दा' के स्थान में 'त्' आदेश हो जाता है। यथा– प्र-दा + क्त = प्रत्तम्।

(v) घुमास्थागापाजहातिसां हलि 6.4.66 से हलादि कित् प्रत्यय के रहते गा, पा एवं हा धातुओं के अन्तिम स्वर के स्थान में ईकार आदेश, यथा– गा + क्त = गीतम्, पा + क्त = पीतम्, हा + क्त = हीनः (ओदितश्च 8.2.45 से तकार के स्थान में नकार)।

(vi) आतो लोप इटि च 6.4.64 से अजादि आर्धधातुक कित् प्रत्यय के रहते आकारान्त धातु के आकार का लोप होता है। यथा– गो-दा + क = गोदः, कम्बल-दा + क = कम्बलदः।

(vii) अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति 6.4.15 से झलादि कित् प्रत्यय के रहते अनुनासिकान्त धातु की उपधा को दीर्घ हो जाता है। यथा– शम् + क्त = शान्तः, शम् + क्तवतु = शान्तवान्।

(viii) अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति 6.4.24 से कित् प्रत्यय के रहते इदित् भिन्न हलन्त धातु की उपधा के नकार का लोप होता है। यथा– स्रंस् + क्त = स्रस्तः।

(ix) शास इदङ्हलोः 6.4.34 से हलादि कित् प्रत्यय के रहते शास् धातु के आकार को इकार आदेश होता है। यथा– शास् + क्त = शिष्टः, शास् + क्यप् = शिष्यः।

(x) वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15 से कित् प्रत्यय के रहते वच् आदि धातुओं का सम्प्रसारण होता है, यथा– वच् + क्त = उक्तम्, स्वप् + क्त = सुप्तः, यज् + क्त = इष्टः, ह्वे + क्त = हूतः।

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च 6.1.16 से भी कित् प्रत्यय के रहते ग्रह् आदि धातुओं का सम्प्रसारण होता है। यथा– ग्रह् + क्त = गृहीतः।

(xi) ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च 6.4.20 से क्विप् तथा झलादि कित् प्रत्यय के रहते ज्वर् आदि धातुओं के वकार एवं उपधा के स्थान में ऊठ् (ऊ) आदेश होते हैं। यथा– ज्वर् + क्विप् = जूः, ज्वर् + क्तिन् = जूर्तिः।

(xii) राल्लोपः 6.4.21 से क्विप् तथा झलादि कित् प्रत्यय के रहते रेफ से उत्तरवर्ती छ् और व् का लोप होता है, यथा– मुर्च्छा + क्विप् = मूः, मुर्च्छा + क्तिन् = मूर्तिः। तुर्वी + क्विप् = तूः, तुर्वी + क्तिन् = तूर्तिः।

(xiii) च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6.4.19 से क्वि अथवा झलादि कित् प्रत्यय के रहते तुग्विशिष्ट 'छ्' तथा 'व्' के स्थान में क्रमशः 'श्' तथा ऊठ् (ऊ) आदेश होता है। यथा– प्रच्छ् + क्त = पृष्टः, दिव् + क्त = द्यूतः।

6. ङित् (यथा– नङ्, अङ्)

(i) क्ङिति च 1.1.5 से ङित् प्रत्यय के रहते धातु को गुणनिषेध होता है। यथा– विच्छ् + नङ् = विश्नः (यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् 3.3.90 से नङ्, च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6.4.19 से 'च्छ्' के स्थान में 'श्' आदेश, पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से धातु की उपधा को गुण की प्राप्ति, क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

(ii) आतो लोप इटि च 6.4.64 से आर्धधातुक ङित् प्रत्यय के रहते आकारान्त धातु के आकार का लोप होता है। यथा– प्र-दा + अङ् + टाप् = प्रदा (आतश्चोपसर्गे 3.3.106 से अङ्)।

7. घित् (यथा-घञ्)– चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से घित् प्रत्यय के रहते धातु के चकार एवं जकार को कवर्गादेश हो जाता है। यथा– पच् + घञ् = पाकः, त्यज् + घञ् = त्यागः।

8. झलादि (यथा– क्त, क्तवतु, तृच्, तुमुन्, तव्य)

(i) मस्जिनशोर्झलि 7.1.60 से झलादि प्रत्यय के रहते मस्ज् एवं नश् धातुओं को नुम्– आगम होता है। यथा– मस्ज् + तुमुन् = मङ्क्तुम्, मस्ज् + तव्य + मङ्क्तव्यम् । नश् + तुमुन् = नष्टुम्, नश् +तव्य = नष्टव्यम्।

(ii) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च 8.2.29 से झलादि प्रत्यय के रहते संयोग के आदि में रहनेवाले सकार तथा ककार का लोप हो जाता है। यथा– लस्ज्+क्त=लग्नः (ओदितश्च 8.2.45 से तकार को नकार आदेश, चोः कुः 8.2.30 से जकार को गकार)। यथा– तक्ष् + क्त = तष्टः, क्तवतु= तष्टवान्।

(iii) चोः कुः 8.2.30 से झलादि प्रत्यय के रहते धातु के चवर्ग के स्थान में कवर्ग आदेश होता है। यथा– पच् + तृच् = पक्ता, वच् + तुमुन् = वक्तुम् ।

(iv) हो ढः 8.2.31 से झलादि प्रत्यय के रहते धातु के हकार को ढकार आदेश होता है। यथा– सह् + तुमुन् = सोढुम् (हो ढः 8.2.31 से हकार को ढकार आदेश, झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40 से प्रत्यय के तकार को धकार आदेश, ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से धकार को ढकार आदेश, ढो ढे लोपः 8.3.13 से पूर्व ढकार का लोप, सहिवहोरोदवर्णस्य 6.3.112 से धातु के

अकार को ओकार आदेश)। यथा– वह् + तृच् = वोढा।

(v) दादेर्धातोर्घः 8.2.32 से झलादि प्रत्यय के रहते दकारादि धातु के हकार के स्थान में घकार आदेश होता है। यथा– दह् + तव्य = दग्धव्यम् (प्रस्तुत सूत्र से हकार को घकार आदेश, झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40 से तकार को धकार, झलां जश् झशि 8.4.53 से घकार को गकार आदेश)। यथा– दुह् + तुमुन् = दोग्धुम्।

(vi) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् 8.2.33 से झलादि प्रत्यय के रहते द्रुह् आदि धातुओं के हकार को विकल्प से घकार आदेश, घकार के अभाव पक्ष में हो ढः 8.2.31 से हकार को ढकार आदेश। यथा– द्रुह् + तृच् = द्रोग्धा-द्रोढा। उत्– मुह् + तृच् = उन्मोग्धा-उन्मोढा। उत्– स्नुह् + तृच् = उत्स्नोग्धा-उत्स्नोढा। स्निह् + तृच् = स्नेग्धा-स्नेढा।

(vii) नहो धः 8.2.34 से झलादि प्रत्यय के रहते नह् (बन्धने) धातु के हकार को धकार आदेश होता है। यथा– नह् + क्त = नद्धम्, नह् + तुमुन् = नद्धुम्, नह् + तव्य = नद्धव्यम्।

(viii) व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः 8.2.36 से झलादि प्रत्यय के रहते व्रश्च् आदि धातुओं, छकारान्त एवं शकारान्त धातुओं के अन्तिम व्यञ्जनों के स्थान में षकार आदेश होता है। यथा– व्रश्च् + तुमुन् + व्रष्टुम्, भ्रस्ज् + तव्य = भ्रष्टव्यम्, सृज् + तृच् = स्रष्टा, मृज् + तुमुन् = मार्ष्टुम्, यज् + तव्य = यष्टव्यम्, छकारान्त– प्रच्छ् + तृच् = प्रष्टा, शकारान्त – विश् + तुमुन् = वेष्टुम्।

(ix) सृजिदृशोर्झल्यमकिति 6.1.58 से अकित् झलादि प्रत्यय के रहते सृज् एवं दृश् धातुओं को अम् आगम होता है। यथा– सृज् + तुमुन् = स्रष्टुम्, सृज् + तव्य = स्रष्टव्यम् (व्रश्चभ्रस्ज 8.2.36 से धातु के जकार को षकार आदेश)। यथा– दृश् + तुमुन् = द्रष्टुम्, दृश् + तव्य = द्रष्टव्यम्। (व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 से धातु के शकार को षकार आदेश)। सूत्र में 'अकिति' के कथन से कित् झलादि प्रत्यय के योग में यह 'अम्' आगम नहीं होता है। यथा– सृज् + क्त = सृष्टम्, दृश् + क्त = दृष्टम्।

(x) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् 6.1.59 से अकित् झलादि

प्रत्यय के रहते उपदेश में अनुदात्त ऋकारोपध धातु को विकल्प से अम् आगम होता है। यथा– तृप् + तृच् = त्रप्ता-तर्पिता, दृप् + तृच् = द्रप्ता-दर्पिता।

9. हलादि (यथा-क्त, क्तवतु, तृच्)

(i) हलि च 8.2.77 से हलादि प्रत्यय के रहते रेफान्त तथा वकारान्त धातु की उपधा में विद्यमान इक् (प्रत्याहार) के स्थान में दीर्घ आदेश होता है। यथा– आ-स्तृ + क्त = आस्तीर्णम्, वि-शृ + क्त = विशीर्णम् (ॠत इद् धातोः 7.1.100 से ॠकार को इकार, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, रदाभ्यां॰ 8.2.42 से तकार को नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.1.1 से णत्व)।

(ii) उपधायां च 8.2.78 से हलादि प्रत्यय के रहते धातु के अवयव हल् के उपधाभूत रेफ तथा वकार के उपधास्थानीय अव्यवहितपूर्व इक् के स्थान में दीर्घादेश हो जाता है। यथा– हुर्च्छा + तृच् = हूर्च्छिता।

10. वलादि (यथा-तव्य, तुमुन्, तृच्, क्त, क्तवतु)

(i) आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट्-आगम होता है। यथा– पठ् + तव्य = पठितव्यम्, चल् + तुमुन् = चलितुम्।

(ii) स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते 7.2.36 से आत्मनेपद के निमित्त न होनेवाले 'स्नु' तथा 'क्रम्' धातुओं से विहित वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट्-आगम होता है। यथा– प्र-स्नु + तुमुन् = प्रस्नवितुम्, प्र-क्रम्+ तव्य = प्रक्रमितव्यम्।

(iii) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा 7.2.44 से स्वर् इत्यादि धातुओं से विहित वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट्-आगम विकल्प से होता है। यथा– स्वृ (शब्दोपतापयोः) + तृच् = स्वरिता-स्वर्त्ता। प्र-सू + तृच् = प्रसविता-प्रसोता। सू + तृच् = सोता-सविता, धू + तृच् = धविता- धोता। ऊदित् धातु से– वि-गाह् + तृच् = विगाढा-विगाहिता।

(iv) रधादिभ्यश्च 7.2.45 से रध् आदि आठ धातुओं से विहित वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को विकल्प से इट्-आगम। यथा– रध् + तृच् = रद्धा-रधिता। नश्– नष्टा-नशिता। तृप् + तृच् = तर्प्ता-तर्पिता। दृप् + तृच् = दर्प्ता-दर्पिता। द्रुह्–द्रोग्धा-द्रोढा-द्रोहिता। मुह्–मोग्धा-मोढा-मोहिता। स्नुह्–स्नोग्धा-स्नोढा-स्नोहिता। स्निह्–स्नेग्धा-स्नेढा-स्नेहिता।

(v) निरः कुषः 7.2.46 से निर् + कुष् धातु से विहित वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को विकल्प से इट्-आगम होता है। यथा– निर् + कुष् + तृच् = निष्कोष्टा- निष्कोषिता।

11. वशादि (यद्यपि 'वश्' प्रत्याहार में व्, र्, ल्, वर्ग के पञ्चम, चतुर्थ एवं तृतीय वर्णों का ग्रहण है तथापि व्, र्, ल्, म् और न् से प्रारम्भ होनेवाले प्रत्ययों के अतिरिक्त किसी अन्य वश्-प्रत्याहार गत वर्ण से कृत् प्रत्यय का प्रारम्भ नहीं होता है)। अनुबन्ध लोप के पश्चात् वशादि प्रत्यय निम्नलिखित रह जाते हैं–

वन् (वनिप्, क्वनिप्, ङ्वनिप्)
वर् (वरच्, क्वरच्)
वस् (क्वसु)
र, रु (क्रु)
लुक् (क्लुकन्), मन् (मनिन्), मर् (क्मरच्),
न (नङ्, नन्) नज् (नजिङ्), नु (क्नु)

(i) नेड् वशि कृति 7.2.8 से वशादि कृत् प्रत्यय को इट्-आगम (आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से प्राप्त) नहीं होता है। यथा– ईश् + वरच् = ईश्वरः (स्थेशभासपिसकसो वरच् 3.2.175 से वरच्, आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से प्राप्त इडागम का प्रस्तुत सूत्र से निषेध)। यथा– दीप् + र = दीप्रम् (नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः 3.2.167 से 'र' प्रत्यय)। यथा– भस् + मनिन् = भस्म (अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते 3.2.75 से मनिन्)। यथा– यत् + नङ् = यत्नः (यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् 3.3.90 से नङ्)।

इन उदाहरणों में प्राप्त इट्-आगम का नेड् वशि कृति 7.2.8 से निषेध होता है।

12. यादि (यथा– यत्, ण्यत्)

(i) वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 एवं धातोस्तन्निमित्तस्यैव 6.1.80 से यादि प्रत्यय के कहते ओकार को अव् एवं औकार को आव् आदेश होता है। यथा– पू + यत् = पव्यम् (अचो यत् 3.1.97 से यत् प्रत्यय एवं

सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण, प्रस्तुत सूत्र से अव्-आदेश) यथा– अवश्य-लू + ण्यत् = अवश्यलाव्यम् (ओरावश्यके 3.3.125 से ण्यत्, अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि)।

(ii) आङो यि 7.1.65 से यकारादि प्रत्यय के विषय में लभ् धातु को नुम्-आगम होता है। यथा– आ-लभ् + यत् = आ-लम्भ् + ण्यत् = आलम्भ्यः (पोरदुपधात् 3.1.98 से यत्, किन्तु आङो यि 7.1.65 से धातु को नुम्-आगम के पश्चात् अदुपधत्व के अभाव रहने से ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्)।

(iii) उपात् प्रशंसायाम् 7.1.66 से यकारादि प्रत्यय के विषय में उप-लभ् धातु को नुम्-आगम। यथा– उप – लभ् + यत् = उपलम्भ् + ण्यत् = उपलम्भ्यः (प्रयोग पूर्ववत्)।

13. यकारादि कित् (यथा-ल्यप्)

(i) अयङ् यि क्ङिति 7.4.22 से यकारादि कित् प्रत्यय के रहते 'शी' धातु को अयङ् आदेश हो जाता है। यथा– प्र-शी + ल्यप् = प्रशय्य।

(ii) उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः 7.4.23 से यकारादि कित् प्रत्यय के रहते उपसर्ग से युक्त ऊह् धातु को ह्रस्व हो जाता है। यथा– सम्-ऊह् + ल्यप् = समुह्य।

14. तकारादि कित् (यथा-क्त, क्तवतु)

(i) द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति 7.4.40 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते दो, सो, मा और स्था धातुओं को इकार अन्तादेश होता है। यथा–

निर्- दो + क्त = निर्दितः, क्तवतु = निर्दितवान्।

अव-सो + क्त = अवसितः, क्तवतु = अवसितवान्।

मा + क्त = मितः, क्तवतु = मितवान्।

स्था + क्त = स्थितः, क्तवतु = स्थितवान्।

(ii) शाच्छोरन्यतरस्याम् 7.4.41 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते शो एवं छो धातुओं के अन्तिम वर्ण के स्थान में विकल्प से इकार आदेश होता है। यथा–

नि-शो + क्त = निशितम्-निशातम्

नि-शो + क्तवतु = निशितवान्-निशातवान्

अव-छो + क्त = अवच्छितम्-अवच्छातम्

अव-छो + क्तवतु = अवच्छितवान्-अवच्छातवान्

(इकार के अभाव पक्ष में आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से धातु के ओकार को आकार आदेश, छे च 6.1.73 से तुक्- आगम)।

(iii) श्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति वक्तव्यम् वा॰ 7.4.41 से व्रत अर्थ में 'शो' तनूकरणे धातु को इत्व नित्य होता है, तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहते। यथा–

सम् – शो + क्त = संशितः अर्थात् संशितव्रतः (ब्राह्मणः)।

(iv) दधातेर्हिः 7.4.42 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते 'धा' धातु के स्थान में 'हि' आदेश होता है। यथा– धा + क्त = हितः, धा + क्तवतु = हितवान्।

(v) दो दद् घोः 7.4.46 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते 'दा' धातु के स्थान में 'दद्' आदेश होता है। यथा– दा + क्त = दत्तम्। दा + क्तवतु = दत्तवान्। दा + क्तिन् =दत्तिः।

(vi) अच उपसर्गात्तः 7.4.47 से तकारादि कित् प्रत्यय के रहते अजन्त उपसर्ग से परवर्ती घुसंज्ञक 'दा' के स्थान में 'त्' आदेश होता है। यथा–

प्र-दा + क्त = प्रत्तम्। अव-दा + क्त = अवत्तम्। नि – दा + क्त = नीत्तम् (दस्ति 6.3.124 से दीर्घ आदेश)।

(vii) ति च 7.4.89 से तकारादि प्रत्यय के रहते चर् एवं फल् धातु के अकार के स्थान में उकार आदेश होता है। यथा– चर् + क्तिन् = चूर्तिः (हलि च 8.2.77 से उपधादीर्घ)। प्र-फल् + क्तिन् = प्रफुल्तिः।

15. पित् (यथा– क्यप्, ल्यप्, क्विप्)

(i) ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से पित् कृत् प्रत्यय के रहते ह्रस्वान्त धातु को तुक्-आगम होता है। यथा–अग्नि-चि + क्विप् = अग्निचित्। स्तु-क्यप् = स्तुत्यः। उप-इ + ल्यप् = उपेत्य।

(ii) अनुदात्तौ सुप्पितौ 3.1.4 से पित् प्रत्यय की अनुदात्त संज्ञा होती है।

16. ञित् (यथा-घञ्)

(i) अचि ञ्णिति 7.2.115 से ञित् प्रत्यय के रहते धातु के अन्तिम स्वर को वृद्धि आदेश होता है। यथा– कृ + घञ् = कारः (उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(ii) अत उपधायाः 7.2.116 से ञित् प्रत्यय के रहते धातु की उपधा के अकार को वृद्धि से आकार होता है। यथा– पच् + घञ् = पाकः (चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से चकार को कुत्व से ककार)।

17. णित् (यथा– ण्यत्, ण्वुल्, अण्)

(i) अचो ञ्णिति 7.2.115 से णित् प्रत्यय के रहते धातु के इगन्ताङ्ग को वृद्धि आदेश होता है। यथा– कृ + ण्यत् = कार्यम् (उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(ii) अत उपधायाः 7.2.116 से णित् प्रत्यय के रहते धातु की उपधा के अकार को वृद्धि से आकार होता है। यथा– पठ् + ण्वुल् = पाठकः (युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को अक-आदेश)।

(iii) आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से णित् प्रत्यय के रहते आकारान्त धातु को युक् (=य्) आगम होता है। यथा– दा + ण्वुल् = दायकः (युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को अक-आदेश)।

(iv) नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः 7.3.34 से णित् प्रत्यय के रहते उदात्तोपदेश मकारान्त धातुओं ('आ + चम्' को छोड़कर) को (अत उपधायाः 7.2.116 से प्राप्त) उपधावृद्धि नहीं होती। यथा– शम् + ण्वुल् = शमकः।

(v) जनिवध्योश्च 7.3.35 से णित् प्रत्यय के रहते जन् एवं वध् धातुओं को प्राप्त वृद्धि नहीं होती है। यथा– जन् + ण्वुल् = जनकः। वध् + ण्वुल् = वधकः।

18. अजादि, यथा-अक (ण्वुल्), अन (ल्युट्)

(i) ऊदुपधाया गोहः 6.4.89 से अजादि प्रत्यय के रहते 'गुह्' धातु की उपधा के स्थान में ऊकार आदेश होता है। यथा– नि-गुह् + ण्वुल् = निगूहकः (युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को अक-आदेश)।

(ii) रधिजभोरचि 7.1.61 से अजादि प्रत्यय के रहते रध् (हिंसासंराध्योः) एवं जभ् (गात्रविनामे) धातु को नुम् आगम होता है। यथा–

रध् + ण्वुल् = रन्धकः। रध् + ल्युट् = रन्धनम्।

जभ् + ण्वुल् = जम्भकः। जभ् + ल्युट् = जम्भनम्।

(iii) रभेरशब्लिटोः 7.1.63 से (शप् एवं लिट् को छोड़) अजादि प्रत्यय के रहते रभ् धातु को नुम्-आगम होता है। यथा–

आ-रभ् + णिनि = आरम्भी।

आ-रभ् + ण्वुल् = आरम्भः।

(iv) लभेश्च 7.1.64 से शप् एवं लिट् को छोड़ अजादि प्रत्यय के रहते लभ् धातु को नुम् - आगम हो जाता है। यथा–

लभ् + ण्वुल् = लम्भकः, ल्युट् = लम्भनम्।

णमुल् = लम्भं लम्भम्।

19 खित् (यथा– खश्, खल्)

(i) खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से खित् प्रत्यय के रहते अव्यय से भिन्न पूर्वपद को ह्रस्व होता है। यथा–

काली-मन् + खश् = कालिंमन्या।

हरिणी-मन् + खश् = हरिणिंमन्या।

(आत्ममाने खश्च 3.2.83 से खश्, अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्-आगम)।

(ii) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खित् प्रत्यय के रहते पूर्वपद के अरुस्, द्विषत् एवं अजन्त शब्दों को मुम्-आगम होता है। यथा–

अरुस्–तुद् + खश् = अरुन्तुदः

(विध्वरुषोस्तुदः 3.2.35 से खश्)

द्विषत्–तप् + खश् = द्विषन्तपः

(द्विषत्परयोस्तापेः 3.2.39 से खश्)

प्रिय–वद् + खच् = प्रियंवदः

(प्रियवशे वदः खच् 3.2.38 से खच्)

(iii) इच एकाचोम्प्रत्ययवच्च 6.3.68 से खित्-प्रत्ययान्त यदि उत्तरपद हो तो इजन्त एकाच् शब्द को अम्-आगम होता है। यथा–

गो-मन् + खश् = गांमन्यः।

स्त्री-मन् + खश् = स्त्रींमन्यः, स्त्रियंमन्यः।

(iv) रात्रेः कृति विभाषा 6.3.72 (खिति कृति नित्यं भवति) से खित्प्रत्ययान्त यदि उत्तरपद हो तो रात्रि शब्द से नित्य मुम्-आगम होता है। यथा- रात्रि-मन् + खश् = रात्रिंमन्यः।

अन्य प्रत्ययों के रहते यह मुम्-आगम विकल्प से होता है :- रात्रिंचरः-रात्रिचरः।

20 चित् (यथा- घुरच्, शानच्)

(i) चितः 6.1.163 से चित्प्रत्ययान्त शब्द का अन्त्य स्वर उदात्त होता है। यथा- भञ्ज् + घुरच् = भङ्गुरम्।

भास् + घुरच् = भासुरम्।

भिद् + घुरच् = भिदुरम्।

सभी शब्दों का अन्तिम स्वर उदात्त है।

21. तित् (यथा- यत्, तव्यत्, ण्यत्)

(i) तित्स्वरितम् 6.1.185 से तित्प्रत्ययान्त शब्द का अन्तिम स्वर स्वरित होता है। यथा- कृ + ण्यत् = कार्यम्।

22. ञित्, नित्- ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से ञित् तथा नित् प्रत्ययों के परे रहते आदि स्वर नित्य उदात्त होता है।

23. रित् (यथा-अनीयर्)

(i) उपोत्तमं रिति 6.1.217 से रित्-प्रत्ययान्त शब्द का उपोत्तम स्वर उदात्त होता है।

24. अजादि ङित् (यथा-शतृ, शानच्, 'सार्वधातुकमपित्' 1.2.4 से शतृ एवं शानच् जैसे अपित् सार्वधातुक प्रत्ययों का ङिद्वद्भाव होता है।)

(i) हुश्नुवोः सार्वधातुके 6.4.87 से अजादि सार्वधातुक प्रत्यय के रहते 'हु' धातु एवं असंयोगपूर्वक श्नुप्रत्ययान्त धातुओं को यणादेश होता है। यथा-

हु + शतृ = जुह्वत्। सु + शतृ = सुन्वत्।

(ii) अत उत्सार्वधातुके 6.4.110 से उकार-प्रत्ययान्त 'कृ' धातु के अकार के स्थान में उकार आदेश होता है यदि सार्वधातुक ङित् अथवा कित् प्रत्यय परे हो। यथा-

कृ + शतृ = कृ उ अत् = कर् उ अत् = कुर्वत्।

(iii) श्नसोरल्लोपः 6.4.111 से सार्वधातुक कित् या ङित् प्रत्यय के रहते श्नम् प्रत्यय के तथा 'अस्' धातु के अकार का लोप होता है। यथा–

भिद् + शतृ = भिन्दन्। अस् + शतृ = सन्।

(iv) श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से सार्वधातुक कित् या ङित् प्रत्यय के रहते श्ना एवं अभ्यस्तसंज्ञक के आकार का लोप होता है। यथा–

क्री + शतृ = क्रीणन्। हा + शतृ = जहत्।

(v) शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.21 से सार्वधातुक प्रत्यय के कहते शीङ् धातु के ईकार को गुण आदेश होता है। यथा–

शी + शानच् = शे + आन = शयानः।

'कृत्' का क्षेत्र

धातोः 3.1.91 सूत्र का तृतीय अध्याय की परिसमाप्ति तक अधिकार है। अर्थात् तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् 3.1.92 से लेकर छन्दस्युभयथा 3.4.117 तक प्रत्येक सूत्र में 'धातोः' अर्थात् 'धातु से' अन्वित होता है। यथा– अचो यत् 3.1.97 का 'अजन्तात् धातोः यत्' ऐसा अर्थ होता है। कृदतिङ् 3.1.93 के अनुसार इसी धात्वधिकार में धातु से विहित 'अतिङ्' प्रत्यय की 'कृत्' संज्ञा होती है। अतः वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94– इस परिभाषा सूत्र एवं कृत्याः प्राङ् ण्वुलः 3.1.95 इस संज्ञा सूत्र के बाद अर्थात् तव्यत्तव्यानीयरः 3.1.96– इस विधिसूत्र से 'कृत्' का क्षेत्र प्रारम्भ होता है।

इस धात्वधिकार के अन्तर्गत लस्य 3.4.77 से एक दूसरा अधिकार प्रारम्भ होता है, जो अध्याय के अन्त अर्थात् तिप्तस्झि॰ 3.4.78 से लेकर छन्दस्युभयथा 3.4.117 तक चलता है। अर्थात् 3.4.78 से 3.4.117 तक के सूत्रों से धातु से विहित लकारों के स्थान में विविध आदेशों का विधान हुआ है। परिणामतः 'कृत्' का क्षेत्र लस्य 3.4.77 से पूर्व (अर्थात् क्तोऽधिकरणे॰ 3.4.76) तक व्याप्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृत् का क्षेत्र तव्यत्तव्यानीयरः 3.1.96 से लेकर क्तोऽधिकरणे च॰ 3.4.76 तक के 495 सूत्र और उनके वार्त्तिकों तक व्याप्त है। सूत्रशः इन प्रत्ययों का आकलन निम्नवत् है–

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3/1	96	तव्य, तव्यत्, अनीयर्	कर्तव्यम्, करणीयम्	विधि		3.1.96 से 3.1.132 तक प्रत्ययों की 'कृत्य' संज्ञा
	वा॰ 3.1.96	केलिमर्	पचेलिमाः	,,		
3/1	97	यत्	चेयम्	,,		
	98	,,	शप्यम्	,,		
	99	,,	शक्यम्, सह्यम्	,,		
	100	,,	गद्यम्, मद्यम्	,,		
	101	,,	अवद्यम्, पण्यम्	,,	निपातन	
	102	,,	वह्यम्	,,	,,	
	103	,,	अर्यः	,,	,,	
	104	,,	उपसर्या	,,	,,	
	105	,,	अजर्यम्	,,	,,	
	106	यत्, क्यप्	ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्मवद्यम्	,,		
	107	क्यप्	ब्रह्मभूयम्	,,		

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.1	108	क्यप्	ब्रह्महत्या	विधि		
	109	,,	इत्यः	,,		
	110	,,	वृत्यम्	,,		
	111	,,	खेयम्	,,		
	112	,,	भृत्याः	,,		
	113	,,	मृज्यः	,,		
	114	,,	राजसूयः	,,	निपातन	
	115	,,	भिद्यः	,,	,,	
	116	,,	पुष्यः	,,	,,	
	117	,,	विपूयः	,,	,,	
	118	,,	प्रतिगृह्यम्	,,		
	119	,,	अपिगृह्यम्	,,		
	120	,,	कृत्यम्	,,		
	121	,,	युग्यम्	,,	निपातन	
	122	ण्यत्	अमावस्या	,,	,,	

अष्टा०अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.1	123	ण्यत्	निष्टक्र्यम्	विधि	निपातन	
	124	,,	कार्यम्	,,		
	125	,,	लाव्यम्	,,		
	126	,,	आसाव्यम्	,,		
	127	,,	आनाय्यः	,,	निपातन	
	128	,,	प्रणाय्यः	,,	,,	
	129	,,	पाय्यः	,,	,,	
	130	,,	कुण्डपाय्यः	,,	,,	
	131	,,	परिचाय्यः	,,	,,	
	132	,,	चित्यः	,,	,,	
	133	ण्वुल्, तृच्	कारकः, कर्ता	कर्ता		
	134	ल्यु, णिनि, अच्	नन्दनः, ग्राही, पचः	,,		
	135	क	क्षिपः	,,		
	136	,,	सुग्लः	,,		
	137	श	पिबः	,,		

अष्टा०अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.1	138,139	श	लिम्पः, ददः	कर्ता		
	140–143	ण	ज्वालः, अवश्यायः,			
			दावः, ग्राहः	,,		
	144	क	गृहाः	,,		
	145	ष्वुन्	नर्त्तकः	,,		
	146	थकन्	गाथकः	,,		
	147	ण्युट्	गायनः	,,		
	148	ण्युट्	हायनाः	,,		
	149	वुन्	प्रवकः	,,		
	150	वुन्	जीवकः	,,		
3.2	1,2	अण्	कुम्भकारः, स्वर्गह्वायः	,,		
	3-7	क	गोदः, समस्थः,			
			तुन्दपरिमृजः, सर्वप्रदः,			
			गोसंख्यः	,,		

अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ अधिकार / निपातन	विशेष
3.2	85,86	णिनि	सोमयाजी	भूते, कर्तरि	
	87-92	क्विप्	ब्रह्महा	,,	
	93	इनि	सोमविक्रयी	,,	
	94-96	क्वनिप्	पारदृश्वा	,,	
	97-101	ड	सरसिजम्	,,	
	102	क्त, क्तवतु	पठितम्, पठितवान्	भूते कर्मणि, भावे च 'क्त', भूते कर्तरि क्तवतु	
	103	ङ्वनिप्	सुत्वा	भूते, कर्तरि	
	104	अतृन्	जरन्	,,	
	105	—	—		छन्दसि लिट्
	106	कानच्	चिक्यानः	,,	लिटः स्थाने
	107-109	क्वसु	अघायुः	,,	
	110-123	—	—	भूते, अभिज्ञावचने इत्यादि लुङ्, लङ्, लृट्, लिट्, लट्-लकाराः	
	124-127	शतृ, शानच्	पचन्तम्, पचमानम्	वर्तमाने, कर्तरि	लटः स्थाने शतृ, शानच्-द्वयोः 'सत्' संज्ञा

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.2	128	शानन्	पवमानः	वर्तमाने, कर्तरि		
	129	चानश्	भुञ्जानः	,,		
	130-33	शतृ	अधीयन्	,,		
	134	—	—		आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (अधिकारः) भ्राजभ्रास॰ 3.2.177 इति यावत्	
	135	तृन्	कर्ता	ताच्छीलिके कर्तरि		
	136-138	इष्णुच्	अलंकरिष्णुः	,,		
	139	ग्स्नु	ग्लास्नुः	,,		
	140	क्नु	त्रस्नुः	,,		
	141-145	घिनुण्	शमी	,,		
	146,147	वुञ्	निन्दकः	,,		
	148-151	युच्	चलनः	,,		
	152,153	युच्- निषेधः	क्नूयिता, सूदिता	,,		तृच्
	154	उकञ्	लाषुकः	,,		
	155	षाकन्	जल्पाकः	,,		
	156,157	इनि	प्रजवी	,,		

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.2	158	आलुच्	स्पृहयालुः	ताच्छीलिके कर्तरि		
	159	रु	दारुः	,,		
	160	क्मरच्	सृमरः	,,		
	161	घुरच्	भङ्गुरः	,,		
	162	कुरच्	विदुरः	,,		
	163	क्वरप्	इत्वरः	,,		
	164	क्वरप्	गत्वरः	,,	निपातन	
	165-166	ऊक	जागरूकः	,,	,,	
	167	र	नम्रः	,,		
	168-170	उ	चिकीर्षुः	,,		
	171	कि, किन्, लिट्	पपिः, ददिः	,,		
	172	नजिङ्	स्वप्नक्	,,		
	173	आरु	शरारुः	,,		
	174	क्रु, क्लुकन्	भीरुः, भीलुकः	,,		
	174 (वा॰)	क्रुकन्	भीरुकः	,,		
	175, 176	वरच्	स्थावरः	,,		'ताच्छीलके कर्तरि' इति निवृत्तम्

अष्टा०अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.2	177-179	क्विप्	विभ्राट्	कर्ता		
	180	डु	विभुः	,,		
	181-183	ष्ट्रन्	धात्री	,,		
	184-186	इत्र	अरित्रम्, पवित्रम्	,,		
	187-188	क्त	क्ष्विण्णः, मतः	वर्तमाने		
3.3	1	उण्-आदि	कारुः, वायुः	बहुल	(वर्तमाने संज्ञायां च)	
	2	,,	वर्त्म	भूते		
	3	इनि	गमी	भविष्यति		
	4-9	—	—	—	लट्, लोट्, लिङ्	
	10	तुमुन्, ण्वुल्	द्रष्टुम्, दर्शकः	भविष्यति	क्रियार्थायां क्रियायाम्	
	11	ण्वुल्-आदि	यागाय, भूतये	,,	भाववचनाश्च	
	12	अण्	काण्डलावः	क्रियार्थायां क्रियायाम्	भविष्यति	
	13	ऌट्	—	भविष्यति	क्रियायां क्रियार्थायाम्	
	14	शतृ, शानच्	करिष्यन्तम्, करिष्यमाणम्		ऌटः स्थाने (वा०) अनद्यतने भविष्यति	
	15.	लुट्			अनद्यतने भविष्यति	

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.3	16	घञ्	पादः			त्रिषु कालेषु संज्ञायाम्
	17	,,	सारः			,,
	18	,,	पाकः	भावे		
	19	,,	रङ्गः	भावे अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इति एतयोः द्वयोः सूत्रयोः कृत्यल्युटो बहुलम् 3.3.113 यावत् प्रतिसूत्रम् अनुवर्तनम्।		
	20-42	घञ्	निचायः, कारः	भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्		
	43	णच्	व्यावक्रोशी			,,
	44	इनुण्	सांराविणम्	,,		,,
	45-49	घञ्	अवग्राहः	,,		,,
	50-55	घञ्, अप्	आरावः, आरवः	,,		,,
	56	अच्	चयः	,,		,,
	57-61	अप्	करः	,,		,,
	62-65	अप्, घञ्	स्वनः, स्वानः	,,		,,
	66-74	अप्	मूलकपणः	,,		,,
	75	अप्	हवः	,,		,,

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ अधिकार / निपातन	विशेष
3.3	76	अप्	वधः	भावे अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्	
	77-87	अप्	अभ्रघनः	,, ,,	
	88	क्त्रि	पक्त्रिमम्	,, ,,	
	89	अथुच्	वेपथुः	,, ,,	
	90	नङ्	यज्ञः	,, ,,	
	91	नन्	स्वप्नः	,, ,,	
	92	कि	उपाधिः	,, ,,	
	93	कि	जलधिः	कर्मणि, अधिकरणे च	
	94-97	क्तिन्	कृतिः	भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्, (स्त्रियाम्- अधिकारः कृत्यल्युटो बहुलम् 3.3.113 पर्यन्तम्)	
	94(वा॰)	क्विप्	सम्पत्	भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्, स्त्रियाम्	
	98	क्यप्	व्रज्या	भावे, स्त्रियाम्	
	99	क्यप्	समज्या	भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्, स्त्रियाम्	
	100	क्यप्, श	कृत्या, क्रिया	,, ,,	,,
	101	श	इच्छा	भावे, स्त्रियाम्– निपातनम्	

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ अधिकार / निपातन	विशेष
3.3	102-103	अ	चिकीर्षा	भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्, स्त्रियाम्	
	104-106	अङ्	जरा	,,	
	107	युच्	कारणा	,,	
	108-110	ण्वुल्	प्रच्छर्दिका	,,	
	108 (वा॰)	इक्, श्तिप्	पचिः, पचतिः	,,	
	108 (वा॰)	इञ्	वापिः	,,	
	111	ण्वुच्	आसिका	भावे	
	112	अनि	आजीवनिः	भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्	
	113	कृत्य, ल्युट्	स्नानीयम्, राजभोजनाः	बहुल-अर्थे	परिभाषा
	114	क्त	हसितम्	नपुंसके, भावे	
	115	क्त, ल्युट्	हसितम्, हसनम्	नपुंसके, भावे	
	116	ल्युट्	पयःपानम्	नपुंसके, भावे	
	117	ल्युट्	इध्मप्रव्रश्चनः	करणे, अधिकरणे च	
	118-119	घ	दन्तच्छदः	करणे, अधिकरणे च संज्ञायाम्	

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ अधिकार / निपातन	विशेष
3.3	120-124	घञ्	अवतारः	पुंसि संज्ञायाम्, प्रायेण करणाधिकरणयोः	
	125	घञ्, घ	आखानः, आखनः	,,	
	125 (वा॰)	ड, डर, इक, इकवक	आखः, आखरः, आखनिकः, आखनिकवकः	,,	
	126,127	खल्	दुष्करः	कृच्छ्र-अकृच्छ्रार्थेषु	भावे, कर्मणि च (तयोरेव कृत्यक्त॰ 3.4.70)
	128-130	युच्	दुष्पानः	,,	खलः अपवादः
	131-157	—	—	विविधाः लकारार्थाः	
	158	तुमुन्	भोक्तुम्	इच्छार्थेषु	
	159-162	—	—	लकारार्थाः	
	163	कृत्याः	कर्तव्यः	प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु	
	164-166	—	—	लकारार्थाः	
	167	तुमुन्	भोक्तुम्	कालसमयवेलासु उपपदेषु	

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ अधिकार / निपातन	विशेष
3.3	168	—	—	लकारार्थः	
	169	कृत्य, तृच्	वोढव्या, वोढा	अर्हे	
	170	णिनि	अवश्यङ्कारी	आवश्यके आधमर्ण्ये च	
	171	कृत्य	सेव्यः	,,	
	172-173	—	—	लकारार्थाः	
	174	क्तिच्, क्त	भूतिः, देवदत्तः	संज्ञायाम्	
	175,176	—	—	लकारार्थाः	
3.4	1	धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः	वसन् ददर्श, भावि कृत्यम् आसीत्		
	2-8	—		लकारार्थाः	
	9	से, सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन् कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन् तवै, तवेङ्, तवेन्	वक्षे	तुमुन्-अर्थे	छन्दसि

अष्टा०अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.4	10	कै, इष्यै	प्रयै, रोहिष्यै	तुमुन्-अर्थे	निपातनम्	छन्दसि
	11	के	दृशे	,,	,,	,,
	12	णमुल्, कमुल्,	विभाजम्, अपलुपम्	,,	—	,,
	13	तोसुन्, कसुन्	विचरितोः, विलिखः	,,	—	,,
	14	तवै, केन्, केन्य, त्वन्	म्लेच्छितवै	कृत्य-अर्थे (विधौ)	—	,,
	15	शेन्	अवचक्षे	,,	निपातनम्	,,
	16	तोसुन्	आसंस्थातोः	तुमुन्-अर्थे	भावलक्षणे	,,
	17	कसुन्	विसृपः	,,	,,	,,
	18	क्त्वा	अलं दत्त्वा	प्रतिषेधे		
	19	,,	अपमित्य	व्यतीहारे		
	20	,,	अप्राप्य	परावरयोगे		
	21	,,	भुक्त्वा	समानकर्तृकयोः पूर्वकाले		
	22	क्त्वा, णमुल्	स्मृत्वा स्मृत्वा			
			स्मारं स्मारम्	आभीक्ष्ण्ये		
	23	क्त्वा-णमुलौ न	यदयं भुङ्क्ते			

अष्टा॰अध्याय / पाद	सूत्र / वार्त्तिक	प्रत्यय	प्रयोग	अर्थ	अधिकार / निपातन	विशेष
3.4	24	क्त्वा, णमुल्	अग्रेभोजम्, अग्रे भुक्त्वा		समानकर्तृकयोः पूर्वकाले	
	25	खमुञ्	चौरङ्कारम्		,,	
	26-58	णमुल्	स्वादुङ्कारम्		विविधेषु उपपदेषु	
	59-64	क्त्वा, णमुल्	उच्चैः कृत्वा, उच्चैः कारम्		अयथाभिप्रेताख्याने	
	65-66	तुमुन्	शक्नोति भोक्तुम्		शक्नोति-आदिषु अर्थेषु	
	67	कर्तरि कृत्			—	परिभाषा
	68	यत्	भव्यम्, गेयम्		निपातनम्	
	69	लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः			—	परिभाषा
	70	तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः			—	परिभाषा
	71	क्त	प्रस्वेदितः		आदिकर्मणि कर्तरि, भावे कर्मणि च	
	72	क्त	गतः		कर्तरि कर्मणि भावे च	
	73	अच्, टक्	दाशः, गोघ्नः	सम्प्रदाने		
	74	मक् (उणादि)	भीमः	अपादाने	निपातनम्	
	75	उणादि	तन्तुः, वर्त्म	सम्प्रदान-अपादानाभ्याम् अन्यत्र		
	76	क्त	आसितः, यातः	अधिकरणे		

अध्ययन के प्रकार

प्रत्येक कृत् प्रत्यय का विवरण देना एवं उसका विश्लेषण करना इस ग्रन्थ का लक्ष्य है। प्रत्यय का पूर्ण परिचय, उससे बननेवाला प्रतिपदिक, प्रातिपदिक से सुप् प्रत्यय के आगमन से सुबन्त पद की सिद्धि एवं उसका प्रयोग प्रत्यय का 'विवरण' है। 'विश्लेषण' में प्रत्यय का आङ्गिक वैशिष्ट्य एवं उसकी अर्थगत विशिष्टता दर्शाना है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कृत् प्रत्यय का पूर्ण विवरण तथा विश्लेषण देने का प्रयास किया गया है। इस उद्देश्य से प्रत्येक कृत् प्रत्यय के सन्दर्भ में ये बिन्दुएँ विवेच्य हैं–

1. प्रत्यय का स्वभाव (सामान्य एवं विशेष)
2. प्रत्यय का वैधानिक सूत्र अथवा वार्त्तिक
3. वैधानिक सूत्र/वार्त्तिक से सम्बद्ध अनुवर्तन एवं अधिकार
4. प्रत्यय का उत्सर्गत्व/अपवादत्व
5. प्रत्यय का अर्थ
6. प्रकृति (धातु-सामान्य/विशेष)
7. प्रयोग (धातुसामान्य की स्थिति में उपलक्षण मात्र, धातुविशेष की स्थिति में धातुशः सम्बद्ध प्रत्यय के योग से सिद्ध प्रातिपदिक की सिद्धि, उससे निष्पन्न सुबन्त का प्रयोग-प्रदर्शन)
8. विशेष (लिङ्ग, वचन आदि की विशिष्टता)
9. सम्बद्धस्थल (प्रत्यय से जुड़ा अष्टाध्यायीगत अथवा वार्तिकगत दूसरा स्थल, जिसमें प्रत्यय के कारण होनेवाले लोप, आगम, विकार, प्रयोगविशिष्टता आदि का उल्लेख हो।)

ये विवेचन प्रत्येक प्रत्यय के सन्दर्भ में किये गये हैं।

●

अध्ययनसहायक सङ्केत

अ॰	अष्टाध्यायी	तुदा॰	तुदादिगण
अक॰	अकर्मक	दिवा॰	दिवादिगण
अदा॰	अदादिगण	पा॰	पाणिनि (अष्टाध्यायी)
अनु॰	अनुवर्तन	म॰भा॰	महाभाष्य
अप॰	अपवाद	भ्वा॰	भ्वादिगण
आत्म॰	आत्मनेपदी	रुधा॰	रुधादिगण
उभ॰/उ॰	उभयपदी	वा॰	वार्तिक
का॰	(अष्टाध्यायी) काशिकावृत्ति	सं॰	संख्या
क्र्या॰	क्र्यादिगण	सक॰	सकर्मक
चुरा॰	चुरादिगण	सम्ब॰	सम्बद्धस्थल
जुहो॰	जुहोत्यादिगण	सि॰कौ॰	सिद्धान्तकौमुदी
तना॰	तनादिगण	स्वा॰	स्वादिगण

सन्दर्भग्रन्थसङ्केत

अभि॰शा॰	अभिज्ञानशाकुन्तल	म॰भा॰	महाभारत
अमर॰	अमरकोष	मातङ्गलीला	मातङ्गलीला
ऋ॰वे॰	ऋग्वेद	मुद्रा॰	मुद्राराक्षसम्
का॰	काशिका	मृच्छ॰	मृच्छकटिक
काद॰	कादम्बरी	मेघ॰	मेघदूत
का॰प्र॰	काव्यप्रकाश	यजु॰	यदुर्वेद
कुमार॰	कुमारसम्भव	याज्ञ॰	याज्ञवल्क्यस्मृति
कौ॰	सिद्धान्तकौमुदी	रघु॰	रघुवंशम्
गीत॰	गीतगोविन्द	वा॰स॰	वाजसनेयी संहिता
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता	रामा॰	वाल्मीकीयरामायण
नै॰	नैषधीयचरितम्	विक्रमाङ्क॰	विक्रमाङ्कदेवचरितम्
पञ्च॰	पञ्चतन्त्र	वैरा॰श॰	वैराग्यशतक
भट्टि॰	भट्टिकाव्यम्	वैराग्य॰	(भर्तृहरि)
भर्तृ॰	भर्तृहरि शृङ्गारशतक-1	शिशु॰	शिशुपालवधम्
	नीतिशतक-2	सां॰का॰	सांख्यकारिका
	वैराग्यशतक-3	स्वप्न	स्वप्नवासवदत्तम्
मनु॰	मनुस्मृति	हर्ष॰	हर्षचरित
		हित॰	हितोपदेश

अ

अ। इसमें कोई अनुबन्ध नहीं है।

स्वभाव– 1. अजादि।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः (7.3.84) आदि से धातु को गुणादेश।

1. विधि– जागर्तेरकारो वा (वा॰, 3.3.101)

'जागृ' धातु से विकल्प से अ, स्त्रीत्वविवक्षा में (पक्षे 'श' प्रत्यय)।

अनु॰– अकर्तरि च कारके (3.3.19), भावे (3.3.18), स्त्रियाम् (3.3.94)।

प्रकृति– जागृ निद्राक्षये, अदादि, परस्मैपद।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रयोग– जागृ + अ = जागर (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के ऋकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। जागर + टाप् = **जागरा** 'जागना' (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से स्त्रीत्वनिमित्तक टाप्), पक्षे कृञः श च 3.3.100 से अनुवर्तित श– जागृ + श + टाप् = जागर्या। 'जागर्या जागरा द्वयोः'– अमर॰ 3.2.19

2. विधि– अ प्रत्ययात् 3.3.102

सन्-आदि प्रत्ययान्त से स्त्रीत्वविवक्षा में अ।

अनु॰– स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से प्राप्त 'क्तिन्' का। वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94 में 'अस्त्रियाम्' की उक्ति से स्त्रीत्व में आया यह 'अ' प्रत्यय 'क्तिन्' से असरूप होने पर भी उसका (क्तिन् का) नित्य ही बाधक होता है, विकल्प से नहीं)।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– सनाद्यन्त धातु-सामान्य, यथा-चिकीर्ष (कृ + सन्), सनाद्यन्ता धातवः 3.1.32 से धातु संज्ञा।

प्रयोग– चिकीर्ष + अ = चिकीर्ष (अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश), चिकीर्ष + टाप् (स्त्रीत्व में अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्) = **चिकीर्षा** 'करने की इच्छा।'

जेतुम् इच्छा = जिगीष (जि + सन्) + अ + टाप् = **जिगीषा** 'जीतने की इच्छा' ('चिकीर्षा' की तरह)। 'अहानि विश्वा मारुतो जिगीषा'– ऋ.वे. 1.171.3

3. विधि– गुरोश्च हलः 3.3.103

हलन्त धातु जो गुरुमान् हो, उससे स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अ'।

अनु॰– स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से प्राप्त क्तिन् का। देखें–विधि सं. 2

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– हलन्त एवं गुरुमान् धातु, यथा– ईह चेष्टायाम्, भ्वादि, आत्मनेपद।

प्रयोग– ईह् + अ = ईह, ईह + टाप् (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्) = **ईहा** 'चेष्टा' (अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से दीर्घ एकादेश)।

'अविद्यानां तु सर्वेषा**मीहा**तश्चेद् धनं भवेत्। समस्तत्र विभागः स्यात्'– मनु॰ 9.205

अङ्

अङ् = अ। हलन्त्यम् 1.3.3 से 'ङ्' की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– 1. अजादि।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
अतः सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 आदि से धातु के गुण की प्राप्ति।

3. ङित् (1.3.3)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुण निषेध।

1. विधि– षिद्भिदादिभ्योऽङ् 3.3.104
षित् तथा भिद् आदि धातुओं से स्त्रीत्वविवक्षा में 'अङ्'।

अनु०– स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् (3.3.94) से प्राप्त क्तिन् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– 1. षित्, यथा– जॄष्, झॄष् वयोहानौ, दिवा०, पर०, त्रपूष् लज्जायाम्, भ्वा०, आत्म०; डुपचष् पाके, भ्वा०, उभ०।

2. भिदादि– भिदा, छिदा आदि 'अङ्' प्रत्ययान्तों का भिदादि गण में पाठ है। उसी आधार पर भिद्, छिद् आदि धातुओं का ग्रहण होता है।

प्रयोग– (1) जॄष् + अङ् = जॄ + अ = जर् अ (ऋदृशोऽङि गुणः 7.4.16 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व) = **जरा** 'बुढ़ापा' (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्)। 'कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा'– रघु० 12.2

झॄष्– **झरा** 'झरना'। त्रपूष्-**त्रपा** 'लज्जा' 'मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा'– अमर० 1.7.23। क्षमूष्-**क्षमा** 'क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम्' – हित० 2। पच्- **पचा** 'पचा पाके'– अमर० 3.2.8

(2) भिदादि– भिदिर् विदारणे। भिद् + अङ् = भिद् अ (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' 1.1.5 से निषेध) = **भिदा** अर्थात् 'फाड़ना' (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्) । 'विदरः स्फुटनं भिदा'–अमर॰ 3.2.5

छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे, रुधा॰ उभ॰ – **छिदा** 'दो टुकड़े करना'। ('छिदा द्वैधीकरणे' - गणसूत्र)। अर्थान्तर (छिद्र) में क्तिन् - छित्तिः 'सुराख'।

विद् (ज्ञाने, अदा॰ पर॰)– **विदा** 'ज्ञान'।

क्षिप् (प्रेरणे, तुदादि॰, सक॰, उ॰)– **क्षिपा** 'फेंकना'। अङ् के ङित् होने से क्ङिति च 1.1.5 से गुण निषेध।

गुह् (संवरणे, भ्वादि, सक॰, उ॰)– **गुहा** 'पर्वत का एक देश, गुफा' (गुहागिर्योषध्योः- ग॰सू॰), क्ङिति च 1.1.5 से उपधागुण का निषेध। अर्थान्तर (छिपाना) में क्तिन् = गूढिः।

श्रत्- धा (डुधाञ् धारणपोषणयोः, जुहो॰, सक॰, उ॰)- **श्रद्धा**। (श्रदन्तरोरुपसर्गवद् वृत्तिः)।

मेध् (मेधृ संगमे च, भ्वादि॰, अक॰, उ॰)– **मेधा** (मेधन्ते संगच्छन्तेऽनयेति)। 'धीर्धारणावती **मेधा**'–अमर॰ 1.5.2

गुध् (परिवेष्टने, दिवादि, सक॰, पर॰)- **गोधा** 'परिवेष्टन। गणपाठ से निपातन से ही उपधागुण।

ऋ (गतिप्रापणयोः, भ्वादि, सक॰, पर॰)- **आरा** 'प्रतोद, आर'। ऋ को ऋदृशोऽङि गुणः 7.4.16 से गुण होकर दीर्घ होता है– निपातन से। (आरा शस्त्र्याम्, ग॰सू॰)। अर्थान्तर में आ – ऋ + क्तिन् = आर्तिः 'दुःख, कष्ट'।

हृ (हरणे, भ्वादि, सक॰, उ॰)– **हारा** 'एक प्रकार का अंगूर लाल, भूरा'। ऋदृशो॰ 7.4.16 से गुण होकर दीर्घ– गणसूत्र के निपातन से।

कृ करणे, तनादि, उ॰– **कारा** (कुर्वन्त्यत्र) 'बन्दिगृह'। गुण तथा दीर्घ गणसूत्र (कारा बन्धने– ग॰सू॰) से निपातित हैं।

क्षि क्षये, भ्वादि, प॰– अथवा 'क्षि'– निवासगत्योः, तुदादि, प॰– **क्षिया** 'धर्म-व्यतिक्रम अथवा आचार-परित्याग'। धातु के इकार को 'इयङ्'– गणसूत्र के निपातन से। 'हेति क्षियायाम्' (8.1.60) यहाँ 'क्षिया' का अनुरूप प्रयोग है।

तॄ प्लवनतरणयोः, भ्वादि, प॰– **तारा** 'आँख की पुतली, तारका'। 'तारा ज्योतिषि'– इस ग॰सू॰ के निपातन से ऋकार को गुण– 'ऋदृशोऽङि गुणः' 7.4.16 से एवं दीर्घ।

धृ धृञ् धारणे, भ्वादि, सक॰, उ॰– **धारा** 'प्रपात'। 'धारा प्रपातने' ग॰सू॰– निपातन से 'तारा' की तरह गुण एवं दीर्घ। (अर्थान्तर धैर्य) में क्तिन्-धृतिः।

लिख् अक्षरविन्यासे, तुदादि, प॰– **रेखा** 'लेखा भी'-'ल' को रेफादेश, उपधा गुण–गणसूत्र के निपातन से।

चुद् सञ्चोदने, चुरादि, उ॰– **चूडा**। उपधा दीर्घ, 'द्' को 'ड्'– निपातन से।

पीड् अवगाहने, चुरादि, उ॰– **पीडा**।

वप् (डुवप) बीजसन्ताने, भ्वादि, उ॰– **वपा**- 'बोना'।

वस् निवासे, भ्वादि, प॰– **वसा** 'निवास'। ओडिया (Oriya) भाषा में 'बसा' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मृज् शुद्धौ, अदादि, प॰– **मृजा** 'शुद्धि'। गणपाठ के कारण निपातन से मृजर्वृद्धिः (7.2.114) से वृद्धि नहीं हुई। 'स्यान् मार्ष्टिर्मार्जना मृजा'– अमर॰ 2.6.121

क्रप् कृपायां गतौ, भ्वादि, आत्म॰ + अङ् = क्रप् + अ = कृप् अ (क्रपेः सम्प्रसारणं च– ग॰सू॰ 3.3.104 से रेफ का सम्प्रसारण एवं सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से पूर्वरूप) = कृप् अ + टाप् (आ) 'अजाद्यतष्टाप्'-4.1.4 = **कृपा**।

विशेष– यह भिदादि (3.3.104) आकृतिगण है– ऐसा स्वीकारने पर **रुजा, तुला, दोला** आदि अङ्–अन्त साधु हैं।

2. विधि– चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च 3.3.105
चिन्त्, पूज्, कथ्, कुम्ब्, चर्च्– इन चुरादि ण्यन्त धातुओं से 'अङ्'।

अपवाद– ण्यासश्रन्थो युच् (3.3.107) से प्राप्त 'युच्' का।

अनु॰– अङ् (3.3.104), स्त्रियाम् (3.3.94), भावे, अकर्तरि च कारके– विधि 1 जैसा।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– चित् (स्मृतौ) चुरादि, पर॰; पूज् (पूजायाम्) चुरादि, उभ॰; कथ् (काव्यबन्धने), चुरादि, पर॰; कुबि (आच्छादने) चुरादि, उ॰; चर्च (अध्ययने) चुरादि, उ॰।

प्रयोग– चिति + अङ् = चित् अ = चिन्त् अ (इदितो नुम् धातोः 7.1.58 से नुमागम) = चिन्त + टाप् (आ) अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 = **चिन्ता** 'विचार, सोच'।

पूज्– **पूजा**, कथ्– **कथा**, कुबि-**कुम्बा** 'आच्छादन' (इदितो नुम् धातोः 7.1.58 से नुम्), चर्च्-**चर्चा** 'पाठ, बातचीत'।

3. विधि– आतश्चोपसर्गे 3.3.106
उपसर्ग उपपद होने पर आकारन्त धातुओं से 'अङ्'।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् (3.3.94) से प्राप्त क्तिन् का।

अनु॰– अङ् (3.3.104), स्त्रियाम् (3.3.94), भावे, अकर्तरि च कारके–विधि 1 जैसा।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– उपसर्ग से युक्त आकारान्त धातु, यथा– प्र-दा (डुदाञ् दाने, जुहो॰, उ॰)।

प्रयोग– प्र-दा + अङ् = प्रदा + टाप् (आ) 'अजाद्यतष्टाप्' 4.1.4 = **प्रदा** 'भेंट, उपहार'।

उप-दा + अङ् + टाप् = **उपदा** 'उपग्राह्य, भेंट' 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा'–अमर॰ 2.8.28। उप-धा (डुधाञ् धारणपोषणयोः, जुहो॰ उ॰) = **उपधा** 'धर्म, अर्थ आदि से अमात्य आदि का राजा द्वारा परीक्षण' 'उपधा धर्माद्यैर्यत्परीक्षणम्'– अमर॰ 2.8.21

वि-धा–**विधा** 'भृति, वेतन'। 'कर्मण्या तु **विधा**भृत्याभृतयो भर्म वेतनम्' – अमर॰ 2.10.38

प्र-मा-माङ् माने, जुहो॰, आत्म॰-**प्रमा** 'मान', 'बोध'। 'यथार्थानुभवः प्रमा'-तर्कभाषा।

उप-मा–**उपमा** 'उपमानम्, उपमीयतेऽनयेति वा'।

विशेष– श्रदन्तरोरुपसर्गवद् वृत्तिः (वा)

श्रद् एवं अन्तर की उपसर्ग जैसी वृत्ति रहती है– अङ् विधि में।

प्रयोग– श्रद्-धा + अङ् + टाप् = **श्रद्धा** 'भक्ति'। 'सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत'– गीता 17/3, अन्तर्-धा + अङ् + टाप् = **अन्तर्धा** 'छिपना'। 'अन्तर्धामुपययुरुत्पलावलीषु'– शिशु॰ 8/12

अच्

अच् = अ।

हलन्त्यम् 1.3.3 से 'च्' की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– अजादि। चित्। आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। चित् होने से चितः (6.1.163) से अजन्त प्रातिपदिक का अन्त्य स्वर उदात्त होता है।

1. विधि– नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः 3.1.134
नन्द् आदि, ग्रह् आदि, तथा पच् आदि धातुओं से क्रम से ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– पचादि। आकृतिगण (पचादिराकृतिगणः-का॰) अर्थ-कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रयोग– पचति इति पच् (डुपचष् पाके, भ्वादि, उ॰) + अच् = **पचः** 'पाचक'।
वपति - वप् (डुवप बीजसन्ताने, भ्वादि, उ॰) - **वपः** 'बोनेवाला'।
वदति - वद् (व्यक्तायां वाचि, भ्वादि, प॰) - **वदः** 'बोलनेवाला'।
चलति - चल् (कम्पने, भ्वादि, प॰) - **चलः** 'चलनेवाला'।
पतति - पत् (पत्लृ गतौ, भ्वादि, प॰) - **पतः** 'गिरनेवाला'।
तपति - तप् (सन्तापे, भ्वादि, प॰) - **तपः** 'तपनेवाला'।

विशेष– पचादि गण में चरट्, देवट्, नदट् - ये अच् प्रत्ययान्त टित् पढ़े गये हैं, अतः स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से ङीप् (ई) - चरी, अनुचरी, देवी, नदी।

2. विधि– ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः 3.1.140
ज्वल् आदि कस् पर्यन्त धातुओं से विकल्प में 'ण'। पक्षान्तर में अच् (नन्दिग्रहि॰ 3.1.134) - 'पक्षेऽच्' (कौ॰)

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– ज्वलति–ज्वल् दीप्तौ, भ्वादि, प॰ - ज्वालः (ण), **ज्वलः** (अच्) 'लौ, लपट'। चलति– चालः (ण), **चलः** (अच्)।

3. विधि– दुन्योरनुपसर्गे 3.1.142

अनुपसर्गक 'दु' एवं 'नी' धातुओं से ण प्रत्यय। यहाँ 'दु' से 'टु दु उपतापे' (स्वादि, प॰ - दुनोति) का ग्रहण है।

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– (क)- दु गतौ (भ्वादि, प॰-दवति) से 'अच्' होगा (पचाद्यच् 3.1.134)- 'दवतेस्तु पचाद्यच्' (कौ॰)। दु + अच् = दो अ (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84) **दवः** 'कष्ट देनेवाला, वन की आग'।

(ख)- सोपसर्ग दु, नी से अच् (3.1.134) = **प्रदवः** 'जलना', **प्रणयः** 'प्रेम'।

4. विधि– विभाषा ग्रहः 3.1.143

ग्रह् से विकल्प से 'ण'। पक्षान्तर में अच् (3.1.134)- 'पक्षेऽच्' (कौ॰)।

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– ग्रह् (उपादाने, क्र्यादि, उ॰) - ण = **ग्राहः** 'पकड़नेवाला, घड़ियाल' (जलचरः)। ग्रह् + अच् = **ग्रहः** (ज्योतिः)।

5. विधि– भवतेश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 3.1.143) (कौ॰ में यह नहीं है)

'भू' धातु से भी विकल्प से 'ण'। पक्षान्तर में अच् (3.1.134) 'भवतेश्चेति काशिका। भवो देवः संसारश्च। भावाः पदार्थाः।'-कौ॰

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– भवति - भू (सत्तायाम्, भ्वादि, प॰) + ण = **भावः**। भू + अच् = **भवः**।

6. विधि– हरतेरनुद्यमनेऽच् 3.2.9

उद्यमन = उत्क्षेपण अर्थ न हो तो 'हृ' से अच् हो, कर्म उपपद में रहने पर।

अपवाद– कर्मण्यण् (3.2.1) से प्राप्त 'अण्' का।

अनु॰– कर्मणि (3.2.1)

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त 'हृ' (हरणे, भ्वादि, उ॰)

प्रयोग– यथा- अंशं हरति = अंश - हृ + अच् = अंश-हर् + अ

(सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से गुण, रपरत्व) = **अंशहरः** 'दायाद'। 'पिण्डदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः'– याज्ञ० 2.132-133। रिक्थं हरति = **रिक्थहरः** 'जायदाद का भागी'।

विशेष– उद्यमन अर्थ में - भारं हरति = **भारहारः** 'बोझा ढोनेवाला' (कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्)।

विशेष 2– अच्प्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमरघटघटीधनुःषु ग्रहे-रुपसंख्यानम् (वा०, 3.2.9)- उद्यमन अर्थ में शक्ति, लाङ्गल, अंकुश, यष्टि, तोमर, घट, घटी, धनुष् उपपद रहने पर ग्रह् से 'अच्' हो।

प्रयोग– शक्तिं गृह्णाति = शक्ति-ग्रह् (उपादाने, क्र्यादि, उ०) + अच् = **शक्तिग्रहः** 'भाला धारण करनेवाला'। **यष्टिग्रहः**। **तोमरग्रहः**। **घटग्रहः**। **घटीग्रहः**। **धनुर्ग्रहः**।

विशेष– सूत्रे च धार्यर्थे (वा०, 3.2.9)
धारि धातु के अर्थ में ग्रह् से अच्, सूत्र उपपद में रहे तो।

प्रयोग– सूत्रं गृह्णाति = सूत्र-ग्रह् + अच् = **सूत्रग्रहः** 'सूत्रं धारयति (सूत पकड़नेवाला)'।

विशेष– धारि अर्थ के अभाव में - सूत्र - ग्रह् + अण् (3.2.1) = **सूत्रग्राहः** 'सूत लेनेवाला'।

7. विधि– किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम् (वा०, 3.2.21)। किम्, यत्, तद्, बहु - इनके उपपद होने पर 'कृ' से अच् हो (न कि दिवाविभा० 3.2.21 के अनुसार 'ट', जिससे स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ्० 4.1.15 से ङीप् न होगा एवं फलतः स्त्रीत्वलक्षण 'टाप्' ही होगा। 'हेत्वादौ टं बाधित्वा परत्वादच्' (कौ०)

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– किं करोति एषा = किम् - कृ (डुकृञ् करणे, तनादि, उ०) + अच् = किंकर + टाप् (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4) = **किंकरा** 'सेविका'। **यत्करा**। **तत्करा**। **बहुकरा**। परन्तु पुंयोग में ङीष् होगा - किंकरस्य स्त्री = **किंकरी** 'सेवक की स्त्री' (पुंयोगादाख्यायाम् 4.1.48 से ङीष्)।

8. विधि– वयसि च 3.2.10
वय की प्रतीति होने पर 'हृ' से अच्।
अनु॰– हरतेः, अच् (3.2.9), कर्मणि (3.2.1)।
प्रकृति– कर्म उपपद युक्त 'हृ' (हरणे, भ्वादि, उ॰)।
अर्थ– कर्ता।
प्रयोग– कवचं हरति = कवच-हृ + अच् = **कवचहरः** (क्षत्रियकुमारः) 'कवच पहनने योग्य वयः को प्राप्त हुआ क्षत्रियकुमार'।
कौमारं हरति = **कौमारहरः**। 'यः कौमारहरः स एव हि वरः' - का॰ प्र॰, प्रथम उल्लास।

9. विधि– आङि ताच्छील्ये 3.2.11.
आङ् + हृ से 'अच्', जब कर्म उपपद में हो एवं कर्ता धातुवाच्य क्रिया को तच्छील होकर अर्थात् स्वभाव से करता हो।
अनु॰– हरतेः, अच् (3.2.9), कर्मणि (3.2.1)
अर्थ– ताच्छील्य।
प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त आ + हृ (हरणे, भ्वादि, उ॰)।
प्रयोग– पुष्पाण्याहरति इत्येवंशीलः = पुष्प - आ - हृ + अच् = **पुष्पाहरः** 'पुष्प लाने में जिसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है'।
विशेष– ताच्छील्य के अभाव में - भारम् आहरति = भार - आ – हृ + अण् (कर्मण्यण् 3.2.1) = **भाराहारः** 'बोझा लानेवाला'।

10. विधि– अर्हः 3.2.12
कर्म उपपदक 'अर्ह्' धातु से अच्।
अपवाद– कर्मण्यण् (3.2.1) से प्राप्त अण् का।
अनु॰– अच् (3.2.9), कर्मणि (3.2.1)।
अर्थ– कर्ता।
प्रकृति– कर्म उपपदक अर्ह् (पूजायाम्, भ्वादि, प॰)।
प्रयोग– पूजाम् अर्हति - पूजा - अर्ह् + अच् = **पूजार्हः**। पूजार्हा (ब्राह्मणी) 'पूजा की योग्यता रखनेवाली'। 'अण्' करने पर 'टिड्ढाणञ्॰' 4.1.15 से ङीप् हो जाता। 'अच्' करने पर अजाद्यत॰ 4.1.4 से टाप् हुआ - **पूजार्हा**।

11. विधि– स्तम्बकर्णयो रमिजपोः 3.2.13

सुबन्त 'स्तम्ब'- उपपदक 'रम्' तथा सुबन्त 'कर्ण' उपपदक 'जप्' धातुओं से अच्।

अनु॰– अच् (3.2.9), सुपि (सुपि स्थः 3.2.4)।

प्रकृति– स्तम्ब-रम् (रमु क्रीडायाम्, भ्वादि, आत्म॰), कर्ण-जप् (जप व्यक्तायां वाचि, मानसे च, भ्वादि, पर॰)।

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– स्तम्बे रमते = स्तम्बे - रम् + अच् = **स्तम्बेरमः** (हस्ती)। 'स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते' – रघु॰ 5.82

कर्णे जपति = कर्णे - जप् + अच् = **कर्णेजपः** 'सूचक, चुगलखोर'। 'कर्णेजपः सूचकः स्यात्' – अमर॰ 3.1.47, 'कर्णेजपैराहितराज्यलोभा स्त्रैणेन नीता विकृतिं लघिम्ना' – भट्टि॰ 3.7

तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.14 से सप्तमी विभक्ति का अलुक्।

विशेष– हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् (वा॰, 3.2.13)

उपर्युक्त (3.2.13) रम् तथा जप् धातुओं से क्रमशः हाथी एवं सूचक अर्थों में ही अच्। स्तम्बेरमः (हस्ती), कर्णेजपः (सूचकः)।

हस्ती - अर्थ के अभाव में स्तम्बे रन्ता (रम् + तृच्) 'गुल्म में खेलनेवाला'। सूचक - अर्थ के अभाव में - कर्णे जपिता (मशकः) 'कान में गुनगुन करनेवाला मच्छर'।

12. विधि– शमि धातोः संज्ञायाम् 3.2.14

'शम्' - उपपदक धातुसामान्य से संज्ञा विषय में अच्।

अनु॰– अच् (3.2.9)

अर्थ– कर्ता, संज्ञा।

प्रकृति– शम् उपपदक धातुसामान्य, यथा - शम् - कृ (डुकृञ् करणे, तनादि, उ॰), शम् - भू (सत्तायाम्, प॰)।

प्रयोग– शं करोति = शं - कृ + अच् = **शङ्करः** (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण)।

शम् भवति = शम् भू + अच् = **शम्भवः** 'जैनियों के तीसरे अर्हत् का नाम' (7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)

13. विधि– अधिकरणे शेतेः 3.2.15
अधिकरण -उपपद होने पर शीङ् धातु से 'अच्'।

अनु॰– अच् (3.2.9), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– अधिकरण - उपपदक शी (शीङ् स्वप्ने, अदादि, आत्म॰)।

प्रयोग– खे शेते = खे-शी + अच् = **खशयः** 'खुले आकाश में सोंनेवाला'। (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश, तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.14 से सप्तमी का लुक्)।

14. विधि– पार्श्वादिषूपसंख्यानम् (वा॰, 3.2.15)
पार्श्व आदि उपपदक 'शीङ्' से भी अच्।

प्रकृति– पार्श्व-शीङ् (स्वप्ने, अदादि, आत्म॰)।

अर्थ– कर्ता।

प्रयोग– पार्श्वाभ्यां शेते - पार्श्व - शी + अच् = **पार्श्वशयः** 'जो वाम या दक्षिण पार्श्व से सोता है'। उदरेण शेते - **उदरशयः** पेट के बल सोनेवाला', पृष्ठेन शेते = **पृष्ठशयः** 'पीठ के बल सोनेवाला'।

15. विधि– दिग्धसहपूर्वाच्च (वा॰, 3.2.15)
दिग्धसहपूर्वक 'शीङ्' से अच्।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– दिग्धसह - शी (शीङ् स्वप्ने, अदादि, आत्म॰)।

प्रयोग– दिग्धेन सह शेते = **दिग्धसहशयः** 'उबटन के साथ सोनेवाला'।

16. विधि– उत्तानादिषु कर्तृषु (वा॰, 3.2.15)
कर्तृवाचक उत्तान आदि उपपद में हों तो 'शीङ्' से अच्।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– उत्तान (कर्तृवाचक) - शी (शीङ् स्वप्ने, अदादि, आ॰)।

प्रयोग– उत्तानः सन् शेते = उत्तान - शी + अच् = **उत्तानशयः** 'ऊपर को मुँह किये सोनेवाला'। 'कदा उत्तानशयः पुत्रकः जनयिष्यति मे हृदयाह्लादम्' – काद॰ 62

17. विधि– एरच् 3.3.56
इकारान्त धातु से भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में 'अच्', यदि प्रत्ययान्त से संज्ञा बोध्य हो।

अपवाद– भावे (3.3.18), अकर्तरि च कारके (3.3.19) से प्राप्त 'घञ्' का।

अनु॰– भावे (3.3.18), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19)

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– इकारान्त धातु, यथा- चि (चयने, स्वादि, उ॰), इ (इण् गतौ, अदादि, प॰), जि (अभिभवे, भ्वादि, प॰), क्षि (निवासगत्योः, तुदादि, प॰)

प्रयोग– भावे - चि + अच् = **चयः** 'राशि, ढेर' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)।
इण्– **अयः** 'गति'।
अकर्तरि कारके - जयन्त्यनेन = जि + अच् = **जयः** (करण में अच्) 'ततो जयमुदीरयेत्' (म॰ भा॰) क्षियति निवसत्यत्र = क्षि + अच् = **क्षयः** (अधिकरण में अच्)।

18. विधि– अज्विधौ भयादीनामुपसंख्यानम् (वा॰, 3.3.56) भी, वृष् आदि से नपुंसकत्वविशिष्ट भाव में क्त, ल्युट् न होकर 'अच्'।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रयोग– भी (ञिभी भये, जुहोत्या॰, प॰) + अच् = **भयम्** 'डर'।
वृष् (वृषु सेचने, भ्वादि, प॰) + अच् = **वर्षम्** 'वर्षा'। (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'वृष्टिर्वर्षम्' –अमर॰ 1.3.11

19. विधि– जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ (वा॰, 3.3.56) - निपातन
छन्दोविषय में अच्-प्रत्ययान्त जव, सव शब्द निपातनसिद्ध हैं।

अपवाद– ऋदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

प्रयोग– जु - **जवः**, सु (षु प्रसवैश्वर्ययोः, भ्वादि, प॰) - **सवः**। ऋग्वेद 1/112/21, यजुर्वेद 11/2

20. विधि– दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने 3.4.73 - निपातन

दाश (अच्-अन्त), गोघ्न (टक्-अन्त) का निपातन - सम्प्रदान में।

अर्थ– सम्प्रदान।

प्रकृति– दाश् (दाशृ दाने, भ्वादि, उ॰) से पचादि-अच् (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो॰ 3.1.134)। कृत् होने से कर्तरि कृत् 3.4.67 से कर्ता में अच् प्राप्त था, यहाँ सम्प्रदान में उसका निपातन है। 'दाशृ दाने, ततः पचाद्यच्' - का॰।

प्रयोग– दाशन्ति तस्मै = दाश् + अच् (3.1.134) = **दाशः** 'मल्लाह आदि'। 'यन्नावि किंचिद् दाशानां विशीर्येत'– मनु॰ 8.408

सम्ब॰– (1) घस्लृभावेऽच्युपसंख्यान्म् (वा॰, 2.4.37) अच् के परे रहते अद् के स्थान पर 'घस्लृ' आदेश।

प्रयोग– प्रात्ति = प्र - अद् (अद भक्षणे, अदादि, प॰) + अच् (नन्दिग्रहि॰ 3.1.134) = प्र घस् अ (उक्त वार्तिक से अस् = घस्लृ) = **प्रघसः** 'पेटू'।

सम्ब॰– (2) चरिचलिपतिवदीनां द्वित्वमच्याक् चाऽभ्यासस्य (वा॰, 6.1.12)

अच् के परे रहते चर्, चल्, पत्, वद् धातुओं का द्वित्व एवं अभ्यास (पूर्वोऽभ्यासः 6.1.4) को आक् का आगम।

प्रयोग– चरति = चर् + अच् (नन्दिग्रहि॰ 3.1.134 से अच्) = चर् चर् अ (उक्त वार्तिक से द्वित्व) = चर् आ चर् अ (उक्त वार्तिक से अभ्यास के अन्त्यावयव (आद्यन्तौ टकितौ 1.1.46 से) में आक्(आ) = **चराचरः** 'चलने या दौड़नेवाला'। चलति = चल् + अच् (3.1.134) = **चलाचलः** 'चलने या दौड़नेवाला'। पतति = पत् + अच् **पतापतः** 'गिरनेवाला'। वदति = वद् + अच् **वदावदः**। 'चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः' वैरा॰श॰।

सम्ब॰– (3) वेति वक्तव्यम् (वा॰, 6.1.12)
उक्त (चरिचलिपति॰ वा॰) द्विर्वचन तथा आक्-आगम वैकल्पिक है।

प्रयोग– चरति-**चरः** (मनुष्यः), **चलः** (रथः), **पतम्** (यानम्), **वदः** - (मनुष्यः) - देखें विधि-1

सम्ब॰– (4) हन्तेर्घत्वं च (वा॰, 6.1.12)
अच् के परे 'हन्'का द्विर्वचन, अभ्यास में आक् आगम, अभ्यास तथा उत्तरवर्ती हकार को घकार आदेश।

प्रयोग– हन्ति - हन् + अच् (3.1.134) = घन् आक् घन् अ = **घनाघनः** 'मारनेवाला'। 'घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्'– ऋग्वेद 10.103.1

सम्ब॰– (5) पाटेर्णिलुक् चोक् च दीर्घश्चाभ्यासस्य (वा॰, 6.1.12)
अच् के परे णिजन्त 'पाटि' धातु का द्वित्व, णिच् का लोप, अभ्यास को उक् आगम तथा उसके स्थान पर दीर्घादेश।

प्रयोग– पाटयति = पट् (गतौ, भ्वादि, प॰) + णिच् = पाट् इ अच् (3.1.134) = पाट् ऊ पट् अ (द्वित्व, उक्, दीर्घ, णिलोप) = **पाटूपटः** 'चलने या बोलनेवाला'।

सम्ब॰– (6) निमिमीलियां खलचोः प्रतिषेधो वक्तव्यः (वा॰, 6.1.51)
नि, मि, मी, ली एवं लिङ् धातुओं को खल् तथा अच् के परे रहते आकारादेश (6.1.50,51 से प्राप्त) नहीं हो।

प्रयोग– नि-मि (डुमिञ् प्रक्षेपणे, स्वादि, उ॰) + अच् (एरच् 3.3.56) = **निमयः** (गुण, अयादेश, मीनातिमिनोति॰ 6.1.50 से प्राप्त आकारादेश नहीं)।

प्र-मी (हिंसायाम्, क्र्यादि, उ॰) + अच् (एरच् 3.3.56) = **प्रमयः** (गुण, अयादेश, मीनातिमिनोति॰ 6.1.50 से प्राप्त आकारादेश नहीं)।

वि-ली (लीङ् श्लेषणे, दिवादि, आ एवं ली श्लेषणे क्र्यादि, प॰) + अच् (एरच् 3.3.56) = **विलयः** (गुण, अयादेश एवं विभाषा लीयतेः 6.1.51 से प्राप्त आकारादेश का अभाव)।

सम्ब०– (7) प्रतिष्कशश्च कशेः 6.1.152
प्रति + कश् का (अच् के परे) सुट् का निपातन।

प्रयोग– प्रति-कश् (गतिशासनयोः) + अच् (नन्दिग्रहि० 3.1.134 से) = **प्रतिष्कशः** (सुट् का निपातन) 'सहायक'। 'ग्राममद्य प्रवेक्ष्यामि भव मे त्वं प्रतिष्कशः। वार्तापुरुषः सहायः पुरोयायी वा'– का०।

विशेष– कश् धातु के अभाव में– प्रतिगतः कशां **प्रतिकशः** (अश्वः) 'घोड़ा', जो कोड़े से शासित हो। यहाँ 'कशा' शब्द है, न कि 'कश्' धातु।

सम्ब०– (8) मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः 6.1.154
वेणु अर्थ में मस्कर, परिव्राजक अर्थ में मस्करिन् का निपातन। मस्कर अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है, परन्तु कुछ विद्वानों के मत में इसमें 'अच्' प्रत्यय है (केचित् पुनः माङ्युपपदे करोतेः करणेऽच्प्रत्ययमपि निपातयन्ति - का०)।

प्रयोग– मा क्रियते, येन प्रतिषिध्यते = मा - कृ + अच् (3.1.134) = मस् कर् अ (माङ् को ह्रस्व, धातु को सुट् आगम = **मस्करः** (वेणुः) 'बाँस, जिससे बाधा पहुँचायी जाती है'।

सम्ब० (9) वृषादीनां च 6.1.203
वृष आदि शब्दों का आदि उदात्त। वृष आदि शब्द पचाद्यच् (3.1.134) प्रत्ययान्त हैं।

प्रयोग– वृषः, जनः, ज्वरः, ग्रहः, हयः, गयः– ये सभी अच्- प्रत्ययान्त (नन्दिग्रहि० 3.1.134) आदि उदात्त हैं।

सम्ब०– (10) त्यागरागहासकुहश्वठक्रथानाम् 6.1.216
ये शब्द विकल्प से आदि उदात्त हैं।

प्रयोग– कुहः, श्वठः, क्रथः– ये अच् प्रत्ययान्त (नन्दिग्रहि० 3.1.134) हैं एवं विकल्प से आदि उदात्त हैं।

सम्ब०– (11) थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.144
थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र, क (प्रत्यय)– अन्त शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– प्रक्षयः (प्र क्षि + अच् - एरच् 3.3.56), प्रजयः (प्र जि + अच् - एरच् 3.3.56)- ये अन्त्य उदात्त हैं।

सम्ब॰– (12) अच्कावशक्तौ 6.2.157
अशक्ति अर्थ में अच् एवं क प्रत्ययान्त उत्तरपदों का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– अपचः (यः पक्तुं न शक्नोति = न – पच् + अच् – नन्दिग्रहि॰ 3.1.134)। अजयः (न-जि + अच्– एरच् 3.3.56)। अन्त्य स्वर उदात्त है।

सम्ब॰– (13) षष्ठीप्रकरणे वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु यथासंख्यमलुग् वक्तव्यः (वा॰, 6.3.21)
'हर' शब्द के उत्तरपदत्व में पश्यत् शब्द से विहित षष्ठी का अलुक्।

प्रयोग– पश्यतः हरति = पश्यतः हृ + अच् (हरतेरनु॰ 3.2.9) = **पश्यतोहरः** (षष्ठी का अलुक्)।

सम्ब॰– (14) घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः 6.3.43।
'ब्रुव' के परे रहते भाषितपुंस्क ङीप्रत्ययान्त अनेकाच् का पुंवद्भाव।

प्रयोग– ब्राह्मणी- ब्रू (ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि, अदादि, उ॰) + अच् (नन्दिग्रहि॰ 3.1.134) = **ब्राह्मणिब्रुवा** (पुंवद्भाव, अचि श्नुधातु॰ 6.4.77 से ऊ को उवङ् आदेश)।

सम्ब॰– (15) इकः काशे 6.3.123
'काश' के उत्तरपद होने पर इगन्त पूर्वपद को दीर्घ। 'काश' शब्द पचाद्यच्–प्रत्ययान्त है (का॰)।

प्रयोग– नि - काश् + अच् (नन्दिग्रहि॰ 3.1.134) = **नीकाशः**। वि - काश् + अच् = **वीकाशः**। अनु - काश् + अच् = **अनूकाशः**।

अण्

अण् = अ। हलन्त्यम् 1.3.3 से ण् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) णित् (1.3.3)। अतः अचो ञ्णिति (7.2.115) से इगन्ताङ्ग को वृद्धि होती है। अत उपधायाः (7.2.116) से उपधा अकार को वृद्धि होती है। हनस्तोऽचिण्णलोः (7.3.32) से हन् को तकार आदेश, आतो युक् चिण्कृतोः (7.3.33) से आकारान्त अङ्ग को युक्-आगम होता है। नोदात्तोपदेशस्य० (7.3.34) से उदात्तोपदेश एवं मान्त ('चमि' को छोड़कर) को उपधावृद्धि (7.2.116 से) नहीं होती है। जनिवध्योश्च (7.3.35) से जन् तथा वध् को उपधावृद्धि (7.2.116 से) नहीं होती है।

1. विधि– कर्मण्यण् 3.2.1

कर्ममात्र (निर्वर्त्य, विकार्य, प्राप्य) के उपपद होने पर धातु से अण्। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (3.1.92) से सप्तमीस्थ की उपपद संज्ञा, यथा–कर्मणि (3.2.1)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– धातुसामान्य, कर्म के उपपद रहने पर, यथा– कुम्भं करोति = कुम्भ-कृ।

प्रयोग– (1) निर्वर्त्य कर्म–कुम्भं करोति = कुम्भ-कृ + अण् = **कुम्भकारः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। (2) विकार्य– काण्डानि लुनाति = काण्ड-लू + अण् = **काण्डलावः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)। (3) प्राप्य– वेदम् अधीते = वेद-अधि-इ + अण् = **वेदाध्यायः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से इ को वृद्धि से ऐकार, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आयादेश, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश एवं

अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ एकादेश)।

2. विधि– ह्वावामश्च 3.2.2
ह्वा, वा (ह्वे, वेञ् से उपदेशावस्था में ही आकारान्त बननेवाली दो धातुएँ) तथा आकारान्त माङ् धातु से कर्म उपपद होने पर 'अण्'।

अपवाद– आतोऽनुपसर्गे कः (3.2.3) से प्राप्त 'क' का।

अनु॰– कर्मण्यण् (3.2.1)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त ह्वा (ह्वे), वा (वेञ्) (आदेच उपदेशे॰ 6.1.45 से एकार को आकार) तथा मा (माङ्)।

प्रयोग– (1) स्वर्गं ह्वयति = स्वर्ग-ह्व + अण् = **स्वर्गह्वायः** 'स्वर्ग को बुलानेवाला' (आतो युक् 7.3.33 से धातु को युक् आगम)।
(2) तन्तून् वयति = तन्तु-वा + अण् = **तन्तुवायः** 'जुलाहा' (युक् पूर्ववत्। 'तन्तुवायः कुविन्दः स्यात्'– अमर॰ 2.10.6
(3) धान्यं मिमीते = धान्य-मा + अण् = **धान्यमायः** 'धान मापनेवाला' (युक् पूर्ववत्)।

3. विधि– क्षेमप्रियमद्रेऽण् च 3.2.44
क्षेम, प्रिय, मद्र- इनके उपपद होने पर 'कृ' से अण् एवं खच्।

अनु॰– कृञः (3.2.43), खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.1)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– क्षेम आदि उपपद से युक्त 'कृ'।

प्रयोग– क्षेमं करोति = क्षेम - कृ + अण् = **क्षेमकारः** (कुम्भकारः, विधि 1 जैसी)। प्रिय– **प्रियकारः**। मद्र–**मद्रकारः**। पक्षे खच् - **क्षेमंकरः**, **प्रियंकरः**, **मद्रंकरः**।

4. विधि– दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् (वा॰ 3.2.49)
दारु शब्द के उपपदत्व में आङ् उपसर्गयुक्त हन् से अण् तथा अन्त को 'ट' आदेश, संज्ञाविषय में।

अर्थ– कर्ता, संज्ञा का विषय।

प्रकृति– दारु उपपद से युक्त आ + हन्, संज्ञाविषय में।

प्रयोग– दारु आहन्ति = दारु-आ- हन् + अण् = **दार्वाघाटः** 'कठफोड़ा' (प्रस्तुत वार्त्तिक से अन्त न् को ट् आदेश, अत उपाधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, हो हन्तेः 7.3.54 से 'ह' को कुत्व से घकार, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)
'अथ स्याच्छतपत्रकः, दार्वाघाटः'– अमर॰ 2.5.17

5. विधि– चारौ वा (वा॰, 3.2.49)
चारु शब्द के उपपदत्व में आ-हन् से अण्, अन्त को विकल्प से टकारादेश, संज्ञाविषय में।

अर्थ– कर्ता, संज्ञा का विषय।

प्रकृति– चारु उपपद से युक्त आ-हन्।

प्रयोग– चारु आहन्ति = चारु - आ- हन् + अण् = **चार्वाघाटः** (दार्वाघाटः, विधि 4 जैसी)। टकारादेश के अभाव में – **चार्वाघातः** (हनस्तोः 7.3.32 से अन्त को तकारादेश)।

6. विधि– कर्मणि च (वा॰ 3.2.49)
कर्म उपपदत्व में सम्-हन् से 'अण्' एवं विकल्प से टकार अन्तादेश।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म-उपपद से युक्त सम्-हन्।

प्रयोग– वर्णान् संहन्ति = वर्ण-सम्- हन् + अण् = **वर्णसंघाटः** 'वर्णमाला' (नश्चापदान्तस्य॰ 8.3.24 से मकार को अनुस्वार, शेष दार्वाघाटः, विधि 4 जैसी)। टकारादेश के अभाव में **वर्णसंघातः**।

7. विधि– अण् कर्मणि च 3.3.12
कर्म कारक तथा क्रियार्था क्रिया के भी उपपद होने पर धातु से भविष्यत् काल में 'अण्'।

अनु॰– क्रियायां क्रियार्थायाम् (3.3.10), भविष्यति (3.3.3)।

अपवाद– तुमुन्ण्वुलौ॰ (3.3.10) से प्राप्त 'ण्वुल्' का (द्रष्टव्य-का॰ 3.3.12), आतोऽनुपसर्गे कः (3.2.3) से प्राप्त 'क' का।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– धातुसामान्य, कर्म तथा क्रियार्था क्रिया के उपपद होने पर।

प्रयोग– काण्डानि लुनाति = काण्ड-लू + अण् = **काण्डलावः** (विधि 1 जैसी) व्रजति 'शाखाओं को काटेगा, इसलिए जाता है'। गो-दा + अण्, आतो युक्॰ 7.3.33 से युक्-आगम = **गोदायः** व्रजति 'गौ देगा, इसलिए जाता है'।

सम्ब॰– (1) टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15

अण्- अन्त प्रातिपदिक से ङीप्।

प्रयोग– कुम्भकार (कुम्भ-कृ + अण्, कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्) + ङीप् = **कुम्भकारी**। नगरकार-**नगरकारी**।

सम्ब॰– (2) अणि नियुक्ते 6.2.75

नित्य युक्तार्थक समास में अण् - अन्त के उत्तरपद होने पर पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त।

प्रयोग– **छत्रधारः** (कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्), - पूर्वपद 'छत्र' का आदि स्वर उदात्त।

सम्ब॰– (3) शिल्पिनि चाकृञः 6.2.76

शिल्पिवाचक समास में अण् - अन्त के उत्तरपद होने पर पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त, यदि वह अण् 'कृञ्' धातु से विहित न हो।

प्रयोग– **तन्तुवायः** (तन्तु-वा + अण्, ह्वावामश्च 3.2.2 से अण्) - पूर्वपद 'तन्तु' का आदि स्वर उदात्त।

सम्ब॰– (4) संज्ञायां च 6.2.77

संज्ञा विषय में अण्-अन्त के उत्तरपद होने पर पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त, यदि वह अण् 'कृञ्' से विहित न हो।

प्रयोग– **बालवायः** 'पर्वतविशेष' (ह्वावामश्च 3.2.2 से अण्) - पूर्वपद 'बाल' का आदि स्वर उदात्त।

सम्ब॰– (5) कारे सत्यागदस्य 6.3.70

कार (अणन्त) शब्द के उत्तरपदत्व में 'सत्य' एवं 'अगद' को मुम्-आगम।

प्रयोग– सत्यं करोति अथवा सत्यस्य कारः = **सत्यङ्कारः** (सत्य-कृ + अण्, कर्मण्यण् (3.2.1) से, सत्य को मुम्–आगम (मिदचोऽन्त्यात्परः 1.1.47 से अन्त्य अच् से परे)। **अगदङ्कारः**।

सम्ब॰– (6) अस्तुसत्यागदस्य कार इति वक्तव्यम् (वा॰, 6.3.70)
अस्तु, सत्य तथा अगद का 'कार' शब्द के परे रहते मुम्-आगम।

प्रयोग– **अस्तुंकारः** (अस्तु-कृ + अण्, कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्)।

सम्ब॰– (7) भक्षस्य छन्दसि कारे मुम् वक्तव्यः (वा॰, 6.3.70)
छन्दोविषय में 'भक्ष' शब्द को कार शब्द के परे रहते मुम्-आगम।

प्रयोग– भक्षं करोति अथवा भक्षस्य कारः = **भक्षंकारः** (भक्ष-कृ + अण्, कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्)। भक्ष को मुम्-आगम।

अतृन्

अतृन् = अत्। हलन्त्यम् 1.3.3 से 'न्' की इत्संज्ञा। उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से 'ऋ' की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से धातु का आदि स्वर उदात्त।

(3) उगित् (1.3.2)। अतः उगितश्च (4.1.6) से ङीप्, उगिदचां सर्वनाम॰ 7.1.70 से नुम्-आगम।

(4) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1. विधि– जीर्यतेरतृन् 3.2.104

'जृष्' धातु से भूतकाल में अतृन्।

अनु॰– भूते 3.2.84।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– जृष् वयोहानौ, दिवा॰,प॰।

प्रयोग– अजीर्य्यत् = जॄ + अतृन् = जॄ + अत् = जरत् (सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व), प्रथमा एकवचन में **जरन्** 'जीर्ण, बूढ़ा'। 'प्रवयाः स्थविरो वृद्धो जीनो जीर्णो जरन्नपि' – अमर॰ 2.6.42

सम्ब॰– (1) उगितश्च 4.1.6

उगिदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व में ङीप्।

प्रयोग– जॄ + अतृन् (जीर्यतेरतृन् 3.2.104) = जरत्।

स्त्रीत्व में जरत् + ङीप् = **जरती**।

(2) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः 7.1.70

अङ्गसंज्ञक उगित् (धातुभिन्न) को सर्वनामस्थान के परे नुम् का आगम।

प्रयोग– जॄ + अतृन् (जीर्यतेरतृन् 3.2.104) = जरत्। पुंल्लिंग प्रथमा एकवचन में जरत् + सु = जर नुम् त् सु = **जरन्**। (संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23 से 'त्' का लोप, उस लोप के असिद्ध होने से सर्वनामस्थाने॰ 6.4.8 से उपधादीर्घ नहीं।)

अथुच्

अथुच् = अथु। हलन्त्यम् 1.3.3 से 'च्' की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) चित् (1.3.3)। अतः चितः (6.1.163) से अथुच्-अन्त उदात्त होता है (अर्थात् इसका 'उ'कार उदात्त होता है)।

(2) अजादि।

(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः (3.4.114)।

1. विधि– ट्वितोऽथुच् 3.3.89

'टु'- इत् संज्ञक धातु से भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में अथुच् प्रत्यय।

अनु॰– अकर्तरि च कारके (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– 'टु'-इत् धातु, यथा– टुवेपृ कम्पने, भ्वादि, आत्म॰ = वेप् (आदिर्ञिटुडवः 1.3.5 से टु की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप)।

प्रयोग– वेपनम् = वेप् + अथुच् = **वेपथुः** 'कम्पन'। 'वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते'– गीता 1.29। स्फूर्ज् (टु ओ स्फूर्जा वज्रनिर्घोषे, भ्वादि, पर॰)– **स्फूर्जथुः** 'ध्वनि' 'महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः'– रघु॰ 13/12

अध्यै, अध्यैन्

अध्यै (केवल छन्दोविषय में)

स्वभाव– (1) प्रत्यय (3.1.1)। (2) अजादि। (3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। (4) एजन्त होने से कृन्मेजन्तः 1.1.39 से अव्यय संज्ञा।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन॰ 3.4.9
वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में से, सेन् आदि के साथ 'अध्यै' भी। तुमुन्–अर्थ अर्थात् भाव ('तुमर्थो भावः'–का॰)।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– उपाचरितुम् = उप-आ-चर् + अध्यै = **उपाचरध्यै।** 'कर्मण्युपाचरध्यै'।

विशेष– एजन्त होने से कृन्मेजन्तः 1.1.39 से अव्यय संज्ञा। अतः 'उपाचरध्यै'- अदि का अव्ययवत् व्यवहार है।

अध्यैन् = अध्यै। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से धातु का आदि उदात्त। इस स्वरविशेषता को छोड़ शेष सभी 'अध्यै' की तरह है। यथा– **उपाचरध्यै** (देखें– 'अध्यै')।

अनि

अनि।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

1. विधि– आक्रोशे नञ्यनिः 3.3.112

नञ्-उपपदक धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अनि, यदि आक्रोश (क्रोधपूर्वक चिल्लाना) गम्यमान हो, स्त्रीत्व में।

अनु॰– स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् (3.3.94) आदि से विहित क्तिन् आदि का।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– न-कृ + अनि = **अकरणिः** (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, नलोपो नञः 6.3.71 से नञ् के नकार का लोप, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)।

अकरणिस्ते वृषल! भूयात् 'नीच! तेरी करनी का नाश हो जाय।'

'तस्या**जननि**रेवास्तु जननीक्लेशकारिणः'– शिशु॰ 2.45 (न-जन् + अनि = अजननिः)। अर्थात् माता को केवल दुःख देनेवाले उसका जन्म न हो।

अनीयर्

अनीयर् = अनीय। हलन्त्यम् 1.3.3 से र् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) कृत् (कृदतिङ् 3.1.93)। अतः कृत्तद्धित॰ (1.2.46) से अनीयर्– अन्त की प्रातिपदिक संज्ञा।

(2) कृत्य (कृत्याः प्राङ्ण्वुलः 3.1.95 सूत्र का अधिकार है)। अतः तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (3.4.70) से भाव एवं कर्म में अनीयर्। 'कृत्य' के अन्य कार्य के लिए देखें– सम्ब॰।

(3) अजादि।

(4) रित् (1.3.3)। अतः उपोत्तमं रिति (6.1.217) से अनीयर्-अन्त का उपोत्तम स्वर उदात्त।

(6) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः (7.3.84) से धातु को गुण, भवनीयम्।

1. विधि– तव्यत्तव्यानीयरः 3.1.96
धातु से तव्यत्, तव्य तथा अनीयर्।
अर्थ– भाव या कर्म।
प्रकृति– धातुसामान्य।
प्रयोग– कृ + अनीयर् = **करणीयम्** (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, अट्कुप्वाङ् 8.4.2 से णत्व)।

2. विधि– भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा 3.4.68
प्रवचनीय, उपस्थानीय– ये कर्तृवाचक अनीयर्–प्रत्ययान्त शब्दों के रूप में विकल्प से निपातित होते हैं।
अनु॰– कर्तरि (3.4.68)। 'कृत्य' होने के कारण अनीयर् की प्राप्ति केवल भाव अथवा कर्म में थी (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70), अतः कर्तरि यह विकल्पवचन है।
अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– प्र-ब्रू, उप-स्था।

प्रयोग– प्रवक्ति = प्र - वच् + अनीयर् = **प्रवचनीयः** गुरुः 'वेद के प्रवक्ता गुरु'। उपतिष्ठति = उप-स्था + अनीयर् = **उपस्थानीयः** अन्तेवासी। पक्ष में कर्म में (तयोरेव॰ 3.4.70) अनीयर् - प्रवचनीयः गुरुणा स्वाध्यायः। उपस्थानीयः शिष्येण गुरुः। ब्रुवो वचिः (2.4.53) से ब्रू को वचि (वच्) आदेश।

सम्ब॰– (1) कृत्यानां कर्तरि वा 2.3.71

कृत्य प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता से विकल्प से षष्ठी।

कृत्य (3.1.95) होने के कारण अनीयर् के प्रसङ्ग में यह सूत्र सम्बद्ध है।

प्रयोग– भवतः कटः **करणीयः**। यहाँ कृ + अनीयर् = करणीयः के योग में कर्ता भवत् से षष्ठी। पक्ष में भवता कटः करणीयः।

सम्ब॰– (2) कृत्यल्युटो बहुलम् 3.3.113

कृत्य एवं ल्युट् बहुल में अर्थात् उक्त अर्थ से भिन्न अर्थ में भी होते हैं। अनीयर् 'कृत्य' है (कृत्याः 3.1.95)। अतः भाव एवं कर्म से भिन्न अर्थों में भी अनीयर् होता है।

प्रयोग– (क) स्नान्ति अनेन = स्ना + अनीयर् = **स्नानीयम्** (चूर्णम्)। करण में अनीयर्।

(ख) उद्विजन्ते अस्मात् = उद् – विज् + अनीयर् = **उद्वेजनीयः** 'जिससे लोग घबराकर हट जाते हैं', अपादान में अनीयर्। ''उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत्''– रामा॰ 3.29.3।

अप्

अप् = अ। हलन्त्यम् 1.3.3 से प् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) पित् (1.3.3)। अतः अनुदात्तौ सुप्पितौ 3.1.4 से अप् का अकार अनुदात्त है। यही स्वर पित्-करण का प्रयोजन है– पित्करणं स्वरार्थम्-का॰ 3.3.57।

(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु को गुण। निस् - चि + अप् = निश्चयः।

1\. विधि– ॠदोरप् 3.3.57

ॠकारान्त तथा उकारान्त धातुओं से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में अप्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– भावे (3.3.18) एवं अकर्तरि च॰ (3.3.19) से प्राप्त घञ् का।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– ॠकारान्त धातु, यथा– कॄ विक्षेपे (तुदा॰, सक॰, प॰)। उवर्णान्त धातु, यथा– स्तु-ष्टुञ् स्तुतौ (अदा॰, सक॰, उ॰)।

प्रयोग– किरति अनेन = कॄ + अप् = **करः** 'हाथ' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। स्तूयते अनेन अथवा स्तवनम् = स्तु + अप् = **स्तवः** 'स्तुति' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)।

2\. विधि– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58

ग्रह, वृङ्, दृ, निस् + चि, गम् से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में अप्।

अनु॰– अप् (3.3.57), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– भावे (3.3.18), अकर्तरि च॰ (3.3.19) से प्राप्त घञ् का, निस् – चि धातु से एरच् (3.3.56) से प्राप्त अच् का।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– (1) ग्रह् उपादाने, क्र्या॰, सक॰ उ॰। (2) वृ (वृङ्) सम्भक्तौ, क्र्या॰, सक॰, आ॰। (3) दृ हिंसायाम्, स्वा॰, सक॰, प.। (4) निस्-चि (चिञ्) चयने स्वा॰, सक॰, उ॰ (5) गम् (गम्लृ) गतौ, भ्वा॰, सक॰, पर॰।

प्रयोग– (1) ग्रहणम् / गृह्यते = ग्रह् + अप् = **ग्रहः**।

(2) वरणम् / व्रियते = वृ + अप् = **वरः** (सार्वधातु॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(3) दृ-**दरः** 'दरार'। **प्रदरः** 'स्त्रीरोगविशेष'।

(4) निस् + चि– **निश्चयः**। (सार्वधातु॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)।

(5) गम् + अप् = **गमः**।

3. विधि– वशिरण्योरुपसंख्यानम् (वा॰ 3.3.58) वश् तथा रण् धातुओं से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में अप्।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– (1) वश कान्तौ, अदा॰, प॰।

(2) रण गतौ, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– (1) वश् + अप् = **वशः** 'इच्छा'।

(2) रणन्त्यस्मिन् योद्धारः रण् + अप् = **रणः** 'युद्ध'।

4. विधि– उपसर्गेऽदः 3.3.59

उपसर्गपूर्वक अद् से कर्तृभिन्न कारक एवं भाव में अप्।

अनु॰– अप् 3.3.57, भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– अद भक्षणे, अदा॰ प॰ (उपसर्ग से युक्त), यथा– वि - अद्।

प्रयोग– वि - अद् + अप् = विघस् + अप् (घञपोश्च 2.4.38 से अद् को घस् (घस्लृ) आदेश) = **विघसः** 'भोजनशेष'।

'विघसो भुक्तशेषं स्याद् यज्ञशेषमथामृतम्'– मनु॰ 4/285

विशेष– उपसर्ग के अभाव में अप् नहीं– अद् + घञ् (भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19) = **घासः**।

5. विधि– नौ ण च 3.3.60

नि– अद् से 'ण' तथा 'अप्', कर्तृभिन्न कारक, भाव में।

अनु॰– अदः (3.3.59), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– नि-अद् भक्षणे, अदा॰ प॰।

प्रयोग– नि-अद् + अप् = निघस् + अ (घञपोश्च 2.4.38 से अद् को घस् आदेश) = **निघसः** 'भोजन'। 'ण' पक्ष में **न्यादः**।

6. विधि– व्यधजपोरनुपसर्गे 3.3.61

व्यध्, जप् से कर्तृभिन्न कारक एवं भाव में अप्, जब उपसर्ग न हो।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18, 19) से प्राप्त घञ् का।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– उपसर्गरहित (1) व्यध् ताडने दिवा॰, प॰।

(2) जप् व्यक्तायां वाचि, भ्वादि, प॰।

प्रयोग– (1) व्यध् + अप् = **व्यधः** 'बींधना'।

(2) जप् + अप् = **जपः**।

'जनतामनःशरव्यव्यधपटुमन्मथः'– शिशु॰ 7/24

विशेष– उपसर्ग रहने पर अप् न होकर उत्सर्गतः प्राप्त भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18, 19) से घञ् – आ-व्यध् + घञ् + टाप् = **आव्याधा**। उप-जप् + घञ् = **उपजापः** 'कानाफूसी'।

7. विधि– स्वनहसोर्वा 3.3.62

स्वन् तथा हस् से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में अप्, जब उपसर्ग न हो। पक्ष में औत्सर्गिक घञ्।

अनु॰– अनुपसर्गे (3.3.61), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– (1) स्वन शब्दे, भ्वा॰ प॰, (2) हस (हसे) हसने, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– (1) स्वन् + अप् = **स्वनः** 'शब्द'। (2) हस् + अप् = **हसः** 'हँसी'। पक्ष में यथाप्राप्त (भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19) से घञ् - **स्वानः**, **हासः**।

विशेष– उपसर्ग के रहने पर केवल घञ् (भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19)– **प्रस्वानः**, **प्रहासः**।

8. विधि– यमः समुपनिविषु च 3.3.63

सम्, उप, नि, वि– इन उपसर्गों के उपपद होने पर और उपसर्गाभाव में भी यम् धातु से कर्तृभिन्न कारक एवं भाव में विकल्प से अप्। पक्ष में औत्सगिक (भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19) घञ्।

अनु॰– वा (3.3.62), अनुपसर्गे (3.3.61), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– यम उपरमे, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– सम् – यम् + अप् = **संयमः**। उप-**उपयमः** 'स्वीकार अर्थात् विवाह'। नि - **नियमः**। वि-**वियमः**। अनुपसर्ग में– **यमः**। पक्ष में औत्सर्गिक घञ्- संयामः, उपयामः, नियामः, वियामः। अनुपसर्ग में– यामः (यम् + घञ्)।

9. विधि– नौ गदनदपठस्वनः 3.3.64

'नि' के उपपद होने पर गद्, नद्, पठ्, स्वन् से कर्तृभिन्न कारक एवं भाव में विकल्प से अप्। पक्ष में यथाप्राप्त (भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19) घञ्।

अनु॰– वा (3.3.62), अप् (3.3.57), अकर्तरि॰, भावे (3.3.19, 18)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– 'नि' से परे– (1) गद व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰ प॰, (2) नद् (टुनदि) समृद्धौ, भ्वा॰ प॰, (3) पठ व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰ प॰, (4) स्वन शब्दे, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– (1) नि– गद् + अप् = **निगदः** 'सस्वर पाठ'। 'यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते– म॰भा॰, पस्प॰, (2) नि-नद् + अप् = **निनदः** 'समृद्धि'– 'श्रुतिसुखनिनदे॰' स्वप्न॰ 6/1। (3) नि– पठ् – **निपठः**, (4) नि-स्वन् – **निस्वनः** 'शब्द'– 'सुखश्रवाद् मङ्गलतूर्यनिस्वनाः'– रघु॰ 3/16। पक्ष में औत्सर्गिक घञ्-**निगादः, निनादः, निपाठः, निस्वानः**।

10. विधि– क्वणो वीणायां च 3.3.65

'नि'पूर्वक तथा उपसर्गाभाव में भी क्वण् धातु से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में विकल्प से अप्। पक्ष में औत्सर्गिक (भावे, अकर्तरि॰ 3.3.18,19) घञ्।

अनु॰– नौ (3.3.64), वा (3.3.62), अनुपसर्गे (3.3.61), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे (3.3.19,18)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– नि-पूर्वक तथा उपसर्ग रहित, क्वण शब्दे, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– नि-क्वण् + अप् = **निक्वणः** 'ध्वनि'। अनुपसर्गे–क्वण् + अप् = **क्वणः**। पक्ष में घञ्– **निक्वाणः, क्वाणः**।

विशेष– (1) वीणा विषयक प्रयोग में 'नि' से अतिरिक्त कोई और उपसर्ग होने पर भी अप्–कल्याणप्रक्वणा वीणा।

(2) 'नि' उपसर्ग का अभाव अथवा वीणा का विषय न रहने पर केवल औत्सर्गिक (3.3.18,19) घञ्। अति-क्वण् + घञ् = अतिक्वाणः वर्तते।

11. विधि– नित्यं पणः परिमाणे 3.3.66

परिमाण यदि प्रत्ययान्त का वाच्य हो तो 'पण्' धातु से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में नित्य 'अप्'।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति – पण व्यवहारे स्तुतौ च, भ्वा॰, आ॰।

प्रयोग– मूलक-पण् + अप् = **मूलकपणः** 'मूली से भरा हाथ'।

विशेष– परिमाण अर्थ न रहने पर अप् नहीं, अपरन्तु औत्सर्गिक घञ्– पाणः।

12. विधि– मदोऽनुपसर्गे 3.3.67

अनुपसर्गक मद् धातु से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में 'अप्'।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18, 19)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18, 19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– अनुपसर्गक मद् (मदी) हर्षग्लेपनयोः, दिवादि, परस्मैपदी।

प्रयोग– विद्या- मद् + अप् = **विद्यामदः** 'विद्या के कारण अभिमान'।
धन - मद् + अप् = **धनमदः** 'धन के कारण अभिमान।

विशेष– उपसर्ग के रहने पर अप् नहीं। **उन्मादः**, **प्रमादः** (औत्सर्गिक घञ्)।

13. विधि– प्रमदसंमदौ हर्षे 3.3.68

हर्ष अर्थ में 'प्रमद' तथा 'संमद' का निपातन।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18, 19)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– मद् (मदी) हर्षग्लेपनयोः, दिवा॰, प॰।

प्रयोग– कन्यानां **प्रमदः** (प्र-मद् + अप्) 'खुशी'। कोकिलानां **संमदः** 'खुशी' (सम्-मद् + अप्)। 'रणसम्मदोदयविकासिबलकल-कलाकुलीकृते' –शिशु॰ 15/77

विशेष– हर्ष अर्थ न रहने पर अप् नहीं– **प्रमादः**, **सम्मादः**।

14. विधि– समुदोरजः पशुषु 3.3.69

सम् तथा उत् उपसर्गों से 'अज्' धातु से अप्, कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– सम् अथवा उद् + अज् गतिक्षेपणयोः, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– सम् - अज् + अप् = **समजः** पशूनाम् 'पशुओं का समाज'।
उत् - अज् + अप् = **उदजः** पशूनाम् 'पशुओं को भेजना'।

विशेष– पशुविषय न रहने पर अप् नहीं। **समाजः** ब्राह्मणानाम् (औत्सर्गिक घञ्)।

15. विधि– अक्षेषु ग्लहः 3.3.70
अक्ष विषयक धात्वर्थ होने पर 'ग्रह्' धातु से अप् एवं रेफ के स्थान में लकारादेश का निपातन, जिससे 'ग्लह' की सिद्धि।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– ग्रह उपादाने, क्र्या॰, उ॰। ग्रहवृदृ॰ (3.3.58) से अप् की प्राप्ति थी। प्रस्तुत से लत्व का निपातन।

प्रयोग– अक्षस्य **ग्लहः** (ग्रह + अप्, निपातन से लत्व) 'जुआ में लगाया गया धन जिसे जितनेवाला ग्रहण करता है'।

विशेष– अक्ष-विषय न हो तो लत्व नहीं। **ग्रहः** पादस्य (ग्रह् + अप्, ग्रहवृदृ 3.3.58 से)।

16. विधि– प्रजने सर्त्तेः 3.3.71
प्रजन अर्थ में 'सृ' से कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में अप्।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18, 19)।
भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– सृ गतौ, भ्वा॰ प॰। प्रजन अर्थात् प्रथम गर्भग्रहण।

प्रयोग– उप - सृ + अप् = **उपसरः** (सार्वधातु॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व) गवाम् 'गौओं का गर्भग्रहणार्थ प्रथम बार गमन'।

17. विधि– ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु 3.3.72

नि, अभि, उप, वि– इन उपसर्गों के उपपद होने पर ह्वेञ् से अप् प्रत्यय और धातु का सम्प्रसारण।

अनु॰– अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– नि, अभि, उप, वि से युक्त ह्वे (ह्वेञ्) स्पर्धायां शब्दे च, भ्वा॰, उ॰।

प्रयोग– नि - ह्वे + अप् = नि हु अ (प्रस्तुत सूत्र से सम्प्रसारण) = **निहवः** 'आवाहन' (सार्वधातु॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)। **अभिहवः**, **उपहवः**, **विहवः**।

विशेष– 'नि' आदि से अतिरिक्त उपपद में अप् नहीं, **प्रह्वायः** (औत्सर्गिक घञ्)।

18. विधि– आङि युद्धे 3.3.73

आङ् पूर्वक ह्वेञ् से अप् तथा धातु को सम्प्रसारण, जब प्रत्ययान्त से युद्ध का बोध हो।

अनु॰– ह्वः सम्प्रसारणम् (3.3.72), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

अपवाद– भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19) से प्राप्त घञ् का।

प्रकृति– आ - ह्वे (ह्वेञ्) स्पर्धायां शब्दे च, भ्वा॰, उ॰।

प्रयोग– आहूयन्तेऽस्मिन् = आ - ह्वे + अप् = **आहवः** 'युद्ध'। (देखें विधि 17)।

विशेष– युद्ध अर्थ न रहने पर अप् नहीं। **आह्वायः** (घञ्)।

19. विधि– निपानमाहावः 3.3.74

निपान (कुएँ के समीप पशुओं के लिए जलाधार अर्थ में अप्-प्रत्ययान्त 'आहाव' का निपातन।

अनु॰– ह्वः सम्प्रसारणम् (3.3.72), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– आ - ह्वेञ् (देखें विधि- 17,18)।

प्रयोग– **आहावः** (आ - ह्वे + अप्, सम्प्रसारण, वृद्धि निपातन से, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)। आहावः पशूनाम् 'पशुओं का प्याऊ'।

20. विधि– भावेऽनुपसर्गस्य 3.3.75
अनुपसर्गक ह्वेञ् से अप् तथा सम्प्रसारण, भाव अभिधेय होने पर।
अनु॰– ह्वः सम्प्रसारणम् (3.3.72), अप् (3.3.57), अकर्तरि॰ (3.3.19)।
प्रकृति– ह्वे (ह्वेञ्) स्पर्धायां शब्दे च, भ्वा॰, उ॰।
प्रयोग– ह्वे + अप् = **हवः** 'पुकार' (प्रस्तुत सूत्र से सम्प्रसारण, सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)।
'ह्वे ह्वे सुहवं शूरमिन्द्रम्' (ऋग्॰ 6.47.11)।

21. विधि– हनश्च वधः 3.3.76
उपसर्गरहित हन् से भाव में अप् और साथ ही हन् को 'वध्' आदेश।
अनु॰– भावेऽनुपसर्गस्य (3.3.75), अप् (3.3.57)।
प्रकृति– हन हिंसागत्योः, अदा॰, प॰।
प्रयोग– हन् + अप् = वध् + अ = **वधः** चोराणाम्।
विशेष– (1) भाव में यथाप्राप्त घञ् भी-घातः। (भावे 3.3.18 से घञ्)।
(2) उपसर्ग से युक्त हो तो अप् नहीं– प्रघातः (औत्सर्गिक घञ्)।

22. विधि– मूर्तौ घनः 3.3.77
मूर्ति (काठिन्य) अभिधेय होने पर हन् से अप् - प्रत्ययान्त 'घन' शब्द का निपातन।
अनु॰– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।
प्रकृति– हन हिंसागत्योः, अदा॰, प॰।
प्रयोग– हन् + अप् = घन् + अ = **घनः** (निपातन से)।

दधिघनः 'दही की कठिनावस्था'।

23. विधि– अन्तर्घनो देशे 3.3.78

अन्तर्घन अथवा अन्तर्घण– यह वाहीक जनपद में देश विशेष का नाम है– अप्-प्रत्ययान्त का निपातन।

अनु॰– हनः (3.3.76), अप् - (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– अन्तर् + हन् (हन हिंसागत्योः, अदा॰, प॰)।

प्रयोग– अन्तर् - हन् + अप् = **अन्तर्घनः** अथवा **अन्तर्घणः** देशविशेषः (निपातन से घन अथवा घण आदेश)।

विशेष– देशविशेष का अर्थ न रहे तो अप् नहीं। अन्तर्घातः (औत्सर्गिक घञ्)।

24. विधि– अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च 3.3.79

घर के एकदेश (एक भाग) अर्थ में अप् - प्रत्ययान्त प्रघण, प्रघाण का निपातन।

अनु॰– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– प्र - हन् + अप् = **प्रघणः** एवं **प्रघाणः** 'बाहर के दरवाजे के साथ का कमरा' (घन-आदेश, णत्व, उपधादीर्घ का निपातन)। 'प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके' – अमर॰ 2.2.12

विशेष– गृह के एकदेश का अर्थ न रहने पर अप् नहीं, प्रघातः (औत्सर्गिक घञ्)।

25. विधि– उद्घनोऽत्याधानम् 3.3.80

उत् + हन् से अप् प्रत्यय लाकर 'उद्घन' का निपातन किया गया है, जब अत्याधान (ऊपर धरना) अर्थ हो।

अनु॰– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– हन हिंसागत्योः, अदा॰, प॰।

प्रयोग– उत् – हन् + अप् = **उद्घनः** 'जिस लकड़ी पर रखकर दूसरी

लकड़ियाँ काटी अथवा छीली जाती हैं' (निपातन से घन आदेश)। 'निधाय तक्ष्यते यत्र काष्ठे काष्ठं स उद्घनः'– अमर० 3.2.25

विशेष– अत्याधान अर्थ न रहे तो अप् नहीं, प्रघातः।

26. विधि– अपघनोऽङ्गम् 3.3.81

अप् - हन् से 'अपघन'– इस अप् - प्रत्ययान्त का निपातन, शरीराङ्ग अर्थ में।

अनु०– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि (3.3.18,19)।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– हन हिंसागत्योः, अदा०, प०।

प्रयोग– अप - हन् + अप् = **अपघनः** (घन - आदेश निपातन से) अङ्गम्। अपघन अर्थात् हाथ-पैर आदि शरीरावयव। 'अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनः' – अमर०।

27. विधि– करणेऽयोविद्रुषु 3.3.82

अयस्, वि, द्रु– इनके उपपद होने पर हन् से करण कारक में अप् और साथ ही हन् को घन आदेश।

अनु०– हनः (3.3.76), घनः (3.3.77), अप् (3.3.57)।

अर्थ– करण कारक।

प्रकृति– अयस्, वि, द्रु से युक्त हन् हिंसागत्योः, अदा०, प०।

प्रयोग– (1) अयो हन्यतेऽनेन– अयस् - हन् + अप् = **अयोघनः** 'हथौड़ा' (निपातन से घन आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश। ससजुषो रुः 8.2.66 से स् को रुत्व, हशि च 6.1.114 से उत्व एवं आद्गुणः 6.1.87 से गुण)।

(2) विहन्यतेऽनेन - वि – हन् + अप् = **विघनः**।

(3) द्रुः द्रुमः हन्यतेऽनेन = द्रु - हन् + अप् = **द्रुघनः**। कुछ लोगों के अनुसार **द्रुघणः** 'कुल्हाड़ी'। 'द्रुघने मुद्गरघनौ'– अमर० 2.8.91

28. विधि– स्तम्बे क च 3.3.83

'स्तम्ब' के उपपद होने पर हन् धातु से करण कारक में क एवं अप् और अप् के रहते घन-आदेश भी।

अनु॰– करणे (3.3.82), घनः (3.3.77), हनः (3.3.76), अप् (3.3.57)।

अर्थ– करण कारक।

प्रकृति– स्तम्ब - हन् हिंसागत्योः, अदा॰ प॰।

प्रयोग– स्तम्बः हन्यतेऽनेन - स्तम्ब - हन् + अप् = स्तम्बघन अ (प्रस्तुत सूत्र से घन-आदेश) = **स्तम्बघनः** 'खुरपा' जिससे घास काटी जाय। 'क'- प्रत्यय के पक्ष में– स्तम्बघ्नः।

विशेष– स्त्रियां स्तम्बघ्ना स्तम्बघना इति इष्यते (वा॰, 3.3.83)।

स्त्रीत्व में स्तम्बघ्ना एवं स्तम्बघना (अप्-प्रत्ययान्त) का निपातन।

प्रयोग– स्तम्बः हन्यतेऽनया = स्तम्ब-हन् + अप् = स्तम्बघन + अ + टाप् = स्तम्बघना (निपातन से टाप्)।

29. विधि– परौ घः 3.3.84

परि - हन् से करण में अप् प्रत्यय और हन् को 'घ' आदेश।

अनु॰– करणे (3.3.82), हनः (3.3.76), अप् (3.3.57)।

अर्थ– करण कारक।

प्रकृति– परि-हन् (हन) हिंसागत्योः, अदा॰ प॰।

प्रयोग– परिहन्यतेऽनेन = परि-हन् + अप् = परिघ अ = **परिघः** 'अर्गल' (अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश)। 'एकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति'– अ॰शा॰ 2.15

विशेष– परेश्च घाङ्कयोः (8.2.22) से रेफ का लत्व होने से '**पलिघः**' भी होगा।

30. विधि– उपघ्न आश्रये 3.3.85

उप-हन् से अप् करके 'आश्रय' अर्थ में 'उपघ्न' का निपातन। आश्रय का अर्थ सामीप्य है (का॰ 3.3.85)।

अनु॰– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक, आश्रय।

प्रकृति– हन हिंसागत्योः, अदा॰, प॰।

प्रयोग– ग्रामेण उपहन्यते = ग्राम -उप - हन् + अप् = **ग्रामोपघ्नः** 'गाँव के समीप की भूमि' (उपधा लोप, 'ह' को 'घ' आदेश निपातन से)

विशेष– आश्रय अर्थ के न रहने पर अप् नहीं, **पर्वतोपघातः** (औत्सर्गिक घञ्)।

31\. विधि– संघोद्घौ गणप्रशंसयोः 3.3.86

सम् – हन् से अप् करके 'सङ्घ' का और उत् – हन् से अप् करके 'उद्घ' का निपातन, क्रमशः गण एवं प्रशंसा गम्यमान होने पर।

अनु॰– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– सम् - हन हिंसागत्योः } अदा॰, प॰।
उत् - हन हिंसागत्योः

प्रयोग– सम् - हन् + अप् = **संघः** पशूनाम् (टि लोप, ह को घकारादेश निपातन से)।

उद् - हन् + अप् = **उद्घः** मनुष्याणाम्।

विशेष– गण, प्रशंसा अर्थ न रहने पर अप् नहीं, संघातः (औत्सर्गिक घञ्)।

32\. विधि– निघो निमितम् 3.3.87

नि - हन् से अप् प्रत्यय करके निमित (चारों ओर समान परिमाण) अर्थ में 'निघ' का निपातन।

अनु॰– हनः (3.3.76), अप् (3.3.57), भावे, अकर्तरि॰ (3.3.18,19)।

प्रकृति– नि - हन्। निमितम् = समन्तात् मितम्।

प्रयोग– निर्विशेषं हन्यते = नि-हन् + अप् = **निघाः** वृक्षाः 'एक बराबर

ऊँचाई के वृक्ष' (टि लोप, हकार को घ-आदेश निपातन से)।

विशेष– निमित अर्थ के न रहने पर अप् नहीं, **निघातः** (औत्सर्गिक घञ्)।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰(1) घञपोश्च 2.4.38 घञ् तथा अप् के परे रहते 'अद्' धातु के स्थान में घस्लृ = घस् आदेश।

प्रयोग– वि-अद् + अप् (उपसर्गेऽदः 3.3.59 से) = विघसः। घञ् प्रत्यय के योग से 'घासः'।

सम्ब॰ (2) वर्चस्केऽवस्करः 6.1.148

अन्नमल (विष्ठा) के अर्थ में 'अवस्कर' की सिद्धि के लिए सुट् का निपातन।

प्रयोग– अव - कृ + अप् = अवस्करः (ॠदोरप् 3.3.57 से अप् तथा प्रस्तुत सूत्र से सुट् का निपातन)। अन्नमल का अर्थ न हो तो सुट् नहीं होता– अवकरः।

सम्ब॰ (3) अपस्करो रथाङ्गम् 6.1.149

रथाङ्ग अर्थ में 'अपस्कर' की सिद्धि के लिए सुट् का निपातन।

प्रयोग– अप - कृ + अप् = अपस्करः रथावयवः (ॠदोरप् 3.3.57 से अप्, प्रस्तुत सूत्र द्वारा निपातन से सुट्)।

सम्ब॰ (4) थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.144

अप् - प्रत्ययान्त शब्दों के अन्त्य स्वर उदात्त होते हैं।

प्रयोग– प्रलवः (प्र - लू + अप्, ॠदोरप् 3.3.57 से)। यहाँ अन्त्य स्वर अर्थात् बकार से परवर्ती अकार उदात्त है।

असुन्

असुन् = अस् = अः। हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार एवं उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः (1.3.9) से उभय का लोप।

स्वभाव– नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से असुन् की प्रकृति आदि-उदात्त बन जाती है।

1. विधि– नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या 6.3.75
नभ्राट् आदि का निपातन।

प्रकृति– विद ज्ञाने, अदादि, पर॰।

प्रयोग– न वेत्ति = न-विद् + असुन् = **नवेदाः**। (नलोपो नञः 6.1.73 से न् लोप नहीं - निपातन से)।

असे

असे।

स्वभाव– एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः (1.1.39) से असे-अन्त प्रातिपदिक की अव्यय संज्ञा। फलतः अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से सुप् का लोप-जीवसे।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन........तवेवः 3.4.9
वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से असे प्रत्यय और से,सेन् आदि प्रत्यय भी)।

अनु॰– छन्दसि (3.4.9)

अर्थ– तुमुन् का अर्थ क्रियायां क्रियार्थायाम् (तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.10)

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– जीव् + असे = **जीवसे** 'जीने के लिए'। 'क्रत्वे दक्षाय जीवसे'।

असेन्

असेन् = असे। हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से असेन् - अन्त की प्रकृति आदि-उदात्त होती है। यही असे एवं असेन् में भेद है, अन्यथा इन दोनों में प्रकृतिगत कोई भेद नहीं है।

(2) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से असेन्-अन्त की अव्यय-संज्ञा। फलतः अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से सुप् का लोप– जीवसे।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन्.......तवेवः 3.4.9

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से असेन् (साथ में से, सेन् आदि प्रत्यय भी)।

अर्थ– तुमुन्– अर्थ (भाव, का॰ 3.4.9)

प्रकृति– धातुसामान्य। यथा– जीव्।

प्रयोग– जीव् + असेन् = **जीवसे** 'जीने के लिए'। क्रत्वे दक्षाय जीवसे।

शेष– 'असे' की तरह।

आय्य

आय्य। इसका प्रत्यय के रूप में विधान नहीं है। केवल अष्टाध्यायी में एक स्थान पर एक निमित्त के रूप में इस प्रत्यय का उल्लेख है।

सम्ब॰– (1) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 6.4.55
'आय्य' प्रत्यय के परे रहते 'णि' (णिच्) के स्थान में अय्-आदेश।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– धातुसामान्य। यथा- स्पृह् (स्पृह) ईप्सायाम्, चुरा॰, प॰।

प्रयोग– स्पृहयति इति = स्पृह् + णिच् (स्वार्थे) + आय्य = स्पृह् इ + आय्य = स्पृह् + अय् + आय्य (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश = **स्पृहयाय्यः** 'चाहनेवाला'।

आरु

आरु।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के इक् को गुण।

1. विधि– शॄवन्द्योरारुः 3.2.173

तच्छील आदि कर्त्ता हो तो शॄ तथा वदि धातुओं से वर्तमान काल में 'आरु'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– तच्छील आदि।

प्रकृति– (1) शॄ हिंसायाम्, क्र्या॰, प॰।

(2) वदि अभिवादनस्तुत्योः, भ्वा॰, आ॰ (इदित्)।

प्रयोग– (1) शॄ + आरु = **शरारुः** 'हिंसा करनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से ॠकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(2) वद् (वदि) + आरु = **वन्दारुः** 'वन्दना करनेवाला' (इदितो नुम् धातोः 7.1.58 से नुम्–आगम, मिदचोऽन्त्यात्परः 1.1.47 से यह आगम धातु के अकार के बाद)।

'परमनुगृहीतो महामुनिर्वन्दारुः'– मुद्रा॰7

आलुच्

आलुच् = आलु। हलन्त्यम् 1.3.3 से चकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।
(2) चित् (1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से अन्त-उदात्त है।
(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

1. विधि– स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् 3.2.158
स्पृह्, गृह् आदि धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में आलुच्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– तच्छील आदि।

प्रकृति– (1) स्पृह ईप्सायाम्, चुरा॰, प॰।
(2) गृह ग्रहणे, चुरा॰, आ॰।
(3) पत गतौ, चुरा॰ प॰।
(4) दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु, भ्वा॰, आ॰।
(5) द्रा कुत्सायां गतौ, अदा॰ प॰।
(6) श्रत् + धा (डुधाञ्) धारणपोषणयोः, जुहो॰, प॰।

प्रयोग– (1) स्पृह् - णिच् (सत्यापपाश॰ 3.1.25 से स्वार्थिक णिच्) + आलुच् = स्पृह् अय्-आलुच् (अयामन्ता 6.4.55 से णि को अय् आदेश) = **स्पृहयालुः** 'इच्छा करनेवाला'। 'भोगेभ्यः स्पृहयालवो न हि वयम्' – वैराग्यश॰ 64

(2) गृह्-णिच् (सत्यापपाश॰ 3.1.25 से स्वार्थिक णिच्) + आलुच् = गृहय् आलु (अयामन्ता॰ 6.4.55 से णि को अय् आदेश) = **गृहयालुः** 'ग्रहण करनेवाला'।

(3) पत्-णिच् (सत्यापपाश॰ 3.1.25 से स्वार्थिक णिच्) + आलुच् = पतय् आलु (अयामन्ता॰ 6.4.55 से णि को अय् आदेश) = **पतयालुः** 'पतनशील'।

(4) दय् + आलुच् = **दयालुः** 'दयाशील'। 'यशःशरीरे भव मे दयालुः'– रघु॰ 2.57

(5) नि-द्रा + आलुच् = **निद्रालुः** (अकः सवर्णे॰ 6.1.101 से सवर्णदीर्घ)

तत् – द्रा + आलुच् = **तन्द्रालुः** 'आलसी' (स्पृहिगृहि॰ में 'तन्द्रा' इस प्रयोग से निपातन से तत् के तकार को नकार। अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ)।

(6) श्रत्-धा + आलुच् = **श्रद्धालुः** 'श्रद्धावान्'।

विशेष– आलुचि शीङो ग्रहणं कर्तव्यम् (वा॰ 3.2.158)

'शीङ्' धातु से भी आलुच्, तच्छील आदि अर्थ में।

प्रकृति– शीङ् स्वप्ने, अदादि, आ॰।

प्रयोग– शी + आलुच् = **शयालुः** 'सोनेवाला' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से ईकार को गुण से एकार, एचोऽयवा॰ 6.1.78 से अयादेश)।

सम्ब॰– (1) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 6.4.55

आलु (आलुच्) के परे 'णि' के स्थान में अय-आदेश।

प्रयोग– स्पृह् + णिच् (सत्यापपाश॰ से णिच्) = स्पृहि। स्पृहि + आलुच् (स्पृहिगृहि॰ 3.2.158 से आलुच्) = स्पृहयालुः (प्रस्तुत सूत्र से 'णि' को अय्-आदेश)।

इक्

इक् = इ। हलन्त्यम् 1.3.3 से ककार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) कित् (1.3.3)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध–भिदिः। आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकार लोप।

(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। फलतः पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से गुण की प्राप्ति।

1. विधि– इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे (वा॰ 3.3.108)

धातु के निर्देश के लिए धातु से इक् तथा श्तिप्।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– भिद्(भिदिर्) विदारणे, रुधादि, उभ॰।

प्रयोग– भिद् + इक् = **भिदिः** 'भिद् धातु' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से लघूपध गुण की प्राप्ति, क्क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।

2. विधि– इक् कृष्यादिभ्यः (वा॰ 3.3.108)

कृष् आदि धातुओं से इक्।

प्रकृति– कृष् आदि धातु।

प्रयोग– कृष् + इक् = **कृषिः** 'कर्षण' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से लघूपध गुण की प्राप्ति, क्क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

इक, इकवक

इक।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1. विधि– इको वक्तव्यः (वा॰ 3.3.125)

– काशिका के अनुसार,

खनेर्डडरीकवका वाच्याः (वा॰, 3.3.125)

–सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार।

'खन्' धातु से इक प्रत्यय भी, करण तथा अधिकरण अर्थों में।

प्रकृति– खन् (खनु) अवदारणे, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– आखनन्ति अस्मिन् / आखनन्ति अनेन = आ-खन् + इक = **आखनिकः** 'फावड़ा'।

इकवक।

स्वभाव– अजादि

1. विधि– इकवको वक्तव्यः (वा॰ 3.3.125)

खन् धातु से इकवक भी।

प्रसङ्ग– करणाधिकरणयोः (3.3.117), खनः (3.3.125)

प्रकृति– खन् (खनु) अवदारणे, भ्वा॰ उ॰।

प्रयोग– आखन्यतेऽनेन / आखन्यतेऽत्र = आ - खन् + इकवक = **आखनिकवकः**।

विशेष– सिद्धान्तकौमुदी में इस प्रत्यय को अलग न पढ़कर ड, डर एवं इक के साथ पढ़ा गया है–

खनेर्डडरीकेवका वाच्याः (वा॰, सि॰ कौ॰ 3304)

इञ्

इञ् = इ। हलन्त्यम् 1.3.3 से ञ् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) ञित् (1.3.3)।

(क) अतः अचो ञ्णिति (7.2.115) से अजन्त धातु को वृद्धि।

(ख) ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.167) से प्रकृति को आदि-उदात्त।

(ग) आतो युक्चिण्कृतोः (7.3.33) से युक् आगम।

(घ) अत उपधायाः (7.2.116) से उपधावृद्धि।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1. विधि– इञ् वपादिभ्यः (वा॰ 3.3.108)

वप् आदि धातु से बहुलतया इञ्।

यह वार्त्तिक सिद्धान्तकौमुदी में पठित है, परन्तु काशिका में नहीं है।

अपवाद– इणजादिभ्यः (वा॰, 3.3.108) से इण् की अनुवृत्ति होने पर भी स्वर की विशेषता के लिए इञ् का विधान है। 'स्वरे भेदः'– सि॰ कौ॰, 3285

प्रकृति– वप् (डुवप्) बीजसन्ताने, भ्वा॰, प॰। 'आदि' से–वस् (वस) निवासे, भ्वा॰ प॰ इत्यादि।

प्रयोग– वपनम् = वप् + इञ् = **वापिः** 'बावड़ी' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

वसनम् = वस् + इञ् = **वासिः** 'छोटी कुल्हाड़ी' (उपधावृद्धि पूर्ववत्)।

2. विधि– विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च 3.3.110

धातु से विकल्प से ण्वुल् एवं इञ्, यदि प्रत्ययान्त के द्वारा परिप्रश्न तथा आख्यान की प्रतीति हो।

अनु॰– ण्वुल् (3.4.108), स्त्रियाम् (स्त्रियां क्तिन्) 3.3.94

लिङ्ग– स्त्री, स्त्रियाम् (3.3.94) के अधिकार से।

प्रकृति– धातुसामान्य,

प्रयोग– परिप्रश्न - कृ + इञ् = **कारिः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

कां त्वं **कारिम्** अकार्षीः?

आख्यान – सर्वां **कारिम्** अकार्षम्। पक्षे ण्वुल् - कारिका।

इण्

इण् = इ। हलन्त्यम् 1.3.3 से ण् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) णित् (1.3.3)। अतः अचो ञ्णिति (7.2.115), अत उपधायाः (7.2.116) आदि णित् निमित्तक कार्य।

1. विधि– इणजादिभ्यः (वा॰ 3.3.108)

'अज' आदि धातुओं से इण्।

प्रकृति– अज आदि, यथा– अज गतिक्षेपणयोः, भ्वा॰, प॰। अत सातत्यगमने, भ्वा॰, प॰। अद भक्षणे, अदा॰, प॰।

प्रयोग– अज् + इण् = **आजिः** 'गमन अथवा क्षेपण करनेवाला'। अत्– **आतिः** 'निरन्तर गमनकर्त्ता'। अद्– **आदिः** 'भक्षक'। (सर्वत्र अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

सम्ब॰– (1) पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु 6.3.52

आजि, आति (इण्-अन्त), ग तथा उपहत शब्दों के परे रहने पर पाद शब्द के स्थान में पत् आदेश।

प्रयोग– पादाभ्याम् अजति = पाद-आजि (अज् + इण्, इणजादिभ्यः वा॰ 3.3.108) = **पदाजिः** (पाद को पत् आदेश)।

पादाभ्याम् अतति = पाद-आति (अत् + इण्) = **पदातिः** 'पैदल सिपाही' (पाद को पत् आदेश)। 'पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशः'– रघु॰ 7.37

इत्नु

इत्नु।

यह एक सौत्र प्रत्यय है। इसका स्वतन्त्र विधान किसी सूत्र से नहीं है, केवल 6.4.55 में इससे सम्बद्ध अयादेश है।

सम्ब॰–(1) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 6.4.55

'इत्नु' के परे 'णि' के स्थान में 'अय्'।

प्रकृति– चुरादिगणीय धातु, जिससे स्वार्थ में णि (णिच्) आता है, यथा– स्तन देवशब्दे, चुरा॰, उ॰।

प्रयोग– स्तनयति = स्तन + णिच् + इत्नु = स्तन इ इत्नु = स्तनय् इत्नु = **स्तनयित्नुः** 'गरजता बादल' (प्रस्तुत सूत्र से इ (णिच्) को अय्-आदेश)।

इत्र

इत्र।

स्वभाव– अजादि।

1. विधि– अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः 3.2.184

ऋ, लूञ्, धू, षू (सू), खन्, सह्, चर् धातुओं से करण कारक में इत्र।

अनु॰– करणे (3.2.182), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– करण कारक।

प्रकृति– (1) ऋ गतिप्रापणयोः, भ्वा॰, प॰।

(2) लू (लूञ्) छेदने, क्र्या॰, उ॰।

(3) धू विधूनने, तु॰, प॰।

(4) सू (षू) प्रेरणे, तु॰, प॰।

(5) खन् (खनु) अवदारणे, भ्वा॰, प॰।

(6) सह् (षह) मर्षणे, भ्वा॰, आ॰।

(7) चर् (चर) गतौ, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– (1) इयर्ति अनेन = ऋ + इत्र = **अरित्रम्** 'चप्पू' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'अरित्रं केनिपातकः' –अमर॰

(2) लू + इत्र = **लवित्रम्** 'चाकू' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)।

(3) धू + इत्र = **धवित्रम्** 'पङ्खा' ('लवित्र' की तरह गुण, अवादेश) 'धवित्रं व्यजनं तद् यद्रचितं मृगचर्मणा'

–अमर॰ 2.27.23

विशेष– पं॰ चारुदेव शास्त्री के मत में यह 'धवित्र' न होकर 'धुवित्र' है, क्योंकि 'धू' विधूनने, तुदादि कुटादि है, अतः धू + इत्र में गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् 1.2.1 से 'इत्र' ङिद्वत् होता है, अतः

क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध। अचि श्नुधातु॰ 6.4.77 से उवङ् आदेश होकर 'धुवित्रम्' बनता है।

(4) सू– **सवित्रम्** 'प्रेरणा देनेवाला' (गुण, अवादेश 'लवित्र' की तरह)।

(5) खन्–**खनित्रम्** 'कुद्दाल' या 'फावड़ा'।

(6) सह्– **सहित्रम्** 'सहन करनेवाला' (सहतेऽनेन)

(7) चर्– **चरित्रम्** 'चरित्र'। चरति गच्छति अनेन = चर् + इत्र = चरित्रः पादः। 'चरित्रांस्ते शुन्धामि' (वा॰स॰ 6.14)।

2. विधि– पुवः संज्ञायाम् 3.2.185

पूङ् अथवा पूञ् से करण कारक में इत्र, जब प्रकृति और प्रत्यय का समुदाय संज्ञा का वाचक हो।

अनु॰– इत्र (3.2.184), करणे (3.2.182), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– करण कारक।

प्रकृति– पूङ् पवने, भ्वा॰, आ॰ अथवा पूञ् पवने, क्र्या॰, उ॰।

प्रयोग– पूङ् अथवा पूञ्– **पवित्रम्** 'दर्भ' (पू + इत्र, सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)। 'दर्भपवित्रपाणिराचार्यः' (महाभाष्य)।

3. विधि– कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः 3.2.186

पू (पूङ् अथवा पूञ्) धातु से ऋष्यात्मक करण कारक अर्थ में तथा देवतात्मक कर्तृ-कारकार्थ में इत्र।

अनु॰– पुवः (3.2.185), इत्रः (3.2.184), करणे (3.2.182), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– करण कारक (ऋषि), कर्तृ कारक (देवता)।

प्रकृति– पूङ् पवने, भ्वा॰, आ॰ अथवा पूञ् पवने, क्र्या॰, उ॰।

प्रयोग– (1) ऋषि– (करणे) पूयतेऽनेन = पू + इत्र = **पवित्रः** अयम् ऋषिः।

(2) देवता- (कर्त्तरि) पवते, पुनाति वा = पू + इत्र = **पवित्रम्।**

'अग्निः पवित्रं स मा पुनातु' - अग्नि पवित्र हैं, वह मुझे पवित्र करें।

सम्ब॰- (1) थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.144

गतिसंज्ञक, कारक तथा उपपद से परवर्ती उत्तरपदस्थानीय इत्र प्रत्ययान्त शब्द का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है।

प्रयोग- प्रलवित्रम्। प्रसवित्रम्। यहाँ 'त्र' का अकार उदात्त है।

इन्

इन् = इ। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से प्रकृति का आदि उदात्त।

(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः (3.4.114)। अतः सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण।

1. विधि– स्तम्बशकृतोरिन् 3.2.24

कर्म 'स्तम्ब' और 'शकृत्' उपपद होने पर कृ धातु से इन्।

अनु॰– कृञः (3.2.20), कर्मणि (3.2.22)।

विशेष– व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् (वा॰, 3.2.24) स्तम्ब + कृ एवं शकृत् + कृ से क्रमशः व्रीहि तथा वत्स अर्थों में उक्त 'इन्'।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कृ (डुकृञ्) करणे, तना॰ उ॰ (कर्म, स्तम्ब और शकृत् उपपद युक्त)।

प्रयोग– स्तम्बं करोति– स्तम्ब-कृ + इन् = **स्तम्बकरिः** व्रीहिः 'धान जो झाड़ को उत्पन्न करता है' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से धातु के ऋ को गुण एवं उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

'न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते' (मुद्रा॰ 1/3)

शकृत् करोति = शकृत् - कृ + इन् = **शकृत्करिः** वत्सः 'बच्चा जो टट्टी करता है' (गुण, रपरत्व 'स्तम्बकरिः' जैसा)।

2. विधि– हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ 3.2.25

दृति, नाथ– इनके कर्मवाची उपपद होने पर हृ से 'इन्', जब हृ का कर्त्ता पशु हो।

अनु॰– इन् (3.2.24), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्मवाची दृति और नाथ उपपद से युक्त हृ (हृञ्) हरणे, भ्वा॰, उ॰।

प्रयोग– दृतिं हरति = दृति - हृ + इन् = **दृतिहरिः** पशुः 'पशु जिसने खाल उठाई हुई है'। नाथं (नासारज्जुं) हरति = नाथ-हृ + इन् = **नाथहरिः** क्रमेलकः (दोनों जगह सार्वधातुका॰ 7.3.84 से धातु के ऋकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

3. विधि– फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च 3.2.26 फलेग्रहि और आत्मम्भरि– ये इन्–प्रत्ययान्त निपातित होते हैं।

प्रसङ्ग– इन् (3.2.24)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– (1) फल– ग्रह् (ग्रह) उपादाने, क्र्या॰, उ॰।

(2) आत्मन्– भृ (भृञ्) भरणे, भ्वा॰, उ॰।

प्रयोग– (1) फलानि गृह्णाति = फल - ग्रह् + इन् = **फलेग्रहिः** वृक्षः 'फलवान् वृक्ष'। (निपातन से एत्व)।

(2) आत्मानं बिभर्ति = आत्मन् - भृ + इन् = **आत्मम्भरिः** 'केवल अपने आप को पुष्ट करनेवाला'। (निपातन से उपपद से मुम् (म्) नकार लोप। गुण, रपरत्व विधि 2 जैसा)।

'भजन्त्यात्मम्भरित्वं हि दुर्गमेऽपि न साधवः'– कथा॰ स॰ सा॰ 26/228

4. विधि– छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् 3.2.27

वेदों में कर्म उपपदक वन, सन, रक्ष् तथा मथ् धातुओं से इन्।

अनु॰– इन् (3.2.24), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म उपपदक– (1) वन, (2) सन (षण) सम्भक्तौ, भ्वा॰, प॰।

(3) रक्ष् (रक्ष) पालने, भ्वा०, प०। (4) मथ (मथे) विलोड़ने, भ्वा०, प०।

प्रयोग– (1) ब्रह्मन्-वन् + इन् = **ब्रह्मवनिः**। 'ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम्'- (यजु० 1/17)

(2) गो-सन् + इन् = **गोसनिः** (यजु० 8/12)

(3) हविः मथ् + इन् = **हविर्मथिः**।

हविर्मथीनाम् (ऋ० वे० 7.104.21)

इनि

इनि = इन्। उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से अन्त्य इकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।
(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। फलतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 जैसा कार्य।

1. विधि– कर्मणीनिर्विक्रियः 3.2.93 (कर्मणीनि विक्रियः– सि॰ कौ॰) कर्म उपपद रहने पर वि-क्री धातु से इनि।

अनु॰– भूते (3.2.84– अधिकार)।

विशेष– कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम् (वा॰ 3.2.93– सि॰कौ॰)। यह प्रत्यय वि-क्री से कुत्सित अर्थ में ही हो, ऐसा कहना चाहिए। यह वार्तिक काशिका में नहीं है।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– वि-क्री (डुक्रीञ्) द्रव्यविनिमये, क्र्या॰ उ॰।

प्रयोग– सोमं विक्रीतवान् = सोम-वि-क्री + इनि = सोमविक्रयिन्– **सोमविक्रयी** 'सोम को बेचनेवाला'। (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से धातु के ईकार को गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अयादेश)।
घृतं विक्रीतवान् = **घृतविक्रयी**।

विशेष– कुत्सित अर्थ के न रहने पर 'इनि' नहीं, यथा– धान्यविक्रायः।

2. विधि– प्रजोरिनिः 3.2.156
प्र-जु धातु से वर्तमानकाल में इनि, यदि तच्छील आदि कर्ता हों।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– प्र-जु गतौ वेगे च (सौत्र धातु), भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– प्र - जु + इनि = प्रजविन्– **प्रजवी** 'भागनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)।

3. विधि– जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च 3.2.157 जि, दृ, क्षि, वि-श्रि, इण्, वम्, न-व्यथ्, अभि-अम्, परि-भू, प्र-षू धातुओं से वर्तमानकाल में 'इनि', यदि तच्छील-आदि कर्ता हों।

अनु॰– इनिः (3.2.156), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– (1) जि जये, भ्वा॰ प॰। (2) दृ (दृङ्) आदरे, तुदा॰, आ॰, (3) क्षि क्षये, भ्वा॰ प॰ तथा क्षि निवासगत्योः, स्वा॰, प॰, (4) वि-श्रि (श्रिञ्) सेवायाम्, भ्वा॰, उ॰, (5) इण् गतौ, अदा॰, प॰, (6) वम् (टुवम्) उद्गिरणे, भ्वा॰, प॰, (7) नञ् उपपद-व्यथ् (व्यथ) भयसंचालनयोः, भ्वा॰, आ॰, (8) अभि-अम् (अम) गतौ, (9) परि-भू सत्तायाम्, भ्वा॰, प॰, (10) प्र-सू (षू) प्रेरणे, तुदा॰, प॰।

प्रयोग– (1) जि + इनि = जयिन् – **जयी** 'जितनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अयादेश)।

(2) दृ + इनि = दरिन् – **दरी** 'आदर करनेवाला' (सार्वधातुका॰ से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

(3) क्षि-**क्षयी** 'राजयक्ष्मा का रोगी' (गुण, अयादेश–'जयी' जैसा)।

(4) वि-श्रि–**विश्रयी** 'सेवा करनेवाला'।

(5) अति-इण्–**अत्ययी** 'उल्लङ्घन करनेवाला' (गुण, अयादेश– 'जयी' जैसा, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)।

(6) वम् - वमिन् = **वमी** 'वमन करनेवाला'।

(7) अ-व्यथ्– **अव्यथी** 'अभय'।

(8) अभि-अम्– **अभ्यमी** 'रोगी' (इको यणचि 6.1.77 से यण्)

(9) परि-भू–**परिभवी** 'पैदा होनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एवं एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)

(10) प्र-सू– **प्रसवी** 'प्रेरणा देनेवाला' (गुण, अवादेश 'परिभवी' जैसा)।

सम्ब॰– (1) ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5

नकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् (ई)। अतः इन्-प्रत्ययान्त से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप्।

प्रयोग– परिभविन् (परि-भू + इनि, जिदृक्षि॰ 3.2.157 से) + ङीप् = परिभविन् ई = **परिभविनी** 'पैदा होनेवाली'।

इस प्रकार प्रत्येक इन्-प्रत्ययान्त से स्त्रीत्व में ङीप् बोद्धव्य है।

इनुण्

इनुण् = इन्। हलन्त्यम् 1.3.3 से ण् एवं उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से उ की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) णित् (1.3.3)। अतः अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, अत उपाधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि आदि णित्-निमित्तक कार्य।

(2) अजादि।

(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण आदि।

1. विधि– अभिविधौ भाव इनुण् 3.3.44

अभिविधि (= अभिव्याप्ति) गम्य होने पर धातुसामान्य से भाव में इनुण्।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा- सम् + रु (शब्दे, अदा॰ प॰)। सम् + द्रु (गतौ, भ्वा॰, प॰)। यहाँ 'सम्' - अभिविधि का द्योतक है।

विशेष– इनुण् - अन्त का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग नहीं होता। उससे स्वार्थिक तद्धित 'अण्' किया जाता है और यह अणन्त नपुंसकलिङ्ग में होता है, अण् का विधान अणिनुणः (5.4.15) से होता है।

प्रयोग– (1) सम् - रु + इनुण् + अण् = **सांराविणम्** (अनुबन्ध लोप), अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश, अण् के णित्त्व को मानकर तद्धितेष्वचा॰ 7.2.117 से आदि वृद्धि, मोऽनुस्वारः 8.3.23 से म् को अनुस्वार, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)। नस्तद्धिते 6.4.144 से प्राप्त टि 'इन्' के लोप की इनण्यनपत्ये 6.4.164 से बाधा हुई। सांराविणं वर्तते– 'चारों ओर शोर हो रहा है।'

(2) सम् - द्रु — इनुण् + अण् = **सांद्राविणं** वर्तते- 'चारों ओर भगदड़ हो रही है'। 'सांराविणम्' जैसा रूप।

सम्ब॰– (1) अणिनुणः 5.4.15

इनुण् - प्रत्ययान्त शब्दों से स्वार्थ में अण्। अतः प्रत्येक इनुण् प्रत्यय अण् से युक्त होकर ही सिद्ध होता है।

प्रयोग– सम् - रु + इनुण् + अण् = सांराविणम् (देखें विधि 1)

(2) इनण्यनपत्ये 6.4.164

अनपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे रहते इन्– अन्त का प्रकृतिभाव।

प्रयोग– सम् - रु + इनुण् = संराविन्। संराविन् + अण् (अणिनुणः 5.4.15) = सांराविणम्। यहाँ नस्तद्धिते 6.4.144 से शब्द के टि 'इन्' का लोप प्रसक्त था, परन्तु प्रकृत सूत्र से प्रकृतिभाव का विधान हुआ, अर्थात् लोप बाधित हो गया।

इष्णुच्

इष्णुच् = इष्णु। हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) चित् (1.3.3)। अतः इष्णुच्-अन्त प्रातिपदिक अन्तोदात्त (चितः 6.1.163) होता है।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुका॰ (7.3.84) आदि विधियाँ।

(3) अजादि।

1. विधि– अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् 3.2.136

अलङ्कृञ्, निराकृञ् आदि धातुओं से तच्छील आदि अर्थों में इष्णुच्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– (1) अलम् + कृ (डुकृञ् करणे, तना॰ उ॰), (2) निर् - आ + कृ (डुकृञ्), (3) प्र-जन् (जनी प्रादुर्भावे, दिवा॰, आ॰),(4) उत् - पच् (डुपचष्) पाके (भ्वा॰, उ॰), 5. उत्-पत् (पत्लृ गतौ, भ्वा॰, प॰), (6) उत् - मद् (मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु, भ्वा॰, आ॰), (7) रुच् (रुच् दीप्ताभिप्रीतौ च, भ्वा॰ आ॰), (8) अप - त्रप् (त्रपूष् लज्जायाम्, भ्वा॰, आ॰), (9) वृत् (वृतु वर्तने, भ्वा॰, आ॰), (10) वृध् (वृधु वृद्धौ, भ्वा॰, आ॰), (11) सह् (षह मर्षणे, भ्वा॰, आ॰), (12) चर् (चर गतौ, भ्वा॰, प॰)।

प्रयोग– (1) अलंकृ + इष्णुच् = **अलंकरिष्णुः** 'अलंकरणशील' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(2) निराकृ + इष्णुच् = **निराकरिष्णुः** 'हटानेवाला' (गुण, रपरत्व, 'अलंकरिष्णुः' जैसा)।

(3) प्रजन्– **प्रजनिष्णुः** 'प्रसवशील'।

(4) उत्-पच्– **उत्पचिष्णुः** 'अच्छा पकानेवाला'।

(5) उत्-पत्– **उत्पतिष्णुः** 'ऊपर जाने के स्वभाववाला'।

(6) उत्-मद्– **उन्मदिष्णुः** 'उन्मादशील'।

(7) रुच् - **रोचिष्णुः** 'चमकनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण)।

(8) अप-त्रप्– **अपत्रपिष्णुः** 'लज्जारहित'।

(9) वृत्– **वर्तिष्णुः** 'रहनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण एवं उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(10) वृध्– **वर्धिष्णुः** 'वर्धनशील' ('वर्तिष्णुः' की तरह)।

(11) सह्– **सहिष्णुः** 'सहनशील'।

(12) चर्– **चरिष्णुः** 'गतिशील'।

विशेष– अलंकृञो मण्डनार्थाद्युचः पूर्वविप्रतिषेधेनेष्णुज्वक्तव्यः (वा॰, 3.2.136)
मण्डनार्थक 'अलंकृञ्' धातु से युच् के स्थान में पूर्वविप्रतिषेध से इष्णुच् को समझना चाहिए। अतः 'अलंकृ' से क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च 3.2.151 से प्राप्त युच् नहीं हुआ।

2. विधि– णेश्छन्दसि 3.2.137
णिजन्त धातु से तच्छीलादि अर्थों में इष्णुच्, छन्दोविषय में।

अनु॰– इष्णुच् (3.2.136), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– सामान्य णिजन्त धातु, यथा- धारि (धृञ् धारणे, भ्वा॰ उ॰ से णिच्, हेतुमति च 3.1.26 से)।

प्रयोग– ताच्छील्येन धारयति = धारि + इष्णुच् = **धारयिष्णुः** 'धारण करानेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, अयामन्ता॰ 6.4.55 से अयादेश)।

3. विधि– भुवश्च 3.2.138
'भू' धातु से भी छन्दोविषय में तच्छीलादि अर्थों में इष्णुच्।

अनु॰– छन्दसि (3.2.137), इष्णुच् (3.2.136), तच्छील॰ (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– भू सत्तायाम्, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– ताच्छील्येन भवति = भू + इष्णुच् = **भविष्णुः** 'होनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)।

सम्ब॰– (1) कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च 6.2.160

नञ् से उत्तरवर्ती इष्णुच्प्रत्ययान्त का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– अनलंकरिष्णुः। अन्त्य स्वर 'उकार' उदात्त होता है।

(2) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 6.4.55

इष्णु (इष्णुच्) के परे रहते 'णि' के स्थान में अय्-आदेश।

प्रयोग– धारि + इष्णुच् = धारयिष्णुः (णेश्छन्दसि 3.2.137 से इष्णुच्, सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, प्रस्तुत सूत्र से अयादेश)।

इष्यै

इष्यै।

स्वभाव– (1) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से इष्यै-अन्त की अव्यय संज्ञा।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(3) अजादि।

1. विधि– प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै 3.4.10

वेद में तुमुन् के अर्थ में इष्यै-प्रत्ययान्त रोहिष्यै तथा अव्यथिष्यै का निपातन।

अनु॰– तुमर्थे (3.4.9), छन्दसि (3.4.6)।

अर्थ– तुमुन् (क्रियार्थक क्रिया)।

प्रकृति– (1) रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, भ्वा॰, प॰।

(2) नञ्-व्यथ् (व्यथ् भयसञ्चलनयोः, भ्वा॰, आ॰)।

प्रयोग– (1) रोढुम् = रुह् + इष्यै (निपातन से) = **रोहिष्यै** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)

(2) अव्यथितुम् = अ-व्यथ् + इष्यै (निपातन) = **अव्यथिष्यै।**

सम्ब॰– (1) कृन्मेजन्तः 1.1.39

एजन्त कृत्प्रत्यय से निष्पन्न शब्द की अव्यय संज्ञा।

प्रयोग– रुह् + इष्यै = रोहिष्यै, अ-व्यथ् + इष्यै = अव्यथिष्यै (प्रयै रोहिष्यै 3.4.10)। ये अव्यय हैं।

इस्

इस् = इ। हलन्त्यम् 1.3.3 से स् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

यह सौत्र प्रत्यय है अर्थात् किसी सूत्र से इसका विधान नहीं हुआ है। केवल 6.4.97 में ही इसका उल्लेख है।

स्वभाव– (1) सित् (1.3.3)।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

(3) अजादि।

सम्ब॰– (1) इस्मन्त्रन्क्विषु च 6.4.97

'इस्' प्रत्यय के परे रहते छादि (छद् + णिच्) धातु की उपधा को ह्रस्व।

प्रयोग– छद अपवारणे, चुरा॰, प॰– छादयति। छद् + णिच् (सत्यापपाश॰ 3.1.25 से स्वार्थ में णिच्) = छादि। छादि + इस् = छद् इ इ (प्रस्तुत सूत्र से उपधाह्रस्व) = **छदिः** (णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप)।

उ

उ।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से आर्धधातुकहेतुक कार्य।
(2) अजादि।

1. विधि– सनाशंसभिक्ष उः 3.2.169
सन्-प्रत्ययान्त, आङ् + शंस् तथा भिक्ष् धातुओं से उ, तच्छीलादि अर्थों में।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– (1) सन्नन्त धातुसामान्य, यथा- चिकीर्ष (कृ + सन्)।
(2) आ + शंस् (शंसि) इच्छायाम्, भ्वा॰, आ॰।
(3) भिक्ष् - भिक्षायां लाभे अलाभे च, भ्वा॰, आ॰।

प्रयोग– (1) चिकीर्ष + उ = **चिकीर्षुः** कटम् 'चटाई बनाने की इच्छावाला' (अतो लोपः 6.4.48) से अकार लोप)।
(2) आ- शंस् + उ = **आशंसुः** 'इच्छा करने के स्वभाववाला'।
(3) भिक्षां + उ = **भिक्षुः** 'भिक्षा करने के स्वभाववाला'। 'भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्'– मनु॰ 3.94

2. विधि– विन्दुरिच्छुः 3.2.169
तच्छीलादि अर्थों में दो निपातन– (1) 'विद्' धातु से 'उ' प्रत्यय तथा नुमागम और (2) 'इष्' धातु से 'उ' प्रत्यय तथा ष के स्थान में 'छ' आदेश।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– (1) विद ज्ञाने, अदा॰, प॰, (2) इष इच्छायाम्, तुदा॰, प॰।

प्रयोग– (1) वेदनशीलः = विद् + उ = **विन्दुः** (निपातन से नुम्

आगम, मिदचोऽन्त्यात्परः 1.1.47 से अन्त्य अच् 'इकार' के बाद नुम्)।

(2) एषणशीलः = इष् + उ = **इच्छुः** (षकार का छत्व निपातन से)। 'इच्छुः प्रसादं प्रणमन् सुग्रीवः प्रावदन् नृपम्'– भट्टिकाव्य, 7/24

3. विधि– क्याच्छन्दसि 3.2.170

क्य (क्यच्, क्यङ् तथा क्यष्) अन्त धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में उ, छन्दोविषय में।

अनु॰– उः (3.2.168), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– धातुसामान्य, जिनसे क्यच्, क्यङ् अथवा क्यष् हुआ हो, फलस्वरूप क्यजन्त, क्यङन्त अथवा क्यषन्त, 'सनाद्यन्ता धातवः' 3.1.32 से धातुसंज्ञक हुए हों।

प्रयोग– (1) मित्र + क्यच् (सुप आत्मनः क्यच् 3.1.8) = मित्रय। मित्रय + उ = **मित्रयुः** (अतो लोपः 6.4.48 से अलोप)।

(2) संस्वेद + क्यङ् (कर्तुः क्यङ् सलोपश्च 3.1.11) = संस्वेदय। संस्वेदय + उ = **संस्वेद्युः** (अ लोप, अतो लोपः 6.4.48 से)।

(3) सुमृ + क्यष् = (लोहितादि॰ 3.1.13) सुमृय। सुमृय + उ = **सुमृयुः** (अ लोप 'अतो लोपः' 6.4.48 से।

सम्ब॰– (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

'उ' प्रत्यय के योग होने पर कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.65) से षष्ठी का विधान नहीं।

प्रयोग– चिकीर्ष + उ = **चिकीर्षुः** (सनाशंसभिक्ष उः 3.2.168 से उ प्रत्यय)। कटं चिकीर्षुः। यहाँ उ प्रत्ययान्त चिकीर्षु के योग में कर्म कट से कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.65) से प्राप्त षष्ठी नहीं हुई। अपितु कर्मणि द्वितीया (2.3.2) से द्वितीया हुई।

उकञ्

उकञ् = उक। हलन्त्यम् 1.3.3 से ञ् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) ञित् (1.3.3)। अतः अचो ञ्णिति (7.2.115), अत उपधायाः (7.2.116) आदि ञित्– निमित्तक कार्य। ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से प्रकृति का आदि उदात्त।

(2) अजादि।

1. विधि– लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् (3.2.154) लष् आदि धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में उकञ्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– (1) लष कान्तौ, भ्वा॰ उ॰। (2) पत गतौ वा, चुरा॰, उ॰। (3) पद गतौ, दिवा॰, आ॰। (4) स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰ प॰। (5) भू सतायाम्, भ्वा॰ प॰। (6) वृष् (वृषु) सेचने, भ्वा॰, प॰। (7) हन हिंसागत्योः, अदा॰, प॰। (8) गम् (गम्लृ) गतौ, भ्वा॰, प॰। (9) शॄ हिंसायाम्, क्र्या॰ प॰। (10) कम् (कमु) कान्तौ, भ्वा॰, आ॰।

प्रयोग– (1) अप– लष् + उकञ् = **अपलाषुकम्** 'अशोभनीय' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)। अपलाषुकं वृषलसङ्गतम् 'वृषल की सङ्गति अनुचित होती है'।

(2) प्र– पत् + उकञ् = **प्रपातुकः** 'पतनशील' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)। प्रपातुका गर्भा भवन्ति 'गर्भ पतनशील होते हैं।'

(3) उप– पद् + उकञ् = **उपपादुकम्** (पूर्ववत् उपधावृद्धि)। उपपादुकं सत्त्वम् 'उपपादन करनेवाला पदार्थ'।

(4) उप– स्था + उकञ् = **उपस्थायुकः** (आतो युक्॰ 7.3.33 से धातु से उत्तर युक् (य्)-आगम)। उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति 'उसके लिए पशु उपस्थित होते हैं।'

(5) प्र– भू + उकञ् = प्रभौ उक (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि) = **प्रभावुकम्** (एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)। प्रभावुकम् अन्नं भवति 'अन्न प्रभाव करनेवाला होता है।'

(6) प्र– वृष् + उकञ् = **प्रवर्षुकः** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से लघूपध गुण से अकार, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(7) आ– हन् + उकञ् = **आघातुकम्** (हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से ह को कुत्व से घकार, हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से धातु नकार को तकार, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। आघातुकं कापालिकस्य शूलम् 'कापालिक का शूल हिंसक है।'

(8) आ– गम् + उकञ् = **आगामुकम्** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)। आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः 'वाराणसी जानेवाले को बचाओ–ऐसा बोले हैं'।

(9) किम्– शॄ + उकञ् = **किंशारुकम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः 'तीर को तीक्ष्ण कहते हैं।'

(10) कम् + उकञ् = **कामुकाः** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति 'काम से पीड़ित स्त्रियाँ हैं'।

सम्ब॰– (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69 'उक' प्रत्यय के योग में कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.65) से प्राप्त षष्ठी नहीं होती।

प्रयोग– **आगामुकं** वाराणसीं रक्ष आहुः। यहाँ आ– गम् + उकञ् = आगामुकं (लषपतवद॰ 3.2.154 से उकञ्) यह कर्म है। अतः कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.69) से इस कर्म में प्राप्त षष्ठी का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।

विशेष– उकप्रतिषेधे कमेर्भाषायामप्रतिषेधः (वा॰, 2.3.69)

उक प्रत्यय के योग में न लोकाव्यय॰ (2.3.69) से क्रियामाण षष्ठीप्रतिषेध के विषय में विशेष बात यह है कि भाषा में

प्रयुज्यमान 'कम्' धातु से विहित 'उक' प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी प्रतिषेध नहीं होता है।

प्रयोग– दास्याः **कामुकः**। कम् + उकञ् (2.3.69) = कामुकः। यहाँ दासी से कर्तृकर्मणोः॰ (2.3.65) से षष्ठी हुई है।

(2) कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च 6.2.160

'उक' प्रत्ययान्त का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– **अनागामुकम्** (न आ-गम् + उकञ्)। **अनपलाषुकम्** (न अप-लष् + उकञ्)।

यहाँ अन्त्य स्वर अर्थात् क् के बाद का अकार उदात्त हुआ है।

उण्

उण् = उ। हलन्त्यम् 1.3.3 से ण् की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

विशेष– (1) यह उणादि (उण् - आदि) प्रत्ययों में प्रथम है। अष्टाध्यायी में उणादि (उणादयो बहुलम् 3.3.1) शब्द से उण् - आदि प्रत्ययों का संकेत दिया गया है। संस्कृत के अनेक प्रातिपदिकों की सिद्धि धातुओं के साथ इन प्रत्ययों के योग से होती है। उणादि प्रत्ययों के कर्ता के विषय में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है। महर्षि पाणिनि को इन प्रत्ययों का बोध था। उनकी बहुलता तथा व्यापकता को ध्यान में रखकर उन्होंने उणादयो बहुलम् (3.3.1) से उन उणादि को बहुलतया विधान का संकेत किया है। और भूतेऽपि दृश्यन्ते 3.3.2, ताभ्यामन्यत्रोणादयः 3.4.75 में उनके व्यवहार को पुष्ट किया है। साथ ही, जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु 7.4.85 सूत्र में 'जागृ' धातु से 'वि' प्रत्यय के योग में गुणनिषेध होता है– ऐसा कहकर 'जॄशॄस्तॄजागृभ्यः क्विन्' इस उणादि सूत्र से विधीयमान जागृ धातु से 'वि' (क्विन्) जैसे उणादि प्रत्ययों की मान्यता भी दी है।

कहा जाता है, पाणिनि के पूर्ववर्ती अथवा किसी किसी के अनुसार परवर्ती वैयाकरण शाकटायन ने इन उणादि प्रत्ययों का सृजन एवं प्रयोग किया है, यथा– ''कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्'' से कृ आदि धातुओं से उण्– कृ + उण् = **कारुः**, वा– **वायुः**। संख्या में ये अनेक हैं और जिनमें कृत् प्रत्ययों के सभी स्वभाव प्रभावी होते हैं। विस्तार के भय से इन उणादि बाहुलक प्रत्ययों को इस अध्ययन में ग्रहण नहीं किया गया है।

(2) भूतेऽपि दृश्यन्ते 3.3.2 भूतकाल में उणादि प्रत्यय आते हैं। प्रयोग–वृत्तमिदं **वर्त्म** इत्यादि।

(3) वस्तुतः उण् - आदि वे प्रत्यय हैं, जिन्हें व्यवहृत शब्दों की धातुजन्यता सिद्ध करने के लिए कृत् - विधि के अनुरूप धातुविशेषों से प्रत्यय विशेषों की कल्पना कर उन्हें बहुलतया अर्थात् यथेष्ट व्यवहार के साथ प्रत्यय रूप में प्रयोग में लाया गया। महाभाष्यकार पतञ्जलि की निम्नोक्त उक्ति इसमें प्रमाण है–

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च नदूह्यम् ।।
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद् विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ।।

ऊक

ऊक। अनुबन्धरहित।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण।

1. विधि– जागरूकः 3.2.165

जागृ धातु से तच्छीलादि अर्थों में 'ऊक'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– जागृ निद्राक्षये, अदा॰, पर॰।

प्रयोग– जागृ + ऊक = **जागरूकः** 'जागरणशील' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव'– रघु॰ 10.34

2. विधि– यजजपदशां यङः 3.2.166

यङन्त यज् जप्, दंश् धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में 'ऊक'।

अनु॰– ऊकः (3.2.165), तच्छीलतद्धर्म॰ (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता, ताच्छील्य।

प्रकृति– यङन्त- (1) यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, भ्वा॰, उ॰। (2) जप व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰, प॰। (3) दन्श दशने, भ्वा॰, प॰।

प्रयोग– (1) यज् + यङ् = यायज्य। यायज्य + ऊक = **यायजूकः** 'खूब यज्ञ करनेवाला'। 'तं यायजूकः सह भिक्षुमुख्यैः'– भट्टि॰ 2.20

(2) जप् + यङ् = जञ्जप्य। जञ्जप्य + ऊक = **जञ्जपूकः** 'खूब जप करनेवाला'।

(3) दंश् + यङ् = दन्दश्य। दन्दश्य + ऊक = **दन्दशूकः** 'खूब काटनेवाला'। 'इषुमति रघुसिंहे दन्दशूकाञ्जिघांसौ'– भट्टि॰ 1.26

उक्त तीनों उदाहरण में ऊक के परे रहते, यस्य हलः (6.4.49) से यङ् के 'य' का लोप।

एश्

एश् = ए। हलन्त्यम् 1.3.3 से शकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) अजादि।

(2) शित् (1.3.3)। अतः तिङ्शित्सार्वधातुकम् 3.4.113 से एश् की सार्वधातुक संज्ञा।

(3) ङित्। अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से ङिद्वद्भाव।

(4) एजन्त। एजन्त कृत् होने से कृन्मेजन्तः 1.1.39 से एश्-अन्त की अव्यय संज्ञा।

विशेष– यह 'एश्' केवल निपातन सूत्र में वृत्तिकारों के द्वारा कल्पित है।

1. विधि– अवचक्षे च 3.4.15

अव-चक्षिङ् धातु से भी कृत्यार्थ में वेद में 'एश्' प्रत्यय का निपातन (अर्थात् एश्-अन्त 'अवचक्षे' का निपातन)।

अनु॰– कृत्यार्थे (3.4.14), छन्दसि (3.4.6)।

प्रकृति– अव-चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अदा॰, आ॰।

प्रयोग– अव-चक्षिङ् + एश् (निपातन से) = **अवचक्षे** 'बोलना चाहिए' (निपातन से धातु के इकार का लोप)।

क

क = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) अजादि (ककार की इत्संज्ञा एवं लोप होने से)।

(2) कित् (1.3.8) और आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(क) अतः आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकारन्त धातु के आकार का लोप।

(ख) इदित् से भिन्न हलन्त धातु की उपधा में वर्तमान नकार का लोप (अनिदितां हल उपाधायाः क्ङिति 6.4.24)।

(ग) क्ङिति च 1.1.5 से धातु के गुण का निषेध।

1. विधि– इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः 3.1.135

इगुपध (इक्-उपधावाली धातु), ज्ञा, प्री, कॄ से कर्त्ता अर्थ में 'क'।

परिभाषा– कर्तरि कृत् 3.4.67

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– (क) इगुपध, यथा– इष् गतौ, दि०, प०।

(ख) ज्ञा, (ग) प्री, (घ) कॄ।

प्रयोग– (क) इगुपध–

इख् (इख) गतौ, भ्वा०, प०, एखति इति = इख् + क = **इखः** (पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधागुण की प्राप्ति, क्ङिति च 1.1.5 से उसका निषेध) 'चलनेवाला'।

इल् स्वप्नक्षेपणयोः, तु०, प०– **इलः**, इला (भूमिः)। इष् गतौ, दि०, प०– **इषः**। इष् इच्छायाम्, तु०, प०– **इषः**। ईज् गतिकुत्सनयोः, भ्वा० आ०– **ईजः**। ईड् स्तुतौ, अदा०, आ०– **ईडः**। ईर् गतौ कम्पने च, अदा० आ०– **ईरः**, सम् + ईर्– **समीरः** 'वायुः'। ईश् ऐश्वर्ये, अदा०, आ०– **ईशः**। ईष् गतिहिंसादर्शनेषु, भ्वा० आ०– **ईषः**। ईह् चेष्टायाम्, भ्वा०, आ०–

ईहः। उख् गतौ, भ्वा॰, प॰- **उखः**। उच् समवाये, दि॰, प॰- **ओकः** (ओक उचः के 7.3.64 से निपातन से ओकार एवं कुत्व)। उठ् उपघाते, भ्वा॰, प॰- **उठः**। उभ् पूरणे, तुदा॰, प॰- **उभौ** (नित्यद्विवचनान्त)। उष् दाहे, भ्वा॰, प॰- **उषः**। उहिर् अर्दने, भ्वा॰, प॰- **उहः**। ऊठ उपघाते, भ्वा॰, प॰- **ऊठः**। ऊयी तन्तुसन्ताने, भ्वा॰, आ॰- **ऊयः**। ऊह् वितर्के, भ्वा॰, आ॰- **ऊहः**। ऋच् दीप्तौ, तुदा॰, प॰- **ऋचः**। ऋज् गत्यादौ, भ्वा॰, आ॰- **ऋजः**। ऋण् गतौ, तना॰ उ॰- **ऋणः**। ऋध् वृद्धौ, दि॰, प॰- **ऋधः**। ऋफ् हिंसायाम्, तु॰, प॰- **ऋफः**। ऋष् (ऋषी) गतौ, तु॰प॰- **ऋषः**। किट् त्रासे, भ्वा॰, प॰- **किटः**। किल् श्वैत्यक्रीडनयोः, तु॰, प॰- **किलः**। कील् बन्धने, भ्वा॰, प॰- **कीलः**। कुच् शब्दे, भ्वा॰ प॰- **कुचः**। कुच् संकोचने, तु॰प॰-**कुचः**। कुज् स्तेयकरणे, भ्वा॰, प॰- **कुजः**। कुट् कौटिल्ये, तु॰, प॰- **कुटः**। कुथ् पूतीभावे, दि॰, प॰- **कुथः**। कुप् क्रोधे, दि॰, प॰- **कुपः**। कुर् शब्दे, तु॰,प॰- **कुरः**। कुल् संस्त्याने बन्धुषु च, भ्वा॰, प॰- **कुलः**। कुष् निष्कर्षे, क्र्या॰, प॰- **कुषः**। कुस् संश्लेषणे, दि॰ प॰- **कुसः**। कूज् अव्यक्ते शब्दे, भ्वा॰ प॰- **कूजः**। कूल् आवरणे, भ्वा॰, प॰- **कूलः**। कृती छेदने, तु॰, प॰-**कृतः**। कृप् सामर्थ्ये, भ्वा॰, आ॰- **क्लृपः** (कृपो रो लः 8.2.18 से लत्व)। कृश् तनूकरणे, दि॰, प॰- **कृशः**। कृष् विलेखने, भ्वा॰, प॰- **कृषः**। क्रीड् विहारे, भ्वा॰, प॰- **क्रीडः**। क्रुड् संवरणे, भ्वा॰, प॰- **क्रुडः**। क्रुध् क्रोधे, दि॰, प॰- **क्रुधः**। क्रुश् आह्वाने रोदने च, भ्वा॰, प॰- **क्रुशः**। क्लिद् आर्द्रीभावे, दि॰ प॰- **क्लिदः**। क्लिश् उपतापे, दिवा॰, प॰- **क्लिशः**। क्लिश् विबोधने, क्र्या॰, प॰- **क्लिशः**। क्लीब् अधाष्ट्र्ये, भ्वा॰, आ॰- **क्लीबः**। क्षिण् हिंसायाम्, तना॰, उ॰- **क्षिणः**। क्षिप् प्रेरणे, दि॰, प॰- **क्षिपः**। क्षीज् अव्यक्ते शब्दे, भ्वा॰ प॰-**क्षीजः**। क्षीव् निरसने, भ्वा॰, प॰- **क्षीवः**। क्षुदिर् सम्प्रेषणे, रुधा॰, उ॰- **क्षुदः**। क्षुध्

बुभुक्षायाम्, दि॰, प॰– **क्षुधः**। क्षुभ् सञ्चलने, भ्वा॰, आ॰– **क्षुभः**। क्षुर् विलेखने, तु॰, प॰– **क्षुरः**। क्ष्मील् निमेषणे, भ्वा॰, प॰– **क्ष्मीलः**। क्ष्विद् (ञि क्ष्विदा) अव्यक्ते शब्दे, भ्वा॰, प॰– **क्ष्विदः**। खिद् दैन्ये, दिवा॰, आ॰– **खिदः**। खिद् परिघाते, तु॰, प॰– **खिदः**। खुज् स्तेयकरणे, भ्वा॰ प॰– **खुजः**। खुड् संवरणे, तु॰,प॰– **खुडः**। खुर् छेदने, तुदा॰, प॰– **खुरः**। गुड् रक्षायाम्, तु॰, प॰– **गुडः**। गुद् क्रीडायामेव, भ्वा॰, आ॰– **गुदम्**। गुध् परिवेष्टने, दि॰, प॰– **गुधः**। गुध् रोषे, क्र्या॰प॰– **गुधः**। गुप् व्याकुलत्वे, दि॰,प॰–**गुपः**। गुफ् ग्रन्थे, तु॰, प॰– **गुफः**। गुर् उद्यमने, तु॰, आ॰– **गुरः**। गुहू संवरणे, भ्वा॰, उ॰– **गुहः**। गूर् हिंसागत्योः, दि॰, आ॰–**गुरः**। गृज् शब्दार्थे, भ्वा॰, प॰– **गृजः**। गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, दि॰प॰–**गृधः**। गृह् ग्रहणे, भ्वा॰, आ॰–**गृहम्**। ग्रुचु स्तेयकरणे, भ्वा॰, प॰–**ग्रुचः**। ग्लुचु स्तेयकरणे, भ्वा॰,प॰–**ग्लुचः**। घुट् प्रतिघाते, तु॰,प॰– **घुटः**। घुण् भ्रमणे, भ्वा॰, आ॰–**घुणः**। घुषिर् अविशब्दने, भ्वा॰, प॰– **घुषः**। घूर् हिंसागत्योः, दि॰,आ॰–**घूरः**। घृणु दीप्तौ, तना॰,उ॰– **घृणः**। घृषु सङ्घर्षे, भ्वा॰प॰– **घृषः**। चिती संज्ञाने, भ्वा॰,प॰– **चितः**। चिल् वसने, तुदा॰, प॰–**चिलः**। चीभ् कत्थने, भ्वा॰, आ॰– **चीभः**। चुट् छेदने, तुदा॰, प॰–**चुटः**। चुप् मन्दायां गतौ, भ्वा॰, प॰–**चुपः**। चूरी दाहे, दिवा॰, आ॰– **चूरः**। चूष् पाने, भ्वा॰,प॰– **चूषः**। चृती हिंसा- ग्रन्थनयोः, तुदा॰, प॰– **चृतः**। च्युतिर् आसेचने, भ्वा॰, प॰–**च्युतः**। छिदिर् द्वैधीकरणे, रुधा॰,उ॰–**छिदः**। छुप् स्पर्शे, तुदा॰,प॰– **छुपः**। छुर् छेदने, तुदा॰, प॰–**छुरः**। छृद् दीप्तिदेवनयोः, रुधा॰,उ॰– **छृदः**। जिम् अदने, भ्वा॰, प॰–**जिमः**। जिषु सेचने, भ्वा॰,प॰–**जिषः**। जीव् प्राणधारणे, भ्वा॰,प॰–**जीवः**। जुड् गतौ, तुदा॰, प॰–**जुडः**। जुड् बन्धने, तुदा॰प॰–**जुडः**। जुतृ भासने, भ्वा॰, आ॰–**जुतः**। जूरी हिंसावयोहान्योः, दिवा॰, आ॰–**जूरः**। जूष् हिंसायाम्, भ्वा॰, प॰–**जूषः**। टिकृ गतौ, भ्वा॰, आ॰–**टिकः**।

टीकृ गतौ, भ्वा॰ आ॰–**टीकः**। डिप् क्षेपे, तुदा॰,प॰–**डिपः**। डिप् क्षेपे, दिवा॰,प॰–**डिपः**। णिजिर् शौचपोषणयोः, जुहो॰उ॰–**निजः**। णिदृ कुत्सासन्निकर्षयोः, भ्वा॰, उ॰–**निदः**। णिल् गहने, तुदा॰,प॰–निलः। णिश् समाधौ, भ्वा॰, प॰–**निशः**। णील् वर्णे, भ्वा॰,प॰–**नीलः**। णीव् स्थौल्ये, भ्वा॰,प॰–**नीवः**। णुद् प्रेरणे, तुदा॰,उ॰–**नुदः**। तिक् गतौ, स्वा॰,प॰–**तिकः**। तिकृ गतौ, भ्वा॰, आ॰–**तिकः**। तिग् गतौ च, स्वा॰, प॰–**तिगः**। तिल् गतौ, भ्वा॰,प॰–**तिलः**। तिल् स्नेहे, तुदा॰प॰–**तिलः**। तीकृ गतौ, भ्वा॰,आ॰–**तीकः**। तीव् स्थौल्ये, भ्वा॰,प॰–**तीवः**। तुट् कलहकर्मणि, तुदा॰,प॰–**तुटः**। तुड् तोडने, तुदा॰,प॰–**तुडः**। तुड्ट तोडने, भ्वा॰,प॰–**तुडः**। तुण् कौटिल्ये, तुदा॰, प॰–**तुणः**। तुद् व्यथने, तुदा॰,उ॰–**तुदः**। तुप् हिंसार्थः, भ्वा॰, प॰–**तुपः**। तुप् हिंसार्थः, तुदा॰,प॰–**तुपः**। तुफ् हिंसार्थः भ्वा॰/तुदा॰, प॰–**तुफः**। तुभ् हिंसायाम्, भ्वा॰, दिवा॰, क्र्या॰,प॰–**तुभः**। तुर् त्वरणे, जुहो॰,प॰–**तुरः**। तुल् उन्माने, चुरा॰, उ॰– **तुलः**। (चुरादिणिच् अनित्य है)। तुष् प्रीतौ, दिवा॰,प॰–**तुषः**। तुस् शब्दे, भ्वा॰प॰–**तुसः**। तुहिर् अर्दने, भ्वा॰,प॰–**तुहः**। तूरी गतित्वरणहिंसनयोः, दिवा॰, अ॰–**तूरः**। तूल् निष्कर्षे, भ्वा॰,प॰–**तूलः**। तूष् तुष्टौ, भ्वा॰ प॰–**तूषः**। तृण् अर्दने, तना॰,उ॰–**तृणः**। तृदिर् हिंसानादरयोः, रुधा॰, उ॰–**तृदः**। तृप् प्रीणने, दिवा॰,प॰–**तृपः**। तृफ् तृप्तौ, तुदा॰ प॰–**तृफः**। तृष् पिपासायाम्, दिवा॰, प॰–**तृषः**। तृह् हिंसायाम्, रुधा॰, प॰–**तृहः**। तृहू हिंसायाम्, तुदा॰,प॰–**तृहः**। त्रुट् छेदने,तुदा॰,प॰–**त्रुटः**। त्रुप् हिंसायाम्, भ्वा॰, प–**त्रुपः**। त्रुफ् हिंसायाम्, भ्वा॰, प॰– **त्रुफः**। थुड् संवरणे, तुदा॰, प॰–**थुडः**। दिश् अतिसर्जने, तुदा॰,उ॰– **दिशः**। दिह् अपचये, अदा॰, उ॰–**दिहः**। दीपी दीप्तौ, दिवा॰ आ॰–**दीपः**। दुष् वैकृत्ये, दिवा॰प॰–**दुषः**। दुह् प्रपूरणे, अदा॰, उ॰–**दुहः**। दुहिर् अर्दने, भ्वा॰प॰–**दुहः**। दृप् हर्षमोहनयोः, दिवा॰,प॰–**दृपः**। दृप् उत्क्लेशे, तुदा॰,प॰–**दृपः**।

दृभ् ग्रन्थे, तुदा०,प०–**दृभः**। दृह् वृद्धौ, भ्वा०,प०–**दृहः**। द्रुण् हिंसागतिकौटिल्येषु, तुदा०,प०–**द्रुणः**। द्रुह् जिघांसायाम्, दिवा०,प०–**द्रुहः**। द्विष् अप्रीतौ, अदा०,उ०–**द्विषः**। धूप् सन्तापे, भ्वा०,प०– **धूपः**। धूरी हिंसागत्योः, दिवा०,आ०–**धूरः**। धृज् गतौ, भ्वा०, प०–**धृजः**। धृषा प्रागल्भ्ये, स्वा०,प०–**धृषः**। पिट शब्दसंघातयोः, भ्वा०,प०–**पिटः**। पिठ हिंसासंक्लेशनयोः, भ्वा०,प०–**पिठः**। पिश अवयवे, तुदा०,प०–**पिशः**। पिष् सञ्चूर्णने, रुधा०, प०–**पिषः**। पिसृ गतौ, भ्वा०,प०–**पिसः**। पील प्रतिष्टम्भे, भ्वा०प०–**पीलः**। पीव् स्थौल्ये, भ्वा०प०–**पीवः**। पुट संश्लेषणे, तुदा०,प०–**पुटः**। पुड उत्सर्गे, तुदा० प०–**पुडः**। नि-पुण कर्मणि शुभे, तुदा० प०–**निपुणः**। पुथ् हिंसायाम्, दिवा०,प०–**पुथः**। पुल्-महत्त्वे, भ्वा०प०–**पुलः**। पुष् पुष्टौ, भ्वा०,प०–**पुषः**। पूयी विशरणे दुर्गन्धे च, भ्वा०,आ०–**पूयः**। पूरी आप्यायाने, दिवा०आ०–**पूरः**। पूल सङ्घाते, भ्वा०,प०–**पूलः**। पूष वृद्धौ, भ्वा०प०–**पूषः**। पृड सुखने, तुदा०,प०–**पृडः**। पृण प्रीणने, तुदा०,प०–**पृणः**। प्रुष स्नेहनसेवनपूरणेषु, क्र्या०प०–**प्रुषः**। प्रुषु दाहे, भ्वा०,प०–**प्रुषः**। प्लुष स्नेहनसेवनपूरणेषु, क्र्या०,प०–**प्लुषः**। बिल भेदने, तुदा०,प०–**बिलम्**। बिस प्रेरणे, भ्वा०,प०–**बिसम्**। बुध अवगमने, भ्वा०,प०/दिवा०, आ०–**बुधः**। बुस उत्सर्गे, दिवा०, प०–**बुसम्**। उत्-भिदिर् विदारणे, रुधा०उ०– **उद्भिदः**। भुजो कौटिल्ये, तुदा०प०–**भुजः**। भृशु अधःपतने, दिवा०प०– **भृशम्**। भ्रुड संवरणे, तुदा०,प०–**भ्रुडः**। मिथृ मेधाहिंसनयोः, भ्वा०,उ०–**मिथः**। मिद् स्नेहने, भ्वा०,आ०–**मिदः**। मिल श्लेषणे, तुदा०,प०–**मिलः**। मिल संगमे, तुदा०,उ०–**मिलः**। मिश् शब्दे रोषकृते च, भ्वा०,प०–**मिशः** 'व्याजः'। मिष् सेचने, भ्वा०,प०–**मिषः**। मिह् सेचने, भ्वा०,प०–**मिहः**। मुच् मोक्षणे, तुदा०,उ०–**मुचः**। मुज शब्दार्थः, भ्वा०,प०–**मुजः**। मुट् प्रमर्दने, भ्वा०,प०–**मुटः**। मुण् प्रतिज्ञाने, तुदा०,प०– **मुणः**। मुद हर्षे, भ्वा०,आ०–

मुदः। मुर संवेष्टने, तुदा॰,प॰–**मुरः**। मुष स्तेये, क्र्या॰,प॰–**मुषः**। मुस खण्डने, दिवा॰,प॰–**मुसः**। मुह् वैचित्ये, दिवा॰,प॰–**मुहः**। मृज् शुद्धौ, अदा॰,प॰–**मृजः**। मृड सुखने, तुदा॰,प॰–**मृडः** 'शिव'। मृण हिंसायाम्, तुदा॰,प॰–**मृणः**। मृद क्षोदे, क्र्या॰,प॰–**मृदः**। मृश् आमर्शने, तुदा॰,प॰–**मृशः**। मृष् तितिक्षायाम्, दिवा॰, उ॰–**मृषः**। मृचु गतौ, भ्वा॰,प॰–**म्रुचः**। म्लुच् गतौ, भ्वा॰,प॰–**म्लुचः**। युज समाधौ, दिवा॰,आ॰–**युजः**। युजिर् योगे, रुधा॰,उ॰–**युजः**। युध सम्प्रहारे, दिवा॰,आ॰–**युधः**। यूष हिंसायाम्, भ्वा॰,प॰–**यूषः**। रिख गतौ, भ्वा॰,प॰–**रिखः**। रिचिर् विरेचने, रुधा॰, उ॰– **रिचः**। रिफ कत्थनादौ, तुदा॰,प॰–**रिफः**। रिष हिंसार्थः, भ्वा॰,प॰–**रिषः**। रुच दीप्तौ अभिप्रीतौ च, भ्वा॰,आ॰–**रुचः**। रुदिर् अश्रुविमोचने, अदा॰प॰–**रुदः**। रुधिर् आवरणे, रुधा॰,उ॰–**रुधः**। रुप विमोहने, दिवा॰,प॰–**रुपः**। रुश हिंसायाम्, तुदा॰,प॰–**रुशः**। रुष हिंसार्थः, भ्वा॰,प॰–**रुषः**। रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, भ्वा॰,प॰–**रुहः**। रूष हिंसार्थः, भ्वा॰,प॰–**रूषः**। लिख अक्षरविन्यासे, तुदा॰,प॰–**लिखः** । लिश अल्पीभावे, दिवा॰आ॰–**लिशः**। लिह आस्वादने, अदा॰,उ॰–**लिहः**। लुट विलोटने, भ्वा॰,प॰–**लुटः**। लुठ उपघाते, भ्वा॰,प॰–**लुठः**। लुप विमोहने, दिवा॰,प॰–**लुपः**। लुभ गार्ध्ये, दिवा॰,प॰–**लुभः**। लूष भूषायाम्, भ्वा॰,प॰–**लूषः**। विट आक्रोशे, भ्वा॰,प॰–**विटः**। विथृ याचने, भ्वा॰,आ॰–**विथः**। विद ज्ञाने, अदा॰,प॰–**विदः**। विध विधाने, तुदा॰,प॰–**विधः**। विल संवरणे, तुदा॰,प॰–**विलः**। विश प्रवेशने, तुदा॰,प॰–**विशः**। विष विप्रयोगे, क्र्या॰, प॰–**विषः**। वृक आदाने, भ्वा॰,आ॰–**वृकः**। वृजी वर्जने, अदा॰,आ॰–**वृजः**। वृश वरणे, दिवा॰,प॰–**वृशः**। वृषु सेचने, भ्वा॰,प॰–**वृषः**। वृहू उद्यमने,तुदा॰,प॰–**वृहः**। व्रुड संवरणे, तुदा॰,प॰–**व्रुडः**। शिट अनादरे, भ्वा॰,प॰–**शिटः**। शिल उञ्छे, तुदा॰,प॰–**शिलः**।

शिष हिंसार्थः, भ्वा॰,प॰–**शिषः**। शील समाधौ, भ्वा॰,प॰–**शीलः**। शुक गतौ, भ्वा॰,प॰–**शुकः**। (मुनिः, पक्षिविशेषः)। शुठ गतिप्रतीघाते, भ्वा॰,प॰–**शुठः**। शुध शौचे, दिवा॰,प॰–**शुधः**। शुन गतौ, तुदा॰प॰–**शुनः**। शुभ दीप्तौ, भ्वा॰,आ॰–**शुभः**। शुष शोषणे, दिवा॰,प॰–**शुषः**। शूरी हिंसास्तम्भनयोः, दिवा॰आ॰–**शूरः**। शूल रुजायां सङ्घाते च, भ्वा॰,प॰–**शूलः**। षिच क्षरणे, तुदा॰,प॰–**सिचः**। षिट अनादरे, भ्वा॰,प॰–**सिटः**। ष्णिह प्रीतौ, दिवा॰,प॰–**स्निहः**। स्तूप समुच्छ्राये, दिवा॰,प॰–**स्तूपः**। स्फूट विकसने, भ्वा॰,आ॰–**स्फुटः**। हृष तुष्टौ, दिवा॰, प॰–**हृषः**।

(ख) ज्ञा अवबोधने, क्र्या॰,प॰। जानाति इति = ज्ञा + क = **ज्ञः** 'जाननेवाला' (आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकार लोप)।

(ग) प्री (प्रीङ्) प्रीतौ, दिवा॰ आ॰। प्रीयते इति = प्री + क = **प्रियः** (अचि श्नुधातु॰ 6.4.77 से ईकार को इयङ् आदेश)।

(घ) कृ (कृञ्) हिंसायाम्, क्र्या॰, उ॰। कृणीते इति = कृ + क = **किरः** 'सुअर' (ॠत इद्धातोः 7.1.100 से ॠकार को इकारादेश, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. विधि– आतश्चोपसर्गे 3.1.136

उपसर्ग उपपद हो तो आकारान्त धातु से भी 'क'।

अपवाद– ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः 3.1.140 से प्राप्त ण का।

अनु॰– कः 3.1.135

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– सोपसर्ग आकारान्त धातुसामान्य।

प्रयोग– सुष्ठु ग्लायति = सु – ग्ला + क = **सुग्लः** 'बहुत ग्लानि करनेवाला' (आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातु के आकार का लोप)।

प्रतिष्ठते = प्र – स्था = क = **प्रस्थः** 'जानेवाला'। वितिष्ठते उदरे = वि – स्था + क = **विष्ठा** 'मल' (स्त्रीत्व लोकाचार से)।

3. विधि– गेहे कः 3.1.144

ग्रह् धातु से 'क' प्रत्यय, जब इसका कर्ता गेह = घर हो।

अनु॰– ग्रहः 3.1.143

अर्थ– कर्त्ता।

प्रकृति– ग्रह उपादाने, क्र्या॰,उ॰।

प्रयोग– गृह्णन्ति = ग्रह् + क = **गृहाः** 'दाराः' (ग्रहिज्यावयि॰ 6.1.16 से रेफ को सम्प्रसारण से ऋकार, तत्परवर्ती अकार का सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से पूर्वरूप।

गृहं वेश्म, तात्स्थ्यात् गृहाः दाराः (घर में होने से पत्नी को भी 'गृहाः' कहते हैं)।

4. विधि– आतोऽनुपसर्गे कः 3.2.3

उपसर्ग रहित कर्म-उपपदक आकारान्त धातु से 'क'।

अपवाद– कर्मण्यण् (3.2.1) से प्राप्त अण् का।

अनु॰– कर्मणि (3.2.1)। उपपद संज्ञा–तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् 3.1.92 से।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म-उपपद आकारान्त धातुसामान्य, यथा– कम्बल-दा (डु दाञ्) दाने, जुहो॰,उ॰।

प्रयोग– कम्बलं ददाति-कम्बल-दा + क = कम्बल दा अ = **कम्बलदः** 'कम्बल देनेवाला' (आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकार लोप)।

विशेष– 'अनुपसर्गे'– कहने से कर्म-उपपदक उपसर्ग युक्त धातु से 'क' नहीं होता है, अपितु कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्। यथा– गां सन्ददाति = गो-सम्-दा + अण् = **गोसन्दायः**।

5. विधि– सुपि स्थः 3.2.4

सुबन्त उपपद रहते स्था धातु से 'क'।

अनु॰– कः (3.2.3)

विशेष– काशिका के अनुसार 'सुपि' एवं 'स्थः' ऐसा योगविभाग है। फलतः दो अर्थ हुए–

(1) सुपि आतोऽनुपसर्गे कः (आतोऽनु॰ 3.2.3 का अनु॰) अर्थात् सुबन्त उपपद रहते किसी भी आकारान्त धातु से 'क'।

(2) 'स्थः' में 'सुपि' का अनु॰ कर 'सुपि स्थः कः' ऐसा रूप बनेगा। अर्थात् सुबन्त उपपद रहते 'स्था' धातु से 'क'।

प्रयोग– (क) द्वाभ्यां पिबति = द्वि-पा + क = **द्विपः** 'हाथी' (आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकार लोप)। पादैः मूलैः पिबति- पाद-पा + क = **पादपः** 'वृक्ष'।

(ख) गृहे तिष्ठति = गृह-स्था + क = **गृहस्थः** (पूर्ववत् आकार लोप)। 'संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता' – उत्तर॰ 1.9

6. विधि– तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः 3.2.5

कर्मत्वविशिष्ट तुन्द तथा शोक के उपपद होने पर क्रमशः परि-मृज् तथा अप-नुद् धातुओं से 'क'।

अनु॰– कः (3.2.3), कर्मणि (3.2.1)।

विशेष– आलस्यसुखाहरणयोरिति वक्तव्यम् (वा॰, 3.2.5)

उक्त दोनों ही धातुओं से क्रमशः आलस्य तथा सुखाहरण अर्थ में 'क' प्रत्यय का विधान समझना चाहिए।

प्रकृति– (1) तुन्द-परिमृज् (मृजू) शुद्धौ, अदा॰,प॰।

(2) शोक-अपनुद् (णुद) प्रेरणे, तुदा॰, उ॰।

प्रयोग– (1) तुन्दं परिमार्ष्टि = तुन्द-परि-मृज् + क = **तुन्दपरिमृजः** 'तोन्द को पोछनेवाला अर्थात् आलसी' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त उपधा गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध)।

(2) शोकम् अपनुदति = शोक-अपनुद् + क = **शोकापनुदः** 'सुख देनेवाला' ('तुन्दपरिमृजः' की तरह उपधा-गुण-

निधेष, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से उपपद एवं धातु को सवर्णदीर्घ एकादेश)।

विशेष– कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् (वा॰ 3.2.5)
'मूलविभुज' आदि 'क' प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन।

प्रयोग– मूलानि विभुजति = मूल-वि-भुज् + क = **मूलविभुजः** 'रथ'। कौ मोदते = कु-मुद् + क = **कुमुदम्।** 'कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव'– अ॰शा॰ 5.28

7. विधि– प्रे दाज्ञः 3.2.6
'प्र' उपसर्ग पूर्वक दा तथा ज्ञा धातुओं से 'क', यदि कर्म उपपद में रहे।

अपवाद– कर्मण्यण् (3.2.1) से प्राप्त अण् का।

अनु॰– कः (3.2.3), कर्मणि (3.2.1)।

प्रकृति– (1) प्र-दा (डुदाञ्) दाने, जुहो॰, उ॰ (कर्म उपपद के साथ)
(2) प्र-ज्ञा अवबोधने, क्र्या॰, प॰ (कर्म उपपद के साथ)।

प्रयोग– (1) सर्वं प्रददाति = सर्व-प्र-दा + कः = **सर्वप्रदः** 'सब कुछ देनेवाला' (आकार लोप पूर्ववत्)
(2) शास्त्राणि प्रकर्षेण जानाति = शास्त्र-प्र-ज्ञा + क = **शास्त्रप्रज्ञः** 'शास्त्रों को जाननेवाला'।

विशेष– (क) प्रष्ठोऽग्रगामिनि 8.3.92
अग्रगामी अर्थ में 'प्रष्ठ' का निपातन।

प्रयोग– प्रतिष्ठते = प्र-स्था + क (सुपि स्थः 3.2.4) = **प्रष्ठः** (अश्वः) 'आगे दौड़नेवाला' (आतो लोप॰ 6.4.64 से आकार लोप, निपातन से स्थ के सकार को मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ष्टुत्व से थकार को ठकार)।

विशेष– (ख) अम्बाम्बगो .... स्थः 8.3.97
अम्ब, अम्बा आदि शब्द से परवर्ती 'स्थ' के सकार को मूर्धन्यादेश।

प्रयोग– अम्ब-स्था + क (सुपि स्थः 3.2.4) = **अम्बष्ठः** (पूर्ववत् आतो

लोप॰ 6.4.64 से आकार लोप, प्रकृत सूत्र से मूर्धन्यादेश, ष्टुना ष्टुः 8.4.4 से ष्टुत्व से थकार को ठकार आदेश)।

अम्बा + स्था + क = **अम्बाष्ठः** (अम्बष्ठः की तरह)। गो–**गोष्ठः**। भूमि-स्था + क = **भूमिष्ठः**। सव्ये-**सव्येष्ठः** 'सारथि'। अप-**अपष्ठः**। द्वयोः तिष्ठति = द्वि-स्था + क = **द्विष्ठः**। त्रि–**त्रिष्ठः**। कु - **कुष्ठः**। शेकु– **शेकुष्ठः**। शङ्कु– **शङ्कुष्ठः**। अङ्गु–**अङ्गुष्ठः** मञ्जि–**मञ्जिष्ठः** 'मजीठ'। पुञ्जि–**पुञ्जिष्ठः**। परमे–**परमेष्ठः**। बर्हि–**बर्हिष्ठः**। दिवि–**दिविष्ठः**। अग्नि– **अग्निष्ठः**। सर्वत्र सुपि स्थः 3.2.4 से 'क' प्रत्यय। शेष प्रक्रिया 'अम्बष्ठः' जैसी।

8. विधि– समि ख्यः 3.2.7

कर्मोपपदक सम् पूर्वक 'ख्या' धातु से 'क'।

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त 'अण्' का।

अनु॰– कः (3.2.3), कर्मणि (3.2.1)।

प्रकृति– कर्म-उपपदक सम् – ख्या प्रकथने, अदा॰,प॰।

प्रयोग– गां सञ्चष्टे = गो–सम् – ख्या + क = **गोसंख्यः** 'गौओं को गिननेवाला' (आतो लोप॰ 6.4.64 से धातु के आकार का लोप, शेष विधि 5 जैसा)।

9. विधि– स्थः क च 3.2.77

सुबन्त-उपपदक तथा उपसर्गोपपदक 'स्था' धातु से 'क' और 'क्विप्'।

अनु॰– क्विप् (3.2.76), सुपि (3.2.4), उपसर्गेऽपि (3.2.61)।

प्रकृति– सुबन्तोपपदक अथवा उपसर्गोपपदक स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰,प॰।

प्रयोग– शम् - स्था + क = **शंस्थः** 'सुख से रहनेवाला' (आतो लोप॰ 6.4.64 से आकार लोप)।

क्विप् पक्ष में– शम् - स्था + क्विप् = **शंस्थाः** 'सुख से रहनेवाला'।

10. विधि– पाणिघताडघौ शिल्पिनि 3.2.55
कर्मत्वविशिष्ट पाणि तथा ताड शब्द के उपपदत्व में हन् धातु से (कप्रत्ययान्त) पाणिघ एवं ताडघ का निपातन।

अनु॰– हनः (3.2.49), कर्मणि (3.2.1)।

प्रकृति– पाणि - हन् एवं ताड-हन् (हन हिंसागत्योः, अदा॰,प॰)।

प्रयोग– पाणि-हन् + क = **पाणिघः** 'मृदङ्ग बजानेवाला' (निपातन से 'क' प्रत्यय, हन् धातु से टि अर्थात् अन् का लोप, ह का घत्व)।
ताड - हन् + क = **ताडघः** 'शिल्पी' ('पाणिघः' की तरह निपातन)।

विशेष– सिद्धान्तकौमुदीकार ने पाणिघः एवं ताडघः में पाणि तथा ताड उपपदक हन् धातु से 'क' प्रत्यय न मानकर 'टक्' प्रत्यय माना है, अर्थात् उनके अनुसार पाणि– हन् + टक् = पाणिघः, ताड-हन् + टक् = ताडघः। अनुबन्ध लोप के पश्चात् क एवं टक् से अकार ही अवशिष्ट रहता है एवं उभय कित् होते हैं। अत एव क्रमशः काशिका एवं सिद्धान्तकौमुदी में प्रत्यय के प्रारूप को लेकर यह मतभेद है।

11. विधि– राजघ उपसंख्यानम् (वा॰ 3.2.55)
'राजघ' शब्द का भी निपातन कहना चाहिए।

प्रयोग– राजानं हन्ति = राजन् – हन् + क = **राजघः** 'राजा को मारनेवाला' (निपातन से कप्रत्यय, टिलोप, हकार को कुत्व)।

विशेष– इसमें भी सिद्धान्तकौमुदीकार ने क प्रत्यय के स्थान पर 'टक्' प्रत्यय माना है।

12. विधि– घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम् (वा॰ 3.3.58)
स्था, स्ना, पा, व्यध्, हन्, युध् धातुओं से घञर्थ में 'क'।

प्रसङ्ग– घञर्थ– भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.18,19)।

प्रकृति– (1) स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰,प॰।
(2) स्ना (ष्णा) शौचे, अदा॰,प॰।
(3) पा पाने, भ्वा॰,प॰।
(4) व्यध् ताडने, दिवा॰,प॰।

(5) हन हिंसागत्योः, अदा०,प०।

(6) युध सम्प्रहारे, दिवा०,आ०।

प्रयोग– (1) प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन् = प्र-स्था + क = **प्रस्थः** पर्वतस्य 'पर्वत का अग्रभाग' (आतो लोप० 6.4.64 से आकार लोप)। 'प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि'– कुमार० 1.54

(2) प्रस्नाति अस्मिन् = प्र-स्ना + क = **प्रस्नः** 'स्नान-पात्र'।

(3) प्रपिबन्ति अस्याम् = प्र-पा + क = प्रप + टाप् = **प्रपा** 'प्याऊ'। 'व्याख्यास्थानान्यमलसलिला यस्य कूपाः प्रपाश्च'– विक्रमाङ्क० 18.78

(4) आविध्यन्ति तेन = आ- व्यध् + क = आ विध् अ (ग्रहिज्या० 6.1.16 से सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से पूर्वरूप) = **आविधः** 'आयुधविशेष'।

(5) विहन्यतेऽस्मिन् = वि-हन् + क = **विघ्नः** 'बाधा' (गमहन० 6.4.98 से उपधा लोप, हो हन्ते० 7.3.54 से ह का घत्व)। 'कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि'– अ०शा० 5.14

(6) आयुध्यतेऽनेन = आ-युध् + क = **आयुधम्** 'अस्त्र' (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)। 'न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्' –रघु० 3.63

13. विधि– स्तम्बे क च 3.3.83

'स्तम्ब' के उपपद होने पर 'हन्' धातु से करण कारक में 'क' एवं 'अप्', अप् के रहते हन् को घनादेश।

अनु०– करणे (3.3.82), घनः (3.3.77), हनः (3.3.76), अप् (3.3.57)।

प्रकृति– स्तम्ब– हन् (हन) हिंसागत्योः, अदा०, प०।

प्रयोग– स्तम्बः हन्यतेऽनेन = स्तम्ब– हन् + क = **स्तम्बघ्नः** 'घास जिससे काटी जाय अर्थात् खुरपा' (गमहनजनः 6.4.98 से धातु की उपधा का लोप, हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से घत्व)। अप् - पक्ष में - स्तम्बघनः।

विशेष– स्त्रियां स्तम्बघ्ना, स्तम्बघना इति इष्यते (वा॰ 3.3.83)
स्त्रीलिंग में स्तम्बघ्ना एवं स्तम्बघना शब्दों का निपातन।

प्रयोग– स्तम्ब– हन् + क + टाप् = स्तम्बघ्ना (प्रक्रिया पूर्ववत्)। 'खुरपी'।

सम्ब॰– (1) कृञादीनां के द्वे भवत इति वक्तव्यम् 6.1.12 कृञ् आदि धातुओं के 'क' प्रत्यय के परे द्वित्व का विधान करना चाहिए।

प्रयोग– क्रियतेऽनेन = कृ + क (घञर्थे कविधानम् वा॰, 3.3.58 से क) = कृ कृ क (प्रस्तुत वार्तिक से द्वित्व) = चकृ अ (अभ्यास कार्य) = **चक्रम्।**

सम्ब॰ (2) विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा 6.1.150
शकुनि (पक्षी) अर्थ में विष्किर तथा विकिर का निपातन।

प्रयोग– विकिरति = वि-किर् + क (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः 3.1.135) = **विष्किरः**, **विकिरः** 'पक्षी' (निपातन से)।
'छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः'– उत्तर॰ 2.9

सम्ब॰ (3) थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.144
गति, कारक तथा उपपद से परवर्ती उत्तरपदस्थानीय क-प्रत्ययान्त शब्द का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– प्र-वृष् + क = **प्रवृषः** (इगुपध॰ 3.1.135 से क-प्रत्यय), 'ष' के उत्तर अकार उदात्त।

सम्ब॰ (4) अच्कावशक्तौ 6.2.157
'अशक्ति' गम्यमान होने पर (अच्– प्रत्ययान्त) तथा क– प्रत्ययान्त उत्तरपदों का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– अ-वि-क्षिप् + क = **अविक्षिपः** (इगुपध॰ 3.1.135 से क), प् के उत्तर अकार उदात्त।

सम्ब॰ (5) ओक उचः के 7.3.64
क-प्रत्यय के परे उच् धातु से ओक शब्द का निपातन।

प्रयोग– उच्यति– उच् + क (इगुपध॰ 3.1.135 से क) = उच् + अ = **ओकः** (कुत्व एवं गुण निपातन से)
नि + ओकः –**न्योकः**। न्योकः शकुन्तः। न्योकः वृक्षः।

कञ्

कञ् = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से अकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8) एवं आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः (3.4.114)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से धातु के गुण का निषेध।

(2) ञित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से धातु का आदि स्वर उदात्त।

(3) कञ् - कञ्-अन्त से स्त्रीत्व में ङीप्। (टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15)। यादृशः- यादृशी।

(4) अजादि।

1. विधि– त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च 3.2.60

त्यद् – आदि के उपपदत्व में अनालोचन अर्थ में वर्तमान दृश् धातु से कञ् एवं क्विन्।

अनु॰– क्विन् (3.2.58), सुपि (3.2.4)।

प्रकृति– त्यदादि उपपद से युक्त दृश् (दृशिर्) प्रेक्षणे, भ्वा॰,प॰।

प्रयोग– त्यद् - दृश् + कञ् = त्यद् - दृश् अ = त्या दृश् अ (आ सर्वनाम्नः 6.3.91 से त्यद् के दकार को आकार, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ एकादेश = **त्यादृशः** 'वैसा'। (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त उपधागुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध)।

यद् - दृश् + कञ् = **यादृशः** 'जैसा'।

तद् - दृश् + कञ् = **तादृशः** 'वैसा'।

पक्षे क्विन् - त्यादृक्, यादृक्, तादृक्।

विशेष– अनालोचन (न देखना) अर्थ में ही कञ्, अतः आलोचन (देखना) अर्थ में कञ् नहीं– तं पश्यति = तद्दर्शः।

2. विधि– समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 3.2.60)

समान तथा अन्य शब्दों के उपपद होने पर भी दृश् से कञ् एवं क्विन्।

प्रकृति– (1) समान-दृश्, (2) अन्य-दृश्।

प्रयोग– (1) समान-दृश् + कञ् = समान दृश् अ = **सदृशः** (दृग्दृशवस्तुषु 6.3.89 से समान को स आदेश)।

पक्षे क्विन् - सदृक्।

(2) अन्य– दृश् + कञ् = अन्य दृश् अ = **अन्यादृशः** 'दूसरे जैसा' (आ सर्वनाम्नः 6.3.91 से अन्य के अन्त्य अकार को आकार-आदेश)।

पक्षे क्विन् = अन्यादृक्।

सम्ब॰– (1) टिड्ढाणञ्.....कञ्क्वरपः 4.1.15

कञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व में ङीप्।

प्रयोग– **यादृश** (यत् दृश् + कञ्, त्यदादिषु दृशो॰ 3.2.60 से कञ्)। यादृश + ङीप् = यादृश ई = **यादृशी** 'जैसी' (यस्येति च 6.4.148 से अकार लोप)।

सम्ब॰ (2) दृग्दृशवस्तुषु 6.3.89

दृश् शब्द के परे 'समान' के स्थान पर विकल्प से 'स' आदेश। 'दृश्' से यहाँ (सम्भवतः) दृश् + कञ् का ग्रहण हुआ है।

प्रयोग– समान-दृश् + कञ् (समानान्ययोश्चेति॰ 6.3.89 से कञ्) = समानदृश = **सदृशः** (प्रस्तुत सूत्र से समान = स)।

सम्ब॰ (3) इदङ्किमोरीश्की 6.3.90

दृश् शब्द के परे रहते इदम् के स्थान में ईश्, किम् के स्थान में की-आदेश।

प्रयोग– इदम् – दृश् + कञ् (त्यदादिषु दृशो॰ 3.2.60 से कञ्) = इदम् दृश् अ = **ईदृशः** 'ऐसा' (प्रस्तुत सूत्र से इदम् के स्थान में अनेकाल्शित् सर्वस्य 1.1.55 से ईश् (ई) (आदेश)।

किम् - दृश् – कञ् (पूर्ववत्) = किम् दृश् अ = **कीदृशः** 'कैसा' (प्रस्तुत सूत्र से किम् के स्थान पर की)।

सम्ब॰ (4) आ सर्वनाम्नः 6.3.9

दृश् के परे रहते सर्वनाम के स्थान पर आकारादेश।

प्रयोग– त्यद्-दृश् + कञ् (त्यदादिषु दृशो॰ 3.2.60 से कञ्) = त्यद् दृश् अ = **त्यादृशः** (प्रस्तुत सूत्र से त्यद् के दकार के स्थान में आकार, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से दीर्घ एकादेश)।

कध्यै

कध्यै = अध्यै। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से 'क्' की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध आदि।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति 6.4.24 से धातु के उपधा नकार का लोप। आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातु के आकार का लोप। पुनः सम्प्रसारणादि।

(3) अजादि।

(4) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से कध्यै– अन्त शब्द की अव्ययसंज्ञा।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन......तवेङ्तवेनः 3.4.9
वेद में तुमर्थ में कध्यै।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा- आ-हु दानादानयोः; जुहो॰, प॰।

प्रयोग– आ-हु + कध्यै = **आहुवध्यै।**
'इन्द्राग्नी आहुवध्यै'– यजु॰ 3/131

कध्यैन्

कध्यैन् = अध्यै। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– **कध्यै** (उपरिकथित) जैसा। केवल यह नित् होने से ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त– यही विशेषता है। विधि, प्रयोग सभी 'कध्यै' जैसा। उदाहरण– **श्रियध्यै** (का॰)।

कप्

कप् = अ। हलन्त्यम् 1.3.3 से प् की एवं लशक्व॰ 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।
(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
(3) पित् (1.3.3)। अतः अनुदात्तौ सुप्पितौ (3.1.4) से यह प्रत्यय अर्थात् 'अ' की अनुदात्त संज्ञा।
(4) अजादि।

1. विधि– दुहः कब् घश्च 3.2.70
सुबन्त-उपपद से युक्त दुह् धातु से 'कप्' तथा प्रकृति को घकार अन्तादेश।

अनु॰– सुपि (3.2.4), धातोः (3.1.91)।

प्रकृति– दुह् (दुह) प्रपूरणे, अदा॰,उ॰ (सुबन्त उपपद के साथ)।

प्रयोग– कामं दोग्धि = काम-दुह् + कप् = कामदुघ् अ (हकार को इसी सूत्र से घकारादेश) = **कामदुघा** धेनुः 'इच्छा पूर्ण करनेवाली गौ'।
लोकव्यवहार से अजाद्यतष्टाप् (4.1.4) से टाप्।
'आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा'– रघु॰ 1/81

कमुल्

कमुल् = अम्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की तथा हलन्त्यम् 1.3.3 से ल् की एवं उपदेशेऽज॰ 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से तीनों का लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध इत्यादि।

(3) लित् (1.3.3)। अतः लिति 6.1.193 से कमुल् से पूर्ववर्ती स्वर की उदात्तसंज्ञा। 'लकारः स्वरार्थः'– का॰।

(4) अजादि।

1. विधि– शकि णमुल्कमुलौ 3.4.12

'शक्' धातु के उपपद होने पर वैदिक प्रयोग में तुमुन् अर्थ में (णमुल् और) कमुल्।

अनु॰– तुमर्थे (3.4.9), छन्दसि (3.4.6)।

संज्ञा– उपपद–तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् 3.1.92 (यहाँ 'शक्' धातु सप्तमीस्थ होने से उपपद है)

तुमर्थ– भाव (तुमर्थे॰ 3.4.9 –काशिका)।

प्रकृति– शक्-उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा– अपलुप्।

प्रयोग– अपलोप्तुम् = अप-लुप् (लुप विमोहने, दि॰,प॰) + कमुल् = **अपलुपम्** (क्ङिति च 1.1.5 से उपधागुण का निषेध)। 'अपलुपं नाशक्नुवन्'।

सम्ब॰– (1) कृन्मेजन्तः 1.1.39

मकारान्त कृत् जिसके अन्त में हो, ऐसे कृदन्त की अव्ययसंज्ञा। कमुल् = अम्, मान्त कृत् होने से कमुल् – अन्त की अव्यय-संज्ञा।

प्रयोग– **'अपलुपं** नाशक्नुवन्'।

कसुन्

कसुन् = अस् = अः।

लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की, हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की, उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से तीनों का लोप। अनुबन्ध लोप के बाद अवशिष्ट 'अस्' के सकार का रुत्व (ससजुषो रुः 8.2.66 से) एवं रेफ का विसर्ग (खरवसान॰ 8.3.15 से)।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण की प्राप्ति।

(3) अजादि।

(4) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से आदि उदात्त।

(5) अव्यय (क्त्वातोसुन्कसुनः 1.1.40)

1. विधि– ईश्वरे तोसुन्कसुनौ 3.4.13

ईश्वर शब्द के उपपद होने पर धातु से छन्दोविषय में तुमुन्-अर्थ में तोसुन् और कसुन्।

अनु॰– तुमर्थे (3.4.9), छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ–भाव।

प्रकृति– 'ईश्वर' उपपदक धातुसामान्य, यथा– वि-लिख् (लिख) अक्षरविन्यासे, तुदा॰, प॰।

प्रयोग– ईश्वरः वि-लिख् + कसुन् = **विलिखः** अर्थात् 'विलेखितुम्' ईश्वरः विलिखः (इच्छति) 'ईश्वर लिखने के लिए (चाहता है)'। (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

2. विधि– सृपितृदोः कसुन् 3.4.17

छन्दोविषय में भाव-लक्षक अर्थ में वर्तमान सृप् तथा तृद् धातुओं से तुमुन्-अर्थ में कसुन्।

अनु॰– भावलक्षणे (3.4.16), छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ– भाव।

प्रकृति– (1) सृप् (सृप्लृ) गतौ, भ्वा.,प.।

(2) तृद् (उ तृदिर्) हिंसानादरयोः, रुधा., उ.।

प्रयोग– (1) वि-सृप् + कसुन् = वि-सृप्-अस् = **विसृपः** (पुगन्तलघू. 7.3.86 से उपधागुण की प्राप्ति, परन्तु क्ङिति च 1.1.5 से निषेध।

'पुरा क्रूरस्य विसृपौ विरप्शिन्' (वैदिक प्रयोग)।

(2) आ-तृद् + कसुन् = आ तृद् अस् = **आतृदः** ('विसृपः' जैसा)। 'पुरा जतृभ्य आतृदः'।

सम्ब.– (1) क्त्वातोसुन्कसुनः 1.1.40

कसुन् - अन्त की अव्यय-संज्ञा।

प्रयोग– पुरा क्रूरस्य **विसृपो** विरप्शिन् (वि-सृप् + कसुन्, सृपितृदोः कसुन् 3.4.17 से कसुन्)। यहाँ 'विसृपः' की अव्यय-संज्ञा है।

(2) अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः (वा., 2.3.69)

अव्यय के प्रयोग में उपदिष्ट षष्ठीप्रतिषेध के प्रसङ्ग में कसुन् के प्रयोग में षष्ठी प्रतिषेध नहीं समझना चाहिए।

प्रसङ्ग– न लोकाव्यय (2.3.69) से षष्ठी विभक्ति का प्रतिषेध प्राप्त है। 'कसुन्' अव्यय है। अतः इसके योग में षष्ठी का निषेध स्वाभाविक था; परन्तु इस वार्तिक से उसका निषेध हुआ, अर्थात् कसुन् के योग में षष्ठी होगी।

प्रयोग– पुरा क्रूरस्य **विसृपो** विरप्शिन्। यहाँ 'विसृपः' (वि-सृप् + कसुन्)– इस कसुन्-अन्त के योग में प्राप्त षष्ठीनिषेध का निषेध हो जाने से 'क्रूरस्य' ऐसी षष्ठी हुई है।

कसेन्

कसेन् = असे। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 अथवा, पुगन्तलघू० 7.3.86 से धातु के गुण की प्राप्ति।

(3) अजादि।

(4) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

(5) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से कसेन् (असे) अन्त की अव्यय संज्ञा।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन......तवेङ्तवेनः 3.4.9
वेद में तुमुन्-अर्थ में कसेन्।

अनु०– छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ – अर्थात् भाव।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– श्रिञ् सेवायाम्, भ्वा०, उ०।

प्रयोग– श्रि + कसेन् = श्रि + असे = **श्रियसे** (अचिश्नुधातु० 6.4.77 से इयादेश)
'गवामिव श्रियसे' (ऋ० वे० 5.59.3)

कानच्

कानच् = आन। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से चकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुका॰ 7.3.84 एवं पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण की प्राप्ति।

(3) अजादि। अतः तङानावात्मनेपदम् (1.4.100) से 'आन' की आत्मनेपद संज्ञा।

(4) चित् (1.3.3)। अतः चितः (6.1.163) से अन्त-उदात्त।

1. विधि– लिटः कानज् वा 3.2.106

छन्दोविषय में भूतकाल में 'लिट्' को विकल्प से 'कानच्'।

अनु॰– छन्दसि (3.2.105), भूते (3.2.84)।

विशेष– कानच् = आन। 'आन' होने के कारण तङानावात्मनेपदम् (1.4.100) से इसकी आत्मनेपद संज्ञा। अतः केवल आत्मनेपदी धातुओं से कानच्।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– आत्मनेपदी धातुसामान्य, यथा– तुज् (तुजि) हिंसाबलादाननिकेतनेषु, चुरा॰,उ॰।

प्रयोग– तुज्-लिट् (परोक्षे लिट् 3.2.115 से परोक्ष अतीत में लिट्) = तुज् + कानच् = (प्रस्तुत सूत्र से लिट् को कानज्) = तनुज् आन (लिटि धातोः 6.1.8 से द्वित्व, तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य 6.1.7 से अभ्यास को दीर्घ) = **तूतुजानः** 'अतीत में शीघ्रता करनेवाला'।

'इन्द्रा याहि **तूतुजान** उप ब्रह्मणि हरिवः' (ऋ॰वे॰ 1.3.6)

विशेष– सूत्र में 'वा' के प्रयोग से कहीं-कहीं कानच् नहीं होता है, यथा–

'अहं द्यावापृथिवी आततान।'

2. विधि– उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च 3.2.109

कानच् - प्रत्ययान्त 'अनूचान' का निपातन, विकल्प से।

अनु॰– लिटः वा (3.2.106), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– इस निपातन की प्रकृति अनु + वच् (वच) परिभाषणे, अदा॰, प॰।

प्रयोग– वेदस्य अनुवचनं कृतवान् = अनु-वच् + कानच् = **अनूचानः** 'बोलनेवाला' (निपातन से कानच्, सम्प्रसारण)।

'इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितवचः'– कुमार॰ 6.15

पक्ष में भूतकाल के लकार– अन्ववोचत् (अनु-वच् + लङ्, तिप्), अनूवाच (अनु-वच् + लिट्, तिप्)।

सम्ब॰– (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

लादेश के योग में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से प्राप्त षष्ठी नहीं होती। लादेश में 'कानच्' का भी ग्रहण है।

प्रयोग– ओदनं **पेचानः** । कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से ओदन शब्द से प्राप्त षष्ठी नहीं हुई।

कि

कि = इ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध, आतो लोप इटि च (6.4.64) से धातु के आकार का लोप।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(3) अजादि।

1. **विधि–** आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च 3.2.171

आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम्, हन्, जन्-इन धातुओं से तच्छील-आदि अर्थ में वेदविषय में 'कि' (एवं किन्) और इस प्रत्यय को लिड्-वद्भाव होता है।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), छन्दसि (3.2.170), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) आकारान्त, यथा– पा पाने, भ्वा॰,प॰।

(2) ऋवर्णान्त, यथा– तॄ प्लवनतरणयोः, भ्वा॰,प॰।

(3) गम् (गम्लृ) गतौ, भ्वा॰,प॰।

(4) हन् (हन) हिंसागत्योः, अदा॰,प॰।

(5) जन् (जनि) प्रादुर्भावे, दिवा॰,आ॰।

प्रयोग– (1) पानं शीलम् अस्य = पा + कि = **पपिः** 'पीनेवाला' (लिड्वद्भाव होने से लिटि धातो॰ 6.1.8 से धातु का द्वित्व, अभ्यासकार्य, आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकार लोप)। 'पपिः सोमम्'– (ऋ॰वे॰ 6.23.4)

(2) प्लवनं तरणं वा शीलम् अस्य = तॄ + कि = **ततुरिः** 'तैरनेवाला' ('पपिः' जैसा द्वित्व, अभ्यासकार्य, ॠत इद्धातोः 7.1.100 से इकारादेश, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'मित्रावरुणौ ततुरिः'– (ऋ॰वे॰ 4.39.2)

(3) गमनं शीलम् अस्य = गम् + कि = **जग्मिः** 'जानेवाला' ('पपिः' जैसा द्वित्व, अभ्यासकार्य)। 'जग्मिर्युवा' (ऋ॰ वे॰ 2.23.11)

(4) हन् + कि = **जघ्निः** 'मारनेवाला' ('पपिः' जैसा द्वित्व, अभ्यासकार्य)। 'जघ्निर्वृत्रम्' (ऋ॰वे॰ 6.61.20)

(5) जन् + कि = **जज्ञिः** 'पैदा करनेवाला' ('पपिः' जैसा द्वित्व, अभ्यास कार्य)।

'जज्ञिर्बीजम्' (तै॰सं॰ 7.5.20.1)

विशेष– (क) प्रकृत सूत्र से विहित कि एवं किन् में केवल स्वरगत विशिष्टता है (किन् होने से ञ्नित्यादि॰ 6.1.197 से आदि उदात्त)।

(ख) किकिनावुत्सर्गः, छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् (वा॰, 3.2.171)

उक्त धातुओं से (3.2.171) में विहित कि (तथा किन्)। औत्सर्गिक है, क्योंकि 'सद्' आदि धातुओं से भी वेद में कि (और किन्) प्रत्यय देखे जाते हैं।

प्रयोग– सद् + कि = **सेदिः** यजु॰ 12.105

2. विधि– भाषायां धाञ्कृञ्सृजनिगमिभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ (वा॰, 3.2.171)

भाषा (लोक) में धा आदि धातुओं से तच्छीलादि अर्थ में 'कि' (तथा किन्)।

प्रकृति– 1. धाञ्, 2. कृञ्, 3. सृ, 4. जन् (जनी) प्रादुर्भावे, दिवा॰, आ॰, 5. गम्।

प्रयोग– (1) धा + कि = **दधिः** 'धारण करनेवाला' (विधि सं॰ 1 में 'पपिः' जैसा द्वित्व, अभ्यासकार्य, आतो लोप॰ 6.4.64 से आकार लोप)।

(2) कृ + कि = **चक्रिः** 'करनेवाला' (द्वित्व आदि पूर्ववत्)।

(3) सृ + कि = **सस्रिः** 'सरकनेवाला'।

(4) जन् + कि = **जज्ञिः** (विधि 1 के 'जज्ञि' जैसी)।

(5) गम् + कि = **जग्मिः** 'चलनेवाला' (अभ्यासकार्यादि पूर्ववत्)।

3. विधि– सहिवहिचलिपलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ (वा॰, 3.2.171)

सह् आदि धातुओं से यङ् प्रत्यय होने पर 'कि' (तथा किन्)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) यङन्त सह् = सासह्य (धातोरेकाचो॰ 3.1.22 से यङ्, दीर्घोऽकितः 7.4.83 से अभ्यासदीर्घ)।

(2) यङन्त वह् = वावह्य। (3) यङन्त चल् = चाचल्य।

(4) यङन्त पल् = पापल्य। (5) यङन्त पत् = पापत्य।

प्रयोग– (1) सासह्य + कि = **सासहिः** 'बार-बार सहने में अभ्यस्त'

(2) वावह्य + कि = **वावहिः** 'बार-बार ढोनेवाला'

(3) चाचल्य + कि = **चाचलिः** 'बार-बार चलनेवाला'

(4) पापल्य + कि = **पापलिः** 'बार-बार भागनेवाला'

(5) पापत्य + कि = **पापतिः** 'बार-बार गिरनेवाला'।

(यङोऽचि च 2.4.74 से यङ् का लोप)

4. विधि– उपसर्गे घोः किः 3.3.92

भाव में और कर्तृभिन्न कारक में सोपसर्ग 'घु' अर्थात् दा एवं धा धातु से 'कि'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– उपसर्ग से युक्त घु अर्थात् (1) दा दाने, जुहो॰, प॰ एवं (2) धा धारणपोषणयोः, जुहो॰, प॰। उभय की घु-संज्ञा (दाधा घ्वदाप् 1.1.20)।

प्रयोग– (1) प्र-दा + कि = प्र दा इ = **प्रदिः** 'प्रदान' (आतो लोप॰ 6.4.64 से आकार लोप)।

(2) नितरां धीयते = नि-धा + कि = निधा इ = **निधिः**

'खजाना' (आतो लोप॰ 6.4.64 से आकार लोप)। 'निधिर्ना शेवधिः'– अमर॰ 1.1.71, 'पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य'– कुमार॰।

इसीप्रकार, सम् - आ + धा – **समाधिः**,
वि - आ + धा – **व्याधिः**,
उप - आ + धा – **उपाधिः**,
प्रति - नि + धा – **प्रतिनिधिः**।

विशेष– अन्तः शब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गसंज्ञा वक्तव्या (वा॰, 1.4.65)
कि- विधि में 'अन्तर्' की उपसर्ग संज्ञा।

प्रयोग– अन्तर्धानम् = अन्तर् - धा + कि = **अन्तर्धिः** 'छिपना (उपसर्गे घोः किः 3.3.92 से 'कि', पूर्ववत् आ-लोप)। 'अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति' – अ॰1.4.28

5. विधि– कर्मण्यधिकरणे च 3.3.93
कर्म उपपद में रहने पर घु-संज्ञक धातु (दा एवं धा) से अधिकरण में कि।

अनु॰– घोः किः (3.3.92)।

अर्थ– अधिकरण।

विशेष– सूत्र में 'कर्मणि'– इस सप्तम्यन्त से कर्म की उपपद संज्ञा (तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् 3.1.92)।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त दा एवं धा धातु (दाधा घ्वदाप् 1.1.20 से उभय की घु-संज्ञा), यथा– जल-धा।

प्रयोग– जलं धीयतेऽस्मिन् = जल-धा + कि = **जलधिः** 'समुद्र' (आतो लोप॰ 6.4.64 से आकार का लोप)।

सम्ब॰– (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69
ल-आदेश के प्रयोग होने पर कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.65) से प्राप्त षष्ठी नहीं होती है।

प्रसङ्ग– आदृगम॰ 3.2.171 से विहित कि का लिट् लकार जैसा व्यवहार होने से यह ल-आदेश है।

प्रयोग– पपिः सोमम् (ऋ॰वे॰ 6.23.4)। यहाँ पा धातु से आदृगम॰ 3.2.171 से कि प्रत्यय का विधान है। अतः कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से सोम शब्द से प्राप्त षष्ठी का यहाँ निषेध हुआ है।

सम्ब॰– (2) पेषंवासवाहनधिषु च 6.3.58

धि (धा + कि) के परे रहते उदक को उद-आदेश।

प्रयोग– उदकं धीयतेऽस्मिन् = उदक-धा+कि (कर्मण्य॰ 3.3.93 से कि प्रत्यय) = उदक-धा-इ (प्रस्तुत सूत्र से उद-आदेश) = **उदधिः** 'समुद्र' (आतो॰ 6.4.64 से आकार लोप)।

क्निन्

क्निन् = इ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध, आतो लोप इटि च (6.4.64) से धातु के आकार का लोप इत्यादि।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से क्तिन्-प्रत्ययान्त आदि उदात्त।

(3) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(4) अजादि।

(5) 'क्निन्' के तुल्यार्थक 'कि' प्रत्यय से केवल स्वरगत भेद है, अर्थात् क्निन् एक नित्-प्रत्यय है एवं कित् भी, जबकि 'कि' केवल कित् है।

1. विधि– आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च 3.2.171

अकारान्त, ऋवर्णान्त, गम्, हन्, जन्– इन धातुओं से तच्छील-आदि अर्थ में वेदविषय में क्निन् (एवं कि) और इस प्रत्यय को लिड्-वद्भाव।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), छन्दसि (3.2.170), वर्तमाने (3.2.123)।

(प्रकृति एवं प्रयोग के लिए देखें– 'कि' प्रत्यय की विधि संख्या 1) कि एवं क्निन् में केवल स्वरगत भिन्नता है, रूपगत भिन्नता नहीं है।

2. विधि– भाषायां धाञ्कृञ्सृजनिगमिभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ (वा॰, 3.2.171)

भाषा (लोक) में धा, कृ, सृ, जन्, गम् धातुओं से 'क्निन्' (एवं कि)।

प्रकृति एवं प्रयोग के लिए देखें– 'कि' प्रत्यय की विधि संख्या–2

3. विधि– सहिवहिचलिपलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यो किकिनौ वक्तव्यौ (वा॰, 3.2.171)

सह्, वह्, चल्, पल् तथा पत् धातुओं से भी यङ् प्रत्यय होने पर किन् (एवं कि)।

प्रकृति एवं प्रयोग के लिए देखें– 'कि' प्रत्यय की विधि-संख्या-3

सम्ब॰– (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

ल्-आदेश (यथा 'किन्') के प्रयोग होने पर कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से प्राप्त षष्ठी नहीं होती है।

प्रसङ्ग एवं प्रयोग के लिए देखें– 'कि' प्रत्यय का सम्ब॰-संख्या-1

कुरच्

कुरच् = उर। लशक्वतद्धिते (1.3.8) से क् की, हलन्त्यम् (1.3.3) से च् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः (1.3.9) से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से धातु का गुण-निषेध।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण की प्राप्ति।

(3) चित् (1.3.3)। अतः चितः (6.1.163) से अन्त उदात्त।

1. विधि– विदिभिदिच्छिदेः कुरच् 3.2.162

विद्, भिद् तथा छिद् धातुओं से तच्छीलादि-अर्थों में 'कुरच्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)

प्रकृति– (1) विद् ज्ञाने, अदा॰, प॰ (लाभार्थक विद् का ग्रहण नहीं)।

(2) भिद् (भिदिर्) विदारणे, रुधा॰, उभ॰।

(3) छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे, रुधा॰, उभ॰।

प्रयोग– (1) वेदः शीलमस्य = विद् + कुरच् = विद् उर = **विदुरः** 'पण्डित'। (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध)।

'ज्ञाता तु विदुरो विन्दुः'– अमर॰ 3.1.30।

(2) भेदः शीलमस्य = भिद् + कुरच् = **भिदुरम्** 'फाड़नेवाला, इन्द्र का वज्र' ('विदुर' की तरह रूपसिद्धि)।

'कुलिशं भिदुरं पविः'- अमर॰1.1.47।

(3) छेदः शीलमस्य = छिद् + कुरच् = **छिदुरा** (रज्जुः) 'टूटनेवाली रस्सी' ('विदुर' जैसी रूपसिद्धि)।

2. विधि– व्यधेः सम्प्रसारणं कुरच्च वक्तव्यः (वा॰, 3.2.162)

'व्यध्' धातु से 'कुरच्' एवं धातु का सम्प्रसारण भी, तच्छीलादि अर्थ में।

प्रसङ्ग– तच्छीलादि (तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु 3.2.134)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)

प्रकृति– व्यध् ताडने, दिवा॰, प॰।

प्रयोग– व्यध् + कुरच् = व्यध् उर = **विधुरः** 'ताडन करनेवाला' (प्रस्तुत वार्त्तिक से 'य्' के सम्प्रसारण से इकार, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से अकार का पूर्वरूप)।

के

के = ए। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप। यह एक सौत्र निपातनगत प्रत्यय है अर्थात् 'के'–नामक प्रत्ययविशेष का उपदेश नहीं किया गया है, अपि तु निपातित शब्दों में इस प्रत्यय का योग माना गया है।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(3) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से 'के'-प्रत्ययान्त की अव्यय-संज्ञा।

(4) अजादि।

1. विधि– दृशे विख्ये च 3.4.11

वेद में तुमुन्नर्थक 'के'- प्रत्ययान्त दृशे एवं विख्ये का निपातन।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ = भाव।

प्रकृति– दृश्, वि-ख्या।

प्रयोग– (1) दृश् + के = **दृशे** 'देखने के लिए' (निपातन से 'के', पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त उपधा गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध)।

'दृशे विश्वाय सूर्यम्'–ऋ॰वे॰ 1.50.1

(2) वि-ख्या + के = **विख्ये** 'बोलने के लिए' (निपातन से 'के', आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातु के आकार का लोप)। 'विख्ये त्वा हरामि'।

केन्

केन् = ए। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध।
(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
(3) नित् (1.3.3)। ञ्नित्यादिर्नित्यम् (6.1.197) से आदि-उदात्त।

1. विधि– कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः 3.4.14
कृत्य-अर्थ में (अर्थात् भाव एवं कर्म में) वेद में कृत्य-प्रत्यय के स्थान में 'केन्' (और तवै, केन्य और त्वन् भी)।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– कृत्य-अर्थ अर्थात् भाव एवं कर्मवाच्य (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70) में यह 'केन्' प्रत्यय आएगा। यह कृत्य-प्रत्यय अर्थात् तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत्, क्यप् एवं केलिमर् का स्थान लेगा।

अर्थ– भाव अथवा कर्म।

प्रकृति– धातुसामान्य, जिनसे योग्य-अर्थ (अर्हे कृत्यतृचश्च 3.3.169) में कृत्य प्रत्यय (तव्य-आदि) अपेक्षित हों, यथा– अव-गाह् (गाहू) विलोडने भ्वा॰,आ॰।

प्रयोग– अव-गाह् + केन् = अव-गाह् ए = **अवगाहे** अर्थात् 'अवगाहितव्यम्' अर्थात् अवगाहन करना चाहिए। 'नावगाहे = नावगाहितव्यम्'।

विशेष– एजन्त कृत् होने से केन् - प्रत्ययान्त की अव्यय संज्ञा होती है (कृन्मेजन्तः 1.1.39)।

केन्य

केन्य = एन्य। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(3) अजादि।

1. विधि– कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः 3.4.14

कृत्य अर्थ में (अर्थात् भाव एवं कर्म में) वेद में कृत्य-प्रत्यय के स्थान में 'केन्य' तथा तवै, केन् और त्वन् भी)

अनु॰ एवं प्रसङ्ग– 'केन्' की विधि संख्या 1 जैसे।

प्रकृति– धातुसामान्य अथवा सनाद्यन्त धातु, यथा– दिदृक्ष (दृश् + सन्, धातोः कर्मणः समानकर्तृकात्॰ 3.1.7 से सन्)।

प्रयोग– दिदृक्ष + केन्य = दिदृक्ष एन्य = **दिदृक्षेण्यः** 'देखने योग्य' (अतो गुणे 6.1.97 से पररूप-एकादेश, अट्कुप्वाङ्॰ 8.1.2 से णत्व) अर्थात् दिदृक्षितव्यम्। वैदिक प्रयोग– 'दिदृक्षेण्यः' ऋ॰वे॰ 1.116.5, तै॰ब्रा॰ 2.7.9.4)।

कै

कै = ऐ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) कित् (1.3.8)। अतः आतो लोप इटि च (6.4.64) से धातु के आकार का लोप।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(3) एजादि और एजन्त भी। अतः कृन्मेजन्तः (1.1.39) से कै-प्रत्ययान्त की अव्यय-संज्ञा।

1. विधि– प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै 3.4.10

वेद में तुमुन्- अर्थ में कै-प्रत्ययान्त 'प्रयै'का निपातन।

अनु॰– तुमर्थे (3.4.9), छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ = भाव।

प्रकृति– प्र-या-प्रापणे, अदा॰,प॰।

प्रयोग– प्रयातुम् = प्र-या + कै = प्र या ऐ = **प्रयै** 'जाने के लिए' (निपातन से कै, आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकार का लोप)।

'प्रयै देवेभ्यो महीः' (प्रयातुं देवानां प्रापणाय)- ऋ॰ वे॰ 1.142.6।

विशेष– एजन्त होने से कै-प्रत्ययान्त 'प्रयै' की अव्यय-संज्ञा।

क्त

क्त = त। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभावः– (1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुण-निषेध।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(3) निष्ठा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)।

(4) झलादि। अतः जनसनखनां सञ्झलोः 6.4.42 से आकारादेश।

(5) हलादि कित्। अतः घुमास्थागापा॰ 6.4.66 से धातु को ईकारादेश। गीतम्।

(6) वलादि। अतः आर्धधातुकस्येड्वलादेः 7.2.35 से इड् आगम।

(7) भावे कर्मणि च (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70)। सकर्मक धातु से कर्म एवं अकर्मक धातु से भाव में क्त।

1. विधि– निष्ठा 3.2.102

भूतकाल में निष्ठा अर्थात् क्त एवं क्तवतु।

अनु॰– भूते 3.2.84

अर्थ– भाव और कर्म (तयोरेव॰ 3.4.70)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– कृ (डुकृञ्) करणे, तना॰, उभ॰।

प्रयोग– कृ + क्त = **कृतम्** 'किया'। तेन कटः कृतः।

विशेष– आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या (वा॰, 3.2.102) आदिकर्म में निष्ठा अर्थात् क्त एवं क्तवतु।

प्रयोग– **प्रकृतः** कटं देवदत्तः (प्र - कृ + क्त)।

2. विधि– ञीतः क्तः 3.2.187

ञि-इत् = ञीत्। ञीत् धातु से वर्तमान अर्थ में 'क्त'।

अनु॰– वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– भाव और कर्म।

प्रकृति– ञीत् धातुसामान्य, यथा– ञि भिदा स्नेहने, रुधा०,प०।
प्रयोग– भिद् + क्त = **भिन्नः** (रदाभ्यां निष्ठातो नः 8.2.42 से प्रत्यय के त् एवं धातु के द् को नत्व)।

3. विधि– मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च 3.2.188
इच्छार्थक, ज्ञानार्थक तथा सत्कारार्थक धातुओं से वर्तमान काल में क्त।
अनु०– क्तः (3.2.187), वर्तमाने (3.2.123)।
प्रकृति– (1) इच्छार्थक धातु, यथा– मन्, (2) ज्ञानार्थक, यथा– बुध्, (3) सत्कारार्थक, यथा– पूज्।
प्रयोग– (1) मन् + क्त = **मतः**,
(2) बुध् + क्त = **बुद्धः** (झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40 से त् को ध्, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से धातु से ध् को द्)।
(3) पूज् + क्त = **पूजितः**।
विशेष– सूत्र के चकार से शीलितः, रक्षितः, क्षान्तः, आकृष्टः, जुष्टः, रुष्टः, रुषितः, हृष्टः, तुष्टः, कान्तः, संयतः, उद्यतः, कष्टम्, अमृतः भी।

4. विधि– नपुंसके भावे क्तः 3.3.114
भाव में धातु से क्त और क्तान्त का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में।
अर्थ– भाव।
प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– हस्।
प्रयोग– हस् + क्त = हस् त = **हसितम्** (हँसी)।

5. विधि– क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् 3.3.174
आशीः अर्थ में धातु से क्तिच् तथा क्त और चकार से लिङ् एवं लोट् भी होते हैं, यदि प्रत्ययान्त से संज्ञा का बोध हो।
अनु०– आशिषि (3.3.173)
प्रकृति– धातुसामान्य, यथा-दा।
प्रयोग– देवा एनं देयासुः = देव-दा + क्त = **देवदत्तः**
(दो दद् घोः 7.4.46 से 'दा' को 'दद्' आदेश)।

6. विधि– गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च 3.4.72
गत्यर्थक, अकर्मक, श्लिष्, शीङ्, स्था, आस्,वस्, जन्, रुह् एवं जॄ धातुओं से भी कर्ता, भाव एवं कर्म में 'क्त' प्रत्यय।

अनु०– क्तः कर्तरि (3.4.71), कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः (3.4.69)।

अर्थ– कर्ता, भाव/कर्म।

प्रकृति– गत्यर्थक आदि धातु।

प्रयोग– (1) गत्यर्थक– कर्ता में– गम् + क्त = **गतः**। गतः देवदत्तः ग्रामम्।
कर्म में– गम् + क्त = गतः। गतः देवदत्तेन ग्रामः (कर्तृकरणयोस्तृतीया 2.3.18 से अनुक्त कर्ता में तृतीया)।
भाव में– गम् + क्त = गतम्, गतं देवदत्तेन (अनुक्ते कर्तरि तृतीया)।

(2) अकर्मक, यथा– ग्ला (ग्लै) हर्षक्षये, भ्वा०प०।
कर्ता में– ग्ला + क्त = **ग्लानः** (संयोगादेरातो० 8.2.43 से त को न)। ग्लानो भवान्। भाव में– ग्लानं भवता।

(3) श्लिष आलिङ्गने, दिवा०प०।
कर्ता में– उप-श्लिष् + क्त = **उपश्लिष्टः** (ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ष्टुत्व)। उपश्लिष्टः गुरुं भवान्।
कर्म में– उपश्लिष्टो गुरुः भवता (अनुक्ते कर्तरि तृतीया)।
भाव में– उपश्लिष्टं भवता (अनुक्ते कर्तरि तृतीया)।

(4) शी (शीङ्) स्वप्ने, अदा०आ०– कर्ता में– उप-शी + क्त = **उपशयितः** 'पास में सोया हुआ अथवा रहा'। (आर्धधातुकस्येड्वलादेः 7.2.35 से इट् आगम, सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से गुण, निष्ठा शीङ्० 1.2.19 से क्त का कित्त्वाभाव, अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध नहीं हुआ, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)। उपशयितः गुरुं भवान्।

कर्म में– उपशयितः गुरुर्भवता। भाव में– उपशयितं भवता।

(5) स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰प॰– कर्ता में-उप-स्था + क्त = **उपस्थितः** 'पास में पहुँचा हुआ' (द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति 7.4.40 से आकार को इकार)। उपस्थितः गुरुं भवान्।
कर्म में– उपस्थितो गुरुर्भवता। भाव में– उपस्थितं भवता (अनुक्ते कर्तरि तृतीया)।

(6) आस् (आस) उपवेशने, अदा॰, आ॰– कर्ता में उप-आस् + क्त = **उपासितः** 'पास में बैठा हुआ'। (आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इडागम)। उपासितः गुरुं भवान्।
कर्म में– उपासितो गुरुः भवता। भाव में– उपासितं भवता।

(7) वस् (वस) निवासे, भ्वा॰ प॰-कर्ता में– अनु-वस् + क्त = **अनूषितः** 'पास में रहनेवाला'। (वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण, आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्, शासिवसिघसीनां च 8.3.60 से षत्व, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्ण दीर्घ)। अनूषितः गुरुं भवान्।
कर्म में– अनूषितः गुरुः भवता। भाव में– अनूषितं भवता।

(8) जन् (जनी) प्रादुर्भावे, दिवा॰आ॰– कर्ता में– अनु + जन् + क्त = **अनुजातः** 'बाद में पैदा हुआ' (ज्ञाजनोर्जा 7.3.79 से जन् = जा)। अनुजातः माणवको माणविकाम् 'लड़की के पश्चात् लड़का पैदा हुआ'।
कर्म में– अनुजाता माणवकेन माणविका। भाव में– अनुजातं माणवकेन।

(9) रुह् बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, भ्वा॰,प॰– कर्ता में- आ-रुह् + क्त = **आरूढः** 'चढ़ा हुआ' (हो ढः 8.2.31 से ढत्व, झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40 से त को ध, ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ध को ढ, ढो ढे लोपः 8.3.13 से ढकार का लोप, ढ्रलोपे पूर्वस्य॰ 6.3.111 से दीर्घ)। आरूढः वृक्षं भवान्। कर्म में– आरूढः वृक्षं भवता। भाव में– आरूढं भवता।

(10) जॄ वयोहानौ, दिवा॰, प॰– कर्ता में– अनु-जॄ + क्त = **अनुजीर्णः** (ॠत इद् धातोः 7.1.100 से ॠ को इकार, रपरत्व, हलिच 8.2.77 से दीर्घ, रदाभ्यां॰ 8.2.42 से त को नकार, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)। अनुजीर्णः वृषलीं देवदत्तः। कर्म में– अनुजीर्णा वृषली देवदत्तेन।
भाव में– अनुजीर्णं देवदत्तेन।

सम्ब॰– (1) क्तक्तवतू निष्ठा 1.1.26
क्त (एवं क्तवतु) की 'निष्ठा' संज्ञा।

प्रयोग– रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः (8.2.42)– आ- स्तॄ + क्त = **आस्तीर्णम्,** भिद् + क्त = **भिन्नम्** (निष्ठा अर्थात् क्त के त को नकार)

सम्ब॰ (2) निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः 1.2.19
शीङ्, स्विदि, मिदि, क्ष्विदि तथा धृष् धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट निष्ठा प्रत्यय (क्त एवं क्तवतु) कित् नहीं होते हैं।

प्रयोग– शी + क्त = **शयितः**, स्विद् + क्त = **स्वेदितः**, मिद् + क्त = **मेदितः**, क्ष्विद् + क् = **क्ष्वेदितः**, धृष् + क्त = **धर्षितः**। यहाँ क्त के कित् न होने से क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध नहीं हुआ, अर्थात् गुण हुआ है।

सम्ब॰ (3) मृषस्तितिक्षायाम् 1.2.20
क्षमार्थक 'मृष्' धातु से विहित इडागमविशिष्ट निष्ठा प्रत्यय (क्त एवं क्तवतु) कित् नहीं होते हैं।

प्रयोग– मृष् + क्त = **मर्षितः**। क्त का कित्त्व न होने से क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध नहीं अर्थात् गुण हुआ है।

सम्ब॰ (4) उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् 1.2.2
ह्रस्व-उकार-उपध धातु से भाव तथा आदि कर्म में विहित इडागमविशिष्ट निष्ठा-प्रत्यय (क्त एवं क्तवतु) विकल्प से कित् नहीं होते हैं।

प्रयोग– द्युत् + क्त = **द्युतितम्-द्योतितम्**। 'क्त' के कित्त्वाभाव पक्ष में पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधागुण, द्योतितम्। कित्त्व-पक्ष में क्डिति च 1.1.5 से गुणनिषेध, द्युतितम्।

सम्ब० (5) पूङः क्त्वा च 1.2.22

'पूङ्' धातु से विहित इडागमविशिष्ट क्त्वा तथा निष्ठा प्रत्यय (क्त एवं क्तवतु) कित् नहीं होते हैं।

प्रयोग– पूङ् + क्त = **पवितः**। क्त के कित्त्वाभाव से सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से गुण हुआ है।

सम्ब० (6) स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन 2.1.39

स्तोक, अन्तिक, दूरार्थक तथा कृच्छ्र- इन पञ्चम्यन्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ विकल्प से तत्पुरुष-समास।

प्रयोग– (क) स्तोकात् मुक्तः = **स्तोकान्मुक्तः** (मुच् + क्त = 'मुक्तः' - क्त- प्रत्ययान्त है)।

(ख) अन्तिकात् आगतः = **अन्तिकादागतः** (आ-गम् + क्त = 'आगतः'- क्त-प्रत्ययान्त है)।

(ग) दूराद् आगतः = **दूरादागतः** (आ-गम् + क्त = 'आगतः' - क्त-प्रत्ययान्त है)।

(घ) कृच्छ्रात् मुक्तः = **कृच्छ्रान्मुक्तः** (मुच् + क्त = 'मुक्तः'- क्त-प्रत्ययान्त है)।

इन प्रयोगों में पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः 6.3.2 से पञ्चमी विभक्ति का अलुक्।

सम्ब० (7) क्तेनाहोरात्रावयवाः 2.1.45

दिन एवं रात्रि के अवयव वाचक सप्तम्यन्त शब्दों का क्तप्रत्ययान्त शब्दों के साथ तत्पुरुष समास।

प्रयोग– पूर्वाह्णे कृतम् = **पूर्वाह्णकृतम्**। **पूर्वरात्रकृतम्**। (कृ + क्त = कृत– इस क्तप्रत्ययान्त के साथ समास)।

सम्ब० (8) तत्र 2.1.46

तत्र– इस सप्तम्यन्त का क्त प्रत्ययान्त के साथ तत्पुरुष-समास।

प्रयोग– तत्र कृतम् = **तत्रकृतम्** (कृ + क्त = कृत– इस क्त- प्रत्ययान्त के साथ समास, समास होने से एकपदता एवं एकस्वरता की उपलब्धि हुई)।

सम्ब॰ (9) क्षेपे 2.1.47

निन्दा गम्यमान होने पर सप्तम्यन्त का क्त प्रत्ययान्त के साथ तत्पुरुष समास।

प्रयोग– **अवतप्तेनकुलस्थितम्।** अवतप्तेनकुलस्थितं तवैतत् 'तेरा यह कार्य तपी हुई भूमि पर नेवले के बैठने के तुल्य है।' (स्था + क्त = स्थित– क्तप्रत्ययान्त)। तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.14 से सप्तमी का अलुक्।

सम्ब॰ (10) क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् 2.1.60

नञ्मात्र से अपने उत्तरपद से भिन्न नञ्विशिष्ट क्त - प्रत्ययान्त के साथ समानाधिकरण नञ्रहित क्तप्रत्ययान्त का तत्पुरुष-समास।

प्रयोग– कृतं च तत् अकृतं च = **कृताकृतम्** (कृ + क्त = कृत)। भुक्तं च तत् अभुक्तं च = **भुक्ताभुक्तम्** (भुज् + क्त = भुक्त)। पीतं च तत् अपीतं च = **पीतापीतम्** (पा + क्त = पीत)।

विशेष– कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् (वा॰ 2.1.60)

इस समास के प्रसङ्ग में 'कृताऽपकृत' आदि (समस्त) शब्दों का भी समावेश होना चाहिए।

प्रयोग– कृतं च तत् अपकृतं च = **कृतापकृतम्।**

भुक्तं च तत् विमुक्तं च = **मुक्तविमुक्तम्।**

सम्ब॰ (11) क्तेन च पूजायाम् 2.2.12

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च 3.2.188 से विहित क्त-प्रत्यय से युक्त शब्द के साथ षष्ठ्यन्त का तत्पुरुष समास नहीं होता है।

प्रयोग– राज्ञां मतः (मन् + क्त)। राज्ञां बुद्धः (बुध् + क्त)। राज्ञां पूजितः (पूज् - क्त)। इन धातुओं से मतिबुद्धि॰ 3.2.188 से

वर्तमानार्थ में क्त। षष्ठी 2.2.8 से प्राप्त षष्ठी-तत्पुरुष समास का यहाँ निषेध हुआ है।

सम्ब॰ (12) अधिकरणवाचिना च 2.2.13

अधिकरणार्थक क्त-प्रत्ययान्त के साथ भी षष्ठ्यन्त का तत्पुरुष-समास नहीं।

प्रयोग– इदमेषां यातम् (या + क्त)। इदमेषां भुक्तम् (भुज् + क्त)। क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः 3.4.76 से अधिकरण में गत्यर्थक 'या' एवं प्रत्यवसानार्थक 'भुज्' धातु से 'क्त' हुआ है। यहाँ षष्ठी 2.2.8 से प्राप्त षष्ठी तत्पुरुष का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ है।

सम्ब॰ (13) निष्ठा 2.2.36

बहुव्रीहि समास में निष्ठा (क्त, क्तवतु) प्रत्ययान्त का पूर्वप्रयोग होता है।

प्रयोग– कृतः कटः येन सः = कृतकटः। कृ + क्त = कृत– इस क्त-प्रत्ययान्त के साथ अनेकमन्यपदार्थे 2.2.24 से बहुव्रीहि, प्रस्तुत सूत्र से 'कृत' का पूर्वप्रयोग।

विशेष– (1) निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् (वा॰ 2.2.36)

निष्ठाप्रत्यय के पूर्वप्रयोग के प्रसङ्ग में जातिवाचक, कालवाचक तथा सुख आदि शब्दों के साथ समस्यमान निष्ठा-प्रत्ययान्त का परप्रयोग ही होता है।

प्रयोग– जाति– सारङ्गः जग्धः यया सा = **सारङ्गजग्धी** 'जिसने हरिण को खाया है वैसी बाघिन आदि'। अद् + क्त = जग्ध– इस क्तप्रत्ययान्त के साथ समास, प्रस्तुत वार्त्तिक से उसका परप्रयोग, अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा 4.1.53 से ङीष्।

काल– मासः जातः यस्याः सा **मासजाता**। जन् + अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्।

सुख– सुखं जातं यस्याः सा = **सुखजाता**। जन् + क्त =

'जात' के साथ समास, 'जात' का परप्रयोग। अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्।

(2) प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम् (वा॰, 2.2.36)

प्रहरणार्थक शब्दों के साथ समस्यमान निष्ठान्त तथा सप्तम्यन्त शब्दों का भी परप्रयोग होना चाहिए।

प्रयोग– असिः उद्यतः यस्य सः = **अस्युद्यतः**। उत्-यम + क्त = उद्यत के साथ समास, 'उद्यत' का परप्रयोग।

सम्ब॰ (14) वाऽऽहिताग्न्यादिषु 2.2.37

'आहिताग्नि' आदि शब्द के प्रसङ्ग में निष्ठा (क्त एवं क्तवतु) प्रत्ययान्त शब्दों का विकल्प से पूर्वप्रयोग होता है।

प्रयोग– आहितः अग्निः येन सः = **अग्न्याहितः– आहिताग्निः**। निष्ठा 2.2.36 से क्त-प्रत्ययान्त का पूर्वनिपात नित्य ही प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र से यह विकल्प से हुआ। इसी तरह– **जातपुत्रः-पुत्रजातः**। **जातदन्तः- दन्तजातः**। **घृतपीतः–पीतघृतः** इत्यादि।

सम्ब॰ (15) क्तस्य च वर्तमाने 2.3.67

वर्तमान काल में विहित क्त-प्रत्यय से युक्त शब्द के योग में भी षष्ठी विभक्ति होती है।

प्रयोग– राज्ञां मतः (मन् + क्त)। राज्ञां बुद्धः (बुध् + क्त)। राज्ञां पूजितः (पूज् + क्त)। मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च 3.2.188 से वर्तमान काल में क्त। न लोकाव्यय॰ 2.3.69 से षष्ठी का निषेध था। प्रस्तुत सूत्र से षष्ठी का विधान हुआ।

विशेष– नपुंसके भाव उपसंख्यानम् (वा॰ 2.3.67)

नपुंसक में विहित क्त-प्रत्यय के योग में भी षष्ठी होगी।

प्रयोग– छात्रस्य हसितम् (हस् + क्त, नपुंसके भावे क्तः 3.3.114 से 'क्त')। न लोकाव्यय॰ 2.3.69 से प्राप्त षष्ठी-निषेध का यह प्रतिप्रसव है।

(16) अधिकरणवाचिनश्च 2.3.68

अधिकरण-विहित क्त-प्रत्ययान्त शब्द के योग में भी षष्ठी विभक्ति होती है।

प्रयोग– इदम् एषाम् आसितम् (आस् + क्त, क्तोऽधिकरणे च॰ 3.4.76 से अधिकरण में क्त)। न लोकाव्यय॰ 2.3.69 से प्राप्त षष्ठी-निषेध का यह प्रतिप्रसव है।

सम्ब॰ (17) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

निष्ठा-प्रत्यय (क्त एवं क्तवतु) के प्रयोग होने पर कर्ता एवं कर्म में (कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से) प्राप्त षष्ठी नहीं होती है।

प्रयोग– देवदत्तेन कृतम् (कृ + क्त)। कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्ता देवदत्त से प्राप्त षष्ठी का यहाँ निषेध है।

सम्ब॰ (18) अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति 2.4.36

'अद्' धातु को 'जग्धि' आदेश, तकारादि कित् प्रत्यय बाद में हो तो। 'क्त' एक तकारादि कित् प्रत्यय है।

प्रयोग– अद् + क्त = **जग्धः** 'खाया गया' (अद् = जग्धि (जग्ध्), झषस्तथो॰ 8.2.40 से त को धकार, झरो झरि सवर्णे 8.4.65 से पूर्व धकार का लोप।

सम्ब॰ (19) अस्तेर्भूः 2.4.52

आर्धधातुक-प्रत्यय के परे रहते 'अस्' धातु को 'भू' आदेश। 'क्त' एक आर्धधातुक प्रत्यय है (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

प्रयोग– अस् + क्त = **भूतः** (अस् = भू)।

सम्ब॰ (20) ब्रुवो वचिः 2.4.53

आर्धधातुक विषय में 'ब्रू' धातु के स्थान में वचि (वच्) आदेश। 'क्त' आर्धधातुक है (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

प्रयोग– ब्रू + क्त = **उक्तम्** (प्रस्तुत सूत्र से ब्रू = वचि (वच्), वचिस्वपि॰ 6.1.15 से वच् के वकार को सम्प्रसारण से उकार, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से पूर्वरूप, चोः कुः 8.2.30 से कुत्व)।

सम्ब॰ (21) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54

आर्धधातुक विषय में 'चक्षिङ्' धातु के स्थान में 'ख्याञ्' (ख्या) आदेश।

प्रयोग– चक्षिङ् + क्त = **ख्यातम्** (चक्षिङ् = ख्याञ्)।

विशेष– ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते (वा॰, 2.4.54) इस 'ख्याञ्' के स्थान में 'ख्शाञ्' आदेश भी समझा जाय।

प्रयोग– चक्षिङ् + क्त = ख्यातम् -**क्शातम्** (खरि च 8.4.55 से खकार को ककार)।

सम्ब॰ (22) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 (वलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते– वा॰, 2.4.56)

वलादि आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते विकल्प से 'अज्' धातु के स्थान में 'वी' आदेश। 'क्त' वलादि आर्धधातुक है (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

प्रयोग– अज गतिक्षेपणयोः, भ्वा॰, प॰। अज् + क्त = **वीतः** – **अजितः** (अज् = वी, विकल्प से)।

सम्ब॰ (23) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70– परिभाषा सूत्र

भाव एवं कर्म में ही 'क्त'।

प्रयोग– भाव– तेन हसितम् (हस् + क्त)।

कर्म– मया ग्रामः गतः (गम् + क्त)।

सम्ब॰ (24) आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च 3.4.71– परिभाषा सूत्र

आदि कर्म में विहित क्त कर्ता, भाव एवं कर्म में होता है।

प्रयोग– कर्ता में– प्रकृतः कटं देवदत्तः (प्र-कृ + क्त)।

कर्म में– प्रकृतः कटो देवदत्तेन (अनुक्ते कर्तरि तृतीया)।

भाव में– प्रकृतं देवदत्तेन (अनुक्ते कर्तरि तृतीया)।

सम्ब॰ (25) क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः 3.4.76

ध्रौव्य, गति तथा भक्षणार्थक धातुओं से विहित 'क्त' प्रत्यय अधिकरण एवं कर्तृ, भाव और कर्म में भी होता है।

प्रयोग– 1. ध्रौव्यार्थक (स्थित्यर्थक) धातु से– अधिकरण– इदमेषाम्

आसितम् (आस् + क्त)।

भाव– आसितं तेन (आस् + क्त)।

कर्ता– आसितः देवदत्तः (आस् + क्त)।

2. गत्यर्थक धातु से–

अधिकरण– इदम् एषां **यातम्** (या + क्त)।

कर्म– यातः देवदत्तेन ग्रामः (या + क्त)।

भाव– यातं देवदत्तेन (या + क्त)।

कर्ता– यातः देवदत्तो ग्रामम् (या + क्त)।

3. प्रत्यवसान (भक्षण)- अर्थक धातु से– अधिकरण - इदमेषां **भुक्तम्** (भुज + क्त)।

कर्म– भुक्त ओदनो देवदत्तेन (भुज् + क्त)।

भाव में– देवदत्तेन भुक्तम् (भुज् + क्त)।

सम्ब॰ (26) क्तादल्पाख्यायाम् 4.1.51

करणकारकपूर्वक 'क्त' प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से अल्प अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में ङीष् (ई)।

प्रयोग– अभ्रेण विलिप्ता = अभ्रविलिप्त + ङीष् = **अभ्रविलिप्ती** द्यौः 'छिट्पुट बादलोंवाला आकाश', **सूपविलिप्ती** पात्री 'थोड़ी सी दाल लगा हुआ बरतन'। यहाँ करण कारक अभ्र एवं सूप से परे विलिप् + क्त = 'विलिप्त'– इस क्तप्रत्ययान्त से ङीष् हुआ है।

सम्ब॰ (27) बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् 4.1.52

अन्तोदात्त क्त-प्रत्ययान्त बहुव्रीहि से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् (ई)।

प्रयोग– शङ्खं भिन्नम् अस्याः = शङ्खभिन्न + ङीष् = **शङ्खभिन्नी** स्त्री 'ललाट जिसका क्षत हो गया हो, ऐसी स्त्री'। यहाँ बहुव्रीहि-समास स्पष्ट है। अतः भिन्न (भिद् + क्त) इस क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीष्।

विशेष– 1. अन्तोदात्ताज्जातप्रतिषेधः (वा॰, 4.1.52)

आन्तोदात्त क्तप्रत्ययान्त बहुव्रीहि में 'जात'– इस क्त-प्रत्ययान्त से ङीष् नहीं।

प्रयोग– दन्तः जातः अस्याः = **दन्तजाता** स्त्री। यहाँ 'जात' से ङीष् नहीं। स्तनौ जातौ अस्याः = स्तनजाता स्त्री। यहाँ भी 'जात' से ङीष् नहीं।

2. पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे (वा॰, 4.1.52)

अर्थविशेष में 'पाणिगृहीत' आदि क्तान्त से ङीष्।

प्रयोग– पाणिः गृहीतः अस्याः = पाणिगृहीत + ङीष् = **पाणिगृहीती** भार्या।

3. अबहुनञ्सुकालसुखादिपर्वादिति वक्तव्यम् (वा॰, 4.1.52)

'बहु' आदि पूर्वक क्त-प्रत्ययान्त बहुव्रीहि से ङीष् नहीं होता।

प्रयोग– बहुकृता। नञ् - अकृता। सु-सुकृता। कालमासजाता, संवत्सरजाता। सुखादि-सुखजाता, दुःखजाता।

सम्ब॰ (28) अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा 4.1.53

अस्वाङ्गपूर्वपदक अन्तोदात्त क्तप्रत्ययान्त बहुव्रीहि से स्त्रीत्व में विकल्प से ङीष्।

प्रयोग– शार्ङ्गजग्धी-शार्ङ्गजग्धा। बहुव्रीहि समास में यहाँ जग्ध (अद् + क्त) इस क्तप्रत्ययान्त से विकल्प से ङीष्। पक्षे 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप्।

विशेष– बहुलं संज्ञाछन्दसोरिति वक्तव्यम् (वा॰, 4.1.53)

संज्ञा तथा वेद में 4.1.53 से प्राप्त ङीष् बहुल में होता है।

प्रयोग– प्रबुद्धा चाऽसौ विलूना चेति = प्रबुद्धविलूनी-प्रबुद्धविलूना। बहुव्रीहि न होने पर भी यहाँ विकल्प से ङीष् हुआ है।

सम्ब॰ (29) अनत्यन्तगतौ क्तात् 5.4.4

अनत्यन्तगति में अर्थात् निरन्तर सम्बन्ध गम्यमान न होने पर क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से 'कन्' (तद्धितप्रत्यय)।

प्रयोग– भिन्न + कन् = भिन्नकः 'बीच-बीच में से टूटा हुआ'। भिद् + क्त = भिन्न। इस क्तान्त से कन्।

विशेष– निरन्तर सम्बन्ध द्योतित होने पर 'कन्' नहीं–भिन्नः 'टूटा हुआ'।

सम्ब॰ (30) न सामिवचने 5.4.5

सामि (अर्द्ध) तता तदर्थक शब्दों के उपपद होने पर क्त-प्रत्ययान्तों से 'कन्' नहीं। यह अनत्यन्तगतौ क्तात् (5.4.4) का प्रतिषेधक सूत्र है।

प्रयोग– सामि- **सामिकृतम्**। सामि-अर्थक– अर्द्धकृतम्। यहाँ अनत्यन्तगतौ क्तात् (5.4.5) का निषेध हुआ है।

सम्ब॰ (31) वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15

क्त = कित्। वच्, स्वप् एवं यजादि धातुओं का कित् प्रत्यय के परे रहते सम्प्रसारण। सम्प्रसारण अर्थात् 'यण्' के स्थान में 'इक्'– (इग्यणः सम्प्रसारणम् 1.1.45)

प्रयोग– वच्– **उक्तः**। स्वप् - **सुप्तः**। यज् - **इष्टः**। वप्- **उप्तः**। वह्- **ऊढः**। वस्-**उषितः**। वेञ्-**उतः**। व्येञ्- **संवीतः**। ह्वेञ्- **हूतः**। वद्-**उदितः**। श्वि-**शूनः**।

सम्प्रसारण से 'व्' को 'उ' एवं 'य्' को 'इ' कार हुआ है।

सम्ब॰ (32) ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च 6.1.16

ग्रह्, ज्या आदि धातुओं को सम्प्रसारण, कित् एवं ङित् प्रत्यय के परे रहने पर। सम्प्रसारण अर्थात् य्, व्, र्, ल् को क्रमशः इ, उ, ऋ एवं ऌकार (इग्यणः सम्प्रसारणम् 1.1.45)

प्रयोग 1. ग्रह् (उपादाने) + क्त = **गृहीतः** (सम्प्रसारण से धातु के 'र्' को ऋकार, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से धातु के अकार को पूर्वरूप, इट् को ग्रहोऽलिटि दीर्घः 7.2.37 से दीर्घ)।

2. ज्या (वयोहानौ) + क्त = **जीनः** (सम्प्रसारण से 'य्' को इकार, हलः 6.4.2 से दीर्घ, ल्वादिभ्यः 8.4.44 से नत्व।

3. व्यध् (ताडने) = **विद्धः** (सम्प्रसारण से 'य्' को इकार)।

4. वश (कान्तौ) + क्त = **उशितः** (सम्प्रसारण से वकार को उकार)

5. व्यच् (व्याजीकरणे) + क्त = **विचितः** (सम्प्रसारण से यकार को इकार)।

6. ओ व्रश्चू (छेदने) + क्त = **वृक्णः** (सम्प्रसारण से रेफ को ऋकार)।

7. प्रच्छ् (ज्ञीप्सायाम्) + क्त = **पृष्टः** (सम्प्रसारण से रेफ को ऋकार)।

8. भ्रस्ज् (पाके) + क्त = **भृष्टः** (सम्प्रसारण से रेफ को ऋकार)।

सम्ब॰ (33) स्फायः स्फी निष्ठायाम् 6.1.22

निष्ठा-प्रत्यय के परे रहते 'स्फायी' धातु को 'स्फी' आदेश। 'क्त' की 'निष्ठा' संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)।

प्रयोग– स्फाय् + क्त = **स्फीतः**।

सम्ब॰ (34) स्त्यः प्रपूर्वस्य 6.1.23

'प्र' पूर्वक 'स्त्या' धातु का सम्प्रसारण (=यकार को इकारादेश), निष्ठा-प्रत्यय के रहते।

'स्त्या' से 'स्त्यै' एवं 'ष्ट्यै' शब्दसंघातयोः (भ्वा॰, प॰)– उभय का ग्रहण है।

प्रयोग– प्र-स्त्यै (प्र-ष्ट्यै) = प्र-स्त्या+क्त = **प्रस्तीतः** (सम्प्रसारण से यकार को इकार, हलः 6.4.2 से दीर्घ)। सम्प्रसारण होने से धातु 'यण्वान्' नहीं रह गया। अतः 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43 से निष्ठा त को नकार आदेश नहीं।

सम्ब॰ (35) द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः 6.1.24

द्रव पदार्थ की कठिनता तथा स्पर्श के अर्थों में 'श्या' धातु का सम्प्रसारण, निष्ठा-प्रत्यय के परे रहते।

श्या = श्यैङ् गतौ (भ्वा॰, आ॰)।

प्रयोग– श्यैङ् = श्या + क्त = शीत = **शीनं** घृतम् 'जमा हुआ घी'

(सम्प्रसारण से यकार को इकार, श्योऽस्पर्शे (8.2.47) से नत्व। शीना वसा, शीनं मेदः। स्पर्श अर्थ के रहने पर– शीतो वायुः। शीतम् उदकम्।

सम्ब॰ (36) प्रतेश्च 6.1.25

प्रति-पूर्वक 'श्या' धातु का सम्प्रसारण, निष्ठा-प्रत्यय के परे रहते। श्या = श्यैङ् गतौ (भ्वा॰आ॰)

प्रयोग– प्रति-श्यैङ् = प्रति-श्या + क्त = **प्रतिशीनः** 'कठिन' (सम्प्रसारण से यकार को इकार, हलः 6.4.2 से दीर्घ, श्योऽस्पर्शे 8.2.47 से नत्व)।

सम्ब॰ (37) विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य 6.1.26

अभि एवं अव-पूर्वक 'श्या' धातु का विकल्प से सम्प्रसारण, निष्ठा-प्रत्यय के परे रहते।

प्रयोग– अभि-श्या + क्त = **अभिशीनम्-अभिश्यानं** घृतम् 'जमा हुआ घी'। अव-श्या + क्त = **अवशीनम् - अवश्यानं** घृतम् 'जमा हुआ घी'।

सम्प्रसारण पक्ष में– हलः 6.4.2 से दीर्घ, उभय पक्ष में श्योऽस्पर्शे 8.2.47 से नत्व। स्पर्श अर्थ के रहने पर– अभिशीतम्– अभिश्यानम् उदकम्, अवशीतः– अवश्यानः वायुः। (प्रस्तुत सूत्र से वैकल्पिक सम्प्रसारण, सम्प्रसारण पक्ष में नत्व का अभाव (श्योऽस्पर्शे 8.2.47 में 'अस्पर्शे' कथन से) एवं सम्प्रसारणाभाव पक्ष में संयोगादेरातो॰ 8.2.43 से नत्व)

सम्ब॰ (38) शृतं पाके 6.1.27

ण्यन्त अथवा अण्यन्त 'श्रा' धातु के स्थान में विकल्प से 'शृ' आदेश, 'निष्ठा' प्रत्यय के परे रहते, यदि प्रत्ययान्त शब्द 'पाक' का वाचक हो। श्रा पाके (भ्वा॰,प॰)।

प्रयोग– श्रा + क्त = **शृतं** क्षीरम्, **शृतं** हविः स्वयमेव विक्लिन्नं पक्वं वेत्यर्थः– सि॰कौ॰ (श्रा' को 'शृ' आदेश)।

'पाके क्षीराज्यपयसां शृतम्'– अमर॰ 3.1.95। क्षीर एवं हविष् से भिन्न अर्थ में– श्राणा (श्रा + क्त, संयोगादेरातो॰ 8.2.43 से

नत्व), श्रपिता यवागूः 'पकाया गया जौ'।

सम्ब॰ (39) प्यायः पी 6.1.28

'निष्ठा' प्रत्यय के परे 'ओप्यायी' धातु के स्थान में विकल्प से 'पी'-आदेश।

ओप्यायी वृद्धौ (भ्वा॰,आ॰) धातु है।

प्रयोग– प्याय् + क्त = **पीनं** मुखम् 'फूला हुआ मुख', **पीनौ** बाहू 'स्थूल दो भुजाएँ' (ओदित॰ 8.2.45 से नत्व)। व्यवस्थित विभाषा होने से अनुपसर्ग प्याय् को ही नित्य 'पी' आदेश, अतः सोपसर्ग धातु को यह आदेश नहीं होता– आप्यानः चन्द्रमाः 'बढ़ा हुआ चाँद'।

सम्ब॰ (40) निष्ठा च द्व्यजनात् 6.1.205

संज्ञा-विषय में निष्ठान्त द्वि-अच् विशिष्ट शब्द का आदि स्वर उदात्त, यदि वह आदि स्वर आकार से भिन्न हो। यह आद्युदात्तश्च (3.1.3) से प्राप्त प्रत्ययस्वर का अपवाद है।

प्रयोग– दा + क्त = **दत्तः**। यहाँ प्रस्तुत सूत्र से 'द' का अकार उदात्त।

विशेष– 1. 'निष्ठा' के कहने से दिव् - घञ् = 'देव' में एकार उदात्त नहीं होता।

2. 'द्व्यच्' के कहने से 'चिन्तितः' में च के परवर्ती इकार उदात्त नहीं होता।

3. 'अनात्' के कहने से 'त्रातः' में आकार उदात्त नहीं होता।

सम्ब॰ (41) शुष्कधृष्टौ 6.1.206

शुष्क एवं धृष्ट– इन दो क्त-प्रत्ययान्तों का आदि उदात्त।

प्रयोग– 1. शुष् + क्त = शुष्कः। प्रस्तुत सूत्र से आदि उकार उदात्त।

2. धृष् + क्त = धृष्टः। प्रस्तुत सूत्र से आदि ऋकार उदात्त।

सम्ब॰ (42) आशितः कर्ता 6.1.207

कर्तृवाचक आशित (क्तप्रत्ययान्त) शब्द का आदि उदात्त।

प्रयोग– आ + अश् + क्त (अविवक्षिते कर्मणि कर्तरि) = आशितः देवदत्तः। यहाँ प्रस्तुत सूत्र से आकार की उदात्त संज्ञा।

विशेष– 'कर्त्ता' के कहने से 'आशितम् अन्नम्' में अकार की उदात्त संज्ञा नहीं।

सम्ब॰ (43) रिक्ते विभाषा 6.1.208 (क्तप्रत्ययान्त) 'रिक्त' शब्द का आदि स्वर विकल्प से उदात्त।

प्रयोग– रिच् (रिचिर् विरेचने) + क्त = रिक्तः। प्रस्तुत सूत्र से आदि स्वर 'इ'कार उदात्त।

पक्ष में– आद्युदात्तश्च (3.1.3) से 'क्त' के अकार की उदात्त संज्ञा।

सम्ब॰ (44) जुष्टार्पिते च छन्दसि 6.1.209

(क्तप्रत्ययान्त) जुष्ट एवं अर्पित के आदि स्वर की विकल्प से उदात्त संज्ञा, छन्दोविषय में।

प्रयोग– 1. जुष् + क्त = जुष्टः। प्रस्तुत सूत्र से उकार उदात्त। पक्ष में आद्युदात्तश्च 3.1.3 से 'क्त' का अकार उदात्त।

2. ऋ + णिच् + क्त = अर्पितः। प्रस्तुत सूत्र से धातु के अकार की उदात्त संज्ञा। पक्ष में आद्युदात्तश्च 3.1.3 से 'क्त' का अकार उदात्त।

विशेष– 'छन्दसि' के कथन से लौकिक प्रयोग में 'जुष्ट' एवं 'अर्पित'– के 'क्त'– प्रत्ययगत अकार की आद्युदात्तश्च 3.1.3 से उदात्त संज्ञा।

सम्ब॰ (45) नित्यं मन्त्रे 6.1.210

मन्त्रविषयप्रयोग में जुष्ट एवं अर्पित शब्दों का आद्युदात्तत्व नित्य। जुष्टार्पिते च छन्दसि 6.1.209 से विकल्प से प्राप्त उदात्तत्व का यह बाधक है।

प्रयोग– 1. जुष् + क्त = जुष्टं देवानाम्। प्रस्तुत सूत्र से धातु का उकार नित्य उदात्त।

2. ऋ + णिच् + क्त = अर्पितं पितॄणाम्। प्रस्तुत सूत्र से आदि अकार नित्य उदात्त।

सम्ब॰ (46) क्ते च 6.2.45

क्तप्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद होने पर चतुर्थ्यन्त पूर्वपद को प्रकृतिस्वर हो जाता है।

प्रयोग– गो हितम् (गो-धा + क्त)। प्रस्तुत सूत्र से 'गो' शब्द का स्वर अर्थात् ओकार आद्युदात्त बना रहा।

सम्ब॰ (47) कर्मधारयेऽनिष्ठा 6.2.46

कर्मधारय समास में क्तप्रत्ययान्त के उत्तरपद होने पर निष्ठाप्रत्ययान्त भिन्न पूर्वपद का स्वर यथापूर्व बना रहता है।

प्रयोग– श्रेणिकृताः। उत्तरपद में क्तप्रत्ययान्त 'कृत' (कृ + क्त) है। पूर्वपद निष्ठाप्रत्ययान्त से भिन्न है। अतः पूर्वपद का प्रकृतिस्वर अर्थात् 'आद्युदात्त' हुआ है।

सम्ब॰ (48) अहीने द्वितीया 6.2.47

अहीनवाचक समास में क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद के होने पर द्वितीयान्त पूर्वपद का प्रकृतिस्वर।

प्रयोग– कष्टं श्रितः = कष्टश्रितः। उत्तरपद में क्तप्रत्ययान्त 'श्रित' (श्रि + क्त) है। 'कष्टम्' यह पूर्वपद द्वितीयान्त है। अतः पूर्वपद का प्रकृतिस्वर अर्थात् आद्युदात्तश्च 3.1.3 से कष्ट के क्त प्रत्यय का अकार उदात्त अर्थात् 'कष्टश्रितः' में टकारोत्तरवर्ती अकार उदात्त।

विशेष– 1. 'अहीने'– कहने से 'कान्तारातीतः' में यह सूत्र प्रयुक्त नहीं।

2. द्वितीयानुपसर्ग इति वक्तव्यम् (वा॰, 6.2.47) क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद यदि उपसर्गरहित हो तभी द्वितीयान्त पूर्वपद का प्रकृतिस्वर हो।

प्रयोग– कष्टश्रितः।

इस वार्त्तिक के कथन से सोपसर्ग क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद में यह सूत्र प्रयुक्त नहीं होगा। जैसे– सुखं प्राप्तः = सुखप्राप्तः (प्र + आप् + क्त)।

सम्ब॰ (49) तृतीया कर्मणि 6.2.48

कर्मवाचक क्तप्रत्ययान्त के उत्तरपद होने पर तृतीयान्त पूर्वपद का प्रकृतिस्वर।

प्रकृति– अहिहतः (अहि-हन् + क्त)। 'अहि' शब्द भी 'आ हन् + इण्' से बना है। अतः पूर्वपद प्रकृतिस्वर अर्थात् आद्युदात्तश्च 3.1.3 से 'अहि' के इकार की उदात्तसंज्ञा।

विशेष– 'कर्मणि' के कहने से रथेन यातः = 'रथयातः' में यह सूत्र प्रयुक्त नहीं होता। इसमें गत्यर्थाकर्मक॰ 3.4.72 से कर्तरि क्त।

सम्ब॰ (50) गतिरनन्तरः 6.2.49

कर्मवाचक क्तप्रत्ययान्त के उत्तरपद होने पर अव्यवहित पूर्ववर्ती गतिसंज्ञक पूर्वपद का प्रकृतिस्वर।

प्रयोग– प्रकृतः (प्र-कृ + क्त)। यहाँ 'प्र' की गतिश्च 1.4.59 से 'गति'संज्ञा है। अतः उसका प्रकृति-स्वर अर्थात् उदात्त 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' फिट् 80)

विशेष– 'अनन्तरः' के कहने से 'अभ्युद्धृतः' जैसे प्रयोग में गति-संज्ञक अभि का प्रकृतिस्वर नहीं होता, क्योंकि यह क्तप्रत्ययान्त 'धृत' से अव्यवहित पूर्ववर्ती नहीं है।

सम्ब॰ (51) क्ते नित्यार्थे 6.2.61

नित्यार्थ समास में क्तप्रत्ययान्त के उत्तरपद होने पर पूर्वपद का विकल्प से प्रकृतिस्वर।

प्रयोग– नित्यप्रहसितः (नित्य-प्र-हस् + क्त)। उत्तरपद में 'हसित' क्तान्त है। अतः 'नित्य' का प्रकृतिस्वर। नियतं ध्रुवम् = नित्यम् (त्यब्नेर्ध्रुवे, वा॰, 4.2.104 से 'नि' अव्यय से त्यप् प्रत्यय)। अतः पित् होने से अनुदात्तौ सुप्पितौ 3.1.4 से 'नित्य' का अकार अनुदात्त है एवं इकार उपसर्गा॰ (फिट् 80) से उदात्त है।

सम्ब॰ (52) निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् 6.2.110

बहुव्रीहि समास में उपसर्गविशिष्ट निष्ठाप्रत्ययान्त पूर्वपद का अन्त्य स्वर विकल्प से उदात्त।

प्रयोग– प्रधौतं मुखं येन सः = प्रधौतमुखः। इसमें प्र-धाव् + क्त = 'प्रधौत' उपसर्गविशिष्ट क्तप्रत्ययान्त है। अतः प्रस्तुत सूत्र से 'प्रधौत' का अन्तिम अकार विकल्प से उदात्त।

विशेष– 1. 'निष्ठा' के कहने से 'प्रसेचकमुखः' जैसे प्रयोग में प्रस्तुत सूत्र प्रवृत्त नहीं हुआ।

2. 'उपसर्गपूर्वम्' कहने से उपसर्गरहित निष्ठा-प्रत्ययान्त में यह प्रवृत्त नहीं होता, जैसे– शुष्कमुखः। इसमें 'शुष्क' का उकार उदात्त है।

सम्ब॰ (53) थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.144

गतिसंज्ञक, कारक तथा उपपद से परवर्ती क्तप्रत्ययान्त अन्तोदात्त होता है।

प्रयोग– (क) गति– विशुष्कः (वि-शुष् + क्त, शुषः कः 8.2.51 से क्त के तकार को ककार)। यहाँ गतिश्च 1.4.59 से 'वि' की गति संज्ञा। गतिरनन्तरः 6.2.49 से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से 'शुष्क' का अकार उदात्त हुआ।

(ख) उपपद– दूरादागतः (दूरात् आ-गम् + क्त)। यहाँ स्तोकान्तिक॰ 2.1.39 से समास, पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः 6.3.2 से पंचमी विभक्ति का अलुक्। यहाँ गतिकारकोपपदात् कृत् 6.2.139 से उत्तरपद का प्रकृतिस्वर प्राप्त था, फलस्वरूप गतिरनन्तरः 6.2.49 से 'आगतः' का आकार उदात्त हो जाता। प्रस्तुत सूत्र से आगत का अन्त्य अर्थात् अकार ही उदात्त हुआ है।

(ग) कारक- आतपशुष्कः (आतपेन शुष्कः, सिद्धशुष्क-पक्वबन्धैश्च 6.2.41 से समास)। यहाँ 'शुष्क' (शुष् + क्त)– यही क्तान्त है। यहाँ सप्तमी सिद्धशुष्कपक्व-बन्धेष्वकालात् 6.2.32 से पूर्वपदप्रकृतिस्वर की प्राप्ति थी। प्रस्तुत सूत्र से 'शुष्क' के अकार की उदात्त संज्ञा।

सम्ब॰ (54) सूपमानात् क्तः 6.2.145

'सु' एवं उपमानार्थक शब्दों से परवर्ती क्त-प्रत्ययान्त उत्तरपद का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– सु–सुकृतम् (सु-कृ + क्त)। इसमें गतिरनन्तरः 6.2.49 से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से 'कृत' का अकार उदात्त।

उपमान– वृकैरिव अवलुप्तम् = वृकावलुप्तम् (वृक - अव - लुप् + क्त)। इसमें तृतीया कर्मणि 6.2.48 से पूर्वपद का प्रकृतिस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से 'लुप्त' का अकार उदात्त।

सम्ब॰ (55) संज्ञायामनाचितादीनाम् 6.2.146

गतिसंज्ञक कारक तथा उपपद से परवर्ती उत्तरपद स्थानीय 'आचित' शब्द से अतिरिक्त क्तप्रत्ययान्त शब्दों का संज्ञाविषयक समास में अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– (क) गति-संभूतो रामायणः (सम् - भू + क्त)। यहाँ गतिश्च 1.4.59 से 'सम्' की गतिसंज्ञा। गतिरनन्तरः 6.2.49 से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से अन्तिम स्वर अर्थात् 'भूत' का अकार उदात्त।

(ख) उपपद कारक-धनुष्खाता नदी। धनुषा खाता = धनुष्खाता। खन् + क्त, जनसनखन॰ 6.4.42 से खन् को आत्व, नित्यं समासे 8.3.45 से नित्य षत्व। इसमें तृतीया कर्मणि 6.2.48 से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से 'खाता' का अन्तिम आकार उदात्त हुआ।

विशेष– 'अनाचितादीनाम्' के कहने से 'आचित' आदि क्तप्रत्ययान्त में यह सूत्र प्रवृत्त नहीं होता, यथा– पर्याचितम्, आस्थापितम्, परिगृहीतम्, निरुक्तम् आदि।

सम्ब॰ (56) प्रवृद्धादीनां च 6.2.147

प्रवृद्ध आदि शब्दों के उत्तरपदस्थानीय क्तान्त शब्दों का अन्तिम स्वर उदात्त।

प्रयोग– प्रवृद्धम्। प्र-वृध् + क्त = प्रवृद्ध। यहाँ गतिरनन्तरः 6.2.49 से पूर्वपद का प्रकृतिस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से 'वृद्ध' का अन्तिम वर्ण अकार उदात्त। संज्ञा में संज्ञायामनाचितादीनाम् 6.2.146

से अन्तोदात्तत्व सिद्ध होने पर प्रस्तुत सूत्र से असंज्ञा में उदात्तत्व का विधान है।

सम्ब॰ (57) कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि 6.2.148

संज्ञाविषयक समास में आशीर्वाद के गम्यमान होने पर कारक से परवर्ती क्तप्रत्ययान्त शब्दों में केवल दत्त तथा श्रुत शब्दों के अन्त्य स्वर उदात्त होते हैं। दत्त (दा + क्त) एवं श्रुत (श्रु + क्त)– ये उभय क्तप्रत्ययान्त हैं।

प्रयोग– (क) देवा एनं देयासुर्देवदत्तः। 'देवदत्त' में संज्ञायामनाचितादीनाम् 6.2.146 से प्राप्त अन्तोदात्तत्व का यहाँ नियमन है– 'यदि कारक से उत्तर क्तान्त का अन्त उदात्त हो तो दत्त एवं श्रुत का ही हो।'

(ख) विष्णुरेनं श्रूयाद् = विष्णुश्रुतः। संज्ञायामनाचितादीनाम् 6.2.146 से प्राप्त अन्तोदात्तत्व का यहाँ नियमन है– 'यदि कारक से उत्तर क्तान्त का अन्त उदात्त हो, तो दत्त एवं श्रुत को ही हो'।

सम्ब॰ (58) इत्थम्भूतेन कृतमिति च 6.2.149

'इसप्रकार के व्यक्ति से किया गया है'– इस अर्थ में विहित समास में क्तप्रत्ययान्त उत्तरपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है।

प्रयोग– सुप्तेन प्रलपितम् = सुप्तप्रलपितम्। उत्तरपदे– प्र-लप् + क्त = 'प्रलपित'– यह क्तान्त है। 'उस सुप्त के द्वारा किया गया प्रलाप'– इस अर्थ में प्रस्तुत प्रयोग में तृतीया कर्मणि 6.2.48 से पूर्वपद का प्रकृतिस्वर प्राप्त था, परन्तु प्रस्तुत सूत्र से 'प्रलपित' का अन्त्य अकार उदात्त हुआ।

सम्ब॰ (59) निष्ठायां सेटि 6.4.52

इडागमविशिष्ट निष्ठा प्रत्यय के परे भी 'णि' (णिच्) का लोप हो जाता है। 'क्त' की निष्ठा संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)।

प्रयोग– कृ + णिच् + क्त = कार् इ इ त = **कारितम्** (आर्धधातुक॰ 7.2.35 से क्त को इट्-आगम, अचो ञ्णिति 7.2.115 से

धातु को वृद्धि, रपरत्व, प्रस्तुत सूत्र से णिच् (इ) का लोप)।

सम्ब॰ (60) निष्ठायामण्यदर्थे 6.4.60

भाव तथा कर्म में विहित निष्ठा प्रत्यय से भिन्न अर्थ में विहित निष्ठा के परे भी 'क्षि' को दीर्घ हो जाता है। क्षि क्षये (भ्वा॰, प॰), क्षि हिंसायाम् (स्वा॰, प॰)।

प्रयोग– 1. प्र-क्षि + क्त = **प्रक्षीणः** (गत्यर्थाकर्म॰ 3.4.72 से कर्तरि क्त, प्रस्तुत सूत्र से दीर्घ, क्षियो दीर्घात् 8.2.46 से नत्व, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)।

2. प्रक्षीणमिदं देवदत्तस्य (क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः 3.4.76 से अधिकरण में क्त)। शेष 'प्रक्षीणः' जैसा।

सम्ब॰ (61) वाऽऽक्रोशदैन्ययोः 6.4.61

आक्रोश तथा दैन्य अर्थ में भाव और कर्म अर्थ से भिन्न अर्थ में आगत निष्ठा प्रत्यय के परे रहते 'क्षि' धातु को विकल्प से दीर्घ।

प्रयोग– 1. आक्रोश– **क्षीणायुः** एधि– **क्षितायुः** एधि 'अल्पायु बन जाओ'। 'क्षि' धातु से गत्यर्थाकर्मक॰ 3.4.72 से कर्तरि क्त, प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से दीर्घ, क्षियो दीर्घात् 8.2.46 से तकार को नकार, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व। क्षीणायुः। दीर्घ के अभाव पक्ष में नत्व का भी अभाव। क्षितायुः।

2. दैन्य– **क्षीणकः**- **क्षितकः** कमजोर। पूर्ववत् कर्तरि क्त, दीर्घ, नत्व एवं णत्व-क्षीणकः। पक्ष में क्षितकः।

सम्ब॰ (62) ह्लादो निष्ठायाम् 6.4.95

निष्ठा प्रत्यय के परे अङ्गसंज्ञक 'ह्लाद्' धातु की उपधा को ह्रस्वादेश।

प्रयोग– प्र-ह्लाद् + क्त = प्रह्लाद् त = प्रह्लद् त = **प्रह्लन्नः** (प्रस्तुत सूत्र से ह्रस्वादेश, गत्यर्थाकर्मक॰ 3.4.72 से कर्तरि क्त, रदाभ्यां निष्ठातो नः 8.2.42 से द् एवं त् का नत्व)।

सम्ब॰ (63) श्वीदितो निष्ठायाम् 7.2.14

निष्ठा प्रत्यय के परे रहते श्वि तथा ईदित् धातुओं से इडागम नहीं होता है।

प्रकृति- श्वि-गतिवृद्ध्योः (भ्वा॰,प॰)। ईदित्, यथा- ओलजी (लज्) व्रीडने (तुदा॰, आ॰), ओविजी (विज्) भयचालनयोः (जुहो॰, आ॰)।

प्रयोग- 1. श्वि + क्त = **शूनः** (वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से पूर्वरूप, हलः 6.4.2 से दीर्घ, ओदितश्च 8.2.45 से त को नकार, आर्धधातुकस्येड् 7.2.35 से इट् की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध)।

2. लज् + क्त = **लग्नः** (चोः कुः 8.2.30 से कुत्व, ओदितश्च 8.2.45 से त को नकार, आर्धधातुकस्येड् 7.2.35 से इट् की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध)।

3. विज् + क्त = **विग्नः** ('लग्नः' की तरह)।

सम्ब॰ (64) यस्य विभाषा 7.2.15

जिस धातु से विकल्प से इडागम का विधान किया गया है, उसे निष्ठा-प्रत्यय के परे इडागम नहीं।

प्रयोग- 1. वि-धू + क्त = **विधूतः** (स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा 7.2.44 से विकल्प से इट् की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से इडागम का निषेध)।

2. वृध् (वृधु) वृद्धौ, भ्वा॰आ॰। वृध् + क्त = **वृद्धः** (उदितो वा 7.2.56 से विकल्प से प्राप्त इडागम का प्रस्तुत सूत्र से निषेध)।

सम्ब॰ (65) आदितश्च 7.2.16

इत्संज्ञक 'आत्' से विशिष्ट धातुओं को भी निष्ठाप्रत्यय के परे इडागम नहीं।

प्रकृति- यथा- ञिमिदा (मिद्) स्नेहने, भ्वा॰,आ॰।

प्रयोग– मिद् + क्त = **मिन्नः** (आर्धधातुकस्येड् 7.2.35 से प्राप्त इडागम का यहाँ निषेध)।

सम्ब॰ (66) विभाषा भावादिकर्मणोः 7.2.17

भाव एवं आदिकर्म क वाचक निष्ठा प्रत्यय के परे आदित् धातुओं से विकल्प से इडागम नहीं।

प्रयोग– 1. भावे– मिद् + क्त = **मिन्नम्** (नपुंसके भावे क्तः 3.3.114 से क्त, रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से नत्व, आर्धधातुकस्येड् 7.2.35 से प्राप्त इडागम प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से बाधित)। इट् के पक्ष में मेदितम्। मिन्नम् अनेन मेदितम् अनेन।

2. आदि कर्म में– प्रमिद् + क्त = **प्रमिन्नः** (आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च 3.4.71 से क्त)। प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से इट् का निषेध।

पक्ष में– इट् - प्रमेदितः।

सम्ब॰ (67) क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु 7.2.18

'मन्थ' आदि अर्थों में क्रमशः क्षुब्ध आदि 'क्त'– प्रत्ययान्त का निपातन।

प्रयोग– 1. क्षुभ् संचलने, भ्वा॰आ॰। क्षुभ् + क्त = **क्षुब्धः** मन्थः 'मथनी'। निपातन से इट् का अभाव। 'शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना'– शिशु॰ 2/107। 'मन्थ' अर्थ के अभाव में क्षुभितम्। क्षुभितं मन्थेन। मन्थ = पानी में घुला हुआ सत्तू।

2. स्वन् + क्त = **स्वान्तं** मनः। उपधा दीर्घ, इडभाव-निपातन से। 'चित्तं तु चेतो हृदयं **स्वान्तं** हृन्मानसं मनः'– अमर॰ 1.4.31। 'मनः' अर्थ के अभाव में स्वनितो मृदङ्गः। स्वनितं मनसा।

3. ध्वन् + क्त = **ध्वान्तं** तमः। तमः के अभिधान में उपधा दीर्घ, इडभाव-निपातन से। '**ध्वान्तं** नीलनिचोलचारु

सुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति'– गीत॰11, 'तमः' अर्थ के अभाव में ध्वनितो मृदङ्गः। ध्वनितं मनसा।

4. लज् + क्त = **लग्नं** सक्तम्। निष्ठा नत्व एवं इडभाव-निपातन से, 'सक्त' अर्थ के अभाव में लगितम्।

5. म्लेच्छ् + क्त = **म्लिष्टम्** अविस्पष्टम् 'अस्फुट'। एकार को इकार, इडभाव निपातन से। 'अविस्पष्ट' अर्थ के अभाव में 'म्लेच्छितम्'।

6. वि-रेभ् + क्त = **विरिब्धः** स्वरः। धातु के एकार को इकार, इडभाव निपातन से। 'स्वर' अर्थ के अभाव में विरिभितम्। कुछ विद्वान् 'रभि' को सौत्र धातु मानकर 'स्वर' अर्थ में 'विरब्धम्' को साधु मानते हैं एवं प्रत्युदाहरण में 'विरभितम्' का उल्लेख करते हैं।

7. फण् + क्त = **फाण्टम्** अनायासः। उपधा-दीर्घ, इडभाव-निपातन से। 'अनायास' अर्थ के अभाव में 'फणितम्'। 'फाण्टचित्रास्त्रपाणयः'– भट्टि॰ 9.17

8. बाह् (बाहृ प्रयत्ने) + क्त = **बाढं** भृशम्। इडभाव का निपातन। 'भृश' अर्थ के अभाव में बाहितम्।

सम्ब॰ (68) धृषिशसी वैयात्ये 7.2.19

निष्ठा प्रत्यय के परे 'धृष्' तथा 'शस्' धातुओं को इडागम नहीं, यदि प्रत्ययान्त से अविनय का बोध हो।

प्रकृति– 1. धृष् (ञिधृषा) प्रागल्भ्ये, स्वा॰,प॰।

2. शस् (शसु) हिंसायाम्, भ्वा॰,प॰।

प्रयोग– 1. धृष् + क्त = **धृष्टः** (प्रस्तुत सूत्र से इडभाव)। धृष्टः अयम् 'यह अविनय है'। यहाँ आदितश्च 7.2.16 से इट् का निषेध होता है। प्रस्तुत सूत्र से नियमन है– वैयात्य (अविनय) अर्थ में ही 'धृष्' से इट् का आगम निषिद्ध हो। 'वैयात्य' अर्थ के अभाव में– धर्षितः।

2. वि-शस् + क्त = **विशस्तः** (प्रस्तुत सूत्र से इट् का

अभाव)। विशस्तोऽयम् 'यह अविनय है'। यहाँ यस्य विभाषा 7.2.15 से इट् का निषेध है। प्रस्तुत सूत्र से नियमन है– वैयात्य अर्थ में ही 'शस्' से इट् का निषेध हो। 'वैयात्य' के अभाव में– विशसितः।

सम्ब॰ (69) दृढः स्थूलबलयोः 7.2.20

स्थूल तथा बलवान् अर्थों में 'दृढ़' शब्द का निपातन।

प्रयोग– दृंह् + क्त = **दृढः** स्थूलः। दृढः बलवान्। यहाँ इडभाव, धातु के हकार एवं नकार का लोप, 'क्त' के तकार को ढकार-निपातन से। स्थूल एवं बलवान् अर्थों के अभाव में दृंहितम्-दृहितम्।

सम्ब॰ (70) प्रभौ परिवृढः 7.2.21

'प्रभु' अर्थ में (क्त-प्रत्ययान्त) परिवृढ शब्द का निपातन है।

प्रयोग– परि-वृंह् + क्त = **परिवृढः** कुटुम्बी। यहाँ इट् का अभाव, धातु के हकार एवं नकार का लोप। 'क्त' के तकार को ढकार-निपातन से। 'प्रभु' अर्थ के अभाव में-परिवृहितम्।

सम्ब॰ (71) कृच्छ्रगहनयोः कषः 7.2.22

कृच्छ्र तथा गहन अर्थों में 'कष्' धातु से निष्ठा प्रत्यय के परे इडागम नहीं।

प्रयोग– कष् (हिंसायाम्) + क्त = **कष्टम्**। कृच्छ्र (=दुःख) में, यथा– कष्टोऽग्निः। गहन (=गम्भीर) में, यथा– कष्टं व्याकरणम्। कृच्छ्र एवं गहन से अतिरिक्त अर्थों में– कषितं सुवर्णम्।

सम्ब॰ (72) घुषिरविशब्दने 7.2.23

'अविशब्दन' अर्थ में घुष् (घुषिर्) धातु को निष्ठा-प्रत्यय के परे इडागम नहीं। विशब्द = अपने भावों का प्रकाशन। अविशब्दन = अप्रकाशन।

प्रयोग– घुष् + क्त = **घुष्टा** रज्जुः 'जिसकी लडें घुरकर एकाकार सी हो गयी हैं'। 'अविशब्दन' अर्थ न रहने पर– अवघुषितं वाक्यम्।

सम्ब॰ (73) अर्दे: सन्निविभ्यः 7.2.24

सम्, नि तथा वि पूर्वक 'अर्द्' धातु से 'निष्ठा'-प्रत्यय के परे इडागम नहीं।

प्रयोग– 1. सम् - अर्द् + क्त = **समर्णः** (रदाभ्यां नो॰ 8.2.42 से निष्ठा-नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)।

2. नि-अर्द् + क्त = **न्यर्णः**

3. वि-अर्द् + क्त = **व्यर्णः**

विशेष– 1. 'अर्देः' कहने से 'समेधितः' जैसे प्रयोग में इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती।

2. 'सन्निविभ्यः' कहने से 'सम्' आदि से अतिरिक्त स्थलों में सूत्र की प्रवृत्ति नहीं, यथा– अर्दितः।

सम्ब॰ (74) अभेश्चाविदूर्ये 7.2.25

सामीप्य अर्थ में अभिपूर्वक अर्द् धातु को भी निष्ठाप्रत्यय के परे इडागम नहीं।

प्रयोग– अभि-अर्द् + क्त = **अभ्यर्णा** सेना (रदाभ्यां॰ 8.2.42 से निष्ठा नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)। 'अभ्यर्णमागस्कृतम-स्पृशद्भिः' – रघु॰ 2.32। आविदूर्य (सामीप्य) अर्थ न रहने पर-अभ्यर्दितो वृषलः।

सम्ब॰ (75) णेरध्ययने वृत्तम् 7.2.26

अध्ययन अर्थ में प्रयुक्त ण्यन्त 'वृत्' धातु के 'णि' का लुक् एवं इडभाव का निपातन होता है एवं 'वृत्त' बनता है।

प्रयोग– वृत् + क्त = **वृत्तम्**। वृत्तो गुणो देवदत्तेन। वृत्तं पारायणं देवदत्तेन। निपातन से इडागम एवं 'णि' का लोप। 'अध्ययन' अर्थ न रहने पर वर्त्तितम्।

सम्ब॰ (76) वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः 7.2.27

णिजन्त दम् आदि धातुओं से निपातन से इडागमनिषेध, निष्ठा प्रत्यय के परे रहते। अर्थात् विकल्प से 'दान्त' आदि शब्दों की सिद्धि।

प्रयोग– 1. दम् + णिच् + क्त = **दान्तः– दमितः**। यहाँ णिलुक् तथा इट् का विकल्प से प्रतिषेध। अनुनासिकस्य॰ 6.4.15 से दीर्घ।

2. शम् + णिच् + क्त = **शान्तः-शमितः**। (दान्तः-दमितः की तरह)।

3. पूर् + णिच् + क्त = **पूर्णः-पूरितः**। निष्ठा नत्व एवं विकल्प से इडभाव का निपातन।

4. दस् + णिच् + क्त = **दस्तः-दासितः**। 'अत उपधायाः' से हुई उपधा वृद्धि का विकल्प से ह्रस्व, इडभाव का निपातन।

5. स्पश् + णिच् + क्त = **स्पष्टः-स्पाशितः**। (दस्त-दासित जैसा)

6. छद् + णिच् + क्त = **छन्नः-छादितः**। उपधावृद्धि का ह्रस्वभाव, इडभाव विकल्प से। इडभाव में 'रदाभ्यां॰' से निष्ठा नत्व।

7. ज्ञप् + णिच् + क्त = **ज्ञप्तः-ज्ञपितः**। यहाँ 'यस्य विभाषा' 7.2.15 से प्राप्त नित्य इडभाव का यहाँ विकल्प से कथन।

सम्ब॰ (77) रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् 7.2.28

निष्ठा प्रत्यय के परे 'रुषि' आदि धातुओं के इट्-आगम का विकल्प से प्रतिषेध होता है।

प्रयोग– 1. रुष् - **रुष्टः-रुषितः** (रुष् + क्त)। तीषसहलुभरुषरिषः 7.2.48 से विकल्प से प्राप्त इट् का यस्य विभाषा 7.2.15 से निषेध प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से वह निषेध विकल्प से लागू हुआ, अर्थात् एक पक्ष में इट् का निषेध हुआ– रुष्टः। पक्ष में इट् - रुषितः।

2. अम् - **अभ्यान्तः-अभ्यमितः**। (अभि-अम् + क्त) अनुनासिकस्य॰ 6.4.15 से उपधा दीर्घ, (नश्चापदान्तस्य 8.3.24 से म् को अनुस्वार, अनुस्वारस्य ययि॰ 8.4.58 से परसवर्ण से नकार। यहाँ उपधा दीर्घ के कारण धातु आकारवान् बनी, अतः आदितश्च 7.2.16 से इट् का

निषेध नित्य प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र से यह निषेध विकल्प से हुआ– अभ्यान्तः। पक्षे इट् - (उपधादीर्घ भी नहीं हुआ) अभ्यमितः।

3. त्वर्-**तूर्णः-त्वरितः**। त्वर् (ञित्वरा) + क्त = त्वर् त (ज्वरत्वरस्रिव्य॰ 6.4.20 से धातु को ऊठ्, रपरत्व, रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व), आदितश्च 7.2.16 से प्राप्त इट्-निषेध, प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से निषेध-तूर्णः। पक्षे इट्-त्वरितः।

4. संघुष् - **संघुष्टौ-संघुषितौ** (पादौ)। घुषिरविशब्दने 7.2.23 से प्राप्त इट्-निषेध यहाँ विकल्प से-संघुष्टौ। पक्षे इट्-संघुषितौ (पादौ)।

5. आ-स्वन् - **आस्वान्तः-आस्वनितः** (देवदत्तः)। आ-स्वन् + क्त से क्षुब्धस्वान्त॰ 7.2.18 से निपातन के द्वारा प्राप्त इट्-निषेध यहाँ विकल्प से- आस्वान्तः। पक्षे इट्-आस्वनितः।

सम्ब॰ (78) हृषेर्लोमसु 7.2.29

निष्ठा प्रत्यय के परे लोमार्थक 'हृष्' धातु के इडागम का विकल्प से प्रतिषेध।

प्रयोग– हृष्-**हृष्टानि-हृषितानि** (लोमानि) 'हर्ष से खड़े हो गये लोम'। हृष् + क्त (गत्यर्थाकर्मक॰ 3.4.72 से कर्तरि क्त, यस्य विभाषा 7.2.15 से प्राप्त नित्य इट्- निषेध यहाँ विकल्प से, ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ष्टुत्व) = हृष्टानि। पक्षे इट् - हृषितानि।

विशेष– 1. 'लोमसु'- इस प्रयोग से अलीक अर्थ में हृष्टः देवदत्तः (नित्य इट्– निषेध), तुष्टि– अर्थ में हृषितः देवदत्तः (नित्य इट्)।

2. विस्मितप्रतिघातयोश्चेति वक्तव्यम् (वा॰, 7.2.29)

निष्ठा प्रत्यय के परे विस्मित एवं प्रतिघात-अर्थों में 'हृष्' से इडागम का निषेध विकल्प से।

प्रयोग– विस्मित– ह्रष्टः- ह्रषितः देवदत्तः (विस्मित देवदत्त)।
प्रतिहत– ह्रष्टाः-ह्रषिताः दन्ताः (प्रतिहत दन्त)।

सम्ब॰ (79) अपचितश्च 7.2.30
क्तप्रत्ययान्त 'अपचित' का निपातन–विकल्प से।

प्रयोग– अप-चायृ (पूजानिशामनयोः, भ्वा॰,उ॰) = **अपचितः** (इट् का अभाव, चाय् का 'चि' भाव निपातन से)।
अपचितः अनेन गुरुः।
निपातन के अभाव-पक्ष में अपचायितः अनेन गुरुः।

सम्ब॰ (80) ह्रु ह्वरेश्छन्दसि 7.2.31
छन्दोविषय में निष्ठा प्रत्यय के परे 'ह्वृ' के स्थान में 'ह्रु' आदेश।

प्रयोग– ह्वृ(कौटिल्ये) + क्त = ह्रुतस्य चाह्रुतस्य च (ह्वृ को ह्रु आदेश)।

सम्ब॰ (81) अपरिह्वृताश्च 7.2.32
छन्दोविषय में 'अपरिह्वृत' शब्द का निपातन।

प्रयोग– न-परि-ह्वृ + क्त = अपरिह्वृताः (ह्रु ह्वरेश्छन्दसि 7.2.31 से प्राप्त 'ह्रु' आदेश का निपातन से अभाव)। इसका बहुवचन में ही प्रयोग वेदों में होता है।

सम्ब॰ (82) सोमे ह्वरितः 7.2.33
निष्ठा के परे रहते सोमार्थ में 'ह्वृ' धातु से 'ह्वरित' शब्द का निपातन।

प्रयोग– ह्वृ + क्त = ह्वरितः (निपातन से इट् आगम एवं गुणादेश)।
मा नः सोमो ह्वरितः, विह्वरितस्त्वम्।

सम्ब॰ (83) ग्रसितस्कभित......वमित्यमितीति च 7.2.34
छन्दोविषय में ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त शब्द निपातनसिद्ध होते हैं।

प्रयोग– 1. **ग्रसितम्** - ग्रसु + क्त (उदितो वा॰ 7.2.56 से विकल्प से इट् - आगम कथित होने से यस्य विभाषा 7.2.15 से यहाँ नित्य इट् निषेध प्राप्त था, परन्तु निपातन से इट्–

ग्रसितं वा एतत्सोमस्य, लौकिक प्रयोग में-ग्रस्तम् (यस्य विभाषा 7.2.15 से इट्-निषेध)।

2. **स्कभितम्** - स्कम्भु + क्त (ग्रसितम् की तरह निपातन से इट्, अनिदितां॰ 6.4.24 से अनुनासिक-लोप)। विष्कभिते अजरे। लोक में विष्कब्धः (यस्य विभाषा 7.2.15 से इट्-निषेध)।
3. **स्तभितम्**– स्तम्भु + क्त ('स्कभितम्' जैसा)। येन स्वः स्तभितम्। लोक में स्तब्धम् (यस्य विभाषा 7.2.15 से इट् - निषेध)
4. **उत्तभिता**– उत् - स्तम्भु + क्त ('स्कभितम्' जैसा)। सत्येनोत्तभिता भूमिः। लोक में उत्तब्धा (यस्य विभाषा 7.2.15 से इट्- निषेध)।
5. **चत्ता**-चत्+ क्त (निपातन से इट् का अभाव)। चत्ता वर्षेण विद्युत्। लोक में चतिता (आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्)।
6. **विकस्तम्**– वि-कस् + क्त (निपातन से इडभाव)। उत्तानाया वृदयं यद् विकस्तम्। लोक में विकसितम् (आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्)।

सम्ब॰ (84) आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35

वलादि आर्धधातुक को इट्– आगम। 'क्त' की आर्धधातुक संज्ञा (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114 से)। 'क्त' वलादि है।

प्रयोग– उदाहरण के रूप में– पठितम्-पठ् + क्त = पठितम् (प्रस्तुत सूत्र से 'क्त' को इट् (इ) आगम)।

सम्ब॰ (85) इण् निष्ठायाम् 7.2.47

निर् उपसर्ग से विशिष्ट 'कुष्' धातु से विहित 'निष्ठा' प्रत्यय को इट्-आगम। 'क्त' की निष्ठा संज्ञा (1.1.26)।

प्रयोग– निर्– कुष् (निष्कर्षे, क्र्यादि, प॰) + क्त = **निष्कुषितः**। (प्रस्तुत सूत्र से इट्), (निरः कुषः 7.2.46 से प्राप्त विकल्प से इडागम का यह अपवाद है)।

सम्ब॰ (86) क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः 7.2.50

'क्लिश्'– धातु से विहित क्त्वा तथा निष्ठा प्रत्ययों को विकल्प से इट्– आगम।

प्रयोग– क्लिश् (उपतापे, दिवा॰, प॰) + क्त = **क्लिष्टः– क्लिशितः** (प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से इट्–आगम)।

सम्ब॰ (87) पूङश्च 7.2.51

'पूङ्' धातु से क्त्वा एवं निष्ठा (क्त, क्तवतु) को भी विकल्प से इट्– आगम।

प्रयोग– पू (पवने, क्र्या॰,उ॰) + क्त = **पूतः– पवितः** (विकल्प से इट्)। श्र्युकः किति 7.2.11 से इट्–निषेध की प्राप्ति होने से प्रस्तुत सूत्र से यह विकल्प से इट्–आगम है।

सम्ब॰ (88) वसतिक्षुधोरिट् 7.2.52

वस् तथा क्षुध् धातुओं से विहित क्त्वा तथा निष्ठा-प्रत्ययों को इट्–आगम। 'क्षुध्' धातु अनुदात्त है, अतः एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् 7.2.10 से इट्– निषेध प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र से उसका प्रतिषेध हुआ। 'वस्' उदात्त है, अतः इट्–आगम प्राप्त था, पुनः यहाँ इट्–ग्रहण से इट् का नित्य विधान है।

प्रयोग– 1. वस् (निवासे, भ्वा॰, प॰) क्त = **उषितः** (प्रस्तुत सूत्र से इट्– आगम, वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण)।

2. क्षुध् (बुभुक्षायाम्, दिवा॰, प॰) + क्त = **क्षुधितः** (प्रस्तुत सूत्र से इट्– आगम)।

सम्ब॰ (89) अञ्चेः पूजायाम् 7.2.53

पूजार्थक 'अञ्च्' धातु से क्त्वा एवं निष्ठा प्रत्ययों को इट्–आगम। निष्ठा में यस्य विभाषा 7.2.15 से प्राप्त इट्– निषेध का यह अपवाद है।

प्रयोग– अञ्च् (गतिपूजनयोः) + क्त = **अञ्चितः** 'पूजित' (प्रस्तुत सूत्र से इट्–आगम)।

सम्ब॰ (90) लुभो विमोहने 7.2.54

विमोहन- अर्थक 'लुभ्' धातु से निष्ठा को इट्-आगम। यस्य विभाषा 7.2.15 से प्राप्त इट्-निषेध का यह अपवाद है।

प्रयोग- लुभ् (विमोहने, तुदा०, प०) क्त = **लुभितः** (प्रस्तुत सूत्र से इट्)। विलोभिताः केशाः।

विशेष- सम्मोहन अर्थ न रहने पर यस्य विभाषा 7.2.15 से इट् का निषेध- लुभ् + क्त = **लुब्धः** वृषलः 'शीतेन पीडितः'।

सम्ब० (91) निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः (वा०, 8.2.3)

षत्व, स्वर, प्रत्यय एवं इट्- विधियों में निष्ठा (क्त, क्तवतु) के स्थान में विहित आदेश सिद्ध बना रहता है।

प्रयोग- 1. षत्व-विधि में- व्रश्च् (ओ व्रश्चु छेदने, तुदा० प०) + क्त = **वृक्णः**। यहाँ ओदितश्च 8.2.45 से त को नकार। पूर्वत्रासिद्धम् 8.2.1 के अनुसार यहाँ व्रश्चभ्रस्ज० 8.2.36 की दृष्टि से यदि नत्व-विधि असिद्ध हो जाय, तब उक्त नकार को तकार मान लिया जायगा एवं तकार अर्थात् 'झल्' के परे रहते व्रश्चभ्रस्ज० 8.2.36 से धातु को षकार अन्तादेश हो जाएगा। प्रस्तुत वार्त्तिक से उक्त षत्वविधि में 'क्त' के स्थान में हुए नत्व की सिद्धता से उक्त अनिष्टापत्ति न हो सकी।

विशेष 1 - षत्वविधि न रहे तो क्तादेश असिद्ध हो सकता है, यथा- व्रश्च् + क्त = वृश्च् + त = वृच् न = **वृक्णः**। यहाँ चोः कुः 8.2.30 के प्रति निष्ठादेश अर्थात् नत्व (8.2.45) असिद्ध है। अतः 'क्त' के तकार का झल् प्रत्याहार में अन्तर्भाव होने के कारण उसे निमित्त मानकर चोः कुः 8.2.30 से कुत्व निर्बाध हो गया।

2. स्वर, 3. प्रत्यय, 4. इट् विधि में- क्षीब् + क्त = क्षीबः।

सम्ब० (92) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः 8.2.42

रेफ तथा दकार से उत्तरवर्ती निष्ठा (क्त, क्तवतु) के तकार तथा उससे पूर्ववर्त्ती दकार के स्थान में भी नकारादेश।

प्रयोग– 1. रेफान्त– वि–स्तृ (आस्तरणे, क्र्या०, उ०) + क्त = **विस्तीर्णम्**। ॠत इद् धातोः 7.1.100 से ॠकार को इकार, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, हलि च 8.2.77 से दीर्घ, प्रस्तुत सूत्र से क्त के तकार को नकार।

2. दकारान्त– भिद् (विदारणे, रुधा०,उ०) क्त = भिन्नम्। प्रस्तुत सूत्र से क्त के तकार एवं धातु के दकार को नत्व।

विशेष– (क) 'निष्ठा-तः' के कथन से इडागम सहित तकार का नत्व नहीं- चर् + क्त = चरितम्।

सम्ब० (93) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43

संयोगादि, आकारान्त तथा यण्-विशिष्ट धातु से उत्तरवर्त्ती निष्ठा (क्त एवं क्वतु) के तकार को नकार।

प्रयोग– ग्लै (हर्षक्षये, भ्वा०, प०) + क्त = ग्लानः। 'ग्लै' (ग्ला) धातु संयोगादि, आकारान्त तथा लकारविशिष्ट है। अतः प्रस्तुत सूत्र से क्त के 'त' को 'न'।

विशेष– (क) 'संयोगादेः' के कथन से या + क्त = यातः में नत्व नहीं हुआ।

(ख) 'आतः' के कथन से 'च्युतः' में नत्व नहीं।

(ग) 'धातोः' के कथन से 'निर्वातः' में नत्व नहीं।

(घ) 'यण्वतः' के कथन से 'स्नातः' में नत्व नहीं, क्योंकि 'स्ना' धातु में कोई यण् वर्ण नहीं है।

सम्ब० (94) ल्वादिभ्यः 8.2.44

क्र्यादिगणीय 'लूञ् छेदने' से लेकर 21 धातुओं के निष्ठा 'त'कार को नकार।

प्रयोग– 1. लूञ् (छेदने) + क्त = **लूनः** (प्रस्तुत सूत्र से तकार को नकार, क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध)।

2. स्तृञ् (आच्छादने) + क्त = **स्तीर्णः**। 3. कॄञ् (हिंसायाम्) + क्त = **कीर्णः**। 4. वृञ् वरणे-**वूर्णः**। 5. धूञ् कम्पने–**धूनः** 'कम्पित'। 6. शॄ हिंसायाम्-**शीर्णः**

(ॠत इद्-धातोः 7.1.100 से इकार, रपरत्व, हलि च 8.2.77 से दीर्घ, णत्व)। 7. पॄ पालनपूरणयोः– **पूर्णः**। 8. वॄ वरणे-**वूर्णः**। 9. भॄ भर्त्सने–**भीर्णः**। 10. मॄ हिंसायाम्-**मीर्णः**। 11. दॄ विदारणे-**दीर्णः**। 12. जॄ वयोहानौ-**जीर्णः**। 13. नॄ नये- **नीर्णः**। 14. कॄ हिंसायाम् - **कीर्णः**। 15. ॠसु गतौ-**ईर्णः**। 16. गॄ शब्दे-**गीर्णः**। 17. ज्या वयोहानौ-**जीनः** (ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से सम्प्रसारण, हलः 6.4.2 से दीर्घ)। 18. री गतिरेषणयोः– **रीणः**। 19. ली श्लेषणे–**लीनः**। 20. व्ली वरणे-**व्लीनः**। 21. प्ली गतौ-**प्लीनः**।

सम्ब॰ (95) दुग्वोर्दीर्घश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 8.2.44)
'दु' एवं 'गु' धातुओं के निष्ठा तकार के स्थान में नकार एवं धातु को दीर्घ।

प्रयोग– 1. दु (गतौ) + क्त = **दूनः** (नत्व एवं दीर्घ)।
2. गु (पुरीषोत्सर्गे, तुदा॰, आ॰) + क्त = **गूनः**।

सम्ब॰ (96) पूञो विनाश इति वक्तव्यम् (वा॰, 8.2.44)
'पूञ्' धातु से निष्ठा तकार को नकार, यदि धातु विनाशार्थ में प्रयुक्त हो।

प्रयोग– पूञ् (पवने, अनेकार्थता के कारण यहाँ 'विनाशे') + क्त = **पूनाः** 'विनष्टाः'। विनाश अर्थ न रहने पर– पूञ् + क्त = पूतं धान्यम् 'पवित्र धान'।

सम्ब॰ (97) सिनोतेर्ग्रासकर्म्मकर्तृकस्येति वक्तव्यम् (वा॰ 8.2.44)
'सि' धातु से निष्ठा तकार को नकार, यदि धातु का कर्ता स्वभावतः उसके कर्मकारक के रूप में आनेवाला 'ग्रास' हो।

प्रयोग– सि (बन्धने, स्वादि, प॰) + क्त = **सिनः** 'ग्रासः स्वयमेव'। ग्रासकर्मकर्तृकता के अभाव में– सि + क्त = सिता पाशेन सूकरी 'सूकरी पाश से बाँधी गयी है'।

सम्ब॰ (98) ओदितश्च 8.2.45

ओदित् (ओकार इत्संज्ञक है जिस धातु का) धातु से निष्ठा तकार को भी नकार।

प्रयोग– यथा– 1. ओ लस्जी + क्त = लस्ज् + त = **लग्नः** (स्कोः संयोगाद्यो॰ 8.2.29 से सकार का लोप एवं प्रस्तुत सूत्र से तकार को नकार, चोः कुः 8.2.30 से कुत्व)।

2. ओ विज्– **विग्नः** उद्विग्नः।

सम्ब॰ (99) क्षियो दीर्घात् 8.2.46

'क्षि' धातु के दीर्घ अवयव (ईकार) से निष्ठा तकार को भी नकार।

प्रयोग– क्षि क्षये, भ्वा॰, प॰ + क्त = **क्षीणाः** क्लेशाः (निष्ठायामण्यदर्थे 6.4.60 से धातु के इकार को दीर्घ, प्रस्तुत सूत्र से नत्व, अट्कुप्वाङ् 8.4.2 से णत्व)।

दीर्घाभाव में नत्व नहीं होता है, यथा– अक्षितम् असि मामेक्षेष्टाः। यहाँ भाव में 'क्त' (न – क्षि + क्त) आया है, अतः निष्ठायामण्यदर्थे 6.4.60 से दीर्घ नहीं हुआ, अतः नत्व भी नहीं हुआ।

सम्ब॰ (100) श्योऽस्पर्शे 8.2.47

अस्पर्श अर्थ में प्रयुक्त 'श्या' धातु से 'निष्ठा' तकार के स्थान में नकार।

प्रयोग– श्या (श्यैङ् गतौ, भ्वा॰, आ॰) + क्त = **शीनम्** (द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः 6.1.24 से सम्प्रसारण, हलः 6.4.2 से दीर्घ, प्रस्तुत सूत्र से तकार को नकार)। शीनं घृतम्। स्पर्श अर्थ में नत्व नहीं– **शीतः** वायुः।

सम्ब॰ (101) अञ्चोऽनपादाने 8.2.48

अपादान (विच्छेद) अर्थ न हो तो 'अञ्च्' धातु से निष्ठा तकार को नकार।

प्रयोग– सम्– अञ्च् + क्त = **समक्नः** (अनिदितां हल॰ 6.4.24 से अनुनासिक-लोप, चोः कुः 8.2.30 से कुत्व, प्रस्तुत सूत्र से नत्व)।

समक्नौ शकुनेः पादौ 'पक्षी के पैर सटे हुए हैं'।

अपादान अर्थ रहने पर नत्व नहीं होता, यथा– उत्– अञ्च् + क्त = **उदक्तम्**। उदक्तम् उदकं कूपात् 'कुएँ से पानी निकाला गया'।

सम्ब॰ (102)दिवोऽविजिगीषायाम् 8.2.49

'विजिगीषा' (जीतने की इच्छा) अर्थ के न रहने पर 'दिव्' धातु से निष्ठा तकार को नकार।

प्रयोग– आ-दिव् (क्रीडादौ, दिवा॰, प॰) + क्त = **आद्यूनः** (यस्य विभाषा 7.2.15 से इट् का निषेध, च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6.4.19 से वकार को ऊठ्, यणादेश, प्रस्तुत सूत्र से नत्व)। 'आद्यूनः सद्गृहिण्येव प्रायो यष्ट्यावलम्बितः'–किराता॰ 11/5 'विजिगीषा' अर्थ के रहने पर नत्व नहीं– द्यूतं वर्तते।

सम्ब॰ (103)निर्वाणोऽवाते 8.2.50

निर् – 'वा' धातु से निष्ठा तकार को नकार आदेश होकर 'निर्वाण' शब्द का निपातन होता है, यदि 'वात' अर्थ अभिधेय न हो।

प्रयोग– निर् – वा (गतिगन्धनयोः, अदा॰,प॰) + क्त = **निर्वाणः** (निपातन से तकार को नकार, कृत्यचः 8.4.29 से णत्व)। निर्वाणः अग्निः 'अग्नि शान्त हो गयी।' 'वात' अर्थ रहने पर नत्व नहीं – **निर्वातं** वातेन।

सम्ब॰ (104)शुषः कः 8.2.5

'शुष्' धातु से निष्ठा तकार को ककार।

प्रयोग– शुष् (शोषणे, दिवा॰, प॰) + क्त = **शुष्कः** 'सूखा'

सम्ब॰ (105)पचो वः 8.2.52

'पच्' धातु से निष्ठा तकार को वकार।

प्रयोग– पच् (डुपचष् पाके, भ्वा॰प॰) + क्त = **पक्वः** 'पका'।

सम्ब॰(106) क्षायो मः 8.2.53

'क्षै' धातु से निष्ठा तकार को मकार।

प्रयोग– क्षै (क्षये, भ्वा॰,प॰) + क्त = **क्षामः** 'क्षीण' (निष्ठा तकार को मकार, धातु के ऐकार को आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से आकार)।

'मध्ये क्षामा'– मेघ॰ 82

सम्ब॰(107) प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् 8.2.54

प्र-'स्त्यै' धातु के निष्ठा तकार को विकल्प से मकार।

प्रयोग– प्र-स्त्या (स्त्यै शब्दसंघातयोः, भ्वा॰, प॰) + क्त = **प्रस्तीमः**– **प्रस्तीतः** 'कोलाहल करनेवाला' (स्त्यः प्रपूर्वस्य 6.1.23 से यकार को सम्प्रसारण से इकार, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से धातु के आकार को पूर्वरूप, हलः 6.4.2 से इकार को दीर्घ, प्रकृत सूत्र से निष्ठा तकार को विकल्प से मकार)।

सम्ब॰(108) अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः 8.2.55

उपसर्ग से रहित 'ञिफला', 'क्षीब', 'कृश' तथा 'उत् + लाघ' धातुओं से क्तप्रत्ययान्त क्रमशः फुल्ल, क्षीब, कृश एवं उल्लाघ का निपातन।

प्रयोग– 1. फल् (ञिफला विशरणे, भ्वा॰प॰) + क्त = **फुल्लः** 'खिला हुआ' (निष्ठा तकार को लकार निपातन से, ति च 7.4.89 से धातु के अकार को उकार, आदितश्च 7.2.16 से इडागम का निषेध)। 'पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकायाः'– ऋतु॰ 6/6

2. क्षीब् (मदे, भ्वा॰, आ॰) + क्त = **क्षीबः** 'मतवाला' (निपातन से क्त के 'त्' का लोप, आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से प्राप्त इडागम का अभाव निपातन से, अथवा इट् आगम करके 'क्षीब् इ त' से 'इत्' अंश का निपातन से लोप)। 'ध्रुवं जये यस्य जयामृतेन क्षीबः क्षमाभर्तुरभूत्कृपाणः, –विक्रमाङ्क॰ 1/96

3. कृश् (वेष्टने, रुधा॰,प॰) + क्त = कृश् त = **कृशः** 'दुबला-पतला' (निपातन से क्त के 'त्' का लोप)। 'सुहृदपि न याच्यः कृशधनः'– भर्तृ॰ नीति॰ 28

4. उत्– लाघ् (सामर्थ्ये, अदा॰, आ॰) + क्त = **उल्लाघः** 'रोग से मुक्त' (तोर्लि 8.4.60 से तकार को लकार प्रकृत सूत्र से निपातन से 'त्' का लोप।

'अनुपसर्गात्' के कथन से सोपसर्ग उपर्युक्त धातुओं से उक्त निपातन नहीं– (1) प्रफुल्लाः सुमनसः, (2) प्रक्षीवितः, (3) प्रकृशितः, (4) प्रोल्लाघितः।

ध्यातव्य– सूत्र में 'उल्लाघ'– इस निपातन में उपसर्ग (उत्) को जोड़ा गया है। तात्पर्य यह है कि इस शब्द में यह निपातन केवल 'उत्' उपसर्ग के योग में होगा– उल्लाघः। उपसर्गान्तरों के योग में यह निपातन नहीं– प्रोल्लाघितः।

सम्ब॰(109) उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् (वा॰ 8.2.55) उत्फुल्ल तथा संफुल्ल शब्दों का निपातन भी अभीष्ट है।

प्रयोग– 1. उत् – फल् (ञिफला विशरणे) + क्त = **उत्फुल्लः** 'खुला हुआ'।

2. सम् – फल् + क्त = **सम्फुल्लः**। उभयत्र प्रक्रिया 'फुल्लः' (सम्ब॰ 108) जैसी ही है। अर्थात् सोपसर्ग फल् (ञिफला) से यदि 'फुल्ल' निपातन हो तो वह केवल उत् एवं सम् उपसर्ग के योग में ही हो।

सम्ब॰(110) नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् 8.2.56

नुद्, विद्, उन्दी, त्रा, घ्रा तथा ह्री धातुओं से निष्ठा तकार को नकार, विकल्प से।

प्रयोग– 1. नुद् (प्रेरणे, तुदा॰, उ॰) + क्त = **नुन्नः** (प्रकृत सूत्र से निष्ठा तकार को नकार, प्रत्यये भाषायां नित्यम् (वा॰) से धातु के दकार को नकार)। पक्षे-नत्व का अभाव - **नुत्तः**। यहाँ रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से नित्य नत्व की प्राप्ति को विकल्प बनाया गया है। 'अदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः' – शिशु॰ 21/27

2. विद् (विचारणे, रुधा॰, आ॰) + क्त = **विन्नः- वित्तः** 'ज्ञात' (रूपसिद्धि 'नुन्नः- नुत्तः' जैसी)। यहाँ भी रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त नित्य नत्व विकल्पित हुआ है।

यहाँ रुधादिगणीय 'विद्' धातु के ग्रहण में निम्नोक्त कारिका प्रमाण है–

वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।
वित्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगे विन्नश्च विन्दतेः।।

प्रमाणान्तर– विद विचारणे, रौधादिक एव गृह्यते। उन्दिना परेण साहचर्यात् (सि॰कौ॰ 3038)।

3. सम् -उन्द् (क्लेदने, रुधा॰, प॰) + क्त = **समुन्नः-समुत्तः** (अनिदितां हल 6.4.24 से अनुनासिक का लोप, रूपसिद्धि 'नुन्नः-नुत्तः' की तरह)। यहाँ भी रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त नित्य नत्व विकल्पित हुआ है।
4. त्रा (पालने, भ्वा॰,आ॰) + क्त = **त्राणः-त्रातः** 'रक्षित' (नत्व के पक्ष में अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से नकार को णत्व)। यहाँ संयोगादेरातो॰ 8.2.43 से नित्य नत्व की प्राप्ति थी, प्रस्तुत सूत्र से यह विकल्पित हुआ।
5. घ्रा (गन्धोपादाने, भ्वा॰,प॰) + क्त = **घ्राणः- घ्रातः** 'सूँघा हुआ' (विकल्प से तकार को नकार, नत्व के पक्ष में अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)। यहाँ भी संयोगादेरातो॰ 8.2.43 से प्राप्त नित्य नत्व विकल्पित हुआ है।
6. ह्री (लज्जायाम्, जुहो॰,प॰) + क्त = **ह्रीणः- ह्रीतः** 'लज्जित' (विकल्प से तकार को नकार, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)। यहाँ 'ह्री' धातु से निष्ठा तकार का नत्व अप्राप्त था, उसे विकल्पित किया गया है। अतः यह अप्राप्तविभाषा है।

सम्ब॰(111) न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् 8.2.57

ध्या, ख्या, पॄ, मूर्च्छ् तथा मद् धातुओं से निष्ठा तकार को नकार आदेश नहीं।

प्रयोग– 1. ध्या (ध्यै चिन्तायाम्, भ्वा॰,प॰) + क्त = **ध्यातः** 'चिन्तित'। संयोगादे॰ 8.2.43 से प्राप्त नत्व का अपवाद है।

2. ख्या (प्रकथने, अदा॰,प॰)+क्त = **ख्यातः** 'कथित'। संयोगादे॰ 8.2.43 से प्राप्त नत्व का अपवाद।

3. पॄ (पूरणे, चुरा॰,उ॰) + क्त = पुर् त (उदोष्ठ्यपूर्वस्य 7.1.102 से धातु के ॠकार को उकार, रपरत्व) = पूर् त (हलि च 8.2.77 से दीर्घ, श्र्युकः किति 7.2.11 से इडागम का निषेध) = **पूर्त्तः** 'पूरित' (अचो रहाभ्यां॰ 8.4.46 से द्वित्व, रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.4.42 से प्राप्त निष्ठा तकार के नत्व का यह अपवाद है।

4. मूर्छ् (मोहसमुच्छ्राययोः, भ्वा॰,प॰) + क्त = **मूर्त्तः** (उपधायां च 8.2.78 से दीर्घ, राल्लोपः 6.4.21 से छकार का लोप, अचो रहाभ्यां॰ 8.4.46 से तकार का द्वित्व)। यह रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त निष्ठा नत्व का अपवाद है।

5. मद् (हर्षग्लेपनयोः, दिवा॰,प॰) + क्त = **मत्तः** 'प्रसन्न' (खरि च 8.4.55 से दकार को तकार)। रदाभ्यां 8.2.42 से प्राप्त निष्ठा तकार के नकार का यह अपवाद है।

सम्ब॰(112) वित्तो भोगप्रत्यययोः 8.2.58

भोग तथा प्रत्यय (विश्वास) अर्थ में लाभार्थक 'विद्' धातु से क्तप्रत्यय के तकार को नत्व नहीं, अतः 'वित्त' का निपातन।

प्रयोग– विद् (लाभे, तुदा॰,उ॰) + क्त = **वित्तः** (खरि च 8.4.55 से दकार को तकार)। भोग में– अस्य बहु वित्तम् असि 'इसका बहुत धन है।' प्रत्यय– वित्तः अयं मनुष्यः 'यह विश्वस्त व्यक्ति है'। भोग एवं प्रत्यय अर्थ न रहने पर विद् (सत्तायाम्, दिवा॰, आ॰) + क्त = विन्नः।

सम्ब॰(113) भित्तं शकलम् 8.2.59

शकल (खण्ड) अर्थ में 'भिद्' धातु से क्त प्रत्यय के योग में 'भित्त' का निपातन।

प्रयोग– भिद् (विदारणे, रुधा॰,प॰) + क्त = **भित्तम्** 'विदारित' (खरि च 8.4.55 से दकार को तकार)। रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42

से प्राप्त निष्ठा नत्व का यहाँ निपातन से निषेध हुआ है। भित्तं प्रपतति 'एक टुकड़ा गिरता है' ('भित्त' शकल का पर्यायवाची है)।

सम्ब॰(114) ऋणमाधमर्ण्ये 8.2.60

अधमर्णता के विषय में 'ऋ' धातु से क्तप्रत्यय के तकार को निपातन से नकार।

प्रयोग– ऋ (गतौ, जुहो॰,प॰) + क्त = **ऋणम्** (निपातन से तकार को नकार, ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् (वा॰) से नकार का णत्व)। ऋणं ददामि। ऋणं धारयति।

सम्ब॰(115) नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि 8.2.61

छन्दोविषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त एवं गूर्त– इन शब्दों का निपातन।

प्रयोग– 1. न सद् (विशरणगत्यवसादनेषु) + क्त = **नसत्तम्** (खरि च 8.4.55 से दकार को तकार, रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त नत्व का निपातन से निषेध। लौकिक प्रयोग में 'नसन्नम्'।

2. नि-सद् + क्त = **निषत्तम्** ('नसत्तम्' जैसा)।
'निषत्तमस्य चरतः'– ऋग्वेद 1.146.1
लौकिक प्रयोग में 'निषण्णम्'।

3. न उन्द् (क्लेदने, रुधा॰,प॰) + क्त = **अनुत्तम्** (निपातन से क्त के तकार को रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त नकार का निषेध)।
'अनुत्तमा ते मघवन्'– –ऋ॰वे॰- 1.165.9
लौकिक प्रयोग में– अनुन्नम्।

4. प्र - त्वर् (संभ्रमे, भ्वा॰, आ॰) + क्त = **प्रतूर्तम्**। अथवा प्र-तुर्व् (हिंसायाम्, भ्वा॰,प॰) + क्त = **प्रतूर्तम्**। लौकिक प्रयोग में प्रतूर्णम्।
'प्रतूर्तं वाजिन्'– यजु॰ 11/12

5. सृ + क्त = **सूर्त्तम्** (सृ के ऋकार को उकार, तकार को नत्व का अभाव–निपातन से) लौकिक प्रयोग में– सृतम्।

6. गूर् (उद्यमने, चुरा॰, आ) + क्त = **गूर्त्तम्** (निपातन से नत्वाभाव)।

सम्ब॰(116) वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् 8.3.73

वि-'स्कन्द्' धातु से सकार को विकल्प से षकार, यदि धातु से निष्ठा प्रत्यय न आया हो।

प्रयोग– वि-स्कन्द् + तुमुन् = विस्कन्तुम् – विष्कन्तुम्।

निष्ठा में– वि-स्कन्द् + क्त = **विस्कन्नः** (षत्व नहीं)।

क्तवतु

क्तवतु = तवत्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की एवं उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध।
2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
3. निष्ठा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)
4. झलादि। अतः जनसनखनां सञ्झलोः 7.2.35 से आकारादेश।
5. हलादि कित्। अतः घुमास्थागापा॰ 6.4.66 से धातु को ईकारादेश, गीतवान्।
6. वलादि। अतः आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इट्-आगम।
7. अतु-अन्त। अतः क्तवतु–अन्त की उपधा को दीर्घ- अत्वसन्तस्य चाधातोः (6.4.14)– कृतवान्।
8. उगित् (1.3.2)। अतः क्तवतु–अन्त से स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6 से ङीप्, कृतवत् - कृतवती।
9. 'क्तवतु' प्रत्यय धातु से कर्तृवाच्य में आता है– कर्तरि कृत् 3.4.67। यद्यपि यह 'क्त' प्रत्यय के साथ मिलकर ही 'निष्ठा' संज्ञा से संज्ञित है एवं 'क्त' के साथ धातुओं से इसका विधान होता है, तथापि तयोरेव कृत्यक्त॰ 3.4.70 से 'क्त' प्रत्यय भाव एवं कर्म वाच्य में आता है, परन्तु सामान्य कृत् के रूप में क्तवतु कर्तृवाच्य में आता है, यथा– रामेण पुस्तकं पठितम् (पठ् + क्त, कर्मवाच्य में), रामः पुस्तकं पठितवान् (पठ् + क्तवतु, कर्तृवाच्य में)।
10. खरादि। अतः क्तवतु (तवत्) के परे रहते खरि च 8.4.55 से धातु को चर्त्व, त्यज् + क्तवतु = त्यक्तवान्।

1. विधि– निष्ठा 3.2.102

भूतकाल में धातुसामान्य से निष्ठा अर्थात् क्त एवं क्तवतु।

अनु॰– भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– कृ (डुकृञ्) करणे, तना॰,उ॰।

प्रयोग– कृ + क्तवतु = कृतवत् = **कृतवान्** (पुंल्लिङ्ग, प्रथमा एकवचन में)। क्तवतु के कित् होने से सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से प्राप्त धातु के गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध।

विशेष– आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या (वा॰, 3.2.102)

निष्ठा (क्त एवं क्तवतु) का विधान आदि कर्म में होना चाहिए।

प्रयोग– प्र-कृ + क्तवतु = प्रकृतवान् कटं देवदत्तः।

सम्ब॰–

सम्ब॰ (1) क्तक्तवतू निष्ठा 1.1.26– संज्ञासूत्र

क्त एवं क्तवतु की 'निष्ठा'– संज्ञा।

प्रयोग– यथा– रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से निष्ठा-संज्ञक तकार को नकार, धातु के दकार को भी, भिद् + क्तवतु = भिद् + तवत् = **भिन्नवान्** (उभय दकार एवं तकार को नकार)।

सम्ब॰(2) निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः 1.2.19

शीङ्, स्विदि, मिदि, क्ष्विदि तथा धृष् धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट निष्ठा (क्त एवं क्तवतु) कित् नहीं होती है।

प्रयोग– 1. शी + क्तवतु = **शयितवान्**। 2. प्र-स्विद् + क्तवतु = **प्रस्वेदितवान्**। 3. प्र-मिद् + क्तवतु = **प्रमेदितवान्**। 4. प्र-क्ष्विद् + क्तवतु = **प्रक्ष्वेदितवान्**। 5. प्र-धृष् + क्तवतु = **प्रधर्षितवान्**। यहाँ प्रस्तुत सूत्र से क्तवतु के कित्त्व का अभाव होने से सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 एवं पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध नहीं हुआ अर्थात् यथाविधि गुण हुआ है।

सम्ब॰ (3) मृषस्तितिक्षायाम् 1.2.20

क्षमार्थक 'मृष्' धातु से विहित इडागमविशिष्ट निष्ठा (क्त एवं क्तवतु) कित् नहीं होती।

प्रयोग– मृष् + क्तवतु = मृष् तवत् = **मर्षितवान्** 'क्षमा कर दी' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'क्तवतु' के कित्त्व के अभाव में क्ङिति च 1.1.5 से गुण निषेध नहीं हुआ अर्थात् गुण हुआ।

सम्ब॰ (4) उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् 1.2.21

ह्रस्व-उकार-उपध धातु से भाव तथा आदि कर्म में विहित इडागमविशिष्ट निष्ठा (क्त एवं क्तवतु) विकल्प से कित् नहीं होती है (अर्थात् एक पक्ष में कित् होती है)।

प्रयोग– द्युत् + क्तवतु = **द्युतितवान् - द्योतितवान्** 'चमका'। कित्त्वाभाव पक्ष में पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा-गुण–(द्योतितवान्)। कित्त्व पक्ष में क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध–(द्युतितवान्)।

सम्ब॰ (5) पूङः क्त्वा च 1.2.22

'पूङ्' धातु से विहित इडागमविशिष्ट 'क्तवतु' (निष्ठा) कित् नहीं होता।

प्रयोग– पूङ् + क्तवतु = **पवितवान्** 'पवित्र किया'। क्तवतु के कित्त्वाभाव से सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु को गुण हुआ।

सम्ब॰ (6) निष्ठा 2.2.36

बहुव्रीहि समास में क्तवतु (निष्ठा) प्रत्ययान्त का पूर्वप्रयोग। इसका व्यवहार विरल है।

विशेष– निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् (वा॰, 2.2.36)

निष्ठा (क्तवतु) से पूर्वप्रयोग के प्रसङ्ग में जाति, कालवाचक एवं सुख आदि शब्दों के साथ समस्यमान निष्ठा प्रत्ययान्त का पर-प्रयोग। इसके भी उदाहरण विरल हैं।

सम्ब॰ (7) वाऽऽहिताग्न्यादिषु 2.2.37

'आहिताग्नि' आदि शब्दों में निष्ठा (क्तवतु) प्रत्ययान्त का विकल्प से पूर्वप्रयोग। इसका भी उदाहरण विरल है।

सम्ब॰ (8) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

क्तवतु (निष्ठा) के प्रयोग होने पर कर्त्ता एवं कर्म में प्राप्त (कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से प्राप्त) षष्ठी नहीं होती।

प्रयोग– ओदनं भुक्तवान्। भुज् + क्तवतु (निष्ठा 3.2.102 से क्तवतु) = भुक्तवान्। 'ओदन' कर्म है। कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से 'ओदन' से प्राप्त षष्ठी विभक्ति का यहाँ निषेध हुआ।

सम्ब॰ (9) अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति 2.4.36

'अद्' धातु को 'जग्धि' आदेश, तकारादि कित् प्रत्यय परे हो तो। 'क्तवतु' तकारादि एवं कित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8) है।

प्रयोग– अद् + क्तवतु = **जग्धवान्** (निष्ठा 3.2.102 से क्तवतु, प्रस्तुत सूत्र से जग्धि-आदेश)।

सम्ब॰ (10) अस्तेर्भूः 2.4.52

'अस्' धातु को 'भू' आदेश, आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो। क्तवतु आर्धधातुक है (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

प्रयोग– अस् + क्तवतु (निष्ठा 3.2.102 से क्तवतु) = **भूतवान्** (प्रस्तुत सूत्र से 'भू' आदेश)।

सम्ब॰ (11) ब्रुवो वचिः 2.4.53

आर्धधातुक विषय में 'ब्रू' धातु को वचि (वच्) आदेश। 'क्तवतु' आर्धधातुक है (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

प्रयोग– ब्रू + क्तवतु = उक्तवान् (निष्ठा 3.2.102 से क्तवतु, प्रस्तुत सूत्र से 'वचि' आदेश, वचिस्वपि॰ 6.1.15 से 'वच्' के वकार का सम्प्रसारण)।

सम्ब॰ (12) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54

'चक्षिङ्' धातु को ख्याञ् (ख्या) आदेश, आर्धधातुक विषय में।

प्रयोग– चक्षिङ् + क्तवतु = (निष्ठा 3.2.102 से) = **ख्यातवान्** (प्रस्तुत सूत्र से 'ख्या' आदेश।

विशेष– ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते (वा॰, 2.4.54)

इस 'ख्याञ्' के स्थान में 'ख्शाञ्' आदेश भी समझा जाय।

प्रयोग– चक्षिङ् + क्तवतु = ख्यातवान् - क्शातवान् (खरि च 8.4.55 से खकार को ककार)।

सम्ब॰ (13) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56

('वलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते' वा॰, 2.4.56)। वलादि आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते विकल्प से 'अज्' धातु को 'वी' आदेश। क्तवतु वलादि है, आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114) भी।

प्रयोग– अज गतिक्षेपणयोः, भ्वा॰, प॰। अज् + क्तवतु = **वीतवान्** - **अजितवान्** (निष्ठा 3.2.102 से क्तवतु, अज् = वी, विकल्प से)।

सम्ब॰ (14) वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15

वच्, स्वप् एवं यजादि धातुओं का सम्प्रसारण, कित् प्रत्यय परे रहे तो। क्तवतु कित् है (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। 'सम्प्रसारण' अर्थात् 'यण्' के स्थान में 'इक्' का होना (इग्यणः सम्प्रसारणम् 1.1.45)।

प्रयोग– 1. वच् + क्तवतु = **उक्तवान्** (निष्ठा 3.2.102 से क्तवतु, प्रस्तुत सूत्र से धातु के वकार को सम्प्रसारण से उकार, धातु के अकार का पूर्वरूप एकादेश– सम्प्रसारणाच्च 6.1.108)।

2. स्वप् - सुप्तवान्, 3. यज् - इष्टवान्, 4. वप् - उप्तवान्, 5. वह् - ऊढवान् 6. वस्-उषितवान्, 7. वेञ् - उतवान्, 8. व्येञ्– संवीतवान्, 9. ह्वेञ्– हूतवान्, 10. वद्-उदितवान्, 11. श्वि-शूनवान्।

सम्ब॰ (15) ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च 6.1.16

ग्रह्, ज्या आदि धातुओं का सम्प्रसारण, कित् अथवा ङित् प्रत्यय के परे रहने पर।

'क्तवतु' कित् है (लशक्वतद्धिते 1.3.8)।

सम्प्रसारण अर्थात् यण् (य्, व्, र्, ल्) को क्रमशः इक् (इ, उ, ऋ, ऌ)– इग्यणः सम्प्रसारणम् 1.1.45

प्रयोग– 1. ग्रह् (उपादाने) + क्तवतु = **गृहीतवान्** (प्रस्तुत सूत्र से सम्प्रसारण से ऋकार को रेफ, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से धातु के अकार को पूर्वरूप, इट्, ग्रहोऽलिटि दीर्घः 7.2.37 से दीर्घ)।

2. ज्या (वयोहानौ) + क्तवतु = जीनवान् (सम्प्रसारण से यकार को इकार, हलः 6.4.2 से दीर्घ, ल्वादिभ्यः 8.4.44 से नत्व)।

3. व्यध् (ताडने)– **विद्धवान्** (सम्प्रसारण से य् = इ)।

4. वश् (कान्तौ)- **उशितवान्** (सम्प्रसारण से य् = इ)।

5. व्यच् (व्याजीकरणे)– **विचितवान्** (सम्प्रसारण से य् = इ)।

6. ओ व्रश्चू (छेदने)– **वृक्णवान्** (सम्प्रसारण से र् = ऋ)।

7. प्रच्छ् (ज्ञीप्सायाम्)- **पृष्टवान्** (सम्प्रसारण से र् = ऋ)।

8. भ्रस्ज् (पाके)- **भृष्टवान्**।

सम्ब॰ (16) स्फायः स्फी निष्ठायाम् 6.1.22

क्तवतु (निष्ठा) के परे रहते 'स्फायी' धातु को 'स्फी' आदेश। क्तवतु की निष्ठा-संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)

प्रयोग– स्फाय् + क्तवतु = **स्फीतवान्** ('स्फाय' को 'स्फी' आदेश)।

सम्ब॰ (17) स्त्यः प्रपूर्वस्य 6.1.23

'प्र-स्त्या' धातु का सम्प्रसारण (=धातु के यकार को इकार), क्तवतु (निष्ठा) के परे रहते।

प्रयोग– प्र-स्त्यै (प्र-ष्ट्यै) + क्तवतु = **प्रस्तीतवान्** (सम्प्रसारण से य् = इ, हलः 6.4.2 से दीर्घ)। सम्प्रसारण होने से धातु 'यण्वान्' नहीं रह गयी। अतः संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43 से निष्ठा 'त' को नत्व नहीं।

सम्ब॰ (18) द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः 6.1.24

द्रव पदार्थ की कठिनता तथा स्पर्श के अर्थों में 'श्या' धातु का सम्प्रसारण, क्तवतु (निष्ठा) प्रत्यय के परे रहते। श्या = 'श्यैङ्' गतौ, भ्वा॰,आ॰।

प्रयोग– श्यैङ् = श्या। श्या + क्तवतु = **शीनवान्** (सम्प्रसारण से यकार को इकार, हलः 6.4.2 से दीर्घ, श्योऽस्पर्शे 8.2.47 से नत्व)।

सम्ब॰ (19) प्रतेश्च 6.1.25

प्रति-'श्या' धातु को सम्प्रसारण, क्तवतु (निष्ठा) के परे रहते।

प्रयोग– प्रति-श्यैङ् = प्रति-श्या। प्रति-श्या + क्तवतु = **प्रतिशीनवान्** (सम्प्रसारण से यकार को इकार, हलः 6.4.2 से दीर्घ, श्योऽस्पर्शे 8.2.47 से नत्व)।

सम्ब॰ (20) विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य 6.1.26

'अभि' एवं 'अव' पूर्वक 'श्या' धातु का विकल्प से सम्प्रसारण, क्तवतु (निष्ठा) के परे रहते। 'क्तवतु' की निष्ठा संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)।

प्रयोग– 1. अभि-श्या + क्तवतु = **अभिशीनवान्-अभिश्यानवान्**।

2. अव-श्या + क्तवतु = **अवशीनवान्-अवश्यानवान्**। उभय में सम्प्रसारण पक्ष में हलः 6.4.2 से दीर्घ। उभय (सम्प्रसारण एवं सम्प्रसारणाभाव) में श्योऽस्पर्शे 8.2.47 से नत्व।

सम्ब॰ (21) प्यायः पी 6.1.28

क्तवतु (निष्ठा) प्रत्यय के परे रहते 'ओप्यायी' धातु के स्थान में विकल्प से 'पी' आदेश। क्तवतु की निष्ठा-संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26)। ओ प्यायी वृद्धौ, भ्वा॰,आ॰ है।

प्रयोग– प्याय् + क्तवतु = पीनवान् (ओदितश्च 8.2.45 से नत्व, प्रस्तुत सूत्र से 'पी' आदेश)। 'पी' आदेश के अभाव में 'प्यानवान्'।

सम्ब॰ (22) निष्ठा च द्व्यजनात् 6.1.205

संज्ञा विषय में निष्ठान्त द्वि-अच् विशिष्ट शब्द का आदि स्वर उदात्त, यदि वह आदि स्वर आकार से भिन्न हो। 'क्तवतु' की निष्ठा-संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.2.26), यह आद्युदात्तश्च (3.1.3) से प्राप्त प्रत्ययस्वर का अपवाद है।

प्रयोग– दा + क्तवतु = **दत्तवान्** (प्रस्तुत सूत्र से 'द' का अकार 'उदात्त')।

सम्ब॰ (23) निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् 6.2.110

बहुव्रीहि समास में उपसर्गविशिष्ट निष्ठा-प्रत्ययान्त पूर्वपद का अन्त्य स्वर विकल्प से उदात्त।

प्रयोग–

सम्ब॰ (24) निष्ठायां सेटि 6.4.52

इडागमविशिष्ट निष्ठा-प्रत्यय के परे भी णि (णिच्) का लोप हो जाता है।

प्रयोग– कृ + णिच् + क्तवतु = कार् इ इ तवत् (आर्धधातु॰ 7.2.35 से क्तवतु को इट् आगम, अचो ञ्णिति 7.2.115 से धातु को वृद्धि, रपरत्व) = **कारितवान्**। प्रस्तुत सूत्र से णिच् (इ) का लोप।

सम्ब॰ (25) निष्ठायामण्यदर्थे 6.4.60

भाव तथा कर्म (ण्यत् के अर्थ) से भिन्न अर्थ में निष्ठा (क्तवतु) के आने पर भी 'क्षि' को दीर्घ हो जाता है। क्षि क्षये, भ्वा॰,प॰, क्षि हिंसायाम्, स्वा॰, प॰।

प्रयोग– प्र-क्षि + क्तवतु = **प्रक्षीणवान्** कर्तरि कृत् 3.4.67 के अनुसार (निष्ठा 3.2.102 से कर्ता में 'क्तवतु', प्रस्तुत सूत्र से धातु को दीर्घ, क्षियो दीर्घात् 8.2.46 से नत्व, अट्कुप्वाङ् 8.4.2 से णत्व)।

सम्ब॰ (26) ह्लादो निष्ठायाम् 6.4.95

निष्ठा (क्तवतु) के परे अङ्गसंज्ञक 'ह्लाद्' धातु की उपधा को ह्रस्व-आदेश।

प्रयोग– प्र + ह्लाद् + क्तवतु = **प्रह्लन्नवान्** (प्रस्तुत सूत्र से उपधा को ह्रस्व, रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से धातु के दकार एवं प्रत्यय के तकार को नकार)।

सम्ब॰ (27) श्वीदितो निष्ठायाम् 7.2.14

निष्ठा प्रत्यय के परे रहते 'श्वि' तथा ईदित् धातुओं से इट्-आगम नहीं।

प्रकृति– श्वि गतिवृद्ध्योः (भ्वा॰प॰)। ईदित्, यथा– ओ लजी (लज्) व्रीडने, तुदा॰ आ॰। ओविजी (विज्) भयचालनयोः, जुहो॰आ॰।

प्रयोग– 1. श्वि + क्तवतु = **शूनवान्** (वचिस्वपि॰ 6.1.15 से धातु को सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से धातु के इकार को पूर्वरूप, हलः 6.4.2 से धातु के सम्प्रसारणलब्ध उकार को दीर्घ, ओदितश्च 8.2.45 से तकार को नकार)। यहाँ आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से क्तवतु को इट्-आगम प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध हुआ।

2. लज् + क्तवतु = **लग्नवान्** (चोः कुः 8.2.30 से कुत्व, ओदितश्च 8.2.45 से तकार को नकार)। यहाँ आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से प्राप्त इट् का निषेध हुआ।

3. विज् + क्तवतु = **विग्नवान्** ('लग्नवान्' की तरह)।

सम्ब॰ (28) यस्य विभाषा 7.2.15

जिस धातु को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है उसमें निष्ठा (क्तवतु) प्रत्यय के परे रहते इडागम नहीं।

प्रयोग– यथा– 1. वि-धू + क्तवतु = **विधूतवान्** (स्वरतिसूति॰ 7.2.44 से विकल्प से इट् की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से इडागम का निषेध)।

2. वृध् (वृधु) वृद्धौ, भ्वा॰ आ॰। वृध् + क्तवतु = **वृद्धवान्** (उदितो वा 7.2.56 से विकल्प से प्राप्त इडागम का प्रस्तुत सूत्र से निषेध)।

सम्ब॰ (29) आदितश्च 7.2.16

जिस धातु के आकार की इत्संज्ञा होती हो, ऐसे आदित् (आत् + इत्) धातु को भी निष्ठा (क्तवतु) के परे इडागम नहीं।

प्रयोग– यथा- ञिमिदा = मिद् स्नेहने, भ्वा॰आ॰। मिद् + क्तवतु = **मिन्नवान्** (आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से प्राप्त इडागम का यहाँ निषेध)।

सम्ब॰ (30) विभाषा भावादिकर्मणोः 7.2.17

भाव एव आदिकर्म के वाचक निष्ठा-प्रत्यय के परे रहते आदित् (आकार-इत्संज्ञक) धातुओं से विकल्प से इडागम नहीं। 'क्तवतु' की निष्ठा संज्ञा (क्तक्तवतू निष्ठा 1.1.26)। 'भाव' में क्तवतु का विधान नहीं होता, अतः प्रस्तुत सूत्र का भाव में 'क्तवतु' का उदाहरण नहीं है।

प्रयोग– यथा– प्रमिद् (ञिमिदा स्नेहने, भ्वा॰आ॰) + क्तवतु = **प्रमिन्नवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट् का निषेध विकल्प से)।

इट् निषेध के अभाव में अर्थात् इट् के पक्ष में– प्रमेदितवान्।

सम्ब॰ (31) धृषिशसी वैयात्ये 7.2.19

निष्ठा (क्तवतु) के परे रहते 'धृष्' तथा 'शस्' धातुओं को इडागम नहीं, यदि समुदाय से अविनय का बोध हो।

प्रकृति– 1. धृष् (ञिधृषा) प्रागल्भ्ये, स्वा॰,प॰।

2. शस् (शसु) हिंसायाम्, भ्वा॰प॰।

प्रयोग– 1. धृष् + क्तवतु = **धृष्टवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट् का अभाव)। आदितश्च 7.2.16 से इट् का निषेध यहाँ हो सकता था, अतः प्रकृत सूत्र से नियमन है– वैयात्य (अविनय) अर्थ में ही 'धृष्' से इट्-आगम निषिद्ध हो। अतः 'वैयात्य' अर्थ के अभाव में– **धर्षितवान्**।

2. वि-शस् + क्तवतु = विशस्तवान् (प्रस्तुत सूत्र से इडभाव)। विशस्तवान् अयम्। यहाँ यस्य विभाषा 7.2.15 से इट् का निषेध सम्भाव्य है, प्रस्तुत सूत्र से

नियमन है– 'वैयात्य' अर्थ में ही 'शस्' से इट् का निषेध हो। अतः 'वैयात्य' अर्थ के अभाव में–विशसितवान्।

सम्ब॰ (32) कृच्छ्रगहनयोः कषः 7.2.22

कृच्छ्र तथा गहन अर्थों में 'कष्' धातु से निष्ठा प्रत्यय के परे रहते इडागम नहीं।

प्रयोग– कष् (हिंसायाम्) + क्तवतु = **कष्टवान्** (कृच्छ्र एवं गहन अर्थों में)। इनके अतिरिक्त अर्थों में **कषितवान्**।

सम्ब॰ (33) घुषिरविशब्दने 7.2.23

अविशब्दन अर्थ में घुष् (घुषिर्) धातु को निष्ठा प्रत्यय के परे इडागम नहीं। अविशब्दन = अप्रकाशन।

प्रयोग– घुष् + क्तवतु = **घुष्टवती रज्जुः**। अविशब्दन अर्थ न रहने पर- **अवघुषितवत्** वाक्यम्।

सम्ब॰ (34) अर्देः सन्निविभ्यः 7.2.24

सम्, नि तथा वि पूर्वक 'अर्द्' धातु को निष्ठा प्रत्यय के परे इडागम नहीं।

प्रयोग– 1. सम् - सम्-अर्द् + क्तवतु = **समर्णवान्** (रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)।

2. नि-नि + अर्द् + क्तवतु = **न्यर्णवान्**।

3. वि - वि - अर्द् + क्तवतु = **व्यर्णवान्**।

'सम्' आदि के अतिरिक्त स्थलों में इडागम का निषेध नहीं– **अर्दितवान्**।

सम्ब॰ (35) अभेश्चाविदूर्ये 7.2.25

सामीप्य अर्थ में अभि पूर्वक 'अर्द्' धातु को भी निष्ठा के परे रहते इडागम नहीं।

प्रयोग– अभि- अर्द् + क्तवतु = **अभ्यर्णवती** सेना।

(रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से निष्ठा के तकार को नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)।

आविदूर्य (सामीप्य) अर्थ के न रहने पर- **अभ्यर्दितवान् वृषलः।**

सम्ब॰ (36) रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् 7.2.28

निष्ठा (क्तवतु) से परे 'रुषि' आदि धातुओं के इट्- आगम का विकल्प से निषेध।

प्रयोग– 1. रुष् - **रुष्टवान्-रुषितवान्** (रुष् + क्तवतु)। तीषसहलुभरुषरिषः 7.2.48 से विकल्प से प्राप्त 'इट्' का यस्य विभाषा 7.2.15 से निषेध प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से वह निषेध विकल्प से लागू हुआ, अर्थात् एक पक्ष में इट् का निषेध हुआ– रुष्टवान्, पक्ष में इट् - रुषितवान्।

2. अम् - **अभ्यान्तवान्-अभ्यमितवान्** (अभि-अम् + क्तवतु)। इट् के अभाव पक्ष में अनुनासिकस्य 6.4.15 से उपधा-दीर्घ, नश्चापदान्तस्य 8.3.24 से मकार को अनुस्वार, अनुस्वारस्य ययि॰ 8.4.58 से परसवर्ण। उपधा दीर्घ होने पर धातु आकारवान् बनी। अतः आदितश्च 7.2.16 से इट् का निषेध प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से यह निषेध विकल्प से हुआ- अभ्यान्तवान्। पक्षे इट् (उपधादीर्घ भी नहीं हुआ)– अभ्यमितवान्।

3. त्वर् - **तूर्णवान्, त्वरितवान्**। त्वर् (ञित्वरा) + क्तवतु। ज्वरत्वर॰ 6.4.20 से धातु को ऊठ्, रपरत्व, रदाभ्यां॰ 8.2.42 से नत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व। आदितश्च 7.2.16 से प्राप्त नित्य इट्-निषेध प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से हुआ– तूर्णवान्। पक्षे इट्-त्वरितवान्।

4. संघुष्-**संघुष्टवन्तौ-संघुषितवन्तौ** (पादौ), घुषिरवि॰ 7.2.23 से प्राप्त इट्-निषेध यहाँ विकल्प से- संघुष्टवन्तौ, पक्षे इट्-संघुषितवन्तौ (पादौ)।

5. आ-स्वन् - **आस्वान्तवान् - आस्वनितवान्** (देवदत्तः)। आ- स्वन् + क्तवतु। पक्षे इट् का अभाव– आस्वान्तवान्। पक्षे इट्- आस्वनितवान्।

सम्ब॰ (37) हृषेर्लोमसु 7.2.29

निष्ठा प्रत्यय के परे लोमार्थक 'हृष्' धातु के इडागम का विकल्प से प्रतिषेध।

प्रयोग– हृष्– **हृष्टवन्ति** (लोमानि), **हृषितवन्ति** (लोमानि), 'हर्ष से खड़े हो गये लोम'। हृष् + क्तवतु = हृष् तवत् (कर्तरि कृत् 3.4.67 से कर्तरि क्तवतु)। यस्य विभाषा 7.2.15 से प्राप्त नित्य इट् निषेध यहाँ विकल्प से हुआ– हृष्टवन्ति (ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ष्टुत्व)। पक्षे इट्–हृषितवन्ति।

विशेष– विस्मितप्रतिघातयोश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 7.2.29)

निष्ठा प्रत्यय के परे विस्मित एवं प्रतिघात अर्थों में 'हृष्' से इडागम का निषेध विकल्प से।

प्रयोग– विस्मित– **हृष्टवान्– हृषितवान्** देवदत्तः (विस्मित देवदत्त)।
प्रतिघात– **हृष्टवन्तः- हृषितवन्तः** दन्ताः (प्रतिहत दन्त)।

सम्ब॰ (38) हु ह्वरेश्छन्दसि 7.2.31

छन्दोविषय में निष्ठा प्रत्यय के परे 'ह्वृ' के स्थान में 'हु' आदेश।

प्रयोग– ह्वृ + क्तवतु = हुतवान्। यह रूप बन सकता है। उदाहरण (छन्दोगत) विरल है।

सम्ब॰ (39) आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35

वलादि आर्धधातुक को इट् आगम।

'क्तवतु' की आर्धधातुक संज्ञा (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

'क्तवतु' = तवत् वलादि है।

प्रयोग– पठ् + क्तवतु = पठितवान् (प्रस्तुत सूत्र से क्तवतु को इट्–आगम)।

सम्ब॰ (40) इण् निष्ठायाम् 7.2.47

'निर् + कुष्' धातु से विहित 'निष्ठा' प्रत्यय को इट्– आगम।

प्रयोग– निर्– कुष् (निष्कर्षे, क्र्या॰प॰) + क्तवतु = **निष्कुषितवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट्)। निरः कुषः 7.2.46 से प्राप्त विकल्प से इडागम का यह अपवाद है।

सम्ब॰ (41) क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः 7.2.50

'क्लिश्' धातु से विहित निष्ठा-प्रत्यय को विकल्प से इट्–आगम।

प्रयोग– क्लिश् (उपतापे, दिवा॰,प॰) + क्तवतु = **क्लिष्टवान्– क्लिशितवान्** (प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से 'क्तवतु' को इडागम)।

सम्ब॰ (42) पूङश्च 7.2.51

'पूङ्' धातु से निष्ठा (क्त, क्तवतु) को भी विकल्प से इट्–आगम।

प्रयोग– पू (पवने, क्र्या॰उ॰) + क्तवतु = पूतवान्- पवितवान् (विकल्प से इट्)। श्र्युकः किति 7.2.11 से इट्-निषेध की प्राप्ति होने से प्रस्तुत सूत्र से यह विकल्प इडागम है।

सम्ब॰ (43) वसतिक्षुधोरिट् 7.2.52

'वस्' तथा 'क्षुध्' धातुओं से विहित निष्ठा-प्रत्ययों को इट्-आगम। 'क्षुध्' धातु अनुदात्तेत् है, अतः एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् 7.2.10 से इट्– निषेध प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र से उसका प्रतिषेध हुआ। 'वस्' धातु उदात्तेत् है, अतः इट्– आगम प्राप्त था, पुनः यहाँ इट्–ग्रहण से इट् का नित्य विधान हुआ।

प्रयोग–
1. वस् (निवासे, भ्वा॰,प॰) + क्तवतु = **उषितवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट्–आगम, वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण)।
2. क्षुध् (बुभुक्षायाम्, दिवा॰,प॰) + क्तवतु = **क्षुधितवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट्–आगम, क्ङिति च 1.1.5 से लघूपध गुण का निषेध)।

सम्ब॰ (44) अञ्चेः पूजायाम् 7.2.53

पूजार्थक 'अञ्च्' धातु से निष्ठा-प्रत्यय को इट्–आगम। निष्ठा में यस्य विभाषा 7.2.15 से प्राप्त इट्–निषेध का यह अपवाद है।

प्रयोग– अञ्च् (गतिपूजनयोः) + क्तवतु = **अञ्चितवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट्–आगम)।

सम्ब॰ (45) लुभो विमोहने 7.2.54

विमोहन-अर्थक 'लुभ्' धातु से निष्ठा-प्रत्यय को इट्–आगम।

यस्य विभाषा 7.2.15 से प्राप्त इट्-निषेध का यह अपवाद है।

प्रयोग- लुभ् (विमोहने, तुदा॰,प॰) + क्तवतु = **लुभितवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट्-आगम)।

विशेष- सम्मोहन अर्थ न रहने पर इट्- आगम नहीं। लुभ् + क्तवतु = **लुब्धवान्।**

सम्ब॰ (46) निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः (वा॰, 8.2.3)

षत्व, स्वर, प्रत्यय एवं इट्-विधियों में निष्ठा (क्त, क्तवतु) के स्थान में विहित आदेश सिद्ध बना रहता है।

प्रयोग- षत्वविधि में- व्रश्च् (ओ व्रश्चु छेदने, तुदा॰ प॰) + क्तवतु = **वृक्णवान्**। यहाँ ओदितश्च 8.2.45 से त को नकार। पूर्वत्रासिद्धम् 8.2.1 के अनुसार यहाँ व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 की दृष्टि से यदि नत्व-विधि (ओदितश्च 8.2.45) असिद्ध हो जाय, तब उक्त नकार को तकार मान लिया जाएगा एवं तकार अर्थात् झल् के परे रहते व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 से धातु को षकार-अन्तादेश हो जायगा। प्रस्तुत वार्त्तिक से उक्त षत्वविधि के प्रसङ्ग में 'क्तवतु' के तकार के स्थान में हुए नत्व की सिद्धता रहती है, अतः अनिष्टापत्ति (धातु को षकारान्तादेश) नहीं रहती। स्वरादि विधियों में 'क्तवतु' का उदाहरण विरल है।

सम्ब॰ (47) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः 8.2.42

रेफ एवं दकार से उत्तरवर्ती निष्ठा (क्त, क्तवतु) के तकार एवं उससे पूर्ववर्ती दकार के स्थान में भी 'नकार'- आदेश।

प्रयोग- 1. रेफान्त- वि + स्तॄ (आस्तरणे, क्र्या॰,उ॰) + क्तवतु = **विस्तीर्णवान्** (प्रस्तुत सूत्र से क्तवतु के तकार को नकार-आदेश)।

2. दकारान्त- भिद् (विदारणे, रुधा॰,उ॰) + क्तवतु = **भिन्नवान्** (प्रस्तुत सूत्र से क्तवतु के आदि तकार को एवं धातु के दकार को नकार)।

विशेष– सूत्र में 'निष्ठातः' के कथन से इडागमसहित तकार को नत्व नहीं– चर् + क्तवतु = चरितवान्।

सम्ब॰ (48) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः 8.2.43

संयोगादि, आकारान्त तथा यण् विशिष्ट धातु से उत्तरवर्त्ती निष्ठा (क्त एवं क्तवतु) के तकार को नकार।

प्रयोग– यथा– ग्लै (हर्षक्षये, भ्वा॰,प॰) + क्तवतु = ग्लानवान्। ग्लै–ग्ला धातु संयोगादि, आकारान्त तथा लकार (यण्) विशिष्ट है। अतः प्रस्तुत सूत्र से क्तवतु के तकार को नकार।

विशेष– 1. 'संयोगादेः' के कथन से या + क्तवतु = 'यातवान्' में नत्व नहीं हुआ।

2. 'आतः' के कथन से 'च्युतवान्' में नत्व नहीं हुआ।

3. 'यण्वतः' के कथन से 'स्नातवान्' में नत्व नहीं हुआ, क्योंकि 'स्ना' धातु में कोई यण् वर्ण नहीं है।

सम्ब॰ (49) ल्वादिभ्यः 8.2.44

क्र्यादिगणीय 'लूञ् छेदने' से लेकर 21 धातुओं के निष्ठा तकार को नकारादेश।

प्रयोग– 1. लूञ् छेदने + क्तवतु = **लूनवान्** (प्रस्तुत सूत्र से क्तवतु के तकार को नकार, क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध।

2. स्तृञ् आच्छादने-**स्तीर्णवान्।**

3. कृञ् हिंसायाम्– **कीर्णवान्**।

4. वृञ् वरणे-**वूर्णवान्**। 5. धूञ् कम्पने-**धूनवान्** 'कम्पित हुआ'। 6. शॄ हिंसायाम्-**शीर्णवान्** (ॠत इद् धातोः 7.1.100 से इकार, रपरत्व, दीर्घ, णत्व)। 7. पॄ पालनपूरणयोः– **पूर्णवान्**। 8. वॄ वरणे-**वूर्णवान्**। 9. भॄ भर्त्सने– **भीर्णवान्**। 10. शॄ हिंसायाम्–**शीर्णवान्**। 11. दॄ विदारणे– **दीर्णवान्**। 12. जॄ वयोहानौ– **जीर्णवान्**। 13. नॄ नये– **नीर्णवान्**। 14. कॄ हिंसायाम्– **कीर्णवान्**।

15. ॠ गतौ- **ईर्णवान्**। 16. गॄ शब्दे- **गीर्णवान्**। 17. ज्या वयोहानौ-**जीनवान्** (ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से सम्प्रसारण, हलः 6.4.2 से दीर्घ)। 18. री गतिरेषणयोः- **रीणवान्**। 19. ली श्लेषणे- **लीनवान्**। 20. व्ली वरणे- **व्लीनवान्**। 21. प्ली गतौ- **प्लीनवान्**।

सम्ब॰ (50) दुग्वोर्दीर्घश्चेति वक्व्यम् (वा॰, 8.4.44)

'दु' एवं 'गु' धातुओं के निष्ठा तकार के स्थान में नकार एवं धातु को दीर्घ।

प्रयोग- 1. दु (गतौ) + क्तवतु = **दूनवान्** (प्रस्तुत वार्त्तिक से नत्व एवं दीर्घ भी)।

2. गु (पुरीषोत्सर्गे) + क्तवतु = गूनवान् (पूर्ववत् नत्व एवं दीर्घ)।

सम्ब॰ (51) ओदितश्च 8.2.45

ओदित् (ओकार इत्संज्ञक है जिसका) धातु से भी निष्ठा तकार को नकार।

प्रयोग- यथा- 1. ओ लस्जी — क्तवतु = लस्ज् + तवत् = लज् नवत् (स्कोः संयागाद्यो॰ 8.2.29 से सकार का लोप एवं प्रस्तुत सूत्र से तकार को नकार)। = लग्नवान् (चोःकुः 8.2.30 से कुत्व)। 2. ओ विज् - विग्नवान्।

सम्ब॰ (52) क्षियो दीर्घात् 8.2.46

'क्षि' धातु के दीर्घ अवयव (ईकार) से निष्ठा-तकार को नकार।

प्रयोग- क्षि (क्षये, भ्वा॰,प॰) + क्तवतु = **क्षीणवान्** (निष्ठायामण्यदर्थे 6.4.60 से धातु के इकार को दीर्घ, प्रस्तुत सूत्र से नत्व, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)।

सम्ब॰ (53) श्योऽस्पर्शे 8.2.47

अस्पर्श अर्थ में प्रयुक्त 'श्या' धातु से निष्ठा तकार को नकार।

प्रयोग- श्या (श्यैङ् गतौ, भ्वा॰,आ॰) + क्तवतु = **शीनवत्** (द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः 6.1.24 से सम्प्रसारण, हलः 6.4.2 से दीर्घ, प्रस्तुत सूत्र से तकार को नकार)।

सम्ब॰ (54) अञ्चोऽनपादाने 8.2.48

अपादान (विश्लेष = विच्छेद) अर्थ न हो तो 'अञ्च्' धातु से निष्ठा तकार को नकार।

प्रयोग– सम्- अञ्च् + क्तवतु = **समक्नवान्** (अनिदितां हल॰ 6.4.24 से अनुनासिक का लोप, चोः कुः 8.2.30 से कुत्व, प्रस्तुत सूत्र से नत्व)।

सम्ब॰ (55) दिवोऽविजिगीषायाम् 8.2.49

विजिगीषा (जीतने की इच्छा) अर्थ के न रहने पर 'दिव्' धातु से निष्ठा तकार को नकार।

प्रयोग– आ–दिव् (क्रीडादौ, दिवा॰,प॰) + क्तवतु = **आद्यूनवान्** (यस्य विभाषा 7.2.15 से इट् का निषेध, च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6.4.19 से वकार को ऊठ्, यणादेश, प्रस्तुत सूत्र से नत्व)।

सम्ब॰ (56) शुषः कः 8.2.51

'शुष्' धातु से निष्ठा तकार को ककार।

प्रयोग– शुष् (शोषणे, दिवा॰प॰) + क्तवतु = **शुष्कवान्** (प्रस्तुत सूत्र से तकार को ककार)।

सम्ब॰ (57) पचो वः 8.2.52

'पच्' धातु से निष्ठा तकार को वकार।

प्रयोग– पच् (डुपचष्) पाके, भ्वा॰, प॰ + क्तवतु = **पक्ववान्** (प्रस्तुत सूत्र से तकार को वकार, चोः कुः 8.2.30 से चकार को ककार)।

सम्ब॰ (58) क्षायो मः 8.2.53

'क्षै' धातु से निष्ठा तकार को मकार।

प्रयोग– क्षै (क्षये, भ्वा॰प॰) + क्तवतु = **क्षामवान्** (धातु के ऐकार को आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से आकार, निष्ठा तकार को मकार)।

सम्ब॰ (59) प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् 8.2.54

प्र-स्त्यै धातु के निष्ठा तकार को विकल्प से मकार।

प्रयोग– प्र-स्त्या (स्त्यै शब्दसंघातयोः, भ्वा॰प॰) + क्तवतु = **प्रस्तीतवान्-प्रस्तीमवान्** (स्त्यः प्रपूर्वस्य 6.1.23 से धातु के यकार को सम्प्रसारण से इकार, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से धातु के आकार को पूर्वरूप, हलः 6.4.2 से इकार को दीर्घ, प्रस्तुत सूत्र से निष्ठा तकार को विकल्प से मकार)।

सम्ब॰ (60) अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः 8.2.55

उपसर्ग से रहित 'ञिफला, 'क्षीब,' 'कृश' तथा 'उत् + लाघ' धातुओं से क्तप्रत्ययान्त 'फुल्ल' आदि का निपातन। क्तवतु-प्रत्ययान्त को भी अनुरूप निपातन सिद्ध लत्व का लाभ प्राप्त होता है (क्तवत्वन्तस्याप्येतल्लत्वमिष्यते-का॰)।

1. फल् ('ञिफला' विशरणे, भ्वा॰प॰) + क्तवतु = **फुल्लवान्** (निष्ठा तकार को लकार निपातन से, ति च 7.4.89 से धातु के अकार को उकार, ओदितश्च 7.2.16 से इडागम का निषेध)।

सम्ब॰ (61) नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् 8.2.56

'नुद' आदि धातुओं से निष्ठा तकार को नकार, विकल्प से। 'क्तवतु' की निष्ठा-संज्ञा (1.1.26)।

प्रयोग– 1. नुद् (प्रेरणे, तुदा॰उ॰) + क्तवतु = **नुन्नवान्-नुत्तवान्** (प्रकृत सूत्र से तकार को विकल्प से नकार, प्रत्यये भाषायां नित्यम् (वा॰) से धातु के दकार को नकार। पक्षे नत्व का अभाव। यहाँ रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से नित्य नत्व की प्राप्ति थी, प्रस्तुत सूत्र से उसे वैकल्पिक बनाया गया)।

2. विद् (विचारणे, रुधा॰,आ॰) + क्तवतु = **विन्नवान्-वित्तवान्** (रूपसिद्धि 'नुन्नवान्-नुत्तवान्' जैसी)। यहाँ भी रदाभ्यां निष्ठातो॰ 8.2.42 से प्राप्त नित्य नत्व को वैकल्पिक बनाया गया है।

3. सम्-उन्द् (क्लेदने, रुधा॰,प॰) + क्तवतु = **समुन्नवान्–समुत्तवान्** (अनिदितां॰ 6.4.24 से अनुनासिक का

लोप, रूपसिद्धि 'नुन्नवान्–नुत्तवान्' जैसी)। यहाँ भी रदाभ्यां॰ 8.2.42 का नित्य नत्व वैकल्पिक हुआ है।

4. त्रा (पालने, भ्वा॰, आ॰) + क्तवतु = (नत्व के पक्ष में अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)। यहाँ संयोगादेरातो॰ 8.2.43 से नित्य नत्व की प्राप्ति को वैकल्पिक किया गया है।

5. घ्रा (गन्धोपादाने,भ्वा॰,प॰) + क्तवतु = घ्राणवान् - घ्रातवान् ('त्राणवान् - त्रातवान्' जैसा)। यहाँ भी संयोगा-देरातो॰ 8.2.43 से प्राप्त नित्य नत्व वैकल्पिक हुआ है।

6. ह्री (लज्जायाम्, जुहो॰,प॰) + क्तवतु = ह्रीणवान् - ह्रीतवान् (नत्व के पक्ष में अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)। यहाँ 'ह्री' धातु से निष्ठा तकार को नत्व अप्राप्त था। उसे वैकल्पिक किया गया है। अतः यह अप्राप्त-विभाषा है।

सम्ब॰ (63) न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम् 8.2.57

'ध्या' आदि धातुओं से निष्ठा तकार को नत्व नहीं होता।

प्रयोग– 1. ध्या (ध्यै चिन्तायाम्, भ्वा॰,प॰) + क्तवतु = ध्यातवान्। संयोगादे॰ 8.2.43 से प्राप्त नत्व का अपवाद है।

2. ख्या (प्रकथने, अदादि॰प॰) + क्तवतु = ख्यातवान्। संयोगादे॰ 8.2.43 से प्राप्त नत्व का अपवाद।

3. पृ (पूरणे, चुरा॰,उ॰) + क्तवतु = **पूर्त्तवान्** (उदोष्ठ्यपूर्वस्य 7.1.102 से धातु के ॠकार को उकार, रपरत्व, हलि च 8.2.77 से दीर्घ, श्र्युकः किति 7.2.11 से इडागम का निषेध, अचो रहाभ्यां॰ 8.4.46 से द्वित्व)। रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त निष्ठा नत्व का अपवाद।

4. मुर्च्छ् (मोहसमुच्छ्राययोः, भ्वा॰प॰) + क्तवतु = **मूर्तवान्** (उपधायां च 8.2.78 से उकार को दीर्घ, राल्लोपः 6.4.21 से छकार का लोप, अचो रहाभ्यां॰ 8.4.46 से तकार को द्वित्व)। रदाभ्यां॰ 8.2.42 से प्राप्त नत्व का यह अपवाद है।

5. मद् (हर्षग्लेपनयोः, दिवा०, प०) + क्तवतु = **मत्तवान्** (खरि च 8.4.55 से दकार को तकार)। रदाभ्यां० 8.2.42 से प्राप्त निष्ठा तकार के नकार का यह अपवाद है।

सम्ब० (63) वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् 8.3.73

वि + 'स्कन्द्' धातु के सकार को विकल्प से षकार, यदि धातु से निष्ठा-प्रत्यय न आया हो।

प्रयोग– वि-स्कन्द् + तुमुन् = विस्कन्तुम्-विष्कन्तुम्।

निष्ठा में-वि-स्कन्द् + क्तवतु = **विस्कन्नवान्** (षत्व नहीं)।

क्तिच्

क्तिच् = ति। हलन्त्यम् 1.3.3 से चकार की एवं लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुण-निषेध।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति 6.4.24 से धातु के नलोप की प्राप्ति, परन्तु न क्तिचि दीर्घश्च 6.4.39 से निषेध।

3. हलादि कित्। अतः घुमास्थागापाजहातिसां हलि 6.4.66 से घु इत्यादि को ईकारादेश।

4. खरादि। अतः खरि च 8.4.55 से चर्त्व।

5. झलादि। अतः चोः कुः 8.2.30 से कुत्व।

6. झलादि कित्। जनसनखनां सञ्झलोः 6.4.42 से आकारादेश।

7. वलादि।

8. चित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से अन्त उदात्त।

1. विधि– क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् 3.3.174

आशीः अर्थ में धातु से क्तिच् (और क्त भी), यदि प्रत्ययान्त से संज्ञा की प्रतीति हो।

अनु॰– आशिषि 3.3.173

प्रयोग– 1. तनुतात् = तन् + क्तिच् = **तन्तिः** 'रस्सी'।

अनिदितां हल उपधायाः॰ 6.4.24 से धातु के न लोप की प्राप्ति, परन्तु न क्तिचि दीर्घश्च 6.4.39 से उसका निषेध।

2. भवतात् = भू + क्तिच् = **भूतिः** 'समृद्धिः'। क्ङिति च

1.1.5 से गुणनिषेध। 'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्' –रघु॰ 1.18

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) न क्तिचि दीर्घश्च 6.4.39

अनुदात्तोपदेशादि धातुओं का अनुनासिक लोप एवं दीर्घ नहीं होता है, क्तिच् के परे रहते।

प्रयोग– तन् + क्तिच् = तन्तिः। यहाँ अनिदितां हल॰ 6.4.24 से प्राप्त न लोप का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

सम्ब॰ (2) तितुत्रतथसिसुसरकेषु च 7.2.9

'ति' के परे रहते उस ति को इडागम नहीं होता है।

प्रयोग– तन् + क्तिच् = तन्तिः। यहाँ आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से प्राप्त इडागम का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।।

क्तिन्

क्तिन् = ति। हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की एवं लशक्वतद्धिते 1.3.8 से 'क्' की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

(1) कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुण-निषेध, यथा– कृ + क्तिन् = कृतिः।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः अस्तेर्भूः 2.4.52 से 'अस्' को 'भू' (अस् + क्तिन् = भूतिः), 'ब्रू' को वचि (ब्रुवो वचिः 2.4.53)- ब्रू + क्तिन् = उक्तिः (वचिस्वपि० 6.1.15 से सम्प्रसारण)। चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54 से चक्षिङ् को ख्याञ्- (चक्षिङ् + क्तिन् = ख्यातिः-क्शातिः)। अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 से 'अज्' को वी (अज् + क्तिन् = वीतिः)।

(3) हलादि कित्। अतः अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति 6.4.66 से अद् को जग्धि (अद् + क्तिन् = जग्धिः)।

(4) झलादि। अतः

(क) चोः कुः 8.2.30 से कुत्व, यथा– पच् + क्तिन् = पक्तिः। हो ढः 8.2.31 से ह ढ, यथा– सह् + क्तिन् = सोढिः, वह्- वोढ़िः।

(ख) दादेर्धातोर्घः 8.2.32 से दकारादि धातु के ह को घ, यथा– दह् + क्तिन् = दग्धिः।

(ग) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् 8.2.33 से द्रुह् आदि के ह को विकल्प से घ, यथा– द्रुह् + क्तिन् = द्रुग्धिः- द्रूढिः (पक्षे हो ढः 8.2.31 इति ढत्वम्)। मुह्– मुग्धिः- मूढिः। ष्णुह्– स्निग्धिः– स्नीढिः।

(घ) नहो धः 8.2.34 से नह् (णह्) के ह् को ध्, यथा– नह् + क्तिन् = नद्धिः।

(5) झलादि कित्। अतः

(क) अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति 6.4.15 से अनुनासिकान्त धातु की उपधा को दीर्घ, यथा– शम् + क्तिन् = शान्तिः।

(ख) ज्वरत्वरश्रिव्यविमवामुपधायाश्च 6.4.20 से ज्वर, त्वर आदि की उपधा एवं वकार के स्थान में ऊठ्। यथा– ज्वर्-जूर्त्तिः, त्वर्–तूर्त्तिः, श्रिव्– श्रूतिः, अव्–ऊतिः, मव्–मूतिः।

(ग) राल्लोपः 6.4.21 से रेफ से परे 'छ्' तथा 'व्' का लोप। यथा– हुर्छा– हूर्तिः, तुर्वी– तूर्तिः।

(घ) अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति 6.4.37 से अनुदात्तोपदेश, वन् आदि धातु के अनुनासिक का लोप। यथा– मन् + क्तिन् = मतिः।

(6) वलादि। अतः आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से क्तिन् के आदि में इट्– आगम प्राप्त था, पर तितुत्रतथ॰ 7.2.9 से उसका निषेध हुआ।

(7) खरादि। अतः खरि च 8.4.55 से झलन्त धातु के झल् को चर्-आदेश। यथा– भिद् + क्तिन् = भित्तिः।

(8) हलादि। अतः हलि च 8.2.77 से रेफान्त धातु की उपधा इक् को दीर्घ। स्तृ + क्तिन् = स्तीर्णिः (ऋॄल्वादिभ्यः क्तिन्॰ वा॰ 8.2.44 से तकार को नकार)।

(9) नित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि-उदात्त।

1. विधि– स्त्रियां क्तिन् 3.3.94

भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में धातु से स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् 3.3.19, भावे 3.3.18

अधि॰– धातोः 3.1.91

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक

प्रकृति– धातुसामान्य।

लिङ्ग– स्त्री।

प्रयोग– 1. करणम् = कृ + क्तिन् = **कृतिः** 'करना'। (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

2. मननम् = मन् + क्तिन् = **मतिः** 'मनन करना' (अनुदात्तोपदेश॰ 6.4.37 से अनुनासिक 'न्' का लोप)। गम्- **गतिः**, तन्- **ततिः**, यम्-**यतिः**, रम्-**रतिः**, नम्-**नतिः**, हन्-**हतिः** 'आघात'।

विशेष– (क) भावे (3.3.18) एवं अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19) से प्राप्त 'घञ्' का स्त्रीलिङ्ग में विहित यह 'क्तिन्' अपवाद है। घञ् (अ) से असरूप अपवाद होने पर भी यह घञ् का नित्य बाधक है, विकल्प से नहीं, क्योंकि वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94 से 'अस्त्रियाम्' की उक्ति से यह वाऽसरूपविधि यहाँ लागू नहीं होती है। (वाऽसरूपविधि = धातु अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का विकल्प से बाधक हो)। परिणामतः स्त्रीत्व में 'भावे' एवं 'अकर्तरि च कारके' में केवल 'क्तिन्' होता है, घञ् नहीं। यथा– कृ + क्तिन् = कृतिः, गम्-गतिः।

(ख) भावे (3.3.18) एवं अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19) के अधिकार के अन्तर्गत एरच् 3.3.56 से इकारान्त धातु से प्राप्त 'अच्' प्रत्यय का एवं ॠदोरप् 3.3.57 से ॠकारान्त एवं उकारान्त धातु से प्राप्त 'अप्' का भी यह क्तिन् बाधक है, क्योंकि स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 सूत्र कथित सूत्रद्वय से उत्तरवर्ती है। अतः स्त्रीत्व में उक्त इकारान्तादि धातुओं से केवल क्तिन् होता है, अच् एवं अप् नहीं। यथा– इण् + अच् = अयः (पुंल्लिङ्ग)। इण् + क्तिन् = इतिः। स्तु + अप् = स्तवः (पुंल्लिंग)। स्तु + क्तिन् = स्तुतिः।

2. विधि– क्तिन्नाबादिभ्यश्च वक्तव्यः (वा॰ 3.3.94)

'आप्' आदि धातुओं से भी 'क्तिन्' होता है। आप् आदि के

लिए प्रयोगों का अनुसरण ही अनन्य उपाय है, क्योंकि 'आप्' आदि की कोई सूची उपलब्ध नहीं है।

प्रकृति– 'आप्' आदि धातुविशेष।

प्रयोग– आप् + क्तिन् = **आप्तिः**। राध् - **राद्धिः**। दीप् - **दीप्तिः**। ध्वंस् + क्तिन् = **ध्वस्तिः**।

विशेष– यह वार्त्तिक गुरोश्च हलः 3.3.103 से प्राप्त 'अ' का अनुमानतः अपवाद है, क्योंकि इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत प्रत्येक 'आप्' आदि धातु गुरुमान् है, जिससे उक्त सूत्र से 'अ' की प्राप्ति सम्भव है।

3. विधि– श्रुयजिस्तुभ्यः करणे (वा॰, 3.3.94)

श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे (वा॰ 3.3.94- सि॰कौ॰)

श्रु, यज् एवं स्तु (अथवा श्रु, यज्, इष् एवं स्तु) धातुओं से करण कारक में स्त्रीत्व में क्तिन् प्रत्यय होता है।

प्रकृति– श्रु, यज्, इष्, स्तु।

प्रयोग– श्रूयतेऽनया इति = श्रु + क्तिन् = **श्रुतिः** 'कान'। यज् + क्तिन् = **इष्टिः** (वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण। स्तु-**स्तुतिः**। इज्यन्ते पूज्यन्ते देवाः अनया– इष्टिः 'यज्ञ'। स्तूयतेऽनया– स्तुतिः 'स्तोत्र'। 'श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः' – रघु॰ 9.35

विशेष– करण में प्राप्त 'ल्युट्' का यह अपवाद है।

4. विधि– क्तिन्नपीष्यते (वा॰ 3.3.94)

अपि शब्द से संपदादिभ्यः क्विप् (वा॰, 3.3.94) से 'संपदादिभ्यः' का अध्याहार है। अर्थ– सम् आदि से विशिष्ट 'पद्' धातु से 'क्तिन्'।

प्रकृति– सम् - पद्, वि-पद्, प्रति-पद्।

प्रयोग– सम्- पद् + क्तिन् = **सम्पत्तिः**, वि-पद् + क्तिन् = **विपत्तिः**, प्रति-पद् + क्तिन् = **प्रतिपत्तिः** 'बोध'। 'वागर्थप्रतिपत्तये' – रघु॰ 1.1

विशेष– 'क्विप्' (संपदादिभ्यः क्विप् वा॰ 3.3.94) के पक्ष में– संपत्, विपत्, प्रतिपत् आदि।

5. विधि– स्थागापापचो भावे 3.3.95

भाव अर्थ में स्था, गै (गा), पा तथा पच् धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्'।

अन॰– क्तिन् (3.3.94)

अधि॰– स्त्रियाम् (3.3.94), भावे (3.3.18), धातोः (3.1.91)

प्रकृति– 1. स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, 2. गै (गा) शब्दे, 3. पा पाने, 4. पच् पाके।

प्रयोग– 1. प्रस्थीयते = प्र + स्था + क्तिन् = **प्रस्थितिः** 'अवस्था' (द्यतिस्यतिमास्थामित् ति किति (7.4.40) से धातु के आकार को इत्त्व)।

2. उद्गीयते = उत् - गा + क्तिन् = **उद्गीतिः** 'ऊँचे स्वर से गान करना' (घुमास्थागापा॰ 6.4.66 से आकार को ईकारादेश)।

3. प्रपीयते = प्र - पा + क्तिन् = **प्रपीतिः** 'पीना' (घुमास्थागापा॰ 6.4.66 से ईत्त्व)।

4. पच्यते = पच् + क्तिन् = **पक्तिः** 'पकाना' (चोः कुः 8.2.30) से कुत्व।

विशेष– (क) प्र-स्था, उद्-गा एवं प्र-पा से 'आतश्चोपसर्गे' (3.3.106) से अङ् प्राप्त था। पच् (डुपचष्) से 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' (3.3.104) से अङ् प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से इस अङ् का निषेध हुआ।

(ख) यदि वाऽसरूपविधि के अभाव के कारण प्रस्तुत क्तिन् स्था, गा, पा एवं पच् धातु से विहित उक्त अङ् का नित्य बाधक हो जाय तो 'अवस्था, संस्था' आदि अङ्प्रत्ययान्त कैसे सिद्ध होंगे? उत्तर– पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् (1.1.34) में 'व्यवस्था' शब्द के प्रयोग से यह ज्ञापित होता है कि अपवाद क्तिन् इस 'अङ्' का विकल्प से ही बाधक होता है।

6. विधि– मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः 3.3.96

मन्त्रविषय में भाव अर्थ में वृष्, इष् आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में क्तिन्। साथ ही क्तिन् का इकार उदात्त होता है।

अनु॰– क्तिन् (3.3.94)

अधि॰– स्त्रियाम् (3.3.94), भावे (3.3.18), धातोः (3.1.91)

प्रकृति– 1. वृषु-सेचने, 2. इषु इच्छायाम्, 3. डुपचष् पाके, 4. मन ज्ञाने, 5. विद ज्ञाने, 6. भू सत्तायाम्, 7. वी गतिव्याप्तिप्रजनादिषु, 8. रा दाने।

प्रयोग– 1. वृष् + क्तिन् = वृष् ति = **वृष्टिः** (ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ष्टुत्व से तकार को टकार)। मन्त्र में यथा–

'वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति।
यदेषां वृष्टिरसर्जि'– ऋ॰वे॰ 1.38.8

'वृष्टिः' में इकार उदात्त है।

2. इष् + क्तिन् = **इष्टिः** 'इच्छा' (ष्टुत्व-'वृष्टिः' जैसा) मन्त्र में यथा–

'विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः'– ऋ॰वे॰ 4.4.7

'इष्टि' में द्वितीय इकार उदात्त।

3. पच् (डुपचष्) + क्तिन् = **पक्तिः** (चोः कुः 8.2.30 से चकार को कुत्व)। मन्त्र में, यथा–'आदित्पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात्' ऋ॰वे॰, 4.24.5

'पक्तिः' में इकार उदात्त।

4. मन् + क्तिन् = **मतिः** (अनुदात्तोपदेश॰ 6.4.37 से नकार का लोप)। मन्त्र में यथा–

'यदीमुप ह्वरते साधते मति'– ऋ॰वे॰ 1.141.1। 'मतिः' में इकार उदात्त।

5. विद् + क्तिन् = **वित्तिः** (खरि च 8.4.55 से चर्त्व)।

6. भू + क्तिन् = **भूतिः**।

7. वी + क्तिन् = **वीतिः**

मन्त्र में– 'यन्ति वीतये'– अथर्व० 20.69.3।

'वीतये' का अकार उदात्त।

8. रा + क्तिन् = **रातिः**। मन्त्र में– 'विभुर्वा याम उत रातिरश्विना' ऋ.वे०, 1.34.1। 'रातिः' में इकार उदात्त।

विशेष– 1. ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.161 से क्तिन्– प्रत्ययान्त शब्द को आद्युदात्त प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से इस प्रत्यय को उदात्त कर दिया है।

2. सामान्यतः इन धातुओं से क्तिन् का विधान होता था। प्रस्तुत सूत्र से उसकी 'उदात्तता' उद्दिष्ट है।

7. विधि– ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च 3.3.37

ऊति, यूति, जूति, साति, हेति, कीर्त्ति– इन क्तिन्-प्रत्ययान्तों का निपातन। ये सभी अन्तोदात्त हैं।

अनु०– उदात्तः (3.3.96), क्तिन् (3.3.94)।

अधि०– स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), धातोः (3.1.91)

प्रयोग– 1. अव् (अव रक्षणे) + क्तिन् = **ऊतिः** 'रक्षा' (ज्वरत्वर० 6.4.20 से उपधा एवं वकार के स्थान पर 'ऊठ्)।

2. यु + क्तिन् = **यूतिः** 'मिलना' (निपातन से दीर्घ)।

3. जु + क्तिन् = **जूतिः** 'भागना' (निपातन से दीर्घ)।

4. सा (षो अन्तकर्मणि) + क्तिन् = **सातिः** 'अन्त होना' (द्यतिस्यति० 7.4.40 से इत्त्व प्राप्त था, उसका निपातन से अभाव)।

अथवा, सन् (षण् दाने) + क्तिन् = सातिः (जनसनखनाम्० 6.4.42 से आत्व)।

5. हन् + क्तिन् = **हेतिः** 'गति'। निपातन से अकार को एत्व एवं अनुदात्तोपदेश० 6.4.37 से नकार का लोप।

अथवा, हि + क्तिन् = हेतिः (निपातन से धातु के इक् का गुण क्योंकि कित् होने से 'क्तिन्' के रहते क्ङिति च 1.1.5 से गुण-निषेध प्राप्त था)।

6. कृत् + क्तिन् = **कीर्तिः** (चुरादिगणीय होने से ण्यन्त 'कीर्तयति' धातु से 'ण्यासश्रन्थो॰' 3.3.107 से युच् प्राप्त था, निपातन से 'क्तिन्' हुआ है)। कृत् णिच् ति = कीर्तिः (उपधायाश्च 7.1.101 से इत्त्व, रपरत्व, णेरनिटि 6.4.51 से 'णि' का लोप, (उपाधायां च 8.2.78 से उपधा दीर्घ)।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) ॠकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद् भवति इति वक्तव्यम् (वा॰, 3.3.94)।

ॠकारान्त तथा 'लू' आदि धातुओं से विहित 'क्तिन्' प्रत्यय निष्ठा (क्त, क्तवतु) प्रत्ययों की तरह कार्यभागी होता है– ऐसा समझना चाहिए।

प्रयोग– कॄ + क्तिन् = **कीर्णिः** (निष्ठावद्भाव होने से रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः 8.2.42 से नत्व, रषाभ्यां नो णः समानपदे 8.4.1)

गॄ- **गीर्णिः**। शॄ-**शीर्णिः**।

लू + क्तिन् = **लूनिः** (निष्ठावद्भाव होने से ल्वादिभ्यः 8.2.44 से क्तिन् के तकार को नत्व)।

पू– **पूनिः**।

सम्ब॰ (2) चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः (वा॰ 3.3.94, सि॰कौ॰)

'क्तिन्' के परे रहते 'चाय्' (पूजा करना) का 'चि' भाव होता है।

प्रयोग– अप-चाय् + क्तिन् = **अपचितिः** (स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से क्तिन्, प्रस्तुत वार्त्तिक से चाय् को 'चि' भाव)।

सम्ब॰ (3) कृदिकारादक्तिनः (वा॰ 4.1.45)

क्तिन्-भिन्न कृदन्तर्गत इकारान्त प्रातिपदिक से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह बह्वादिभ्यश्च 4.1.45 से सम्बद्ध वचन है।

प्रयोग– रात्रि + ङीष् = **रात्री**। पक्ष में- **रात्रिः**।

सम्ब॰ (4) सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके (वा॰ 4.1.45)

कुछ लोगों का कहना है कि क्तिन्नर्थक प्रत्यय से भिन्न कृत् प्रत्ययों से युक्त प्रातिपदिक से विकल्प से 'ङीष्' होता है।

प्रयोग– रात्रि–रात्रि एवं रात्रिः।

सम्ब॰ (5) मन्क्तिन्व्याख्यानशयनासनस्थानयाजकादिक्रीताः 6.2.151

उत्तरपदस्थानीय, कारकोत्तरवर्ती क्तिन्- प्रत्ययान्त का अन्त्य स्वर उदात्त।

प्रयोग– **पाणिनिकृतिः** (पाणिनि-कृ + क्तिन्, स्त्रियां क्तिन् 3.3.94)। इसमें अन्तिम इकार उदात्त है।

सम्ब॰ (6) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च 7.2.9

ति (क्तिन् एवं क्तिच्) के परे रहते इट्- आगम नहीं होता है।

प्रयोग– दीप् + क्तिन् = **दीप्तिः** (स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से क्तिन्, प्रस्तुत सूत्र से इट् का अभाव।

क्त्रि

क्त्रि = त्रि। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः धातु का सम्प्रसारण– वप् + त्रि + मम् = उप्त्रिमम्।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

3. झलादि। अतः चोः कुः 8.2.30 से कुत्व। पच् + त्रि + मम् = पक्त्रिमम्।

4. हलादि, वलादि एवं खरादि भी।

1. विधि– ड्वितः क्त्रिः 3.3.88

ड्-इत्संज्ञक धातु से भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में क्त्रि।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक

प्रकृति– 'डु' की इत्संज्ञा जिस धातु में होती है। ('आदिर्ञिटुडवः' 1.3.5 में 'डु' की इत्संज्ञा) जैसे– लभ् (डुलभष्) प्राप्तौ, भ्वा॰ आ॰।

विशेष– क्त्रेर्मम् नित्यम् (4.4.20) से क्त्रिप्रत्ययान्त शब्द से निर्वृत्त अर्थ में नित्य 'मम्' प्रत्यय होता है। अतः 'क्त्रि' प्रत्यय सर्वदा 'मम्' प्रत्यय से युक्त रहता है– 'तेन क्त्र्यन्तं नित्यं मप्रत्ययान्तमेव भवति, विषयान्तरे न प्रयोक्तव्यमिति'– का॰ 4.4.20)।

प्रयोग– 1. लाभेन निर्वृत्तम् = लभ् + क्त्रि + मम् (क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20) = **लब्ध्रिमम्** 'अर्थात् लाभ से सम्पन्न'। (झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40 से तकार को धकार, झलां जश् झशि 8.4.53 से धातु के भकार को बकार। यथा– 'निघानिघतरुच्छन्ने तस्मिंस्ते लब्ध्रिमैः फलैः'– भट्टिकाव्य, 7/65

2. डुपचष् पाके (भ्वादि) = पच्।

पाकेन निर्वृत्तम् = पच् + क्त्रि + मम् = **पक्त्रिमम्** 'पाक से सम्पन्न' (चोः कुः 8.2.30 से कुत्व)।

3. डुवप् बीजसन्ताने (भ्वादि) = वप्।

वपेन निर्वृत्तम् = वप् + क्त्रि + मम् = **उप्त्रिमम्** 'बोने से उपजा' (वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15 से सम्प्रसारण)। यथा– असंस्कृत्रिमसंख्यानावनुप्त्रिम-फलाशिनौ'– भट्टिकाव्य, 4/37।

4. डुभृञ् धारणपोषणयोः (भ्वादि) = भृ।
भाव में– भृ + क्ति = भृत्रि। पुनः निर्वृत्त अर्थ में मम् (क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20 से मम्)– **भृत्रिमम्** 'पाला पोसा गया' (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

5. डुधाञ् धारणपोषणयोः (जुहोत्यादि) = धा। भाव में-धा + क्त्रि = **हित्रिमम्** 'धारण किया गया' (दधातेर्हिः 7.4.42 से धा को 'हि' आदेश, क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20 से मम्)।

6. डुमिञ् प्रक्षेपणे (स्वादि) = मि।
मि + क्त्रि + मम् (क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20 से मम्) = **मित्रिमम्** 'प्रेक्षपण से निष्पन्न'।

7. डुकृञ् करणे (तनादि) = कृ।
भावे– कृ + क्त्रि + मम् (क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20 से मम्) = **कृत्रिमम्** अर्थात् कारेण निर्वृत्तम् 'कर्मों से सम्पन्न'। (क्ङिति च 1.1.5 से गुण-निषेध)।

8. डु क्रीञ् द्रव्यविनिमये = क्री
भावे- क्री + क्त्रि = **क्रीत्रिमम्** 'द्रव्यविनिमय से सम्पन्न' (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध, क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20 से मम्)।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) क्त्रेर्मग् नित्यम् 4.4.20

तृतीयासमर्थ क्त्रिप्रत्ययान्त शब्द से निर्वृत्त अर्थ में नित्य मम् प्रत्यय।

सूत्र में 'नित्यम्'– के कथन से 'क्त्रि' प्रत्ययान्त को सर्वदा 'मम्' के साथ ही व्यवहृत होना है।

प्रयोग– कृ + क्त्रि + मम् = कृत्रिमम्। ड्वितः क्त्रिः 3.3.88 से क्त्रि। साथ ही प्रस्तुत सूत्र से 'मम्'।

क्त्वा

क्त्वा = त्वा। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः धातु का सम्प्रसारण-स्वप् + क्त्वा = सुप्त्वा (वचिस्वपि॰ 6.1.15), ग्रह् + क्त्वा = गृहीत्वा (ग्रहिज्या॰ 6.1.16)।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

3. झलादि कित्। अतः अनुदात्तोपदेश॰ 6.4.37 से अनुनासिक लोप, रम् + क्त्वा = रत्वा।

4. हलादि, वलादि एवं खरादि भी। वलादि आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्– आगम (सेवित्वा, पठित्वा)। खरादि होने से खरि च 8.4.55 से चर्त्व (भित्त्वा)।

5. अव्यय (क्त्वातोसुन्कसुनः 1.1.40)- कृ + कृत्वा = 'कृत्वा' अव्यय है।

1. विधि– अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा 3.4.18

प्रतिषेधवाचक, अलम् तथा खलु शब्द के उपपद होने पर धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है, प्राचीन आचार्यों के मत में।

प्रकृति– अलम् तथा खलु से युक्त धातुसामान्य।

प्रयोग– अलम्– कृ + क्त्वा = **अलंकृत्वा** 'मत कर'।

खलु– कृ + क्त्वा = **खलुकृत्वा** 'मत कर'।

इसप्रकार अलं बाले रुदित्वा (रुद् + क्त्वा) 'हे बालिके, मत रो'।

विशेष– 1. प्रतिषेधार्थक अलम् एवं खलु न हो तो क्त्वा नहीं, यथा– अलङ्कारः (अलम् + कृ + घञ्) 'आभूषण'।

2. प्राचीन आचार्यों के मत में उक्त 'क्त्वा' होता है जबकि नवीनों के मत में उक्त अर्थ में भिन्न प्रत्यय होता है, यथा- अलं रोदनेन (अलम् - रुद् + ल्युट्)।

2. विधि– उदीचां माङो व्यतीहारे 3.4.19
व्यतीहार अर्थवाली 'माङ्' धातु से उदीच्य आचार्यों के मत में 'क्त्वा'। व्यतीहार अर्थात् परस्पर विनिमय।

अनु॰– (क्त्वा 3.4.18)

प्रकृति– व्यतीहारार्थक माङ् (मेङ् प्रणिदाने, भ्वादि, सकर्मक, आत्मने॰)।

प्रयोग– अप-मा + क्त्वा = **अपमित्य** याचते 'परस्पर विनिमय करके माँगता है' (समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा को ल्यप्, मयतेरिदन्यतरस्याम् 6.4.70 से आकार को इकार, ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71)।

विशेष– 1. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (3.4.21) से पूर्वकालिक क्त्वा प्राप्त था। परन्तु 'अपमित्य याचते' में अपूर्वकालिक क्त्वा है। अतः यह 'समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 का अपवाद है।

2. 'उदीचाम्' के कथन से उत्तरदेशीय आचार्यों को छोड़ अन्य आचार्यों के मत में यथाप्राप्त (समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21) पूर्वकालिक क्त्वा होगा– याचित्वा अपमयते 'माँगकर परस्पर विनिमय करता है'।

3. विधि– पराऽवरयोगे च 3.4.20
जब पर का अवर (=पूर्व) के साथ, अथवा पूर्व का पर के साथ योग गम्यमान हो तो धातु से 'क्त्वा'।

अनु॰– क्त्वा (3.4.18)

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– आप्लृ (आप्) व्याप्तौ, स्वादि॰, पर॰।

प्रयोग– 1. **अप्राप्य** नदीं पर्वतः स्थितः 'पर भाग में स्थित नदी से पूर्व पर्वत स्थित है'। यहाँ 'पर' का अवर अर्थात् पूर्व के साथ योग है। वाक्यार्थ यह है कि 'बिना नदी के पास पहुँचे पर्वत स्थित है' अर्थात् नदी से इधर (पूर्व भाग में) ही पर्वत है। पर्वत की पूर्वभाग में स्थिति नदी की पर भाग में अवस्थिति से निश्चित की जा रही है। अतः न-प्र + आप् + क्त्वा = अप्राप्य (समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा को ल्यप्, नलोपो नञः 6.3.73 से न का लोप)।

2. **अतिक्रम्य** तु पर्वतं नदी स्थिता 'पर्वत के पश्चात् पर भाग में नदी स्थित है'। यहाँ अवर (=पूर्व) का पर के साथ योग है। अतिक्रम् + क्त्वा = अतिक्रम्य (समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा को ल्यप्)।

4. विधि– समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21

जिन दो क्रियाओं का समान अर्थात् एक कर्त्ता है, उन क्रियाओं में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है, उससे 'क्त्वा'।

अनु॰– क्त्वा (3.4.18)

प्रकृति– समानकर्तृक दो क्रियाओं में पूर्वकाल में विद्यमान धातुसामान्य, यथा– 'पीकर चलता है' में पूर्वकालिक 'पा' धातु।

प्रयोग– **भुक्त्वा** व्रजति 'खाकर जाता है'। **पीत्वा** व्रजति 'पीकर जाता है'। भुक्त्वा = भुज् + क्त्वा, पीत्वा = पा + क्त्वा (घुमास्थागापा॰ 6.4.66 से आकार को ईत्व)। यहाँ भुज् एवं व्रज् तथा पा एवं व्रज् के प्रयोग में उभय क्रियाओं का कर्त्ता एक है। अतः क्रमशः पूर्वकालिक भुज् एवं पा से 'क्त्वा'।

विशेष– 1. 'समानकर्तृकयोः' में व्यवहृत द्विवचन (अर्थात् दो ही क्रियाएँ हों– यह) अभीष्ट नहीं है, अपितु अनेक क्रियाओं का यदि समान कर्ता हो तो पूर्वकालिक धातुओं से भी क्त्वा होता है, यथा– स्नात्वा, पीत्वा, दत्त्वा व्रजति। 'नहाकर, पीकर और देकर जा रहा है'। यहाँ पूर्वकालिक स्ना, पा एवं दा से क्त्वा।

2. 'समानकर्तृकयोः' के कथन से कर्ता की भिन्नता से 'क्त्वा' नहीं, यथा– भुक्तवति ब्राह्मणे गच्छति देवदत्तः 'ब्राह्मण के खा लेने पर देवदत्त जा रहा है'। यहाँ ब्राह्मण एवं देवदत्त– दो कर्त्ता हैं।

3. 'पूर्वकाले' के कथन से 'व्रजति च जल्पति च' में व्रज् से 'क्त्वा' नहीं, क्योंकि उभय क्रियाएँ समानकालिक हैं।

4. 'आस्यं व्यादाय स्वपिति, चक्षुः सम्मील्य हसतीत्युपसङ्ख्यानमपूर्वकालत्वात्' (वा॰, 3.4.21)– 'आस्यं

व्यादाय स्वपिति 'मुँह खुला करके सो रहा है) एवं चक्षुः **सम्मील्य** हसति (आँख बन्द करके हँसता है) –इन दोनों प्रयोगों में समानकालिक क्रिया का वाचक होने पर भी 'व्याङ् + दा' एवं 'सम् + मील्' धातुओं से क्त्वा का व्यवहार उचित है।

यहाँ मुँह खोलना एवं सोना और हँसते समय आँख बन्द कर लेना– ये दो-दो क्रियाएँ समानकालिक हैं तथापि इस वार्त्तिक से 'क्त्वा'।

5. विधि– आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22

आभीक्ष्ण्य अर्थात् पौनःपुन्य अर्थ में समानकर्तृक दो धातुओं में जो पूर्वकालिक धातु हो उससे णमुल् एवं क्त्वा।

अनु॰– समानकर्तृकयोः॰ (3.4.21), क्त्वा (3.4.18)

अर्थ– भाव।

प्रकृति– पौनःपुन्य अर्थ में समानकर्तृक दो धातुओं में जो पूर्वकालिक हो, वह धातु।

प्रयोग– **भुक्त्वा भुक्त्वा** व्रजति, भोजं भोजं व्रजति 'खा-खाकर जाता है'। भुज् + क्त्वा = भुक्त्वा। णमुल्-भोजम्। आभीक्ष्ण्य के द्योतन हेतु द्वित्व।

6. विधि– विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु 3.4.24

अग्रे, प्रथम तथा पूर्व शब्द उपपद हों तो समानकर्तृक पूर्वकालिक धातु से विकल्प से क्त्वा एवं णमुल्।

अनु॰– समानकर्तृकयोः॰ (3.4.21), क्त्वा (3.4.18), णमुल् (3.4.22)

अर्थ– भाव।

प्रकृति– 'अग्रे' आदि उपपदों से युक्त समानकर्तृक धातुओं में पूर्वकालिक धातु।

प्रयोग– 1. अग्रे— अग्रे **भुक्त्वा** व्रजति। अग्रे भोजं व्रजति 'आगे खाकर जाता है'। भुज् + क्त्वा = भुक्त्वा। भुज् + णमुल्।

2. प्रथम-प्रथमं **भुक्त्वा** (णमुल् से 'भोजं') व्रजति 'पहले खाकर जाता है'। क्त्वा पूर्ववत्।

3. पूर्व-पूर्वं **भुक्त्वा** (णमुल् से 'भोजं') व्रजति- 'पहले खाकर जाता है'।

7. विधि- अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ 3.4.59

अयथाभिप्रेताख्यान = अयथा + अभिप्रेत + आख्यान (इष्ट का कथन जैसा होना चाहिए वैसा न होना (अर्थात् अप्रिय कथन ऊँचे स्वर से अथवा प्रिय कथन नीचे स्वर से)।

अयथाभिप्रेताख्यान गम्यमान हो तो अव्यय के उपपद होने पर 'कृञ् करणे' (कृ-करना) धातु से क्त्वा एवं णमुल्।

अधि॰- धातोः (3.1.91), यह 'कृञः' का विशेषण है- कृञः धातोः।

अर्थ- भाव।

प्रकृति- अव्यय उपपद से युक्त 'कृ' ('डुकृञ्' करणे) धातु, अयथाभिप्रेताख्यान में।

प्रयोग- 1. हे ब्राह्मण! पुत्रस्ते जातः 'हे ब्राह्मण! तुम्हारा बेटा हुआ है' (अतिप्रसन्नता का प्रसङ्ग परन्तु सूचना देनेवाला धीरे से बोल रहा है); अतः उत्तर में- हे वृषल! **नीचैः कृत्वा** आचक्षे, **नीचैःकृत्य** आचक्षे, नीचैःकारम् आचक्षे (यहाँ 'णमुल्') अर्थात् अरे मूर्ख! इस सुखद समाचार को धीरे क्यों बोल रहे हो (अर्थात् जोर से बोलना चाहिए)?

नीचैः कृ + क्त्वा (क्त्वा का विधान प्रस्तुत सूत्र से) = **नीचैः कृत्वा**। पक्ष में क्त्वा च 2.2.22 से समास होने से समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से ल्यप् = नीचैःकृत्य।

2. हे ब्राह्मण! तब पुत्रेण वधः कृतः 'हे ब्राह्मण, तुम्हारे पुत्र ने किसीका वध कर डाला (निन्दा का प्रसङ्ग है, परन्तु इसे बोलनेवाला ऊँची आवाज में बोल रहा था)। अतः इसके उत्तर में- अरे मूर्ख! **उच्चैः कृत्वा** आचक्षे, **उच्चैःकृत्य** आचक्षे, उच्चैः कारम् आचक्षे ('णमुल्') अर्थात् अरे मूर्ख!

इतनी जोर से क्यों बोल रहे हो (अर्थात् धीरे बोलना चाहिए)? उच्चैः + कृ = क्त्वा = उच्चैः कृत्वा। पक्ष में क्त्वा च 2.2.22 से समास होने से समासेऽनञ्० 7.1.37 से ल्यप् = उच्चैःकृत्य।

विशेष– 'अयथाभिप्रेताख्याने' के कथन से यथाभिप्रेताख्यान में यह सूत्र नहीं आता– उच्चैः कृत्वा आचष्टे-पुत्रस्ते जातः। इसमें ल्यप्, णमुल् नहीं। 'क्त्वा' भी समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21 से विहित है।

8\. विधि– तिर्यच्यपवर्गे 3.4.60

अपवर्ग = समाप्ति। यदि अपवर्ग गम्यमान हो, तो 'तिर्यक्' शब्द के उपपद होने पर 'कृञ्' (कृ) धातु से क्त्वा एवं णमुल्।

अनु०– कृञः क्त्वाणमुलौ (3.4.59)।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– तिर्यक् + कृ।

प्रयोग– **तिर्यक्कृत्य** गतः 'सारा कार्य समाप्त करके चला गया'। तिर्यक्– कृ + क्त्वा = तिर्यक् कृत्वा, क्त्वा च 2.2.22 से विकल्प से समास, अतः समासेऽनञ्० 7.1.37 से ल्यप्– तिर्यक्कृत्य। समास के अभाव में **तिर्यक् कृत्वा** गतः। णमुल्- तिर्यक्कारम्।

विशेष– अपवर्ग (समाप्ति) की सूचना न होने पर 'तिर्यक् कृत्वा काष्ठं गतः' (लकड़ी को टेढ़ा करके चला गया) अर्थात् काम अधूरा रखकर चला गया। यहाँ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21 से 'क्त्वा'।

9\. विधि– स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः 3.4.61

तस्– प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची शब्द उपपद हो, तो कृ एवं भू धातुओं से क्त्वा एवं णमुल्।

अनु०– क्त्वाणमुलौ (3.4.59)।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– तस्– प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाचक शब्द उपपद में हो– ऐसी कृ एवं भू धातु, यथा– मुखतः कृ, पृष्ठतः भू।

प्रयोग– **मुखतःकृत्य** गतः 'सामने करके चला गया।'

'मुखतः' यह तसिल् - प्रत्ययान्त है। क्त्वा च 2.2.22 से विकल्प से समास, अतः समासेऽनञ्० 7.1.37 से ल्यप्– मुखतःकृत्य, समास के अभाव में– **मुखतः कृत्वा** गतः।

भू धातु से– **पृष्ठतोभूय** गतः 'पीठ करके चला गया' पूर्ववत् विकल्प से समास एवं ल्यप्। समास के अभाव पक्ष में– **पृष्ठतः भूत्वा** गतः।

णमुल् के पक्ष में – मुखतःकारं गतः।

10. विधि– नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे 3.4.62

'च्वि'– अर्थ में वर्तमान ना-धार्थप्रत्ययान्त शब्द उपपद हों तो कृ एवं भू धातुओं से क्त्वा एवं णमुल्।

अनु०– कृभ्वोः (3.4.61), क्त्वाणमुलौ (3.4.59)

अर्थ– भाव।

प्रकृति– 1. ना-प्रत्ययान्त-उपपदक कृ एवं भू, यथा– नाना कृ, नाना भू।

2. धा-प्रत्ययान्त-उपपदक कृ एवं भू, यथा– द्विधा कृ, द्विधा भू।

प्रयोग– 1. अनाना नाना कृत्वा गतः = **नानाकृत्य, नाना कृत्वा** गतः। यहाँ विनञ्भ्यां नानाञौ नसह (5.2.27) से नञ् से ना प्रत्यय होने से 'नाना' बना है। अभूततद्भाव अर्थ में नाना से परे विद्यमान 'कृ' धातु से प्रस्तुत सूत्र से 'क्त्वा' हुआ। समास पक्ष में क्त्वा को ल्यप् (समासेऽनञ् 7.1.37)- नानाकृत्य। समास के अभाव में नाना कृत्वा। णमुल् के पक्ष में 'नानाकारम्'।

इसप्रकार **विनाभूय** (विना-भू + क्त्वा (ल्यप्)। **विना भूत्वा**। णमुल् के पक्ष में– विनाभावम्।

3. धार्थप्रत्ययान्त– अद्विधा द्विधा कृत्वा गतः = **द्विधाकृत्य, द्विधा कृत्वा** गतः। यहाँ संख्याया विधार्थे वा (5.3.42) से संख्यावाची 'द्वि'– शब्द से 'धा' प्रत्यय हुआ है। तब द्विधा + कृ से क्त्वा। समास होने पर समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा = ल्यप्। द्विधाकृत्य। समास के अभाव में द्विधा कृत्वा। णमुल् के पक्ष में द्विधा कारम्।

11. विधि– तूष्णीमि भुवः 3.4.63
'तूष्णीम्' के उपपद होने पर 'भू' धातु से क्त्वा एवं णमुल्।
अनु॰– क्त्वाणमुलौ (3.4.59)
अर्थ– भाव।
प्रकृति– तूष्णीम्– 'भू'।
प्रयोग– **तूष्णींभूय** गतः, **तूष्णीं भूत्वा** गतः 'चुप होकर चला गया'। इसमें 'क्त्वा च' 2.2.22 से समास होने पर समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा को ल्यप्– तूष्णींभूय। समास न होने पर तूष्णीं भूत्वा। णमुल् के पक्ष में– तूष्णीं भावम्।

12. विधि– अन्वच्यानुलोम्ये 3.4.64
आनुलोम्य = अनुकूलता। आनुलोम्य गम्यमान हो, तो अन्वक् शब्द के उपपद होने पर 'भू' धातु से क्त्वा एवं णमुल्।
अनु॰– भुवः (3.4.63), क्वाणमुलौ (3.4.59)
अर्थ– भाव।
प्रकृति– अन्वक्-भू।
प्रयोग– **अन्वग्भूय** आस्ते, **अन्वग् भूत्वा** आस्ते 'अनुकूल बनकर रहता है'। अन्वक् - भू + क्त्वा = इसमें समास होने पर समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा को ल्यप् - **अन्वग्भूय।** समास के अभाव में - **अन्वग् भूत्वा**। णमुल् के पक्ष में अन्वग्भावम्।

सम्बद्धस्थल–
सम्ब॰ (1) क्त्वातोसुन्कसुनः 1.1.40

क्त्वा-प्रत्ययान्त की अव्यय-संज्ञा होती है।

प्रयोग– कृ + क्त्वा = कृत्वा, पठ् + क्त्वा = पठित्वा। अव्यय होने से सभी विभक्तियों, सभी वचनों तथा सभी लिङ्गों में क्त्वा-प्रत्ययान्त का समान रूप से व्यवहार होता है।

सम्ब॰ (2) मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा 1.2.7

मृड् – आदि (सेट्) धातुओं से विहित क्त्वा 'कित्' होता है। न क्त्वा सेट् (1.2.18) से सेट् धातुओं से विहित क्त्वा का कित्त्व निषिद्ध है। प्रस्तुत सूत्र उसका उपवाद है।

प्रयोग–
1. मृड सुखने (तुदा॰ प॰) + क्त्वा = मृडित्वा।
2. मृद क्षोदे (क्र्या॰ प॰) + क्त्वा = मृदित्वा।
3. गुध रोषे (क्र्या॰ प॰) + क्त्वा = गुधित्वा।
4. कुष् (कुष् निष्कर्षे, क्रया॰ प॰)– कुषित्वा।
5. क्लिशू विबाधने (क्र्या॰प॰)– क्लिशित्वा।
6. वद व्यक्तायां वाचि (भ्वा॰प॰)– उदित्वा (वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15 से धातु का सम्प्रसारण)।
7. वस निवासे (भ्वा॰प॰)– उषित्वा (वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15 से सम्प्रसारण)।

यहाँ 'मृद्' आदि पाँच धातुओं में क्त्वा के कित्त्व के कारण पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध है। 'वद्' एवं 'वस्' का इस कित्त्व के कारण सम्प्रसारण है।

सम्ब॰ (3) रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च 1.2.8

'रुद' आदि धातुओं से विहित क्त्वा प्रत्यय भी कित् है। रुद, विद एवं मुष– इन धातुओं से रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च 1.2.26 से क्त्वा को विकल्प से कित्त्व प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से यह कित्त्व नित्य बना।

'ग्रह्' से कित्त्व का विधान विध्यर्थ है। स्वप् एवं प्रच्छ् से कित्त्व

का कथन विशिष्ट उद्देश्य से नहीं है, केवल सन् के कित्त्व कथन के साथ यह संश्लिष्ट है।

प्रयोग– 1. रुदिर् अश्रुविमोचने (अदा॰प॰) + क्त्वा = रुदित्वा।

2. विद ज्ञाने (अदा॰प॰) = विदित्वा।

3. मुष स्तेये (क्र्या॰प॰)– मुषित्वा।

इनमें पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त लघूपधगुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध है।

4. ग्रह (उपादाने, क्र्या॰,उ॰) + क्त्वा = गृहीत्वा।

5. स्वप् शये (अदा॰प॰) – सुप्त्वा।

6. प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् (तुदा॰प॰)– पृष्ट्वा। 'ग्रह्' एवं 'प्रच्छ्' में इस कित्त्व के कारण ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से एवं 'स्वप्' में वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण हुआ।

सम्ब॰ (4) न क्त्वा सेट् 1.2.18

इट्– आगम से युक्त 'क्त्वा' कित् नहीं होता। क्त्वा स्वभाव से कित् है। यह सूत्र उसका अपवाद है।

प्रयोग– वृत् + क्त्वा = वर्त्तित्वा। क्त्वा के कित्त्व के कारण यहाँ पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त उपधागुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध प्राप्त था। परन्तु इस सूत्र से क्त्वा का कित्त्व बाधित होने से पुनः लघूपधगुण एवं रपरत्व हुआ– वर्त्तित्वा।

विशेष– सूत्र में 'सेट्' के कथन से इट्– रहित क्त्वा का कित्त्व यथावत् रहता है, यथा कृ + क्त्वा = कृत्वा के कित्त्व के कारण गुणनिषेध हुआ है।

सम्ब॰ (5) पूङः क्त्वा च 1.2.22

'पूङ्' धातु से विहित इट् से विशिष्ट क्त्वा का कित्त्व नहीं होता है।

प्रयोग– पूङ् + क्त्वा = पवित्वा-पूत्वा, श्र्युकः किति 7.2.11 से प्राप्त इण्निषेध को बाधकर 'पूङश्च' 7.2.51 से वैकल्पिक इट्। इट् के पक्ष में प्रस्तुत सूत्र से कित्त्व का निषेध होने से गुण हुआ–

पवित्वा। इट् के अभाव में कित्त्व के रहने से सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध हुआ है।

सम्ब० (6) नोपधात् थफान्ताद् वा 1.2.23

नकार–उपधावाली थकारान्त एवं फकारान्त धातुओं से इडागमविशिष्ट 'क्त्वा' विकल्प से कित् नहीं होता है। न क्त्वा सेट् 1.2.18 से नित्य ही कित्त्व निषेध था, प्रस्तुत सूत्र से उसका विकल्प विधान किया गया।

प्रयोग– 1. नोपध-थकारान्त—ग्रन्थ् + क्त्वा = **ग्रथित्वा-ग्रन्थित्वा**। कित्त्व के पक्ष में अनिदितां हल० 6.4.24 से अनुनासिक का लोप-ग्रथित्वा। कित्त्व के अभाव में– ग्रन्थित्वा।

2. नोपध-फकारान्त— गुम्फ् + क्त्वा = गुफित्वा-गुम्फित्वा। कित्त्व के पक्ष में अनिदितां हल० 6.4.24 से अनुनासिक का लोप– गुफित्वा। कित्त्व के अभाव में– गुम्फित्वा।

सम्ब० (7) वञ्चिलुञ्च्यृतश्च 1.2.24

वञ्चि, लुञ्चि तथा ऋत् धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट 'क्त्वा' विकल्प से कित् नहीं होता। न क्त्वा सेट् 1.2.18 से इन सेट् धातुओं से क्त्वा का कित्त्व नित्य बाधित था। प्रस्तुत सूत्र से उसका विकल्प विधान किया गया।

प्रयोग– 1. वञ्चु प्रलोभने (चुरा०आ०) + क्त्वा = वचित्वा– वञ्चित्वा। कित्त्व के पक्ष में अनिदितां हल० 6.4.24 से अनुनासिक का लोप-वचित्वा। कित्त्व के अभाव में– वञ्चित्वा।

2. लुञ्च् अपनयने (भ्वा०प०) + क्त्वा = लुचित्वा-लुञ्चित्वा (पूर्ववत् विकल्प से अनुनासिक लोप)।

3. ऋत्– यह सौत्र धातु है। ऋत् + क्त्वा = ऋतित्वा-अर्तित्वा। कित्त्व के पक्ष में क्ङिति च 1.1.5 से लघूपधगुण (पुगन्तलघू० 7.3.86) का निषेध- ऋतित्वा। कित्त्व के अभाव में गुण, रपरत्व-अर्तित्वा।

विशेष– वचित्वा-वञ्चित्वा में 'वञ्चु' धातु से 'उदितो वा' 7.2.56 से विकल्प से क्त्वा को इट्-आगम होता है। इट् के अभाव पक्ष में

प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है। अतः उसमें क्त्वा स्वभावतः 'कित्' रहता है। वञ्च् + क्त्वा = वक्त्वा (अनिदितां हल० 6.4.24 से अनुनासिक लोप, चोः कुः 8.2.30 से कुत्व)।

सम्ब० (8) तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य 1.2.25

तृष्, मृष् एवं कृश् धातुओं से विहित इडागमविशिष्ट 'क्त्वा' काश्यपाचार्य के मत में विकल्प से कित् नहीं होता है। न क्त्वा सेट् 1.2.18 से क्त्वा का कित्त्व नित्य निषिद्ध था। प्रस्तुत सूत्र से उसका विकल्प विधान किया गया। काश्यप का ग्रहण पूजार्थ है।

प्रयोग– 1. तृष् पिपासायाम् (दिवा० प०) + क्त्वा = तृषित्वा-तर्षित्वा। 2. मृष् तनूकरणे (दिवा०प०)– मृषित्वा-मर्षित्वा। 3. कृश् तनूकरणे (दिवा० प०)– कृशित्वा-कर्शित्वा। इनमें कित्त्व के पक्ष में लघूपधगुण 'क्ङिति च' 1.1.5 से बाधित हुआ है– तृषित्वा, मृषित्वा, कृशित्वा। कित्त्व के अभाव में पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधागुण, रपरत्व।

सम्ब० (9) रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च 1.2.26

उकारोपध तथा इकारोपध रलन्त तथा हलादि धातुओं से इडागम-विशिष्ट सन् तथा क्त्वा विकल्प से कित् होते हैं। न क्त्वा सेट् 1.2.18 का यह अपवाद है।

प्रयोग– 1. उकारोपध रलन्त हलादि– द्युत् + क्त्वा = द्युतित्वा-द्योतित्वा। कित्त्व पक्ष में उपधागुण का 'क्ङिति च' 1.1.5 से निषेध-द्युतित्वा। कित्त्वाभाव में पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधागुण– द्योतित्वा।

2. इकारोपध रलन्त हलादि– लिख् + क्त्वा = लिखित्वा - लेखित्वा। गुण-निषेध एवं गुण पूर्ववत्।

विशेष– 1. सूत्र में 'रलन्त' के कथन से दिव् + क्त्वा = देवित्वा, क्योंकि दिव् धातु का अन्त्य वर्ण 'रल्' प्रत्याहार में नहीं है।

2. सूत्र में 'व्युपधात्' (उकार अथवा इकार उपधा में हो) कहने से 'वृत्' धातु से वर्त्तित्वा, क्योंकि इस धातु की उपधा में ऋकार है।
3. 'हलादेः' के कथन से अजादि धातु से उक्त कित्त्व विकल्प नहीं होता– इष् - क्त्वा = एषित्वा (न क्त्वा सेट् 1.2.18 से कित्त्व निषेध होने से लघूपधगुण)।

सम्ब॰ (10) क्त्वा च 2.2.22

क्त्वा-प्रत्ययान्त के साथ तृतीया प्रभृति उपपदों का विकल्प से तत्पुरुष समास होता है।

प्रयोग– उच्चैःकृत्य, उच्चैः कृत्वा। उच्चैः– कृ + क्त्वा = (अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ 3.4.59 से क्त्वा)। प्रस्तुत सूत्र से समास के पक्ष में समासेऽनञ्॰ 7.1.37 से क्त्वा को ल्यप् - उच्चैः कृत्य। समास के अभाव में उच्चैः कृत्वा 'ऊँचा करके'।

सम्ब॰ (11) न यद्यनाकाङ्क्षे 3.4.23

समानकर्तावाली धातुओं में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में वर्तमान धातु से यत् शब्द उपपद होने पर क्त्वा एवं णमुल् नहीं होते हैं। समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21 से प्राप्त क्त्वा का यह अपवाद है।

प्रयोग– यदयं भुङ्क्ते ततः पठति 'यह बार-बार पहले खाता है, पीछे पढ़ता है'। इसमें भोजन और अध्ययन का क्रम अनाकाङ्क्षित है। अतः 'भुज्' से क्त्वा नहीं आया।

सम्ब॰ (12) क्रमश्च क्त्वि 6.4.18

झलादि क्त्वा प्रत्यय के परे रहते 'क्रम्' धातु की उपधा को भी दीर्घ होता है, विकल्प से।

प्रयोग– क्रम् + क्त्वा = क्रान्त्वा– क्रन्त्वा (विकल्प से उपधा दीर्घ)

विशेष– झलि (6.4.15) का अनुवर्त्तन है, अतः झलादि क्त्वा होना चाहिए; अन्यथा यह उपधादीर्घ नहीं होता। यथा– क्रम् इ त्वा =

क्रमित्वा (इडागम के कारण क्त्वा यहाँ अजादि है, झलादि नहीं)।

सम्ब॰ (13) क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः 6.4.31

'क्त्वा' प्रत्यय के परे 'स्कन्द्' एवं 'स्यन्द्' के नकार का लोप नहीं।

प्रयोग– 1. स्कन्द् + क्त्वा (समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा) = स्कन्त्वा (अनिदितां हल॰ 6.4.24 से प्राप्त नकार लोप का प्रस्तुत सूत्र से निषेध)।

2. स्यन्द् + क्त्वा = स्यन्त्वा-स्यन्दित्वा (उदित् होने से उदितो वा 7.2.56 से विकल्प से इट्)। शेष 'स्कन्त्वा' जैसा।

सम्ब॰ (14) जान्तनशां विभाषा 6.4.32

जकारान्त अङ्ग तथा नश् के आधारभूत नकार का क्त्वा प्रत्यय के परे रहने पर विकल्प से लोप।

अनिदितां हल॰ 6.4.24 से प्राप्त नित्य न लोप का यहाँ विकल्प कथन है।

प्रयोग– 1. जकारान्त, यथा– भञ्ज् + क्त्वा = भक्त्वा– भङ्क्त्वा।

2. नश्, यथा– नष्ट्वा, नंष्ट्वा।

(मस्जिनशोर्झलि 7.1.60 से नुम्– आगम, नुम् के नकार का ही विकल्प से लोप)।

सम्ब॰ (15) समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37

अनञ्-पूर्वक समास से परे 'क्त्वा' के स्थान में ल्यप् का आदेश।

प्रयोग– प्र - कृ + क्त्वा (समानकर्तृकयोः 3.4.21 से क्त्वा) = प्रकृत्य (प्रकृतसूत्र से क्त्वा को ल्यप्, ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्-आगम)।

विशेष– अनञ्पूर्व के कथन से नञ्-पूर्व में ल्यप् नहीं, यथा– अकृत्वा, अहृत्वा।

सम्ब॰ (16) क्त्वापि छन्दसि 7.1.38

वैदिक प्रयोग में अनञ्पूर्वक समास में परे 'क्त्वा' को क्त्वा एवं ल्यप् भी।

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37 से क्त्वा को नित्य ल्यप्–आदेश प्राप्त था। इस सूत्र से वह वैकल्पिक हुआ।

प्रयोग– क्त्वा-कृष्णं वासो यजमानं **परिधापयित्वा** (परि- धा + णिच् + क्त्वा)।

ल्यप् - **उद्धृत्य** जुहोति (उत् - हृ + क्त्वा, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21 से क्त्वा एवं प्रस्तुत सूत्र से क्त्वा को ल्यप्)।

सम्ब॰ (17) क्त्वो यक् 7.1.47

वैदिक प्रयोग में 'क्त्वा' को यक्–आगम। कित् होने से आद्यन्तौ टकितौ 1.1.46 से अन्त में यक्।

प्रयोग– **दत्त्वाय** सविता धियः (दा + क्त्वा, समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा, दो दद्घोः 7.4.46 से दा को 'दथ्' आदेश, प्रकृत सूत्र से यक्–आगम)।

सम्ब॰ (18) इष्ट्वीनमिति च 7.1.48

वैदिक प्रयोग में 'इष्ट्वीनम्' (यज् + क्त्वा)– इस क्त्वा-प्रत्ययान्त का निपातन। 'यज्' धातु से क्त्वा प्रत्यय लाकर क्त्वा के आकार के स्थान में 'ईनम्' आदेश का निपातन है (यजेः क्त्वाप्रत्ययान्तस्य ईनमादेशोऽस्त्यस्य निपात्यते– का॰)

प्रयोग– **इष्ट्वीनं** देवान् 'देवताओं का यज्ञ करके' (यज् + क्त्वा, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21 से क्त्वा, प्रस्तुत सूत्र से निपातन से क्त्वा के आकार का 'ईनम्' आदेश एवं वचिस्वपि॰ 6.1.15 से धातु को सम्प्रसारण, व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 से धातु के जकार को षकार, ष्टुना ष्टुः 8.4.42 से ष्टुत्व)।

विशेष– पीत्वीनमपीष्यते (वा॰)

पीत्वीनम् (पा + क्त्वा) - इस क्त्वा-प्रत्ययान्त का भी निपातन इष्ट है।

प्रयोग– पा + क्त्वा = पीत्वीनम् ('इष्ट्वीनम्' की तरह) अर्थात् पीकर।

सम्ब॰ (19) स्नात्व्यादयश्च 7.1.49

वैदिक प्रयोग में 'स्नात्वी' आदि शब्दों का भी निपातन।

'स्ना' से क्त्वा करने पर 'स्नात्वा' होता, यह सूत्र उसका अपवाद है।

प्रयोग– **स्नात्वी** मलादिव (स्ना से क्त्वा, समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा एवं प्रस्तुत सूत्र से निपातन से ईकार)।

इस प्रकार **पीत्वी** सोमस्य वावृधे (पा + क्त्वा)।

सम्ब॰ (20) क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः 7.2.50

'क्लिश्' धातु से क्त्वा (एवं निष्ठा) को विकल्प से इट्-आगम।

प्रयोग– क्लिश् + क्त्वा (समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा) = क्लिष्ट्वा-क्लिशित्वा। क्रमशः इट् का अभाव एवं सेट् है। व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 से धातु के शकार का षकार एवं ष्टुना ष्टुः 8.4.41 से ष्टुत्व।

सम्ब॰ (21) पूङश्च 7.2.51

'पूङ्' धातु से क्त्वा (एवं निष्ठा) को विकल्प से इट् का आगम।

प्रयोग– **पूत्वा** (पू + क्त्वा, समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा, प्रस्तुत सूत्र से इट् अभाव पक्ष में) इट् करने पर '**पवित्वा**'। श्र्युकः किति 7.2.11 से उगन्त 'पू' धातु से इडागम का निषेध होने पर इस सूत्र से उसका वैकल्पिक विधान है।

सम्ब॰ (22) वसतिक्षुधोरिट् 7.2.52

वस् तथा क्षुध् धातुओं से क्त्वा को इट्-आगम।

प्रयोग– 1. वस् + क्त्वा (समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा) = **उषित्वा** (प्रस्तुत सूत्र से इट्- आगम, वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण)।

2. क्षुध् + क्त्वा = **क्षुधित्वा** (क्त्वा एवं इट् पूर्ववत्)।

सम्ब॰ (23) अञ्चेः पूजायाम् 7.2.53

पूजार्थक 'अञ्च्' धातु से क्त्वा को इट्- आगम।

प्रयोग– अञ्च् + क्त्वा = **अञ्चित्वा**। इसमें उदितो वा 7.2.56 से

विकल्प से इट्–आगम प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र से वह नित्य बना है।

सम्ब॰ (24) लुभो विमोहने 7.2.54

विमोहनार्थक 'लुभ्' धातु से क्त्वा को इट्–आगम। तीषसहलुभरुषरिषः 7.2.48 से विकल्प से इट्–आगम प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से वह नित्य बना।

प्रयोग– **लुभित्वा** = लुभ् + क्त्वा। **लोभित्वा** (लुभ् + णिच् + क्त्वा)। इनमें समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा एवं प्रस्तुत सूत्र से इडागम।

विशेष– विमोहन अर्थ न रहने पर इट् नहीं आता, यथा– लुब्धः (वृषलः) अर्थात् 'शीत से पीड़ित'।

सम्ब॰ (25) जॄव्रश्च्योः क्त्वि 7.2.55

'जॄ' तथा 'व्रश्च्' धातु से क्त्वा को इट्–आगम। श्र्युकः किति 7.2.11 से 'जॄ' धातु से इट् का निषेध है, 'व्रश्च' से उदितो वा 7.2.56 से इट् का वैकल्पिक विधान है। इन दोनों का यह सूत्र अपवाद है।

प्रयोग– 1. जॄ + क्त्वा = जरीत्वा।

2. व्रश्च् + क्त्वा = व्रश्चित्वा। उभय में समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा।

सम्ब॰ (26) उदितो वा 7.2.56

उदित् धातु से क्त्वा को विकल्प से इट्– आगम।

प्रयोग– यथा– शमु + क्त्वा = **शमित्वा-शान्त्वा**।

(समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा एवं प्रस्तुत सूत्र से इट् का वैकल्पिक विधान, इडभाव में अनुनासिकस्य क्विझलोः 6.4.15 से उपधादीर्घ)।

सम्ब॰ (27) जहातेश्च क्त्वि 7.4.43

क्त्वा प्रत्यय के परे 'हा' धातु को 'हि' आदेश।

प्रयोग– हा + क्त्वा (समानकर्तृकयोः॰ 3.4.21 से क्त्वा) = **हित्वा**

(प्रस्तुत सूत्र से 'हि' आदेश)। हित्वा राज्यं वनं गतः 'राज्य छोड़कर वन चला गया'।

सम्ब॰ (28) विभाषा छन्दसि 7.4.44

वैदिक प्रयोग में क्त्वा के परे 'हा' धातु को विकल्प से 'हि' आदेश।

प्रयोग– हा + क्त्वा = हित्वा - हात्वा ('हित्वा' का प्रयोग सम्ब॰ 27 की तरह, 'हि' आदेश के अभाव में 'हात्वा')।

क्थन्

क्थन् = थ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप। यह प्रत्यय अष्टाध्यायी में प्रत्यक्ष रूप से पठित नहीं है। तितुत्रतथ॰ 7.2.9 सूत्र में कथित 'थ' से इसका बोध है। यह उणादि सूत्र 'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्' (उणादि 2/2) में पठित है।

सम्बद्धस्थल–

(1) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च 7.2.9

कित्-संज्ञक 'थ' प्रत्यय के परे इट् का आगम नहीं।

प्रयोग– कुष् + क्थन् (हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्-उणादि 2/2 से क्थन्) = **कुष्ठम्** 'रोगविशेष' (प्रस्तुत सूत्र से इट् आगम का निषेध)। 'कुष्ठं रोगे सुगन्धे च'– विश्व॰

क्नु

क्नु = नु। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– 1. कित् आर्धधातुक। अतः 'क्ङिति च' 1.1.5 से धातु का गुण-निषेध।
2. हलादि कित्।
3. हलादि।

1. विधि– त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः 3.2.140
'त्रस्' आदि धातुओं से 'तच्छील' आदि अर्थों में 'क्नु'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु 3.2.134, वर्तमाने 3.2.123।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– त्रस् (त्रसी) उद्वेगे, गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, धृष् (ञिधृषा) प्रागल्भ्ये, क्षिप् प्रेरणे।

प्रयोग– 1. त्रस् + क्नु = **त्रस्नुः** 'डरनेवाला'। 'अत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरङ्गैः'– रघु॰ 14/47
2. गृध् + क्नु = **गृध्नुः** 'लालची'। यहाँ पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त लघूपधगुण का 'क्ङिति च' 1.1.5 से निषेध हुआ। 'अगृध्नुराददे'- रघु॰ 1/21
3. धृष् + क्नु = **धृष्णुः** 'ढीठ'।
4. क्षिप् + क्नु = **क्षिप्नुः** 'प्रेरक'। 'निराकरिष्णुः क्षिप्नुः स्यात्'– अमर॰ 3.1.13 स्थलों में 'गृध्नु' की तरह लघूपधगुण का निषेध हुआ है।

विशेष– वशादि कृत् होने से त्रस्नु, गृध्नु आदि में 'नेड् वशि कृति' 7.2.8 से इट् आगम का निषेध हुआ।

क्मरच्

क्मरच् = मर। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की इत्संज्ञा एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से चकार की इत्संज्ञा, पुनः 'तस्य लोपः' 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

3. चित् (1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से क्मरच्- अन्त का अन्त 'उदात्त' होता है।

4. हलादि।

5. वशादि कृत्। अतः नेड् वशि कृति (7.2.8) से इट् का निषेध।

1. विधि– सृघस्यदः क्मरच् 3.2.160

सृ, घस् एवं अद् धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में क्मरच्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– 1. सृ गतौ, भ्वा॰प॰ 2. घस्(घस्लृ) अदने, भ्वा॰ पर॰, 3. अद् भक्षणे, अदा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. सृ + क्मरच् = **सृमरः** (मृगविशेष)। यहाँ सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से प्राप्त धातु के गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध हुआ।

2. घस्- **घस्मरः** 'खाने के स्वभाववाला, खाऊ'। 'द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रोणिरस्मि'– वेणी॰ 5.36

3. अद्– **अद्मरः** (खाऊ)।

विशेष– वशादि कृत् होने से नेड् वशि कृति (7.2.8) से इट्-आगम का निषेध हुआ है।

क्यप्

क्यप् = य। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ककार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से पकार की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध।
2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
3. हलादि।
4. यादि। अतः आङो यि (7.1.65) से लभ् को नुम्-आगम-आलम्भ्यः।
5. यादि कित्।
6. पित् (1.3.3)। अतः ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से स्वरान्त धातु को तुक्-आगम—इत्यः (इ + क्यप्)। अनुदात्तौ सुप्पितौ 3.1.4 से क्यबन्त की अनुदात्त-संज्ञा।
7. कृत्य (कृत्याः 3.1.95)। अतः यह भाव एवं कर्म में आता है।

1. विधि– वदः सुपि क्यप् च 3.1.106
सुबन्त उपपद हो तो अनुपसर्गक 'वद्' धातु से क्यप् एवं यत्।

अनु॰– यत् (3.1.97), अनुपसर्गे (3.1.100)।

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– भाव एवं कर्म (तयोरेव कृत्य॰ 3.4.70)।

प्रकृति– वद् धातु, जिससे पूर्व सुबन्त उपपद हो एवं उपसर्ग न हो, यथा– ब्रह्मणः वदनम्।

प्रयोग– ब्रह्मणः वदनम् = ब्रह्मन् (ङस्) वद् + क्यप् = **ब्रह्मोद्यम्** (प्रस्तुत सूत्र से क्यप्, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से नलोप, वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण)। "न वै जातु युष्माकं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेता"– बृ॰उ॰ 3.8.12। यत् के पक्ष में ब्रह्मवद्यम्।

विशेष– 'सुपि' के कथन से अनुपपद वद् धातु से 'क्यप्' नहीं– वाद्यम् (वद् + ण्यत्)।

'अनुपसर्गे'– इस अर्थबोध से उपसर्ग के योग से क्यप् नहीं– प्रवाद्यम् (प्र-वद् + ण्यत्)।

2. विधि– भुवो भावे 3.1.107

अनुपसर्ग 'भू' धातु से सुबन्त उपपद होने पर भाव में 'क्यप्'।

अनु०– सुपि, क्यप्(3.1.106), अनुपसर्गे (3.1.100)।

अपवाद– अचो यत् (3.1.97) से प्राप्त यत् का।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– अनुपसर्गक एवं सुबन्त उपपद युक्त 'भू' धातु, यथा– ब्रह्मणः भावः (ब्रह्मन् + भू)।

प्रयोग– ब्रह्मणः भावः– ब्रह्मन् भू + क्यप् = **ब्रह्मभूयम्** ब्रह्मत्व (न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से नकार का लोप, क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध)। 'ब्रह्मभूयाय कल्पते' – गीता० 14.26

विशेष– अनुपसर्ग में ही यह क्यप्, अतः उपसर्ग में यथाप्राप्त 'यत्'-प्र-भू + यत् (अचो यत् 3.1.97) = प्रभव्यम्।

विशेष– सुबन्त उपपद चाहिए, अन्यथा क्यप् नहीं– भू + यत् (अचो यत् 3.1.97) = भव्यम्।

3. विधि– हनस्त च 3.1.108

अनुपसर्ग 'हन्' धातु से सुबन्त उपपद होने पर भाव में 'क्यप्' एवं धातु के अन्त्य नकार को तकार।

अनु०– भावे (3.1.107), सुपि, क्यप् (3.1.106), अनुपसर्गे (3.1.100)।

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– अनुपसर्ग, सुबन्त उपपद से युक्त हन्, यथा– ब्रह्मणः हननम् (ब्रह्मन् + हन्)।

प्रयोग– ब्रह्मणः हननम् = ब्रह्मन् - हन् + क्यप् = **ब्रह्महत्या** 'ब्रह्म का हनन' (प्रस्तुत सूत्र से क्यप् एवं तकार– अन्तादेश भी, न लोपः० 8.2.7 से नकार का लोप, स्त्रीत्व में 'अजाद्यतष्टाप्' 4.1.4 से टाप्, स्त्रीत्व का प्रयोग लौकिक है।

विशेष– 1. उपसर्ग के रहने पर क्यप् नहीं, यथा प्र-हन् + घञ् = प्रघातः।

2. सुबन्त उपपद के अभाव में क्यप् नहीं, यथा– हन् + घञ् = घातः।

4. विधि– एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् 3.1.109

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष्– इन धातुओं से 'क्यप्'। 'कृत्य' होने से यह क्यप् भाव एवं कर्म में आता है (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70)।

अपवाद– इ, स्तु, वृ, दृ के विषय में अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का एवं शास्, जुष् के विषय में ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

प्रकृति– 1. इण् गतौ, अदा॰ प॰, 2. स्तु स्तुतौ, अदा॰ उ॰, 3. शास् अनुशिष्टौ, अदा॰ प॰; 4. वृ वरणे, स्वा॰ उ॰, 5. दृ विदारणे, क्र्या॰प॰, 6. जुष् प्रीतिसेवनयोः, तुदा॰ आ॰।

अर्थ– भाव एवं कर्म।

प्रयोग– 1. ण् + क्यप् = **इत्यः** 'जाने योग्य' (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्)।

2. स्तु + क्यप् = **स्तुत्यः** 'स्तुति के योग्य' (इत्यः की तरह)। 'स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती' – रघु॰ 4/6

3. शास् + क्यप् = **शिष्यः** 'शासन करने योग्य' (शास इदङ्हलोः 6.4.64 से आकार का इत्व, शासिवसि॰ 8.3.60 से षत्व)। 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां'- गीता॰ 2.7

4. वृ + क्यप् = **वृत्यः** 'स्वीकार करने योग्य' ('इत्यः' की तरह)

5. आ-दृ + क्यप् = **आदृत्यः** 'आदर करने योग्य' (इत्यः की तरह)।

6. जुष् + क्यप् = **जुष्यः** 'सेवन करने योग्य' (क्ङिति च 1.1.5 से उपधागुण का निषेध)।

5. विधि– शंसिदुहिगुहिभ्यो वेति वक्तव्यम् (वा॰ 3.1.109)
शंस्, दुह्, एवं गुह् धातुओं से विकल्प में क्यप्, पक्ष में ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से ण्यत्।

प्रयोग– 1. शंस् (स्तुतौ, भ्वा॰प॰) + क्यप् = **शस्यम्** (अनिदितां हल उपधायाः 6.4.24 से अनुनासिक का लोप)।

2. दुह् (प्रपूरणे, अदा॰उ॰) + क्यप् = **दुह्यम्**।

3. गुह् (संवरणे, भ्वा॰उ॰) + क्यप् = **गुह्यम्**। उभय में क्ङिति च 1.1.5 से उपधागुण का निषेध। 'मौनं चौवास्मि गुह्यानाम्'– गीता 10.38

पक्ष में, ण्यत् - शंस्यम्, दोह्यम्, कोह्यम्।

6. विधि– आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायामुपसंख्यानम् (वा॰ 3.1.109)
आङ्पूर्वक 'अञ्ज्' धातु से संज्ञा के वाच्य होने पर 'क्यप्' होना चाहिए।

अर्थ– संज्ञा।

प्रयोग– आ– अञ्ज् (व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु, रुधा॰पर॰) + क्यप् = **आज्यम्** 'घी' (अनिदिताम्॰ 6.4.24 से अनुनासिक का लोप)। 'मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्'– गीता 9/16

7. विधि– ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः 3.1.110
क्लृप् एवं चृत् धातुओं से अतिरिक्त ऋकारोपध धातुओं से 'क्यप्'।

अनु॰– क्यप् (3.1.109)

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– भाव एवं कर्म।

प्रकृति– ऋकारोपध धातु, यथा– वृत्।

प्रयोग– वृत् + क्यप् = **वृत्यम्** 'रहने योग्य' (क्ङिति च 1.1.5 से उपधागुण का निषेध)।

विशेष– क्लृप् एवं चृत् से यथाप्राप्त (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124) ण्यत्– कल्प्यम्, चर्त्यम्।

8. विधि– ई च खनः 3.1.11
'खन्' धातु से क्यप् तथा ईकार अन्तादेश।
अनु॰– क्यप् (3.1.109)
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.91) से प्राप्त ण्यत् का।
अर्थ– भाव एवं कर्म।
प्रकृति– खन् (खनु) अवदारणे।
प्रयोग– खन् + क्यप् = **खेयम्** 'खोदने योग्य' (प्रस्तुत सूत्र से क्यप् एवं धातु के नकार को ईकार, आद्गुणः 6.1.84 से गुण एकादेश)।

9. विधि– भृञोऽसंज्ञायाम् 3.1.112
भृञ् धातु से असंज्ञा-विषय में क्यप्।
अनु॰– क्यप् (3.1.109)।
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का।
अर्थ– भाव एवं कर्म।
प्रकृति– 'भृञ्' भरणे, असंज्ञा-विषय में।
प्रयोग– भृ + क्यप् (प्रस्तुत सूत्र से) = **भृत्यः** 'पालने योग्य' सेवक। (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्)।
विशेष– 'असंज्ञायाम्' के कथन से संज्ञा अर्थ में यह 'क्यप्' नहीं। यथा– भृ + ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124) = **भार्यः** 'क्षत्रिय-विशेष'।

10. विधि– सम्पूर्वाद् विभाषा (वा॰ 3.1.112)
सम् + भृञ् धातु से विकल्प से क्यप्।
अनु॰– क्यप् (3.1.109)।
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।
अर्थ– भाव एवं कर्म।
प्रकृति– सम् + भृ
प्रयोग– सम् भृ + क्यप् = **संभृत्यः** (विधि सं॰ 9 की तरह)। क्यप् के अभाव में ऋहलो॰ 3.1.124 से ण्यत् – **सम्भार्यः**।

11. विधि– मृजेर्विभाषा 3.1.113
मृज् धातु से विकल्प से क्यप्।
अनु॰– क्यप् (3.1.109)
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् को बाधित करनेवाले ऋदुपधाच्चा॰ (3.1.110) से प्राप्त नित्य क्यप् का यह वैकल्पिक प्रयोग है।
अर्थ– भाव एवं कर्म।
प्रकृति– मृज् (मृजूष्) शुद्धौ।
प्रयोग– परि-मृज् + क्यप् (प्रस्तुत सूत्र से) = **परिमृज्यः** 'शुद्ध करने योग्य'। क्यप् के कित्त्व के कारण क्ङिति च 1.1.5 से धातु के लघूपधगुण का निषेध। क्यप् के अभाव में ऋहलो॰ 3.1.124 से ण्यत् = **परिमार्ग्यः**।

12. विधि– राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथाः 3.1.114
राजसूय आदि क्यप्प्रत्ययान्तों का निपातन।
अनु॰– क्यप् (3.1.109)
अर्थ– विविध।
निपातन– क्यप् – प्रत्ययान्तों का।
प्रयोग– 1. राजन् -षुञ् + क्यप् = **राजसूयः** (क्यप्, तुक् का अभाव एवं दीर्घत्व का निपातन है)।
2. सू (षू) प्रेरणे अथवा सृ गतौ धातु से यह निपातन हो सकता है। (क) सू + क्यप् (निपातन से) = **सूर्यः** (रुट् - आगम का निपातन)। (ख) सृ + क्यप् (निपातन से) = सूर्यः (निपातन से धातु के ऋकार को उकार एवं हलि च 8.2.77 से उकार को दीर्घ)।
3. मृषा-वद् + क्यप् (निपातन से) = **मृषोद्यम्** 'झूठा वचन' (वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15 से धातु का सम्प्रसारण)। यहाँ वदः सुपि क्यप् च 3.1.106 से यत् एवं क्यप् उभय की प्राप्ति थी। इस निपातन से केवल क्यप् का विधान है। 'तत् किं मन्यसे राजपुत्रि मृषोद्यं तदिति' – उत्तर॰ 4

4. रोचतेऽसौ = रुच् + क्यप् (कर्ता अर्थ में क्यप् का निपातन) = **रुच्यः** 'सुन्दर'। क्यप् के कित्त्व के कारण क्ङिति च 1.1.5 से लगूपधगुण का निषेध हुआ। ण्यत् का अपवाद है।
5. **कुप्यम्**– 'सोने चाँदी से भिन्न धातु'।
गुप् (रक्षणे) से क्यप्, आदि ग् को क् निपातन से।
6. **कृष्टपच्या** 'हल चली हुई भूमि में स्वयं जो पक जाते हैं'। कृष्टे पच्यन्ते = कृष्ट -पच् से संज्ञा विषय में कर्म कर्ता में निपातन से क्यप्।
'अकृष्टपच्या एवौषधयः पेचिरे'– श०ब्रा० 1.6.1.3।
7. **अव्यथ्यः** 'जो व्यथित नहीं होता' न व्यथते। नञ् - व्यथ् + क्यप् (निपातन से कर्ता अर्थ में क्यप्)।

13. विधि– भिद्योद्ध्यौ नदे 3.1.115
भिद्य एवं उद्ध्य– इन दो क्यप्- प्रत्ययान्तों का निपातन है, नद अर्थ में।

अनु०– क्यप् (3.1.109)

निपातन– क्यप्–प्रत्ययान्तों का।

प्रयोग– 1. भिनत्ति कूलम् = भिद् + क्यप् = **भिद्यः** 'किनारों को तोड़नेवाला नद'। इसमें कर्ता अर्थ में क्यप् का निपातन है। क्यप् के आने से क्ङिति च (1.1.5) से भिद् धातु के उपधागुण का निषेध।

2. उज्झति उदकम् = उज्झ (उत्सर्गे) + क्यप्, निपातन से झकार का धत्व, जकार का दत्व = **उद्ध्यः** 'जल को बहानेवाला नद'।

अथवा, उन्द् (क्लेदने) धातु से क्यप्- उन्द् + क्यप् = उद्ध्यः (नकार का लोप, धकार का आगम, निपातन से)।

विशेष– 'नदे' के कथन से नद के अतिरिक्त अर्थ में यह निपातन नहीं होता, यथा– भेत्ता (भिद् + तृच्) 'भेदनेवाला कोई व्यक्ति'; उज्झिता (उज्झ् + तृच्) 'उत्सर्ग करनेवाला व्यक्ति'।

14. विधि– पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे 3.1.116
नक्षत्र अर्थ में पुष्य एवं सिद्ध्य– इन दो क्यप्-प्रत्ययान्तों का निपातन।

अनु॰– क्यप् (3.1.109)

निपातन– क्यप् प्रत्ययान्तों का।

प्रयोग– 1. पुष्यन्ति अस्मिन् कार्याणि = पुष् + क्यप् = **पुष्यः** 'नक्षत्रविशेष'। क्यप् का निपातन होने से क्ङिति च 1.1.5 से सम्भावित उपधागुण का निषेध।

2. सिद्ध्यन्ति अस्मिन् कार्याणि = सिध् + क्यप् = **सिद्ध्यः** 'नक्षत्रविशेष' (धकार को द्वित्व आदि का निपातन)।

विशेष– 'नक्षत्र' अर्थ न रहे तो यह निपातन नहीं, यथा– पोषणम् (पुष् + ल्युट्), सेधनम् (सिध् + ल्युट्)।

15. विधि– विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु 3.1.117
विपूय, विनीय एवं जित्य– ये तीन क्यप्- प्रत्ययान्त क्रमशः मुञ्ज, कल्क एवं हलि– इन तीन अर्थों में निपातित होते हैं।

अनु॰– क्यप् (3.1.109)

निपातन– तीन क्यप्-प्रत्ययान्तों का।

प्रयोग– 1. वि-पू + क्यप् = **विपूयः** 'मूंज'। इसमें पू धातु से अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् यहाँ निपातन के कारण बाधित हुआ। धातु को क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।

2. वि-नी- क्यप् = **विनीयः** 'कल्कः' (औषध की पीठी) इसमें भी पूर्ववत् यत् की बाधा है। धातु को गुणनिषेध।

3. जि + क्यप् = **जित्यः** 'हलिः'। इसमें भी पूर्ववत् यत् की बाधा है। क्यप् के पित्त्व के कारण ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से धातु को तुक्-आगम।

विशेष– मुञ्ज आदि अर्थों के न रहने पर क्यप् का निपातन नहीं, यथा– विपव्यम् (वि-पू + यत्), विनेयम् (वि-नी + यत्), जेयम् (जि + यत्)।

16. विधि– प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि 3.1.118

प्रति एवं अपि से युक्त 'ग्रह्' धातु से वेद में 'क्यप्'।

अनु॰– क्यप् (3.1.109)।

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का।

प्रकृति– प्रति, अपि-ग्रह् धातु, कर्म में।

प्रयोग– 1. प्रति-ग्रह् + क्यप् = प्रति ग्रह् य = **प्रतिगृह्यम्** (ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से सम्प्रसारण)।

"मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्" (तै॰ब्रा॰ 1.3.2-6).

2. अपि-ग्रह् + क्यप् = अपिगृह्यम् ('प्रतिगृह्यम्' जैसा)

"तस्मान्नापिगृह्यम्" (का॰सं॰ 14/5)

विशेष– वैदिक प्रयोग न हो तो यह क्यप् नहीं होता, यथा– प्रतिग्राह्यम्, अपिग्राह्यम् (प्रति, अपि– ग्रह् + ण्यत्, ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124)।

17 विधि– पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च 3.1.119

पद, अस्वैरी, बाह्या तथा पक्ष्य अर्थों में 'ग्रह्' धातु से क्यप्।

अनु॰– ग्रहेः (3.1.118), क्यप् (3.1.109)

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का।

प्रकृति– 'ग्रह्' धातु, पद आदि अर्थों में।

प्रयोग– 1. पद— प्र-ग्रह् + क्यप् = प्रगृह्य (ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से सम्प्रसारण)। **प्रगृह्यं** पदम् 'प्रगृह्य संज्ञक पद'।

"इदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्" अष्टा॰ 1.1.11

2. अस्वैरी (परतन्त्र)– **गृह्यकाः** (ग्रह् + क्यप् + स्वार्थे 'क')। गृह्यका इमे 'ये पराधीन हैं'।

3. बाह्या (बहिर्भूत) **ग्रामगृह्या** सेना 'गाँव से बाहर की सेना' (ग्राम– ग्रह् + क्यप् + टाप्)।

4. पक्ष्य– **वासुदेवगृह्याः** 'वासुदेव के पक्षवाले' (वासुदेव– ग्रह् + क्यप् + टाप्)।

18. विधि– विभाषा कृवृषोः 3.1.120

कृञ् धातु से तथा वृष् धातु से विकल्प से क्यप्।

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् ('कृ' धातु से) एवं ऋदुपधाच्चा॰ (3.1.110) से प्राप्त नित्य क्यप् ('वृष्' धातु से)।

अनु॰– क्यप् (3.1.109)

अर्थ– भाव एवं कर्म।

प्रकृति– 1. कृ, 2. वृष्

प्रयोग– 1. कृ + क्यप् = कृ + य = **कृत्यम्** 'करने योग्य' (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से धातु से तुक्-आगम)।
क्यप् के अभाव में ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से ण्यत्– **'कार्यम्'।**

2. वृष् + क्यप् = वृष् य = **वृष्यम्** 'सन्तानोत्पत्ति के योग्य'। क्यप् के अभाव में ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से ण्यत्– **वर्ष्यम्।**

19. विधि– युग्यं च पत्रे 3.1.121

पत्र (वाहन) अर्थ में क्यप् प्रत्ययान्त 'युग्य' का निपातन। ऋहलोर्ण्यत् (3.1.124) से प्राप्त ण्यत् का यहाँ निराकरण है।

अनु॰– क्यप् (3.1.109), प्रकरणवशात्।

अर्थ– वाहन।

प्रकृति– युज् (युजिर्) योगे, रुधा॰उ॰ धातु।

प्रयोग– युज् + क्यप् = **युग्यम्** (जकार को कुत्व निपातन से, क्ङिति च 1.1.5 से उपधागुण का निषेध)। युग्यः गौः 'जोतने योग्य बैल'। युग्यः अश्वः 'जोतने योग्य घोड़ा'।

'हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः'' –रघु॰ 12-84

विशेष– पत्र (वाहन) अर्थ के न रहने पर ऋहलो॰ (3.1.124) से ण्यत् होगा –**योग्यम्।**

20. विधि– छन्दसि निष्ठर्क्य...स्ताव्योपचाय्यपृडानि 3.1.123

वेदविषय में क्यप्–प्रत्ययान्त 'देवहूय' आदि का निपातन। सूत्र

में अनेक प्रातिपदिक हैं। ये सभी निपातित होते हैं। जो प्रातिपदिक क्यप्-प्रत्ययान्त के रूप में परिकल्पित हैं, वे यहाँ दर्शित होंगे-

प्रयोग- 1. **देवहूयः**- ह्वेञ् धातु से क्यप् का निपातन। 'स्पर्धन्ते वा उ देवहूये' (ऋ० 7.85.2)

2. प्र-नी + क्यप् = **प्रणीयः**। अचो यत् (3.1.97) से प्राप्त यत् का निपातन से निषेध।

3. उत्-नी + क्यप् = **उन्नीयः** ('प्रणीयः' जैसा)।

4. उत्- शिष् + क्यप् = **उच्छिष्यः** ण्यत् का निषेध। क्ङिति च (1.1.5) से गुणनिषेध।

5. आ- प्रच्छ् + क्यप् = **आपृच्छ्यः** ग्रहिज्या० 6.1.16 से सम्प्रसारण।

6. प्रति-षिव् + क्यप् = **प्रतिषीव्यः** हलि च 8.2.77 से दीर्घ।

21. विधि- व्रजयजोर्भावे क्यप् 3.3.98

भाव अर्थ में व्रज् तथा यज् धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में उदात्त 'क्यप्'।

अपवाद- स्त्रियां क्तिन् (3.3.94) से प्राप्त क्तिन् का।

अनु०- उदात्तः (3.3.96)

अधिकार- स्त्रियाम् (3.3.94), धातोः (3.1.91)।

अर्थ- भाव।

प्रकृति- व्रज् एवं यज् धातु।

प्रयोग- 1. व्रज् + क्यप् + टाप् (स्त्रीत्व में) = **व्रज्या** 'गमन'।

2. यज् + क्यप् + टाप् = **इज्या** 'यज्ञ करना' (वचिस्वपि० 6.1.15 से सम्प्रसारण)। 'जगत्प्रकाशं तदशेषमिज्यया'- रघु० 3.48

22. विधि- संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः 3.3.99

संज्ञाविषय में सम्, अज् आदि से स्त्रीत्व में उदात्त 'क्यप्'।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् (3.3.94) से प्राप्त क्तिन् का।

अनु॰– क्यप् (3.3.98), उदात्तः (3.3.96), स्त्रियाम् (3.3.94)।

प्रकृति– 1. सम् + अज् गतिक्षेपणयोः, भ्वा॰प॰, 2. निषद् विशरणगत्यवसादनेषु, भ्वा॰प॰, 3. नि + पत्, 4. मन् ज्ञाने, दिवा॰आ॰, 5. विद् ज्ञाने, अदा॰ पर॰, 6. षुञ् अभिषवे, स्वादि, उ॰, 7. शीङ् स्वप्ने, अदा॰आ॰, 8. भृञ् भरणे, भ्वा॰उ॰, 9. इण् गतौ, अदा॰प॰।

प्रयोग– 1. समजन्ति अस्याम् = सम् – अज् + क्यप् + टाप् (स्त्रीत्व में) = **समज्या** 'सभा'।

2. निषीदन्ति अस्याम् = नि – षद् + क्यप् + टाप् = **निषद्या** 'बाजार'।

3. निपतन्ति अस्याम् = नि – पत् + क्यप् + टाप् = **निपत्या** 'युद्धभूमि'।

4. मन्यते तया = मन् + क्यप् + टाप् = **मन्या** 'गले के पास की नाड़ी, जिससे व्यक्ति क्रुद्ध है ऐसा जाना जाता है'।

5. विदन्ति तया– विद् + क्यप् + टाप् = **विद्या**।

6. सुन्वन्ति अस्याम् = षुञ् + क्यप् + टाप् = **सुत्या** 'जिस वेला में रस निकालते हैं, वह 'काल-विशेष'। ह्रस्वस्य पिति॰ 6.1.71 से तुक्।

7. शेरते अस्याम् = शीङ् + क्यप् + टाप् = **शय्या** 'बिछौना'। अयङ् यि क्ङिति 7.4.22 से धातु के ईकार को अयङ्-आदेश।

8. भरणम् = भृ + क्यप् + टाप् = **भृत्या** 'जीविका'। ह्रस्वस्य पिति॰ 6.1.71 से तुक्।

9. ईयते गम्यते यया = इण् + क्यप् + टाप् = **इत्या** 'जिसके सहारे जाते हैं, ऐसी लालटेन'। यहाँ भी ह्रस्वस्य पिति॰ 6.1.71 से तुक्।

23. विधि– कृञः श च 3.3.100

कृ धातु से स्त्रीत्वार्थक श एवं क्यप्।
योगविभाग ('कृञः' एवं 'श च') से 'क्तिन्' भी।

अनु॰– क्यप् (3.3.98)

अर्थ– भाव।

प्रकृति– कृ

प्रयोग– कृ + क्यप् + टाप् = **कृत्या**। ह्रस्वस्य पिति॰ 6.1.71 से तुक्। पक्षे-क्रिया, कृतिः।

क्रु

क्रु = रु। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से आदि ककार की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से इत् का लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।
2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु को गुण की प्राप्ति।

1. विधि– भियः क्रुक्लुकनौ 3.2.174
'भी' धातु से तच्छीलादि अर्थों में क्रु (तथा क्लुकन्)।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– भी (ञिभी) भये, जुहो॰प॰।

प्रयोग– भयं शीलम् अस्य = भी + क्रु = **भीरुः** 'डरपोक' (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)। 'त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता'– रघु॰ 13.24

क्रुकन्

क्रुकन् = रुक्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से आदि ककार एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से अन्त्य नकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव– 1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।

2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः (7.3.84) से धातु को गुण की प्राप्ति।

3. नित्।

1. विधि– क्रुकन्नपि वक्तव्यः (वा॰ 3.2.174)

'भी' धातु से तच्छीलादि अर्थों में क्रुकन् का भी विधान हो।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– भी (ञिभी) भये, जुहो॰प॰

प्रयोग– भयं शीलम् अस्य = भी + क्रुकन् = **भीरुकः** 'डरपोक' (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

क्लुकन्

क्लुकन् = लुक। सभी व्यवहार 'क्रुकन्' जैसा।

1. विधि– भियः क्रुक्लुकनौ 3.2.174

'भी' धातु से तच्छीलादि अर्थों में क्लुकन्।

अनु॰ + अधिकार– क्रुकन् जैसा।

प्रयोग– भयं शीलम् अस्य = भी + क्लुकन् = **भीलुकः** 'डरपोक'।

शेष- 'क्रुकन्' जैसा।

क्वनिप्

क्वनिप् = वन्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की, हलन्त्यम् 1.3.3 प् की एवं उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इ की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव– 1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

2. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुण-निषेध– प्रातरित्वा।

3. पित् (1.3.3)। अतः ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से ह्रस्वान्त धातु से तुक्– प्रातरित्वा। अनुदात्तौ सुप्पितौ 3.1.4 से अनुदात्त।

4. वलादि।

5. वशादि।

1. विधि– आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च 3.2.74

आकारान्त धातुओं से सुबन्त उपपद रहते वेदविषय में क्वनिप् (मनिन्, वनिप् एवं विच् भी)।

अनु॰– छन्दसि 3.2.73, विच् (3.2.73), सुपि (3.2.4)।

प्रकृति– आकारान्त धातु, जिसके उपपद के रूप में कोई सुबन्त हो, यथा– सु– धा धारणपोषणयोः, जुहो॰उ॰।

प्रयोग– शोभनं दधाति = सु–धा + क्वनिप् = सुधीवन् (घुमास्थागापा॰ 6.4.66 से आकार को ईत्व) = **सुधीवा** 'अच्छी तरह धारण करनेवाला'।

2. विधि– अन्येभ्योऽपि दृश्यते 3.2.75

आकारान्त धातुओं से भिन्न धातुओं से भी क्वनिप् (मनिन्, वनिप् एवं विच् भी) देखे जाते हैं।

अनु॰– मनिन्क्वनिब्वनिपः (3.2.74), विच् (3.2.73)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– धातुसामान्य, आकारान्त धातुओं से भिन्न, यथा– इण्।

प्रयोग– प्रातः एति = प्रातर् - इ (इण्) + क्वनिप् = प्रातर् इ वन् =

प्रातर् इत्वन् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से धातु से तुक्-आगम) = **प्रातरित्वा** (प्रथमाविभक्ति एकवचन) 'प्रातः जानेवाला'।

3. विधि– दृशेः क्वनिप् 3.2.94

कर्म उपपद के रहते भूतकाल में दृश् धातु से क्वनिप्।

अनु॰– कर्मणि (3.2.93), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त दृश् प्रेक्षणे, भ्वा॰प॰।

प्रयोग– परलोकं दृष्टवान् = परलोक - दृश् + क्वनिप् = परलोकदृश्वन् = **परलोकदृश्वा** (प्रथमाविभक्ति एकवचन) 'परलोक को जिसने देखा है'।

4. विधि– राजनि युधिकृञः 3.2.95

'राजन्' कर्म उपपद रहते युध् तथा कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप्।

अनु॰– क्वनिप् (3.2.94), कर्मणि (3.2.93), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– 'राजन्' कर्म उपपद से युक्त युध् संप्रहारे, दिवा॰ आ॰ एवं कृ।

प्रयोग– 1. राजानं योधितवान् = राजन् - युध् + क्वनिप् = राजयुध्वन् = **राजयुध्वा** (प्रथमा विभक्ति, एकवचन) 'राजा को जिसने लड़वाया'।

2. राजानं कारितवान् = राजन् - कृ + क्वनिप् = राजकृत्वन् = **राजकृत्वा** (प्रथमा विभक्ति, एकवचन) 'राजा से काम करानेवाला'। यहाँ नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से नकार का लोप एवं ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्-आगम।

5. विधि– सहे च 3.2.96

'सह' उपपद में हो तो युध् तथा कृ धातुओं से भूतकाल में क्वनिप्।

अनु॰– युधिकृञः (3.2.95), क्वनिप् (3.2.94), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– 'सह' उपपद से युक्त युध् एवं कृ धातु।

प्रयोग– 1. सह युध्यति स्म = सह-युध् + क्वनिप् = **सहयुध्वा** (प्रथमा विभक्ति, एकवचन) 'साथ-साथ जिसने युद्ध किया'।

2. सह कृतवान् = सह-कृ + क्वनिप् = **सहकृत्वा** (प्रथमा विभक्ति, एकवचन) 'साथ-साथ जिसने कार्य किया'। यहाँ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से धातु से तुक् आगम हुआ।

सम्बद्धस्थल

(1) वनो र च 4.1.7

वन्-अन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप्, रेफ-अन्तादेश भी। 'क्वनिप्' का अनुबन्धरहित रूप 'वन्' है।

प्रयोग– राजयुध्वन् + ङीप् = **राजयुध्वरी** 'जिसने राजा को लड़वाया, वह नारी'। इसमें 'राजनि युधिकृञः' से क्वनिप् एवं प्रस्तुत सूत्र से ङीप् तथा रत्व हुआ है।

(2) वन उपसंख्यानम् (वा॰ 8.3.1)

छन्दोविषय में सम्बुद्धि (सम्बोधन) में प्रथमा विभक्ति के एकवचन के परे रहते वन्-प्रत्ययान्त का रुत्व होना चाहिए।

प्रयोग– प्रातः + इण् + क्वनिप् (अन्येभ्योऽपि दृश्यते 3.2.75 से क्वनिप्) = प्रातरित्वन्। सम्बोधन में 'सम्बोधने च' 2.3.47 से प्रथमा विभक्ति, एकवचन में 'सु'। इस 'सु' विभक्ति की सम्बुद्धि संज्ञा (एकवचनं सम्बुद्धिः 2.3.49)।

प्रातरित्वन् + सु = प्रातरित्वन् (हल्ङ्याभ्यो 6.1.68 से स् का लोप) = **प्रातरित्वः** (प्रस्तुत वार्तिक से न् को रुत्व, खरवसानयोः 8.3.15 से विसर्ग)।

प्रयोग– यस्त्वायन्तं वसुना '**प्रातरित्वः**' (हे प्रातरित्वः!)।

क्वरप्

क्वरप् = वर। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से प् की इत्संज्ञा। तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध। इत्वरः।
2. पित् (1.3.3)। अतः ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (6.1.71) से तुक्। इत्वरः।
3. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण की प्राप्ति।
4. क्वरबन्त से स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से ङीप्। इत्वर + ङीप् = इत्वरी।
5. वशादि। अतः नेड् वशि कृति (7.2.8) से इट्-आगम का निषेध। सृत्वरः।

1. विधि– इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप् 3.2.163
इण्, नश्, जि, सृ धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में क्वरप्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

प्रकृति– 1. इण् गतौ, अदा॰प॰, 2. नश् (णश) अदर्शने, दिवा॰ प॰, 3. जि अभिभवे, भ्वा॰ प॰, 4. सृ अदर्शने, दिवा॰प॰।

प्रयोग– 1. इण् + क्वरप् = इ + वर = **इत्वरः** 'गमनशील'। (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्)। स्त्रीत्व में **इत्वरी** 'व्यभिचारिणी स्त्री' (टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से ङीप्)। 'पुंश्चली चर्षणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी' – अमर॰ 2.6.10

2. नश् + क्वरप् = **नश्वरः** 'नाशवान्'। स्त्रीत्व में **'नश्वरी'**।

3. जि + क्वरप् = **जित्वरः** 'जयशील'। 'शास्त्राण्युपायंसत जित्वराणि' – भट्टि॰ 1/16

स्त्रीत्व में '**जित्वरी**'।

4. सृ + क्वरप् = **सृत्वरः** 'गमनशील'।
स्त्रीत्व में '**सृत्वरी**'।

2. विधि– गत्वरश्च 3.2.164 (निपातन)
क्वरप्– प्रत्ययान्त 'गत्वर' का निपातन होता है।

अनु॰– क्वरप् (3.2.163), तच्छीलतद्धर्म॰ (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

प्रकृति– 'गम्लृ' गतौ।

प्रयोग– गम् + क्वरप् = **गत्वरः** 'गमनशील'। 'अनुदात्तोपदेश..झलि क्ङिति' (6.4.37) से अनुनासिक का लोप प्राप्त नहीं था (क्वरप् = वर प्रत्यय झलादि नहीं है) निपातन से अनुनासिक 'म्' का लोप हुआ, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' 6.1.71 से तुक्-आगम।

सम्बद्धस्थल

(1) टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्-क्वरपः 4.1.15
क्वरप्– प्रत्ययान्त से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप्।

प्रयोग– इण् + क्वरप् (इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप् 3.2.163 से क्वरप्) = इत्वरः। स्त्रीत्व में इत्वर + ङीप् = इत्वर + ई = **इत्वरी** (यस्येति च 6.4.148 से अकार का लोप)।

क्वसु

क्वसु = वस्। लशक्वतद्धिते (1.3.8) से ककार की एवं उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. उगित् (1.3.2)। अतः उगितश्च 4.1.6 से क्वसु-प्रत्ययान्त से स्त्रीत्व में ङीप्।
2. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषध, गमहनजन॰ 6.4.98 से उपधा लोप।
3. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
4. हलादि।
5. वलादि। अतः आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इडागम की प्राप्ति।
6. वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम के निषेध का प्रसङ्ग।

1. विधि– क्वसुश्च 3.2.107

छन्दोविषय में लिट् के स्थान में 'क्वसु' आदेश भी विकल्प से।

अनु॰– लिटः वा (3.2.106), छन्दसि (3.2.105), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– अद भक्षणे, अदादि, पर॰, लिट् लकार में।

प्रयोग– जघास = अद् + लिट् (छन्दसि लिट् 3.2.105 से लिट्) = अद् + क्वसु (प्रस्तुत सूत्र से लिट् को 'क्वसु' आदेश, लिट्यन्यतरस्याम् 2.4.40 से अद् को घस् आदेश, लिटि धातो॰ 6.1.8 से घस् का द्वित्व, अभ्यासकार्य से पूर्व अर्थात् अभ्यास घस् के स्थान पर ज, गमहनजन॰ 6.4.98 से दूसरे घस् की उपधा आकार का लोप, खरि च 8.4.55 से चर्त्व से

घ् को क् आदेश, शासिवसिघसीनां च 8.3.60 से षत्व, वस्वेकाजाद्घसाम् 7.1.67 से वस् को इट्-आगम) = जक्षिवस्। प्रथमा विभक्ति एकवचन में **जक्षिवान्** 'खाना खा चुकनेवाला'।

पक्ष में 'क्वसु' आदेश के अभाव में **'जघास'** (अद् + लिट्)।

2. विधि– भाषायां सदवसश्रुवः 3.2.108

लौकिक प्रयोग में सद्, वस् एवं श्रु धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प से लिट् प्रत्यय एवं लिट् के स्थान में नित्य 'क्वसु' आदेश।

अनु॰– लिटः वा (3.2.106), क्वसुः (3.2.107)

प्रकृति– 1. सद् (षद्लृ) विशरणगत्यवसादनेषु, भ्वा॰प॰, 2. वस् निवासे, भ्वा॰प॰ एवं 3. श्रु श्रवणे, भ्वा॰प॰।

प्रयोग– 1. सद्– उप-सद् + लिट् = उप-सद् + क्वसु (प्रस्तुत सूत्र से लिट्, पुनः लिट् के स्थान में 'क्वसु' आदेश, लिटि धातो॰ 6.1.8 से सद् का द्वित्व, अत एकहल्मध्ये॰ से एत्व एवं अभ्यासलोप) = उपसेदिवस्।

उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। नि-सद् + क्वसु + ङीप् = **निषेदुषी**। 'निषेदुषीमासनबन्धधीरः' – रघु॰ 2/61

2. वस्– अनु-वस् + लिट् = अनु–वस् + क्वसु (लिट् एवं लिट् के स्थान पर क्वसु, प्रस्तुत सूत्र से) = अनूषिवस् (वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण, इट्)। **अनूषिवान्** कौत्सः पाणिनिम् 'कौत्स पाणिनि के बाद रहने लगे'।

3. श्रु–उप-श्रु + लिट् = उप श्रु क्वसु (लिट् एवं लिट् को क्वसु आदेश, प्रस्तुत सूत्र से) = उपशुश्रुवस् (लिटि धातो॰ 6.1.8 से द्वित्व)। **उपशुश्रुवान्** कौत्सः पाणिनिम् 'कौत्स पाणिनि की सेवा करने लगे'।

पक्ष में– सद्– उपससाद (लिट्) आदि। वस्– अनूवास (लिट्) आदि। श्रु– उपशुश्राव (लिट्) आदि।

3. विधि– उपेयिवानाश्वाननूचानश्च 3.2.109 (निपातन)
'क्वसु' प्रत्ययान्त 'उपेयिवान्' एवं 'अनाश्वान्' का निपातन विकल्प से होता है।

अनु॰– लिटः वा (3.2.106), क्वसुः (3.2.107), भूते (3.2.84)।

अधिकार– धातोः (3.1.91)।

प्रकृति– 1. उप + इण्, 2. नञ् + अश् (भोजने)।

प्रयोग– 1. उप– इण् + लिट् = उप–इण् + क्वसु = उपेयिवस् (प्रस्तुत सूत्र से लिट्, लिट् को क्वसु, धातु को द्वित्व, अभ्यास को दीर्घ इणः किति 7.4.69 से दीर्घ, निपातन से यणादेश एवं वस् को इट्-आगम)। **उपेयिवान्** 'पास में पहुँचा' (प्रथमा विभक्ति एकवचन)।

2. नञ् - अश् + लिट् = न अश् क्वसु (निपातन से लिट् एवं लिट् को क्वसु आदेश), (धातु को द्वित्व, अभ्यास कार्य), = अनाश्वस् (नलोपो नञः 6.3.72 से नलोप, तस्मान्नुडचि 6.3.73 से नुट् आगम) = **अनाश्वान्** 'नहीं खाया' (प्रथमा विभक्ति, एकवचन)।

सम्बद्धस्थल

सम्ब॰ (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69
लादेश के प्रयोग होने पर (कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से) प्राप्त षष्ठी नहीं होती। लादेश में लिट् के स्थान में आये 'क्वसु' का ग्रहण है। (ल इति शतृशानचौ कानच्क्वसू किकिनौ च गृह्यन्ते– का॰ 2.3.69)।

प्रयोग– ओदनं **पेचिवान्** (पच् + क्वसु, क्वसुश्च 3.2.107)। यहाँ कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से प्राप्त षष्ठी नहीं हुई है।

सम्ब॰ (2) दाश्वान्– साह्वान् - मीढ्वांश्च 6.1.12
लोक तथा वेद में क्वसु-प्रत्ययान्त दाश्वान्, साह्वान् एवं मीढ्वान् का निपातन।

प्रयोग– 1. दाश् (दाशृ) दाने + क्वसु = दाश्वस् (निपातन से द्वित्व का अभाव, इट् का अभाव), प्रथमा एकवचन में **दाश्वान्**। 'दाश्वासो दाशुषः सुतम्'।

2. सह् (षह्) मर्षणे + क्वसु = साह्वस् (उपधा दीर्घ, द्वित्व का अभाव, इट् का अभाव– निपातन से), प्रथमा एकवचन में **साह्वान्**। 'साह्वान् बलाहकः'।

3. मिह् (सेचने) + क्वसु = मीढ्वस् (द्वित्व का अभाव, इट् का अभाव, उपधा को दीर्घ, ढत्व– निपातन से)। प्रथमा एकवचन में '**मीढ्वान्**।

सम्ब॰ (3) वस्वेकाजाद्घसाम् 7.2.67

कृतद्विर्वचन एकाच् धातुओं से, अकारान्त धातुओं से तथा घस् धातु से उत्तरवर्ती वसु (क्वसु) प्रत्यय को इट् का आगम होता है। नेड् वाशि कृति 7.2.8 से प्राप्त इट्-निषेध का यह प्रतिप्रसव है।

प्रयोग– 1. एकाच् धातु– अद् भक्षणे + लिट् (परोक्षे लिट् 3.2.115) = अद् + क्वसु (क्वसुश्च 3.2.107 से लिट् के स्थान में क्वसु) = आदिवस् (प्रस्तुत सूत्र से इट्–आगम), प्रथमा एकवचन में '**आदिवान्**'।

2. अकारान्त धातु– दा + क्वसु = ददिवस् (प्रस्तुत सूत्र से इट्-आगम)। **ददिवान्** प्रथमा एकवचन में।

3. घस्– **जक्षिवान्** (प्रस्तुत सूत्र से इट् आगम)।

सम्ब॰ (4) विभाषा गमहनविदविशाम् 7.2.68

गम्, हन्, विद्, विश्– धातुओं से परवर्ती 'क्वसु' प्रत्यय को विकल्प से इट् का आगम होता है।

प्रयोग– 1. गम्– **जग्मिवान्– जगन्वान्**। गम् + लिट् (क्वसु), परोक्षे लिट् 3.2.115, क्वसुश्च 3.2.107 से क्वसु आदेश, प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से इट् का आगम।

2. हन्– **जघ्निवान्– जघन्वान्** (पूर्ववत्)।

3. विद्– **विविदिवान्– विविद्वान्** (जग्मिवान्–जगन्वान् जैसा)।

4. विश्– **विविशिवान्–विविश्वान्** (जग्मिवान्– जगन्वान् जैसा)।

सम्ब॰ (5) दृशेश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 7.2.68)

'दृश्' से परे क्वसु को भी विकल्प से इट्-आगम होना चाहिए।

प्रयोग– दृश्-**ददृशिवान्-ददृश्वान्** (दृश् + लिट्, परोक्षे लिट् 3.2.115, शेष जग्मिवान्-जगन्वान् (सू॰ 7.2.68) जैसा है।

सम्ब॰ (6) मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि 8.3.1

छन्दोविषयक संहिता में (मत्वन्त तथा) वस्वन्त पद के स्थान में सम्बुद्धि के परे रहते 'रु' आदेश हो जाता है।

प्रयोग– '**मीढ्व**स्तोकाय तनयाय इन्द्र साह्वः'।

दाश्वान्-साह्वान्–मीढ्वांश्च 6.1.12 से मिह् + क्वसु से निपातन से 'मीढ्वस्' बनता है।

सम्बोधन में प्रथमा एकवचन अर्थात् सम्बुद्धि (एकवचनं सम्बुद्धिः 2.3.49) के परे रहते प्रस्तुत सूत्र से मीढ्वस् के सकार को 'रु' आदेश हो जाता है। हे मीढ्वस् + सु = हे मीढ्वर् (हल्ङ्याब्भ्यो॰ 6.1.68 से सकार का लोप) = **हे मीढ्वः** (खरवसानयो॰ 8.3.15 से रेफ को विसर्ग)।

क्विन्

क्विन् = 0 (शून्य)। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की, हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की, उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इ की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से सभी इत्संज्ञकों का लोप। वेरपृक्तस्य 6.1.67 से अपृक्त 'व्' का भी लोप।

स्वभाव–

1. क्विन्। अतः 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' 8.2.62 से क्विन्–प्रत्ययान्त को कुत्व-घृतस्पृक्।
2. कित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु को गुणनिषेध।
3. अपृक्त 'व्' (अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1.2.41)। तभी वेरपृक्तस्य 6.1.67 से अपृक्त व् का लोप।
4. नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– स्पृशोऽनुदके क्विन् 3.2.58
उदक भिन्न सुबन्त उपपद हो तो स्पृश् धातु से क्विन्।

अनु॰– सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– उदक भिन्न सुबन्त उपपद के साथ 'स्पृश्' संस्पर्शने, तुदा॰ प॰ धातु।

प्रयोग– घृतं स्पृशति = घृत-स्पृश् + क्विन् = घृत-स्पृश् = **घृतस्पृक्** 'घी को छूनेवाला' (प्रथमा एकवचन)।
मन्त्रेण स्पृशति = **मन्त्रस्पृक्** 'मन्त्र बोलकर स्पर्श करनेवाला'।
जलेन स्पृशति = **जलस्पृक्** 'जल के द्वारा स्पर्श करनेवाला'।
क्विन्प्रत्ययस्य कुः 8.2.62 से कुत्व।

2. विधि– ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च 3.2.59
क्विन्-प्रत्ययान्त 'ऋत्विक्' आदि पाँचों का निपातन और सुबन्त उपपदक अञ्चू, युज् तथा क्रुञ्च् धातुओं से क्विन् प्रत्यय।

अनु॰– क्विन् (3.2.58), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– 1. ऋतु-यज् देवपूजादौ, भ्वा॰ उ॰, 2. धृष् प्रागल्भ्ये, स्वादि प॰, 3. सृज् विसर्गे, तुदा॰ प॰, 4. दिश् अतिसर्जने, तुदा॰ उ॰ 5. उत्-स्निह् स्नेहने, दिवा॰ प॰, 6. अञ्च् गतौ याचने च, भ्वा॰ उ॰, 7. युज् योगे, रुधा॰ उ॰, 8. क्रुञ्च् कौटिल्याल्पीभावयोः, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– 1. ऋतौ यजति, ऋतुं यजति अथवा ऋतुप्रयुक्तः यजति = ऋतु-यज् + क्विन् (वचिस्वपि॰ 6.1.15 से सम्प्रसारण) = ऋत्विज्, प्रथमा एकवचन में ऋत्विज् + सु = **ऋत्विक्** (क्विन्प्रत्ययस्य कुः 8.2.62 से कुत्व)।

2. धृष्णोति शत्रून् = धृष् + क्विन् = दधृष् (निपातन से धातु को द्वित्व, अभ्यास के ऋकार को 'उरत्' से अकार, 'उरण् रपरः' से रपरत्व, हलादि शेष), प्रथमा एकवचन में– **दधृक्** 'शत्रु को परास्त करनेवाला'।

3. सृजन्ति यां सा = सृज् + क्विन् = स्रज् ('अम्' आगम निपातन से), प्रथमा एकवचन में **स्रक्** 'माला'। 'स्रजमपि शिरस्यधःक्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया' – अभि॰शा॰ 7.24

4. दिशन्ति यां सा = दिश् + क्विन् = दिश्। प्रथमा एकवचन में **दिक्** 'दिशा'।

5. उत्– स्निह् + क्विन् = उष्णिह् (निपातन से उपसर्ग के तकार का लोप, सकार को षत्व, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)। प्रथमा एकवचन में **उष्णिक्** 'वैदिक छन्दोविशेष'।

6. प्राञ्चति = प्र-अञ्च् + क्विन् = **प्राङ्**।

7. युनक्ति = युज् + क्विन् = **युङ्**।

8. क्रुञ्चति = क्रुञ्च् + क्विन् = **क्रुङ्**।

3. विधि– त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च 3.2.60

त्यदादि शब्द उपपद रहते अनालोचन (=न देखना) अर्थ में वर्तमान दृश् धातु से (कञ् एवं) क्विन्।

अनु॰– क्विन् (3.2.58), सुपि (3.2.4)।

अर्थ- भाव।

प्रकृति- त्यद् आदि उपपद से युक्त 'दृश्' धातु।

प्रयोग- 1. त्यद् - दृश् + क्विन् = त्यादृश् (आ सर्वनाम्नः 6.3.91 से त्यद् के दकार को आकार, सवर्णदीर्घ), प्रथमा एकवचन में **त्यादृक्** 'उस जैसा'।

पक्ष में कञ्- त्यादृशः।

2. यद्- दृश् + क्विन् = यादृश् (त्यादृश् जैसा), प्रथमा एकवचन में **यादृक्** 'जैसा'।

पक्ष में कञ्- यादृशः।

3. तद्-दृश् + क्विन् = **तादृक्** 'वैसा'। पक्ष में कञ्-तादृशः।

4. विधि- **समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्** (वा॰ 3.2.60)

समान एवं अन्य शब्दों के उपपद होने पर भी 'दृश्' से (कञ् एवं) 'क्विन्'।

प्रसङ्ग- कञ् एवं क्विन् (त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च 3.2.60)

प्रकृति- 1. 'समान' उपपद + दृश्,

2. 'अन्य' उपपद + दृश्।

प्रयोग- 1. समान-दृश् + क्विन् = सदृश् को 'स' आदेश। प्रथमा एकवचन में **सदृक्** 'समान'।

कञ् के पक्ष में- 'सदृशः'।

2. अन्य- दृश् + क्विन् = अन्यादृश् (आ सर्वनाम्नः 6.3.91 से आत्व)।

प्रथमा एकवचन में **अन्यादृक्** 'दूसरे जैसा'।

कञ् के पक्ष में- 'अन्यादृशः'।

सम्बद्धस्थल

(1) क्विन्प्रत्ययस्य कुः 8.2.62

क्विन्- प्रत्ययान्त धातु के अन्तिम व्यञ्जन के स्थान में कुत्व हो जाता है।

प्रयोग- घृतं स्पृशति = **घृतस्पृक्** (घृत- स्पृश् + क्विन् 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' 3.2.58 से क्विन् एवं प्रस्तुत सूत्र से शकार को कुत्व)।

क्विप्

क्विप् = 0 (शून्य) हलन्त्यम् 1.3.3 से प् की, उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इ की, लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से सभी संज्ञकों का लोप। अवशिष्ट 'व्' की 'अपृक्त एकाल् प्रत्ययः' 1.2.41 से अपृक्त संज्ञा, अतः वेरपृक्तस्य 6.1.67 से 'व्' का लोप।

स्वभाव–

1. पित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' 6.1.71 से तुक्-आगम। यथा– अग्निचित्।
2. कित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः 'क्ङिति च'। 1.1.5 से गुणनिषेध। यथा– अग्निचित्।

1. विधि– सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् 3.2.61

सद्, सू, द्विष्, द्रुह्, दुह्, युज्, विद्, भिद्, छिद्, जि, नी, राज्– इनसे उपसर्गरूप अथवा अनुपसर्गरूप सुबन्त उपपद होने पर 'क्विप्' होता है।

अनु॰– सुपि (3.2.4)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सद्– इत्यादि बारह धातुएँ, जिनसे पहले उपसर्ग हो या नहीं हो। द्वितीय 'सू' धातु अदादिगणीय है, न कि तुदादिगणीय 'युज्' से 'युजिर्' योगे (रुधादि– युनक्ति) एवं 'युज्' समाधौ (दिवादि– युज्यते)- उभय का ग्रहण है। 'विद्' से विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम् एवं विद् विचारणे– इन तीनों का ग्रहण है, न कि विद्लृ लाभे।

प्रयोग– 1. सद्– शुचौ सीदति = शुचि-सद् + क्विप् = **शुचिषत्।**
सद्– उप-नि – सद् + क्विप् = **उपनिषत्** (सदिरप्रतेः 8.3.66 से मूर्धन्यादेश)।

2. सू– अण्डं सूते = अण्ड-सू + क्विप् = **अण्डसूः**।
प्र– सू + क्विप् = **प्रसूः।**

3. द्विष्– मित्रं द्वेष्टि = मित्रद्विष् (प्रथमा एकवचन में **मित्रद्विट्**)। **प्रद्विट्।**

4. द्रुह्– मित्राय द्रुह्यति– **मित्रध्रुक्। प्रध्रुक्।**

5. युज्– **अश्वयुक्। प्रयुक्।**

6. विद्– वेदान् वेत्ति = **वेदवित्, प्रवित्, ब्रह्मवित्।**

7. भिद्– काष्ठं भिनत्ति = **काष्ठभित्, प्रभित्।**

8. छिद्– **रज्जुच्छिद्, प्रच्छिद्।**

9. जि– शत्रून् जयति = **शत्रुजित्, प्रजित्।**

10. नी– सेनां नयति = **सेनानीः, अग्रणीः, ग्रामणीः** (पूर्वपदात् संज्ञाया॰ 8.4.3 से णत्व)।

11. राज्– विश्वं राजयति = **विश्वराट्, विराट्।**

2. विधि– क्विप् च 3.2.76
उपपदयुक्त अथवा उपपदरहित सभी धातुओं से लोक तथा वेद में 'क्विप्'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कोई भी धातु (उपपद से युक्त अथवा निरुपपद)।

प्रयोग– उखायाः स्रंसते = उखा- स्रंस् + क्विप् = **उखास्रत्** (अनिदिताम्॰ 6.4.24 से न लोप, वस्रुस्रंसु॰ 8.2.72 से सकार को दकार)।

3. विधि– स्थः क च 3.2.77
सुबन्त उपपद के रहते सोपसर्ग अथवा उपसर्गरहित 'स्था' धातु से 'क' तथा 'क्विप्'।

अनु॰– क्विप् 3.2.76, उपसर्गेऽपि 3.2.61

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त 'स्था' गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰प॰।

प्रयोग– शं तिष्ठति = शम्–स्था + क्विप् = **शंस्थाः** 'कल्याणवाला'।

4. विधि– ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् 3.2.87
ब्रह्म, भ्रूण एवं वृत्र– ये ही कर्म उपपद रहते हन् धातु से भूतकाल में क्विप्।

अनु॰– कर्मणि, हनः (3.2.86), भूते (3.2.84)

विशेष– यह एक नियम सूत्र है। क्विप् च (3.2.76) सूत्र से सोपपद

'हन्' से क्विप् की सिद्धि होने पर भी इस सूत्र की रचना नियमार्थ है–

1. 'ब्रह्म' आदि के ही उपपद रहते यह क्विप् होगा, अतः 'पुरुषं हतवान्' में क्विप् नहीं।
2. 'ब्रह्म' आदि उपपद से युक्त 'हन्' धातु से ही क्विप् होगा, अतः 'ब्रह्म अधीतवान्' में क्विप् नहीं।
3. 'ब्रह्म' आदि से युक्त हन् से भूतकाल में ही क्विप्, न कि अन्य काल में, अतः 'ब्राह्मणं हन्ति' में क्विप् नहीं।
4. 'ब्रह्म' आदि से युक्त 'हन्' से भूतकाल में केवल क्विप्, अन्य प्रत्यय नहीं।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्मत्वविशिष्ट ब्रह्म, भ्रूण एवं वृत्र से युक्त 'हन्' हिंसागत्योः, अदा॰प॰।

प्रयोग– 1. ब्रह्म हतवान् = ब्रह्म-हन् + क्विप् = ब्रह्महन्, **ब्रह्महा** (प्रथमा ए॰व॰) 'ब्राह्मण को मारनेवाला', सौ च 6.4.13 से उपधादीर्घ, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से न् का लोप।

2. भ्रूणं हतवान् = **भ्रूणहा** 'गर्भ को गिरानेवाला'।

3. वृत्रं हतवान् = **वृत्रहा** 'वृत्र को मारने वाला इन्द्र'।

5. विधि– बहुलं छन्दसि 3.2.88

वेदविषय में कर्म उपपद रहते 'हन्' धातु से भूतकाल में बहुलतया क्विप्।

अनु॰– क्विप् (3.2.87), कर्मणि, हनः (3.2.86), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– वैदिक प्रयोग में कर्म उपपद से युक्त 'हन्' धातु।

प्रयोग– मातरं हतवान् = मातृ-हन् + क्विप् = **मातृहा** 'माँ को मारनेवाला'।

'मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्'।

विशेष– बहुल-ग्रहण से क्वचित् यह 'क्विप्' नहीं होता है। यथा– पितृघातः, मातृघातः। इसमें कर्मण्यण् 3.2.1 से अण् आया।

6. विधि– सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः 3.2.98

सु, कर्मन्, पाप, मन्त्र, पुण्य– ये कर्म उपपद हों तो कृ (कृञ्) धातु से भूतकाल में क्विप्। कर्मत्व विशेषण 'सु' से उपयोगी नहीं है, असम्भव होने से।

अनु॰– क्विप् (3.2.87), कर्मणि (3.2.86), भूते (3.2.84)।

अधिकार– धातोः (3.1.91)

प्रकृति– 'सु' आदि उपपद से युक्त 'कृ' धातु।

प्रयोग– 1. सु कृतवान् = सु + कृ + क्विप् = **सुकृत्** (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्)।

2. कर्म कृतवान् = कर्मन् - कृ + क्विप् = **कर्मकृत्** 'कर्म करनेवाला'।

3. पापं कृतवान् = **पापकृत्** 'पाप करनेवाला'।

4. मन्त्रं कृतवान् = **मन्त्रकृत्** 'मन्त्रद्रष्टा'।

5. पुण्यं कृतवान् = **पुण्यकृत्** 'पुण्य करनेवाला'।

7. विधि– सोमे सुञः 3.2.90

सोम कर्म उपपद रहते सुञ् (षुञ्) धातु से भूतकाल में क्विप्।

अनु॰– क्विप् (3.2.87), कर्मणि (3.2.86), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता (भूतकालिक)।

प्रकृति– कर्मत्वविशिष्ट 'सोम' उपपद से युक्त सु (षु) अभिषवे स्वादि॰उभ॰।

प्रयोग– सोमं सुतवान् = सोम-सु + क्विप् = **सोमसुत्** (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71) से तुक्) 'सोम को निचोडनेवाला'।

8. विधि– अग्नौ चेः 3.2.91

अग्नि कर्म उपपद रहते 'चि' धातु से भूतकाल में क्विप्।

अनु॰– क्विप् (3.2.87), कर्मणि (3.2.86), भूते (3.2.84)।

अर्थ– कर्ता (भूतकालिक)।

प्रकृति– कर्मत्वविशिष्ट 'अग्नि' उपपद से युक्त 'चि' धातु।

प्रयोग– अग्निं चितवान् = अग्नि – चि + क्विप् = **अग्निचित्** (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्)।

9. विधि– कर्मण्यग्न्याख्यायाम् 3.2.92
कर्म उपपद के रहते चि (चिञ्) धातु से कर्म कारक में क्विप्, यदि 'अग्नि' की आख्या हो।

अनु॰– चेः (3.2.91), क्विप् (3.2.87), कर्मणि (3.2.86)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त 'चि' धातु (कर्म कारक में)।

प्रयोग– श्येनः इव चीयते = श्येन-चि + क्विप् = **श्येनचित्** (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्) 'इंटों से चुनी गयी'। श्येन–आकार की अग्नि की वेदी।

विशेष– इस सूत्र में भूते (3.2.84) की अनुवृत्ति नहीं है। 'श्येनचितं चिन्वीत' आदि श्रौत ग्रन्थों में व्यवहार के आधार पर तीनों कालों में इसका व्यवहार माना जाता है।

10. विधि– भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् 3.2.177
भ्राज्, भास् आदि धातुओं से 'तच्छील' आदि कर्ता हों तो वर्तमानकाल में क्विप्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि, वर्तमानकालिक)।

प्रकृति– 1. भ्राज् दीप्तौ, भ्वा॰आ॰, 2. भास् दीप्तौ, भ्वा॰आ॰, 3. धुर्वी हिंसायाम्, भ्वा॰प॰, 4. द्युत् दीप्तौ, भ्वा॰ आ॰, 5. ऊर्ज् बलप्राणनयोः, चुरा॰प॰, 6. पॄ पालनपूरणयोः, क्र्या॰प॰ 7. जु, 8. ग्राव् - स्तु (ष्टुञ् स्तुतौ, अदा॰प॰)।

प्रयोग– 1. विभ्राजते इति = वि-भ्राज् + क्विप् = **विभ्राट्- विभ्राड्** (प्रथमा ए॰व॰) 'जो स्वभाव से चमकता है'। (व्रश्चभ्रस्ज 8.2.36 से जकार को षकार, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से ष् को ड्, वाऽवसाने 8.4.56 से ड् को विकल्प से ट्)।

2. भासते = भास् + क्विप् = **भाः**। 'दृशा निशेन्दीवरचारुभासा' -नै० 22.43
3. धूर्वति (हिनस्ति) एवंशीला = धूर्वी + क्विप् = **धूः**।
4. विद्योतते इत्येवंशीला = वि-द्युत् + क्विप् = **विद्युत्** 'बिजली'। 'वाताय कपिला विद्युत्'- सि०कौ० कारकप्रकरण
5. ऊर्जयति = ऊर्ज् + क्विप् = **ऊर्क्** 'सामर्थ्य'।
6. पृणाति = पृ + क्विप् = **पूः**। उदोष्ठ्य० 7.1.102 से ॠ को उकार, रपरत्व, उपधायां च 8.2.78 से उकार को दीर्घ।
7. जवते = जु (सौत्र धातु) + क्विप् = **जूः** 'चाल' (निपातन से दीर्घ)।
8. ग्राव - स्तु + क्विप् = **ग्रावस्तुत्** (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्)।

11. विधि- अन्येभ्योऽपि दृश्यते 3.2.178

अन्य (भ्राजभास० 3.2.177 सूत्र में कथित भ्राज् आदि से भिन्न) धातुओं से भी तच्छीलादि कर्ता होने पर क्विप् देखा जाता है।

अनु०- क्विप् (3.2.117), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ- कर्ता (तच्छीलादि, वर्तमानकालिक)।

प्रकृति- एतादृश व्यवहार में दृश्यमान धातुसामान्य।

प्रयोग- 1. युनक्ति इत्येवंशीलः = युज् + क्विप् = **युक्** 'जोड़नेवाला' (चोः कुः 8.2.30 से कुत्व)।
2. भिनत्ति = भिद् + क्विप् = **भिद्** 'भेदनेवाला'।
3. छिनत्ति = छिद् + क्विप् = **छिद्** 'छेदनेवाला'।

विशेष-1. सूत्र में 'दृश्यते' (देखा जाता है) के कथन से दूसरी अनियमित विधियों का बोध है। यथा- कहीं नहीं होनेवाला द्वित्व, न होनेवाला सम्प्रसारण, होनेवाले सम्प्रसारण का अभाव। अतः वार्त्तिककार की उक्ति है-

विशेष–2. 'क्विब् वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' (वा॰)

वच्, प्रच्छ्, आयत-स्तु, कट-प्रु, जु तथा श्रि धातुओं से क्विप्, दीर्घ एवं सम्प्रसारणाभाव भी बोद्धव्य है।

प्रयोग– 1. वच् = **वाक्** (दीर्घ एवं सम्प्रसारणाभाव)।

2. प्रच्छ् = **प्राट्** (दीर्घ)।

3. आयतं स्तौति = आयत-स्तु + क्विप् = **आयतस्तूः** (दीर्घ)।

4. कटं प्रवते = कट-प्रु + क्विप् = **कटप्रूः** (दीर्घ)।

5. जवते = जु + क्विप् = **जूः** (दीर्घ)।

6. श्रयति हरिम् = श्रि + क्विप् = **श्रीः** (दीर्घ) 'लक्ष्मी'।

विशेष–3. द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च (वा॰)

द्युत्, गम् तथा जु धातुओं से क्विप् एवं धातुओं को द्वित्व भी।

प्रयोग– 1. द्युत् + क्विप् = **दिद्युत्** (द्वित्व एवं अभ्यास को सम्प्रसारण)।

2. गम् + क्विप् = **जगत्** (द्वित्व), गमः क्वौ 6.4.40 से म् का लोप।

3. जुहोति = हु + क्विप् = **जुहूः** (द्वित्व, दीर्घ), करण में कर्तृबुद्धि।

विशेष–4. दॄ भय इत्यस्य ह्रस्वश्च द्वे च (वा॰)

भयार्थक 'दॄ' धातु को ह्रस्व एवं द्वित्व भी होते हैं, क्विप् के रहते।

प्रयोग– दॄ + क्विप् = **दद्दृत्**।

विशेष–5. ध्यायतेः सम्प्रसारणं च (वा॰)

'ध्या' धातु को सम्प्रसारण भी होता है और क्विप् भी।

प्रयोग– ध्यायति = ध्या + क्विप् = **धीः** 'बुद्धि' (सम्प्रसारण एवं दीर्घ)। इसमें (धी में) करण में कर्तृत्व की बुद्धि है।

12. विधि– भुवः संज्ञान्तरयोः 3.2.179

'भू' धातु से संज्ञा तथा अन्तर गम्यमान होने पर क्विप्।

अन्तर = मध्य।

अनु॰– क्विप् (3.2.177), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– संज्ञा अथवा अन्तर।

प्रकृति– संज्ञा अथवा अन्तर (धनिक एवं ऋण लेनेवाले के बीच जो विश्वास के लिए ठहरता है) अर्थ में 'भू' धातु।

प्रयोग– 1. संज्ञा– वि–भू + क्विप् = **विभूः** (संज्ञाविशेष)

2. अन्तर– प्रति–भू + क्विप् = **प्रतिभूः** (ऋण लेनेवाले एवं ऋण देनेवाले के मध्य में मध्यस्थ एवं उत्तरदायी बननेवाला)। 'सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम्'– विक्रमाङ्क॰ 1.9

13. विधि– संपदादिभ्यः क्विप् (वा॰ 3.3.94 स्त्रियां क्तिन्) सम् आदि से विशिष्ट 'पद्' धातु से भाव में 'क्विप्'। क्तिन्नपीष्यते (वा॰) से पक्ष में क्तिन् भी। यह स्त्रीलिङ्ग में ही आता है।

प्रयोग– 1. सम् - पद् + क्विप् = **संपत्**।

2. वि-पद् + क्विप् = **विपत्**।

3. प्रति-पद् + क्विप् = **प्रतिपत्**।

पक्ष में क्तिन् होने पर संपत्तिः, विपत्तिः, प्रतिपत्तिः भी बनते है।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ 6.3.116 क्विप् 'क्विप्' के परे रहते नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह्, तन् धातुओं के उत्तरपद होने पर पूर्वपद को दीर्घ। क्विप् च 3.2.76 से 'क्विप्'।

प्रयोग– 1. उपनह्यते = उप-नह् + क्विप् (क्विप् च 3.2.76 से) प्रस्तुत सूत्र से दीर्घ– **उपानत्** 'जूता'। 'उपानद्गूढपादस्य सर्वा चर्मावृतेव भूः' – हितो॰ 1.122

2. नि– वृत् + क्विप् = **नीवृत्** 'स्वतन्त्र देश'।

3. प्र– वृष् + क्विप् = **प्रावृट्** 'वर्षाकाल'। 'प्रावृट् प्रावृडिति ब्रवीति शठधीः क्षारं क्षते प्रक्षिपन्' – मृच्छ॰ 5.18

4. मर्म– व्यध् + क्विप् = **मर्मावित्** (ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से सम्प्रसारण)।

5. नि-रुच् + क्विप् = **नीरुक्**।

6. ऋति– सह् + क्विप् = **ऋतीषट्**।

7. तरि– तन् + क्विप् = **तरीतत्** (गमः क्वौ 6.4.40 में 'गम्' से गमादि का ग्रहण होने से तन् धातु के नकार का लोप)।

सम्ब॰ (2) क्वौ च शास इत्वं भवतीति वक्तव्यम् (वा॰ 6.4.34)

'क्वि' के परे रहते भी 'शास्' की उपधा का इत्त्व होना चाहिए।

प्रयोग– 1. आर्यान् शास्ति = आर्य-शास् + क्विप् (क्विप् च 3.2.76 से क्विप्), प्रस्तुत वार्तिक से उपधा आकार को इकार = 'आर्यशिस् + सु' (क्विप् के लोप के पश्चात्) इस अवस्था में 'सु' का लोप (हल्ङ्याब्भ्यो॰ 6.1.68) = आर्यशिस्, ससजुषो रुः 8.2.66 से सकार को रु, उ का अनुबन्ध लोप– आर्यशिर्, 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' 8.2.76 से उपधा इकार को दीर्घ, रेफ का विसर्ग– **आर्यशीः।**

सम्ब॰ (3) क्विप्प्रत्यये तु तस्यापि भवतीति वक्व्यम् (वा॰ 6.4.34)

क्विप् प्रत्यय के परे आङ् + शास् धातु की उपधा में भी इत्व मानना चाहिए।

प्रयोग– आ– शास् + क्विप् = **आशीः** (आर्यशीः– प्रयोग 1 द्रष्टव्य)।

सम्ब॰ (4) गमः क्वौ 6.4.40

क्विप्रत्यय के परे रहते 'गम्' धातु के अनुनासिक का लोप होता है।

प्रयोग– अङ्गं गच्छति = अङ्ग-गम् + क्विप् = **अङ्गगत्**। प्रस्तुत सूत्र से म् का लोप, ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्।

सम्ब॰ (5) अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति 6.4.15

क्विप्रत्यय तथा (झलादि कित् एवं झलादि ङित् प्रत्ययों) के परे अनुनासिकान्त धातु की उपधा को दीर्घ होता है।

प्रयोग– प्र–शम् + क्विप् = प्रशम् = प्रशन् (मो नो धातोः 8.2.64 से म् को नकार) = **प्रशान्** (प्रस्तुत सूत्र से उपधा को दीर्घ)। यहाँ क्विप् च 3.2.76 से क्विप् प्रत्यय हुआ।

सम्ब॰ (6) च्छ्वोः शूडनुनासिके च 6.4.19

क्वि प्रत्यय (तथा अनुनासिकादि प्रत्यय एवं झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्ययों) के परे रहने पर तुक् से युक्त छ् (अर्थात् च्छ्) के तथा वकार के स्थान में क्रमशः 'श्' एवं 'ऊठ्' आदेश हो जाते हैं।

प्रयोग– 1. च्छ्– शब्द-प्रच्छ् + क्विप् = **शब्दप्राट्** ('शब्दप्राश्' की प्रथमा ए॰व॰ में), प्रस्तुत सूत्र से च्छ् को श् आदेश।

2. वकार– अक्ष-दिव् + क्विप् = **अक्षदिव् = अक्षद्यूः** (प्रस्तुत सूत्र से व् के स्थान पर ऊठ्)।

सम्ब॰ (7) ज्वरत्वरश्रिव्यविमवामुपधायाश्च 6.4.20

ज्वर् आदि की वकार सहित उपधा के स्थान में ऊठ् (ऊ) होता है, क्वि (क्विप्) प्रत्यय परे हो (तथा अनुनासिकादि प्रत्यय एवं झलादि कित् तथा ङित् प्रत्यय हो)।

प्रयोग– 1. ज्वर् + क्विप् (क्विप् च 3.2.76 से क्विप्) = ज्वर् = जूर् = **जूः** (क्विप् के लोप के पश्चात् प्रस्तुत सूत्र से वकार सहित उपधा को 'ऊठ्' आदेश)।

2. त्वर् + क्विप् = **तूः**।

3. श्रिव् + क्विप् = **श्रूः**। (व् के साथ इकार को ऊठ् आदेश)।

4. अव् + क्विप् = **ऊः** (व् के साथ उपधा अकार को 'ऊठ्' आदेश)।

5. मव् + क्विप् = **मूः** (व् के साथ उपधा अकार को 'ऊठ्' आदेश)।

क्स

क्स = स। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव–

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधा गुण की प्राप्ति।
2. कित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।
3. झलादि। अतः व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः 8.2.36 से 'दृश्' के शकार को षकार।

विशेष– यह प्रत्यय केवल वार्तिककार ने पढ़ा हे, सूत्रकार ने नहीं।

1. विधि– दृशेः क्सश्च वक्तव्यः (वा॰ 3.2.60)
त्यदादि के उपपद होने पर 'दृश्' धातु से 'क्स'।

प्रसङ्ग– त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च (3.2.60)– अनालोचन अर्थ में त्यदादि के उपपदत्व में 'दृश्' धातु से कञ् तथा क्विन् प्रत्यय।

अर्थ– अनालोचन (न देखना)

प्रकृति– त्यद् आदि उपपद से युक्त 'दृश्' धातु।

प्रयोग– 1. तद्-दृश् + क्स = ता-दृश् + स (आ सर्वनाम्नः 6.3.91 से तद् के 'द्' को आकार, सवर्ण दीर्घ एवं क् का अनुबन्ध लोप) = तादृष् स (व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 से शकार को षकार) = तादृक् स (षढोः कः सि 8.2.41 से षकार को ककार) = **तादृक्षः** 'वैसा' (आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से सकार को षकार)।

2. यद् – दृश् + क्स = **यादृक्षः** 'जैसा'।

3. अन्यद्– दृश् + क्स = **अन्यादृक्षः** 'दूसरे जैसा'।

विशेष–1. समान-दृश् + क्स = **सदृक्षः** 'सदृश' (दृक्षे चेति वक्तव्यम्, वा॰ 6.2.89 से समान को 'स' आदेश, शेष 'तादृक्षः' जैसा)।

विशेष–2. इदम्– दृश् + क्स = **ईदृक्षः** 'ऐसा' (दृक्षे चेति वक्तव्यम्, वा॰ 6.2.90 से इदम् को 'ई' आदेश, शेष 'तादृक्षः' जैसा)।

विशेष–3. किम्– दृश् + क्स = **कीदृक्षः** 'कैसा' (दृक्षे चेति वक्तव्यम्, वा॰ 6.2.90 से किम् को 'की' आदेश, शेष 'तादृक्षः' जैसा)।

विशेष–4. यत्–दृश् + क्स = **यादृक्षः** (दृक्षे चेति वक्तव्यम्, वा॰ 6.2.91 के कारण त् को आकार आदेश, सवर्णदीर्घ, शेष उपरिप्रदर्शित)।

विशेष–5. दृशेः क्सप्रत्ययोऽपि तत्रैव वक्तव्यः (वा॰ 6.2.89) से उपर्युक्त स्थलों में ही दृश् धातु से 'क्स' प्रत्यय।

क्से

क्से = से। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव–

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु को गुण की प्राप्ति।
2. कित्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु के गुण का निषेध।
3. एजन्त कृत्। अतः क्से-प्रत्ययान्त की अव्यव्य-संज्ञा (कृन्मेजन्तः 1.1.39)।

विशेष– यह केवल वैदिक शब्द में लगनेवाला प्रत्यय है।

1. विधि– तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यै-शध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः 3.4.9

वेदविषय में तुमुन्-अर्थ में धातु से क्से (से आदि भी)।

प्रसङ्ग– तुमुन्– अर्थ। तुमुन् प्रत्यय भाव में होता है। अतः यहाँ भाव अर्थ में यह क्से प्रत्यय आता है 'तुमर्थो भावः'– काशिका)।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)

अर्थ– भाव।

प्रकृति– सामान्य धातु, यथा– प्र + इण्।

प्रयोग– प्र-इण् + क्से = प्र + इ + से (अनुबन्ध लोप)= प्र + इ + षे (आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से सकार को षत्व) = **प्रेषे** (आद्गुणः 6.1.87 से गुण एकादेश, क्ङिति च 1.1.5 से धातु के गुण का निषेध)। प्रयोगस्थल– **प्रेषे** भगाय (यजु॰ 5/7)।

क्स्नु

क्स्नु = स्नु। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से क् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से क् का लोप।

स्वभाव–

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण की प्राप्ति।

2. गित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। वस्तुतः यह प्रत्यय 'ग्स्नु' है। खरि च 8.4.55 से ग् को क् आदेश हुआ है। इसी कारण से इस प्रत्यय को गित् माना गया न कि कित्। क्ङिति च 1.1.5 सूत्र में 'ग् + क् + ङ् + इति च' है, खरि च 8.4.55 सूत्र से गकार को ककार आदेश हुआ है। अतः गित् प्रत्यय के परे रहते भी क्ङिति च सूत्र से गुणनिषेध होता है।

(गिच्चायं प्रत्ययो न कित्, तेन स्थ ईकारो न भवति। 'क्क्ङिति च' 'इत्यत्र गकारोऽपि चर्त्वभूतो निदर्श्यिते, तेन गुणो न भवति।– का॰)

1. विधि– ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः 3.2.139

ग्ला (ग्लै), जि, स्था तथा भू धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में क्स्नु प्रत्यय।

अनु॰– भुवः (3.2.138), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– ग्ला हर्षक्षये, भ्वा॰प॰, जि जये, भ्वा॰प॰, स्था गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰प॰, भू।

प्रयोग– 1. ग्लायति = ग्ला + क्स्नु = **ग्लास्नुः** 'क्षयशील'।

2. जयति = जि + क्स्नु = **जिष्णुः** 'जयशील' (आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से सकार को मूर्धन्यादेश, रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से नकार को मूर्धन्य णकार, क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध। 'इति जित्वा दिशो

जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम्' – रघु॰ 4.85

3. स्था + क्स्नु = **स्थास्नुः** 'स्थितिशील'।

4. भू + क्स्नु = **भूष्णुः** ('जिष्णुः' जैसा) 'होनहार'।

विशेष–1. दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम् (वा॰)

'दंश्' धातु से छन्दोविषय में 'क्स्नु' प्रत्यय।

प्रयोग– दंश् + क्स्नु = **दंक्ष्णुः** 'दंशनशील'।

प्रयोग– दंक्ष्णवः पशवः।

खच्

खच् = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत्संज्ञा। तस्य लोपः। 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः (क) खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से अनव्यय का ह्रस्व, यथा– कालिंमन्या। (ख) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद के रूप में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्– आगम, यथा– परंतपः। (ग) इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च 6.3.68 से पूर्वपद में स्थित इजन्त एकाच् को अम्–आगम— गांमन्यः।
3. चित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः 'चितः' 6.1.163 से अन्त उदात्त होता है। चित् का केवल वैदिक प्रयोजन है, लौकिक नहीं।

1. विधि– प्रियवशे वदः खच् 3.2.38
प्रिय तथा वश (कर्म) उपपद हों तो 'वद्' धातु से खच्।

अनु॰– कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 1. प्रिय (कर्म) उपपद से युक्त वद्।
2. वश (कर्म) उपपद से युक्त वद्।

प्रयोग– 1. प्रियं वदति = प्रिय-वद् + खच् = **प्रियंवदः** 'मीठा बोलनेवाला' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से प्रिय के अन्त्य अकार के पश्चात् मिदचोऽन्त्यात्परः 1.1.47 के अनुसार मुम्-आगम, मोऽनुस्वारः 8.3.23 से म् को अनुस्वार)। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला की प्रिय सखी 'प्रियंवदा' है।

2. वशम् (=आयत्तम्) वदति = वश-वद् + खच् = **वशंवदः** 'जो अपने को पराधीन, परायत्त या आज्ञाकारी कहता है' (रूपसिद्धि 'प्रियंवदः' की तरह है)। 'सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम्' – गीत॰ 11

विशेष–1. खच्प्रकरणे गमेः सुप्युपसंख्यानम् (वा॰ 3.2.38)
प्रस्तुत 'खच्' प्रकरण में सुबन्त उपपद से विशिष्ट 'गम्' धातु से 'खच्' का विधान उचित है।

प्रयोग– मितं गच्छति = मित– गम् + खच् = **मितङ्गमः** 'हाथी' (रूपसिद्धि 'प्रियंवदः'– विधि 1 जैसी)। हाथी धीरे-धीरे जाता है, अतः उसे 'मितङ्गम' कहते हैं।

विशेष–2. विहायसो विह च (वा॰ 3.2.38)
विहायस् - उपपद से विशिष्ट 'गम्' धातु से विकल्प से 'खच्', विहायस् को 'विह' आदेश भी।

प्रयोग– विहायसा गच्छति = विहायस् – गम् + खच् = **विहङ्गमः** 'पक्षी'। 'विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहङ्गमाः' – रघु॰ 9.37

2. विधि– द्विषत्परयोस्तापेः 3.2.39
द्विषत् एवं पर (कर्म) उपपद हों तो ताप् (ण्यन्त तप्) धातु से खच्।

अनु॰– खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 1. द्विषत् (कर्म) उपपद से युक्त ताप् इ,
2. पर (कर्म) उपपद से युक्त ताप् इ।

प्रयोग– 1. द्विषन्तं तापयति = द्विषत् - ताप् इ (णिच्) + खच् = **द्विषन्तपः** 'शत्रुओं को तपाने = जलाने वाला'। (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से द्विषत् के अन्तिम स्वर अ के पश्चात् मुम् - आगम, खचि ह्रस्वः 6.4.94 से उपधा को ह्रस्व, णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप, संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23 त् का लोप)।
2. परं तापयति = पर-ताप् इ (णिच्) + खच् = **परंतपः** 'दूसरों अर्थात् शत्रुओं को तपानेवाला'। रूपसिद्धि 'द्विषन्तपः' जैसी। 'यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परन्तपः' – रघु॰ 15.7

3. विधि– वाचि यमो व्रते 3.2.40
वाच् (कर्म) उपपद हो तो यम् धातु से व्रत गम्यमान होने पर खच्।
अनु॰– खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), व्रत गम्यमान होने पर।
प्रकृति– वाच् (कर्म) उपपद से युक्त यम् धातु।
प्रयोग– वाचं यच्छति = वाच्-यम् + खच् = वाच्-यम् + अ =**वाचंयमः** 'वाणी को संयम में रखनेवाला' (वाचंयमपुरन्दरौ च 6.3.68 से निपातन से पूर्वपद का अमन्तत्व)। 'वाचंयमत्वात् प्रणतिं ममैष' – रघु॰ 13.44

4. विधि– पूःसर्वयोर्दारिसहोः 3.2.41
कर्मत्वविशिष्ट पुर् एवं सर्व उपपद हों तो क्रमशः 'दारि' (दृ + णिच्) एवं सह् धातु से खच्।
अनु॰– खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– 1. पुर् (कर्म) + दारि ('दृ' विदारणे + णिच्)।
2. सर्व (कर्म) + सह्।
प्रयोग– 1. पुरं दारयति = पुर्-दार्-इ (णिच्) + खच् = **पुरन्दरः** 'किले को तोड़नेवाला इन्द्र' (खचि ह्रस्वः 6.4.94 से उपधा का ह्रस्व, णेरनिटि 6.4.51 णिच् का लोप, वाचंयमपुरन्दरौ च 6.3.68 से निपातन से पूर्वपद का अमन्तत्व)। 'वृद्धश्रवाः सुनासीरः पुरुहूतः पुरन्दरः' –अमर॰ 1.1.41
2. सर्वं सहते = सर्व–सह् + खच् = **सर्वंसहः** 'सब सहनेवाला' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्–आगम)। पृथिवी 'सर्वंसहा' कहलाती है– 'सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा– अमर॰ 2.1.2

विशेष – भगे च दारेरिति वक्तव्यम् (वा॰ 3.2.41)
कर्मत्वविशिष्ट 'भग' उपपद हो तो भी दारि (ण्यन्त दृ) से खच् होना चाहिए।

प्रयोग– भगं दारयति = भग-दारि + खच् = **भगन्दरः** 'रोगविशेष'। रूपसिद्धि 'पुरन्दरः' (द्रष्टव्य 3.2.41) जैसी।
'व्याधिभेदा विद्रधिः स्त्री ज्वरमेहभगन्दराः' –अमर॰ 2.6.56

5. विधि– सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः 3.2.42
सर्व, कूल, अभ्र, करीष– ये कर्म उपपद हों तो कष् धातु से खच्।
अनु॰– खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22)
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)
प्रकृति– 1. सर्व (कर्म) + कष्, 2. कूल (कर्म) + कष्, 3. अभ्र (कर्म) + कष्, 4. करीष (कर्म) + कष्।
प्रयोग– 1. सर्वं कषति = सर्व-कष् + खच् = सर्व-कष् + अ = **सर्वंकषः** 'सबको पीड़ा देनेवाला' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67) से मुम्– आगम) 'सर्वंकषा भगवती भवितव्यतैव'– मातंगलीला 1/23
2. कूलं कषति = **कूलंकषा** नदी 'किनारे को तोड़नेवाली नदी'। रूपसिद्धि 'सर्वंकषः' जैसी, अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्।
'कूलंकषेव प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च'– अभि॰ 5.21
3. अभ्रं कषति = **अभ्रंकषः** गिरिः 'गगनचुम्बी पर्वत'।
4. करीषं कषति = **करीषंकषा** वात्या 'सूखे गोबर को भी उड़ा ले जानेवाली आँधी'।

6. विधि– मेघर्त्तिभयेषु कृञः 3.2.43
मेघ, ऋति, भय– ये कर्म उपपद हों तो कृञ् अर्थात् कृ धातु से खच्।
अनु॰– खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22)
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)
प्रकृति– 1. मेघ (कर्म) + कृ, 2. ऋति (कर्म) + कृ।
प्रयोग– 1. मेघं करोति = मेघ-कृ + खच् = मेघ कृ अ = **मेघंकरः** 'बादल बनानेवाला'(अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम् – आगम)।

2. ऋतिं करोति = **ऋतिंकरः** 'स्पर्धा करनेवाला'।

3. भयं करोति = **भयंकरः** 'भीषण'।

विशेष– उपपदविधौ भयादिग्रहणं तदन्तविधिं प्रयोजयति (वा॰, 4.2.43)

उपपदनिमित्तक विधि में भयादि उपपद में तदन्तविधि भी समझनी चाहिए।

प्रयोग– अभयं करोति = अभय - कृ + खच् = **अभयंकरः**।

7. विधि– क्षेमप्रियमद्रेऽण् च 3.2.44

क्षेम, प्रिय, मद्र– ये कर्म उपपद हों तो 'कृञ्' धातु से अण् एवं खच् भी।

अनु॰– कृञः (3.2.43), खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 1. क्षेम (कर्म) + कृ, 2. प्रिय (कर्म) + कृ, 3. मद्र (कर्म) + कृ।

प्रयोग– 1. क्षेमं करोति = क्षेम-कृ + खच् = **क्षेमंकरः** 'कुशलता करनेवाला' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्-आगम)।

2. प्रियं करोति = **प्रियंकरः** 'प्रिय करनेवाला'।

3. मद्रं करोति = **मद्रंकरः** 'भला करनेवाला'।

पक्ष में अण् होने से क्षेमकारः, प्रियकारः एवं मद्रकारः (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि)।

8. विधि– आशिते भुवः करणभावयोः 3.2.45

आशित सुबन्त उपपद हो तो 'भू' धातु से करण एवं भाव में खच्।

अनु॰– कर्तरि कृत् (3.4.67) से कर्ता में ही खच् प्रत्यय प्राप्त था, प्रस्तुत सूत्र उसका अपवाद है, अतः यह प्रत्यय करण एवं भाव में आता है।

अर्थ– करण एवं भाव में (कर्ता का अपवाद है)

प्रकृति– आशित (कर्म) + भू। आशित = तृप्त।

प्रयोग– 1. करण में– आशितः भवति अनेन = आशित-भू + खच् = **आशितंभवः** ओदनः 'जिसके द्वारा तृप्त हुआ जाता है ऐसा चावल'। (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्–आगम, सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)।

2. भाव में– आशितस्य भवनम् = आशित-भू + खच् = **आशितंभवं** वर्तते (तृप्त होना हो रहा है)।

9. विधि– संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः 3.2.46

संज्ञा गम्यमान हो तो कर्म अथवा सुबन्त उपपद रहते भृ, तृ, वृ जि, धारि, सहि (सह्), तप्, दम्- इन धातुओं से खच्।

अनु॰– खच् (3.2.38), कर्मणि (3.2.22), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्म अथवा सुबन्त उपपद से युक्त– 1. भृ, 2. तृ, 3. वृ, 4. जि, 5. धारि, 6. सह्, 7. तप्, 8. दम्।

प्रयोग– 1. विश्वं बिभर्त्ति = विश्व-भृ + खच् = विश्व- भृ + अ = **विश्वम्भरः** परमेश्वरः 'विश्व का भरण करनेवाला परमेश्वर' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्–आगम, सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)। 'विश्वम्भरा भगवतीं भवतीमसूत' – उत्तर॰ 1.9

2. रथेन तरति = रथ– तृ + खच् = **रथन्तरं** साम 'सामगानविशेष'।

3. पतिं वृणुते = पति-वृ + खच् = **पतिंवरा** कन्या 'पति का वरण करनेवाली कन्या। 'संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा' – रघु॰ 6.67

4. शत्रुं जयति = शत्रु-जि + खच् = **शत्रुञ्जयः** हस्ती 'शत्रु को जीतनेवाला हाथी'।

5. युगं धारयति = युग- धारि + खच् = **युगन्धरः** पर्वतः।

6. शत्रुं सहते = शत्रु - सह् + खच् = **शत्रुंसहः** 'शत्रु को सहनेवाला'।

7. शत्रुं तपति = शत्रु-तप् + खच् = **शत्रुंतपः** 'शत्रु को तपानेवाला'।

8. अरिं दाम्यति = अरि-दम् + खच् = **अरिंदमः** 'शत्रु को दमन करनेवाला'।

10. विधि– गमश्च 3.2.42

संज्ञा गम्यमान हो तो सुबन्त उपपद होने पर 'गम्' से भी खच्।

अनु०– संज्ञायाम् (3.2.46), खच् (3.2.38), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त गम्।

प्रयोग– सुतं प्रति गच्छति = सुत - गम् + खच् = **सुतङ्गमः** 'किसी व्यक्तिविशेष का नाम है' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्)। यहाँ नश्चापदान्तस्य झलि 8.3.24 से म् को अनुस्वार, एवं अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः 8.4.58 से अनुस्वार को परसवर्ण से ङकार हुआ है।

सम्बद्धस्थल

(1) खचि ह्रस्वः 6.4.94 खच् - प्रत्ययपरक 'णि' के परे अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो जाता है।

द्विषन्तं तापयति = द्विषत् - ताप् इ (णिच्) + खच् (द्विषत्परयोस्तापेः 3.2.39 से खच्) = **द्विषन्तपः** 'शत्रुओं को तपानेवाला'। प्रस्तुत सूत्र से उपधा को ह्रस्व हुआ है। प्रयोगसिद्धि के लिए द्रष्टव्य– विधि सं० 2

परं तापयति = **परंतपः** 'दूसरों अर्थात् शत्रुओं को तपानेवाला'। प्रयोगसिद्धि के लिए द्रष्टव्य० विधि सं 2

पुरं दारयति = पुर् - दार् इ (णिच्) + खच् (पूःसर्वयोर्दारिसहोः 3.2.41 से खच्) = **पुरन्दरः** 'किले को तोड़नेवाला– इन्द्र का पर्यायवाची'। इसमें प्रस्तुत सूत्र से उपधा को ह्रस्व हुआ है। प्रयोगसिद्धि के लिए द्रष्टव्य– विधि सं 4

खमुञ्

खमुञ् = अम्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की, हलन्त्यम् 1.3.3 से ञ् की एवं उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से उ की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से सभी इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः (क) खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से अनव्यय को ह्रस्व। (ख) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्–आगम, यथा– चोरङ्कारम्।
3. मित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः अचो ञ्णिति 7.2.115 से अजन्त धातु को वृद्धि, यथा– चोरङ्कारम्।
4. मान्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से खमुञ्-अन्त शब्द अव्यय कहलाता है, यथा– चोरङ्कारम् आक्रोशति।

1. विधि– कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् 3.4.25
कर्म उपपद रहते आक्रोश गम्यमान हो तो समानकर्तृक पूर्वकालिक कृञ् धातु से खमुञ्।

अनु॰– समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (3.4.21)।

अर्थ– आक्रोश।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त कृ धातु, यथा– चोरम्– कृ।

प्रयोग– चोरम् - कृ + खमुञ् = चोर-कृ + अम् **चोरङ्कारम्** आक्रोशति 'चोर है, ऐसा कहकर चिल्लाता है' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम् - आगम, अचो ञ्णिति 7.2.115 से धातु के ऋकार को वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व नश्चापदान्तस्य झलि 8.3.24 से म् को अनुस्वार, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः 8.4.58 से अनुस्वार को परसवर्ण)।

खल्

खल् = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की, हलन्त्यम् 1.3.3 से ल् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः (क) खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से अनव्यय का ह्रस्व। (ख) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्-आगम, यथा- दुराढ्यम्भवम्।
3. लित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः लिति 6.1.193 से खल् से पूर्व उदात्त होता है।
4. भाव एवं कर्मवाच्य में- तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 के अनुसार खलर्थ प्रत्यय होने से यह 'खल्' सकर्मक धातु से कर्म में एवं अकर्मक धातु से भाव में आता है।

1. विधि– ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् 3.3.126

कृच्छ्र (=कष्ट) एवं अकृच्छ्र (=सुख) अर्थवाले ईषत्, दुर् तथा सु– ये उपपद हों तो धातु से खल्।

अर्थ– भाव एवं कर्म (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70)। कृच्छ्र अर्थ में दुर् एवं अकृच्छ्र अर्थ में ईषत् एवं सु आते हैं।

प्रकृति– कृच्छ्र/अकृच्छ्र अर्थ में आगत ईषत्, दुर् एवं सु से युक्त धातुसामान्य, यथा– ईषत् - कृ।

प्रयोग– 1. कृच्छ्रार्थ में दुर् - कृ + खल् = **दुष्करः** 'कठिन' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, रेफ को विसर्ग, सत्व एवं मूर्धन्यादेश)।

2. अकृच्छ्र अर्थ में – ईषत् - कृ + खल् = **ईषत्करः** कटः भवता 'आपके द्वारा चटाई सुगमता से बनती है'। यहाँ कर्मवाच्य में 'खल्' आया है।

3. अकृच्छ अर्थ में– सु-कृ + खल् = **सुकरः** 'सरल'।

विशेष–1. 'ईषद्दुःसुषु' के कथन से 'कृच्छ्रेण कार्यः कटः' में कृ धातु से 'खल्' प्रत्यय नहीं आता।

विशेष–2. 'कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु' के कथन से 'ईषत्कार्यः में 'खल्' नहीं आया, क्योंकि इसमें अकृच्छ्र अर्थ में ईषत् का आगमन स्पष्ट नहीं है।

विशेष–3. खल् प्रत्यय का यहाँ खित्करण परवर्ती सूत्र कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः 3.3.127 से मुम्-आगम के लिए उद्दिष्ट है, अतः इस सूत्र में खित् करण का कोई साक्षात् प्रयोजन नहीं है।

2. विधि– कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः 3.3.127

कर्ता के उपपद रहने पर 'भू' धातु से तथा कर्म के उपपद रहने पर 'कृञ्' धातु से और ईषत् आदि के उपपद रहने पर 'भू' तथा 'कृञ्' धातुओं से 'खल्' प्रत्यय।

अनु॰– ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् (3.3.126), प्रस्तुत सूत्र में कथित 'च' के बल से।

प्रकृति– 1. कर्ता उपपद युक्त 'भू', 2. कर्म उपपद युक्त 'कृ'।

2. ईषत्, दुः अथवा सु उपपद युक्त कृ, भू।

प्रयोग– 1. अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन शक्यं भवितुम् = ईषत्–आढ्य – भू + खल् = **ईषदाढ्यंभवं** भवता 'आप सुगमता से धनाढ्य होने योग्य हैं'। (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से 'आढ्य' के अन्त में मुम्, अनुबन्धलोप, म् को अनुस्वार, सार्वधातुका॰ 7.3.84 से धातु को गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)। भाववाच्य होने से औत्सर्गिक नपुंसकलिङ्ग एवं एकवचन।

2. अनाढ्यः ईषद् आढ्यः क्रियते = ईषद् – आढ्य – कृ + खल् = **ईषदाढ्यंकरः** देवदत्तः (मुम्-आगम पूर्ववत्, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। उक्ते कर्मणि प्रथमा।

3. अनाढ्येन भवता दुराढ्येन शक्यं भवितुम् = दुर् – आढ्य – भू + खल् = **दुराढ्यंभवं** भवता।

4. अनाढ्येन भवता स्वाढ्येन शक्यं भवितुम् = **स्वाढ्यंभवं** भवता।

5. अनाढ्यः दुराढ्यः क्रियते = दुर् – आढ्य – कृ + खल् = **दुराढ्यंकरः**।

6. अनाढ्यः स्वाढ्यः क्रियते = सु – आढ्य – कृ + खल् = **स्वाढ्यंकरः**।

विशेष–1. कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वक्तव्यम् (वा॰) कर्ता एवं कर्म के उपपद होने पर भी 'च्वि' के अर्थ (अभूततद्भाव) में ही कृ एवं भू से उक्त 'खल्' प्रत्यय आता है।

प्रत्युदाहरण– **आढ्येन सुभूयते** अथवा **स्वाढ्येन भूयते**। यहाँ अनुक्त कर्ता 'आढ्य' उपपद है, तथापि अभूततद्भाव (च्वि-अर्थ) के नहीं रहने से 'कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः (3.3.127) सूत्र से प्राप्त खल् प्रत्यय नहीं आया।

तात्पर्य– आढ्यसुभग....करणे ख्युन् (3.2.56) एवं कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ (3.2.57) सूत्रों में च्वि-अर्थ में वर्तमान परन्तु च्वि-प्रत्ययविरहित आढ्यादि उपपदयुक्त कृ एवं भू से ख्युन् आदि प्रत्ययों का विधान है। उसी प्रकार यहाँ भी च्विप्रत्ययविरहित होने पर भी 'च्वि' के अर्थ (अभूततद्भाव– 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' 5.4.50) में विद्यमान कृ एवं भू से आवश्यकीय कर्ता, कर्म आदि उपपदों के रहने पर यह खल् प्रत्यय होगा, यथा– '**ईषदाढ्यंभवं** भवता' इत्यादि (विधि सं॰ 2 द्रष्टव्य)।

सम्बद्धस्थल

सम्ब॰ (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

खलर्थ प्रत्यय के प्रयोग होने पर कर्तृकर्मणोः कृति (2.3.65) से प्राप्त षष्ठी का विधान नहीं।

प्रयोग– ईषत्करः कटः **भवता**। यहाँ 'भवत्' अनुक्त कर्ता है, ईषत्करः (ईषत् – कृ + खल्, ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् 3.3.126 से खल्)। अतः कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से

'भवत्' से षष्ठी की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध।

सम्ब॰ (2) निमिमीलियां खलचोः प्रतिषेधो वक्तव्यः (वा॰, विभाषा लीयतेः 6.1.51)

नि + मि, मी, ली, लीङ् धातुओं को खल् प्रत्ययों के परे आकारादेश नहीं।

आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45, मीनातिमीनोतिदीङां ल्यपि च 6.1.50, विभाषा लीयतेः 6.1.51 सूत्रों से प्राप्त आकारादेश का यह अपवाद है।

प्रयोग– ईषत् – नि + मि + खल् = **ईषन्निमयः** भवता। (ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् 3.3.126 से खल्)। ईषत् + प्र + मी + खल् = **ईषत्प्रमयः** वर्तते (खल् - पूर्ववत्)। ईषत् + वि + ली + खल् = **ईषद्विलयः** वर्तते (खल् - पूर्ववत्)।

सम्ब॰ (3) उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67

उपसर्गविशिष्ट 'लभ्' धातु से नुम् का आगम, खल् प्रत्यय के रहने पर। यह एक नियम सूत्र है। लभेश्च 7.1.64 सूत्र से लभ् से शप् एवं लिट् के अतिरिक्त प्रत्यय के रहते नुम् - आगम होता है। प्रस्तुत सूत्र में उपसर्गविशिष्ट 'लभ्' से केवल खल् एवं घञ् के रहते यह नुम्-आगम नियमित है।

प्रयोग– **ईषत्प्रलम्भः** (ईषत् - प्र – लभ् + खल्), **दुष्प्रलम्भः** (दुस्-प्र – लभ् + खल्), **सुप्रलम्भः** (सु-प्र – लभ् + खल्), **उपालम्भः** (उप-आ – लभ् + खल्)– इनमें ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् 3.3.126 सूत्र से खल् प्रत्यय एवं प्रस्तुत सूत्र से नुम् हुआ है।

सम्ब॰ (4) न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् 7.1.68

दूसरे उपसर्गों से रहित केवल सु एवं दुर् उपसर्गों से युक्त लभ् धातु से नुम् नहीं होता है, खल् प्रत्यय के परे रहते।

यह उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67 सूत्र का नियमन करता है।

प्रयोग– **सुलभम्** (सु- लभ् + खल्), **दुर्लभम्** (दुर् - लभ्)।

यहाँ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् 3.3.126 से खल्, उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67 से लभ् धातु से नुम् की प्राप्ति, परन्तु केवल सु एवं दुर् के साथ रहने से प्रस्तुत सूत्र से इस नुम् का निषेध हुआ।

सूत्र में 'केवलाभ्याम्' के कथन से उपसर्गान्तर से युक्त सु एवं दुर् से युक्त लभ् धातु से उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67 सूत्र से नुम् होता है, यथा- **सुप्रलम्भः** (सु-प्र + लभ् + खल्), **अतिदुर्लम्भः** (अति-दुर् + लभ् + खल्)।

शङ्का– अतिदुलर्भम्, अतिसुलभम्– ऐसा प्रयोग तब कैसे होता है?

समाधान– सु एवं अति यदि क्रमशः सुः पूजायाम् 1.4.94 एवं अतिरतिक्रमणे च 1.4.95 सूत्रों से कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हों तो उनका उपसर्गत्व नहीं रहेगा, अतः उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67 से नुम् की सम्भावना ही नहीं रहेगी।

खश्

खश् = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से श् की इत्-संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः (क) खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से अनव्यय का ह्रस्व, यथा– नासिका– ध्मा + खश् = नासिकन्धमः। (ख) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद के रूप में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्-आगम, यथा– नासिका-ध्मा + खश् = नासिकन्धमः।
2. सार्वधातुक– 'शित्' होने के कारण 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' 3.4.113 से खश् प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा। अतः (क) कर्तरि शप् 3.1.68 से धातु से शप्, यथा– नासिका ध्मा + शप् + खश् = नासिकन्धमः। (ख) पाघ्राध्मा॰ 7.3.78 से दृश् को 'पश्य' आदेश– 'असूर्यम्पश्या राजदाराः'।
3. अजादि ङित् सार्वधातुक - शित् होने से तिङ्शित्सार्वधातुकम् 3.4.113 से खश् की सार्वधातुक संज्ञा, अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से उसका ङिद्वद्भाव। खकार की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाने से अजादि भी।

   ङिद्वद्भाव होने से क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध, यथा– वहंलिहः (वहाभ्रे लिहः 3.2.32 से खश्, पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से प्राप्त गुण का निषेध।)

1. विधि– एजेः खश् 3.2.28

   ण्यन्त 'एज्' धातु से कर्म उपपद रहते 'खश्'।

   अनु॰– कर्मणि (3.2.22)

   अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

   प्रकृति– णिजन्त एज् कम्पने, भ्वा॰ पर॰

   प्रयोग– यथा– जनान् एजयति = जन– एज् + णिच् + खश् = **जनमेजयः** 'लोगों को कम्पा देनेवाला'। (जन-एज् - इ + अ,

कर्तरि शप् 3.1.68 से शप्, सार्वधातुकार्ध。 7.3.84 से धातु के इकार को गुण से एकार, एचोऽयवायावः 6.1.78 से ए को अय्-आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश, अरुर्द्विषद。 6.3.67 से 'जन' शब्द को मुम्-आगम)। हस्तिनापुर का राजा, अर्जुन का प्रपौत्र, परीक्षित का पुत्र।

अङ्गम् एजयति = **अङ्गमेजयः** 'शरीर को कम्पा देनेवाला'।

वृक्षम् एजयति = **वृक्षमेजयः** 'पेड़ को कम्पादेनेवाला'।

2. विधि– खश्प्रत्यये वातशुनीतिलशर्द्धेष्वजधेट्तुदजहातीनामुपसंख्यानम् (वा。 3.2.28)

कर्मत्वविशिष्ट वात, शुनी, तिल तथा शर्द्ध के उपपद होने पर क्रमशः अज, धेट्, तुद्, हा (ओहाक्) धातुओं से खश्।

प्रकृति– 1. कर्मत्वविशिष्ट वात– अज गतिक्षेपणयोः, भ्वा。 पर。। (2) शुनी - धेट् पाने, भ्वा。 पर。। (3) तिल– तुद् व्यथने, तुदा。 पर。। (4) शर्द्ध– हा (ओ हाक्) त्यागे, जुहोत्या。 पर。।

प्रयोग– 1. वातम् अजन्ति = वात-अज् + खश् = **वातमजाः** मृगाः हवा के साथ भी तेज दौड़नेवाले 'बारहसींगा हरिण'।

2. शुनीं धयति = शुनी - धेट् + खश् = **शुनिन्धयः** 'कुतिया का स्तनपान करनेवाला पिल्ला'।

खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से शुनी के ईकार को ह्रस्वादेश, अरुर्द्विषद。 6.3.67 से मुम्-आगम)

3. तिलं तुदति = तिल - तुद् + खश् = **तिलन्तुदः** 'तेली'।

4. शर्द्धं जहाति = शर्द्ध - हा + खश् = **शर्द्धञ्जहाः** माषाः 'उदरस्फीति को कम करनेवाले शस्य'।

(अरुर्द्विषद。 6.3.67 से मुम् - आगम, जुहोत्यादिगणीय होने से शप् को श्लु, धातु को द्वित्व आदि)

3. विधि– नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः 3.2.29

नासिका, स्तन के कर्मवाची उपपद होने पर ध्मा तथा धेट् धातुओं से 'खश्'।

अनु०– खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– (1) कर्मवाची 'नासिका' उपपद से युक्त ध्मा शब्दाग्नि-संयोगयोः, भ्वा०पर० एवं धेट् पाने, भ्वा० पर०। (2) कर्मवाची स्तन उपपद से युक्त धेट् धातु।

प्रयोग– 1. नासिकां धमति = नासिका - ध्मा + खश् = **नासिकन्धमः** 'नाक बजानेवाला'। (खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से नासिका के आकार को ह्रस्व, अरुर्द्विषद० 6.3.67 से मुम्, पाघ्राध्मा० 7.3.78 से ध्मा को धम आदेश)

नासिकां धयति = नासिका– धेट् + खश् = **नासिकन्धयः** 'नाक के द्वारा पीने वाला' (मुम् एवं ह्रस्व पूर्ववत्, कर्तरि शप्, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)।

2. स्तनं धयति = स्तन– धेट् + खश् = **स्तनन्धयः** 'स्तनपान करनेवाला शिशु' (अरुर्द्विषद० 6.3.67 से मुम्, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)। 'असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः स्तनन्धयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्' – रघु० 14.78

विशेष 1.– सूत्र में नासिका एवं स्तन उपपद तथा ध्मा एवं धेट् धातुएँ हैं। तथापि यहाँ यथासंख्य विधि (यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1.3.10) नहीं है। अपितु 'स्तने धेटः' (वा० 3.2.29), एवं 'नासिकायां तु ध्मश्च धेटश्च' (वा० 3.2.29) के अनुसार स्तन उपपद से केवल धेट् तथा नासिका उपपद से ध्मा एवं धेट् उभय का प्रयोग अभिप्रेत है। अल्पाच्तरम् 2.2.34 से 'स्तननासिकयोः' ऐसा प्रयोग होना चाहिए था, क्योंकि 'नासिका' की अपेक्षा 'स्तन' शब्द में अल्प स्वर हैं। तथापि 'नासिकास्तनयोः'– ऐसा पाठ है। इसीलिए नासिका का सम्बन्ध ध्मा एवं धेट् धातुद्वय से है, किन्तु स्तन का सम्बन्ध धेट् धातु से ही है।

विशेष 2.– धेट् धातु टित् है, अतः स्त्रीत्व के प्रसङ्ग में टिड्ढाणञ् 4.1.15 से ङीप् - स्तनन्धय + ङीप् = **स्तनन्धयी** 'स्तनपान करनेवाली बालिका शिशु'।

4. विधि– नाडीमुष्ट्योश्च 3.2.30

नाडी, मुष्टि के कर्मवाची उपपद होने पर भी ध्मा एवं धेट् धातुओं से 'खश्'।

अनु॰– ध्माधेटोः (3.2.29), खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– कर्मवाची नाडी एवं मुष्टि उपपद से युक्त ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः, भ्वा॰ पर॰ तथा धेट् पाने, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. नाडीं धमति = नाडी - ध्मा + खश् = **नाडिन्धमः** 'स्वर्णकार जो धौंकनी धौंकता है' (खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से ह्रस्व, अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्, पाघ्राध्मा॰ 7.3.78 से धम आदेश)।

2. नाडीं धयति = नाडी–धेट् + खश् = **नाडिन्धयः** 'नाडी चूसनेवाला' (खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से ह्रस्व, अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)।

3. मुष्टिं धमति = मुष्टि– ध्मा + खश् = **मुष्टिन्धमः** 'जो मुट्ठी को बजाता है'।

4. मुष्टिं धयति = मुष्टि – धेट् + खश् = **मुष्टिन्धयः** 'जो मुट्ठी को चूसता है वैसा बच्चा'।

विशेष 1.– पूर्व सूत्र नासिकास्तनयो॰ के समान इस सूत्र में भी पूर्वनिपात का व्यतिक्रम हुआ है क्योंकि द्वन्द्वे घि 2.2.32 से घिसंज्ञक 'मुष्टि' का ही पूर्वनिपात अपेक्षित था। अतः यथासंख्य विधि यहाँ न होकर उभय नाडी एवं मुष्टि शब्द के उपपद रहते उभय ध्मा एवं धेट् धातुओं का प्रयोग होता है।

विशेष 2.– सूत्र से चकार से अनुक्त शब्दों का भी ग्रहण है, यथा– घटीं

धमति = **घटिन्धमः** 'घडी बजानेवाला', **घटिन्धयः**, **खारिन्धयः**, **खारिन्धमः**, वातं धमति = **वातन्धमः** पर्वतः 'हवा से ध्वनि निकालनेवाला पर्वत', **वातन्धयः**।

5. विधि– उदिकूले रुजिवहोः 3.2.31

कूल कर्म उपपद होने पर उद्पूर्वक रुज् एवं वह् धातुओं से खश्।

अनु॰– खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्मवाची कूल उपपद से युक्त उत् – रुज् भङ्गे, तुदा॰ पर॰; उद् + वह् प्रापणे भ्वा॰पर॰।

प्रयोग– 1. कूलम् उद्रुजति = कूल-उत् – रुज् + खश् = **कूलमुद्रुजः** रथः 'रथ जो किनारे को तोड़ता है'। 'मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः' –रघु॰ 4.22

2. कूलम् उद्वहति = कूल- उत् – वह् + खश् = **कूलमुद्वहः** 'किनारे को प्राप्त करानेवाला'।

दोनों जगह अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से कूल के बाद मुम्।

6. विधि– वहाभ्रे लिहः 3.2.32

वह (अर्थात् कन्धा) तथा अभ्र कर्म उपपद रहते लिह् धातु से खश्।

अनु॰– खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 1. कर्मवाची 'वह' उपपद से युक्त लिह् आस्वादने, अदा॰पर॰, 2. कर्मवाची 'अभ्र' उपपद से युक्त लिह् धातु।

प्रयोग– 1. वहं लेढि = वह-लिह् + खश् = **वहंलिहः** गौः 'बैल जो अपने कन्धे को चाटता है'। 2. अभ्रं लेढि = अभ्र-लिह् + खश् = **अभ्रंलिहः** 'जो आकाश को छूता है अर्थात् बहुत ऊँचा'।

(उभयत्र अरुर्द्विषद॰ (6.3.67) से मुम्।
'प्रासादमभ्रंलिहमारुरोह'– रघु॰ 14.29

7. विधि– परिमाणे पचः 3.2.33
परिमाणवाची कर्म उपपद होने पर पच् धातु से 'खश्'।

अनु॰– खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– परिमाणवाची प्रस्थ, द्रोण आदि शब्द 'कर्म' के रूप में उपपद हो तो पच् (डुपचष्) पाके, भ्वादि॰ पर॰।

प्रयोग– 1. प्रस्थं (प्रस्थपरिमाणम् ओदनं) पचति = प्रस्थ-पच् + खश् = **प्रस्थम्पचा** स्थाली 'बटलोई जिसमें एक प्रस्थमात्र चावल पकता है'। 'प्रस्थ' एक परिमाणविशेष जो 32 पलों के बराबर होता है।

2. द्रोणं (द्रोणपरिमाणम् ओदनं) पचति = **द्रोणम्पचः** कटाहः 'कड़ाही जिसमें द्रोण मात्र चावल पकता है'। खारि के 1/16 भाग का एक माप जो 32 अथवा 64 सेर के बराबर होता है।

3. खारिं पचति = **खारिम्पचः** कटाहः।
सर्वत्र अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्।

8. विधि– मितनखे च 3.2.34
मित, नख कर्मवाची उपपद होने पर पच् धातु से 'खश्'।

अनु॰– पचः (3.2.33), खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्मवाची मित, नख उपपद युक्त 'पच्' धातु।

प्रयोग– 1. मितं पचति = मित-पच् + खश् = **मितम्पचा** ब्राह्मणी 'ब्राह्मणी जो माप तोल कर पकाती है'।

2. नखान् पचति = **नखम्पचा** यवागूः 'जो बहुत गर्म होने से नाखुनों को पका देती है'।
उभयत्र अरुर्द्विषद॰ (6.3.67) से मुम्।

'कदर्ये कृपणक्षुद्रकिम्पचानमितम्पचाः' –अमर॰ 3.1.48 के अनुसार 'मितम्पच' का अर्थ 'कंजूस' है।

9. विधि– विध्वरुषोस्तुदः 3.2.35

विधु (चन्द्रमा), अरुस् (घाव) कर्मवाची उपपद होने पर तुद् धातु से 'खश्'।

अनु॰– खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– विधु, अरुस् उपपद युक्त तुद् व्यथने, तुदा॰उभ॰।

प्रयोग– 1. विधुं तुदति = विधु-तुद् + खश् = **विधुन्तुदः** 'राहु जो चन्द्रमा को पीड़ा देता है'। 'विधुमिव विधुन्तुद-दन्तदलनगलितामृतधारम्' –गीत॰4

2. अरूंषि (व्रणान्) तुदति = अरुस्– तुद् + खश् = **अरुन्तुदः** 'मर्मपीड़क'। 'अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः' रघु॰ 1.71

उभयत्र अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से विधु के उकार के बाद एवं अरुस् के उकार के बाद मुम्। 'अरुन्तुदः' में संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23 से सकार का लोप।

10. विधि– असूर्यललाटयोर्दृशितपोः 3.2.36

असूर्य, ललाट कर्मवाची उपपद होने पर क्रमशः दृश् एवं तप् धातु से 'खश्'।

अनु॰– खश् (3.2.28), कर्मणि (3.2.22)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 1. असूर्य कर्म उपपद युक्त दृश् प्रेक्षणे, भ्वा॰ पर॰,
2. ललाट कर्म उपपद युक्त तप् सन्तापे, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. सूर्यं न पश्यन्ति = असूर्य-दृश् + खश् = **असूर्यम्पश्याः** राजदाराः 'रानियाँ जो इतनी गुप्त रहती हैं कि सूर्य को भी नहीं देखती' (अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्, पाघ्राध्मा॰ 7.3.78 से दृश् के स्थान पर पश्य आदेश)।

2. ललाटं तपति = **ललाटन्तपः** सूर्यः 'माथे को तपा देनेवाला मध्याह्नकालीन सूर्य' (अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्)। 'मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः – रघु॰ 13.41

11. विधि– उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च 3.2.37
उग्रम्पश्य, इरम्मद, पाणिन्धम–इन खश्-प्रत्ययान्तों का निपातन।

अनु॰– खश् (3.2.28)।

अर्थ– कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– उग्र– दृश्, इरा-मद्, पाणि-ध्मा।

प्रयोग– 1. उग्रं पश्यति = उग्र-दृश् + खश् = **उग्रम्पश्यः** 'घूर कर देखनेवाला' (अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्, पाघ्राध्मा॰ 7.3.78 से दृश् को पश्य आदेश)।

2. इरया माद्यति (जलेन माद्यति) = इरा– मद् + खश् = **इरम्मदः** 'मेघ की ज्योति बिजली'। (निपातन से करण उपपद में भी खश्, खित्यनव्ययस्य 6.3.66 से ह्रस्व, अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्)

3. पाणयः ध्मायन्ते एषु = पाणि-ध्मा + खश् = **पाणिन्धमाः** पन्थानः 'ऐसे अन्धकारमय मार्ग जहाँ सर्प आदि को हटाने के लिए तालियाँ बजाई जाती हैं'। (अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्, पाघ्राध्मा॰ 7.3.78 से ध्मा को धम आदेश)।

12. विधि– आत्ममाने खश्च 3.2.83
'मन्' धातु का जो कर्ता वही पण्डितत्व आदि विशिष्ट रूप से कर्म हो तो उस कर्म के उपपद होने पर मन् धातु से 'खश्' (और णिनि भी)।

अनु॰– मनः (3.2.82), णिनिः सुपि (3.2.78)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– पण्डित आदि कर्म उपपद से युक्त मन् ज्ञाने, दिवा॰ आत्म॰।

प्रयोग– 1. आत्मानं पण्डितं मन्यते = पण्डित– मन् ज्ञाने, दिवा॰ आत्म॰। **पण्डितम्मन्यः** 'अपने आप को पण्डित माननेवाला'।

2. आत्मानं दर्शनीयं मन्यते = दर्शनीय– मन् + खश् = **दर्शनीयम्मन्यः** 'अपने आप को दर्शनीय माननेवाला'। अरुर्द्विषद॰ 6.3.67 से मुम्, दिवादिभ्यः श्यन् 3.1.69 से श्यन्। पक्ष में णिनि– पण्डितमानी, दर्शनीयमानी।

खिष्णुच्

खिष्णुच् = इष्णु। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की, हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद के रूप में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्–आगम, यथा– आढ्यंभविष्णुः।
3. चित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से अन्त-उदात्त होता है। चित् का केवल वैदिक प्रयोजन है, लौकिक नहीं।

1. विधि– कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ 3.2.57

च्वि–अर्थ में वर्तमान अच्व्यन्त आढ्य आदि उपपद हों तो कर्ता में भू धातु से खिष्णुच् (तथा खुकञ्)।

अनु॰– आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु, च्व्यर्थेषु, अच्वौ (3.2.56)

प्रकृति– आढ्य आदि उपपद से युक्त 'भू' धातु।

प्रयोग– अनाढ्यः आढ्यः भवति = आढ्य-भू + खिष्णुच्= **आढ्यंभविष्णुः** 'धन से सम्पन्न' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्), सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)।

इसी प्रकार–

असुभगः सुभगः भवति = **सुभगंभविष्णुः।**

अस्थूलः स्थूलः भवति = **स्थूलंभविष्णुः।**

अपलितः पलितः भवति = **पलितंभविष्णुः।**

अनग्नः नग्नः भवति = **नग्नंभविष्णुः।**

अनन्धः अन्धः भवति = **अन्धंभविष्णुः।**

अप्रियः प्रियः भवति = **प्रियंभविष्णुः।**

पक्ष में खुकञ्, यथा– आढ्यंभावुकः आदि।

खुकञ्

खुकञ् = उक। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से ञ् की इत्संज्ञा, पुनः तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद के रूप में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्–आगम, यथा– आढ्यंभावुकः।
3. ञित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। (क) अतः अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि– आढ्यं भू + खुकञ् = आढ्यंभावुकः।
(ख) ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से प्रकृति का आदि स्वर उदात्त।

1. विधि– कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ 3.2.57
च्वि–अर्थ में वर्तमान अच्व्यन्त आढ्य आदि उपपद हों तो कर्ता में भू धातु से (खिष्णुच्) तथा खुकञ्।

अनु॰– आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु, च्व्यर्थेषु अच्वौ (3.2.56)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), च्वि (अभूततद्भाव)।

प्रकृति– आढ्य आदि उपपद से युक्त भू धातु।

प्रयोग– अनाढ्यः आढ्यः भवति = आढ्य - भू + खुकञ् = **आढ्यंभावुकः** 'धन से सम्पन्न होने वाला' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)।

इसी प्रकार–

असुभगः सुभगः भवति = **सुभगंभावुकः**।
अस्थूलः स्थूलः भवति = **स्थूलंभावुकः**।
अपलितः पलितः भवति = **पलितंभावुकः**।
अनग्नः नग्नः भवति = **नग्नंभावुकः**।
अनन्धः अन्धः भवति = **अन्धंभावुकः**।
अप्रियः प्रियः भवति = **प्रियंभावुकः**।

पक्ष में खिष्णुच्, यथा– आढ्यंभविष्णुः आदि।

ख्युन्

ख्युन् = अन। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ख् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को अन-आदेश।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. खित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से खिदन्त के उत्तरपद के रूप में रहने पर पूर्व अजन्त को मुम्-आगम, यथा– आढ्यंकरणम्।
3. यु = अन (युवोरनाकौ 7.1.1), यथा– आढ्यंकरणम्।
4. नित् = ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से प्रकृति का आदि उदात्त।

1. विधि– आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् 3.2.56

च्वि-अर्थ में वर्तमान अच्व्यन्त आढ्य आदि (कर्म) उपपद हों तो कृञ् धातु से करण कारक में ख्युन्।

अनु०– कर्मणि (कर्मण्यण् 3.2.1)

अपवाद– अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः 5.4.50 से प्राप्त च्वि का।

अर्थ– च्वि (अभूततद्भाव), करण कारक।

प्रकृति– आढ्य, सुभग आदि (कर्म) उपपद से युक्त 'कृञ्' धातु।

प्रयोग– अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्त्यनेन = आढ्य - कृ + ख्युन् = **आढ्यंकरणम्** 'जिस मन्त्र के द्वारा किसी धनहीन को आढ्य अर्थात् धनी बनाया जाता है, वह मन्त्र' (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से उपपद को मुम्, अनुबन्धलोप, नश्चापदान्तस्य झलि 8.3.24 से म् को अनुस्वार, सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से ऋ को गुण से अकार, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

इसी प्रकार–

असुभगं सुभगं कुर्वन्ति अनेन = **सुभगंकरणं** दानम्।

अस्थूलं स्थूलं कुर्वन्ति अनेन = **स्थूलंकरणम्**।

अपलितं पलितं कुर्वन्ति अनेन = **पलितंकरणम्**। पलितंकरणी जरा 'बालों को सफेद कर देनेवाला बुढ़ापा'।

अनग्नं नग्नं कुर्वन्ति अनेन = **नग्नंकरणम्**।

अनन्धम् अन्धं कुर्वन्ति अनेन = **अन्धंकरणम्**। 'अन्धंकरणो मूत्रनिरोधः'।

अप्रियं प्रियं कुर्वन्ति अनेन = **प्रियंकरणम्** 'प्रियंकरणः शब्दप्रयोगः'।

सम्बद्धस्थल

(1) नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् वा॰ 4.1.15 ख्युन् - प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व में ङीप् (ई)।

प्रयोग– अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्ति अनेन = आढ्य-कृ + ख्युन् (आढ्यसुभग॰ 3.2.56 से ख्युन्, अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.67 से मुम्) = **आढ्यंकरणी** (प्रस्तुत वार्तिक से, स्त्रीत्व में ङीप्, यस्येति च 6.4.148 से अ का लोप)।

घ

घ = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से घ् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव–

1. घित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व।
2. अजादि।

1. विधि– पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण 3.3.118

धातु से करण तथा अधिकरण कारक में पुंल्लिंग में प्रायः 'घ' प्रत्यय होता है, यदि समुदाय से संज्ञा प्रतीत होती है।

अनु॰– करणाधिकरणयोः 3.3.117

अर्थ– करण, अधिकरण।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– करण में– दन्ताः छाद्यन्तेऽनेन = दन्त-छद् + घ = **दन्तच्छदः** 'ओष्ठ' (छे च 6.1.73 से तुक्, स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.40 से श्चुत्व)। 'वारंवारमुदारशीत्कृतकृतो दन्तच्छदान् पीडयन्' – भर्तृ॰ 1.43

अधिकरण में– आलीयतेऽस्मिन् = आ–ली + घ = **आलयः** 'गृह'। (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)।

2. विधि– गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च 3.3.119

गोचर-आदि शब्दों का भी 'घ' प्रत्ययान्त पुंल्लिंग करण या अधिकरण कारक में संज्ञा के विषय में निपातन किया जाता है।

अनु॰– पुंसि संज्ञायां घः (3.3.118), करणाधिकरणयोः (3.3.117)

विशेष– आगे हलन्त धातु से करणाधिकरण में घञ् कहेंगे (हलश्च 3.3.121)। यह प्रत्यय उसका पुरस्तात् अपवाद है। अन्यथा गोचार, सञ्चार आदि रूप होते।

प्रकृति– गो-चर् गतौ, भ्वा॰ प॰, सम् - चर्, वह् प्रापणे, भ्वा॰प॰, व्रज्

गतौ, भ्वा॰प॰, वि-अज् गतिक्षेपणयोः, भ्वा॰ प॰, आ-पण् स्तुतौ, भा॰आ॰, नि-गम् गतौ, भ्वा॰प॰।

प्रयोग– 1. गावः चरन्त्यस्मिन् = गो-चर् + घ = **गोचरः** 'गायें जहाँ चरती हैं'। 'उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरात्' –किरा॰ 4.10

2. सञ्चरन्त्यनेन = सम्–चर् + घ = **सञ्चरः** 'मार्ग' (मोऽनुस्वारः 8.3.23 से म् को अनुस्वार और अनुस्वारस्य ययि॰ 8.4.58 से परसवर्ण)। 'यत्रौषधीप्रकाशेन नक्तं दर्शितसञ्चराः' –कुमार॰ 6.43

3. वहन्ति तेन = वह् + घ = **वहः** 'वृषभ का कन्धा'। 'स्कन्धदेशस्त्वस्य वहः'– अमर॰ 2.9.63

4. व्रजन्ति तेन = व्रज् + घ = **व्रजः** 'गोष्ठ' 'गोष्ठाध्वनिवहा व्रजाः' –अमर॰ 3.3.30

5. व्यजन्ति तेन = वि-अज् + घ = **व्यजः** 'पंखा'। (अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 से प्राप्त 'अज्' को 'वी' आदेश यहाँ निपातन के कारण नहीं हुआ)।

6. एत्य तस्मिन् आपणन्ते, क्रयविक्रयं कुर्वन्ति अत्र = आ-पण् + घ = **आपणः** 'बनिए की दुकान'। 'आपणस्तु निषद्यायाम्' – अमर॰ 2.2.2

7. निगच्छन्ति, निश्चितं बुध्यन्ते बोध्यम् अर्थम् अस्मिन् = नि-गम् + घ = **निगमः** 'वेद'। वणिक्पथः पुरं वेदो निगमः – अमर॰ 3.3

विशेष– सूत्र में 'च' कार से अनुक्त का भी संग्रह उद्दिष्ट है। कष्यते = कष् (घर्षणे, भ्वा॰ प॰) + घ = '**कषः**' कसौटी। निकष्यते = नि-कष् + घ = '**निकषः**' कसौटी। 'निकषे हेमरेखेव' –रघु॰ 17.46

3. विधि– खनो घ च 3.3.125

'खन्' धातु से पुंल्लिंग करणाधिकरण कारक संज्ञा में 'घ' प्रत्यय (और घञ् भी)।

अनु॰– घञ् (3.3.120), पुंसि संज्ञायाम् (3.3.118), करणाधिकरणयोः (3.3.117)।

प्रकृति– खन् (करण/अधिकरण कारक में)।

प्रयोग– 1. करण– आखनन्ति अनेन = आ-खन् + घ = **आखनः** 'फावड़ा'।

2. अधिकरण– आखनन्ति अस्मिन् = आ-खन् + घ = **आखनः** 'स्थान'। पक्ष में घञ्, उपधावृद्धि से 'आखानः''

सम्बद्धस्थल–

सम्ब. (1) क्षयो निवासे 6.1.201

निवासार्थक 'क्षय' शब्द का आदि उदात्त।

प्रयोग– क्षियन्ति निवसन्ति अस्मिन् = क्षि + घ (पुंसि संज्ञायां घःप्रायेण 3.3.118 से) = **क्षयः**। 'घ'– प्रत्ययान्त होने से प्रत्ययस्वर प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध हुआ। (काशिका॰ 6.1.201)

सम्ब॰ (2) जयः करणम् 6.1.202

करणवाचक 'जय' शब्द का आदि उदात्त।

प्रयोग– जयन्ति तेन = जि + घ (पुंसि संज्ञायां॰ 3.3.118 से) = **जयः**। पूर्ववत् (6.1.101) प्रत्ययस्वर प्राप्त था (काशिका॰ 6.1.202)।

सम्ब॰ (3) छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य 6.4.96

'घ' प्रत्यय के पर अङ्गसंज्ञक 'छदि' धातु की उपधा को ह्रस्वादेश, यदि उससे पूर्व दो उपसर्ग न हो।

प्रयोग– दन्ताः छाद्यन्ते अनेन = दन्त-छद् णिच् (स्वार्थ) + घ (पुंसि संज्ञायां॰ 3.3.118 से) = **दन्तच्छदः** 'ओष्ठ'। णिच् (स्वार्थ) के कारण अत उपधायाः 7.2.116 से हुए उपधादीर्घ का प्रस्तुत सूत्र से ह्रस्वादेश हुआ।

घञ्

घञ् = अ। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से घ् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से ञ् की इत्संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. घित् (1.3.8)। अतः चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से चान्त एवं जान्त धातु को कुत्व– पाकः। न क्वादेः 3.7.59, अजिव्रज्योश्च 7.3.60 सूत्र से उक्त कुत्व का निषेध। भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः 7.3.62 से निपातन से कुत्व का निषेध। वञ्चेर्गतौ 7.3.63 से कुत्व का निषेध।
2. ञित् (1.3.3)। (क) अतः अचो ञ्णिति 7.2.115 से धातु के इक् को वृद्धि, (ख) अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा इक् को वृद्धि, (ग) हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से हन् के न् को त्, (घ) आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से आकारान्त धातु से युक् आगम, (ङ) नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः 7.3.34 से उपधावृद्धि का निषेध, (च) जनिवध्योश्च 7.3.35 से जन् एवं वध् से वृद्धि का निषेध, (छ) हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हन् के ह् को घ्, (ज) ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से प्रकृति का आदि स्वर उदात्त।
3. घञन्त पुंल्लिंग (घञबन्तः पुमान्, लिङ्गानुशासन 36), यथा– प्रावारः।
4. घञ् की प्रकृति से पूर्व उपसर्ग को दीर्घ (बहुलता से) – उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् 6.3.112, यथा– प्रावारः।

1\. विधि– पदरुजविशस्पृशो घञ् 3.3.16
पद, रुज, विश, स्पृश-धातुओं से घञ्।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67) सामान्य काल में।

प्रकृति– पद गतौ (दिवा॰, आत्म॰), रुजो भङ्गे (तुदा॰ पर॰), विश प्रवेशने (तुदा॰, पर॰), स्पृश संस्पर्शने (तुदा॰, पर॰)।

प्रयोग– 1. पद्यते = पद् + घञ् = **पादः** 'पैर' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)। 'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा॰' – ऋग्वेद 4.58.3

2. रुजति = रुज् + घञ् = रुज् + अ = **रोगः** (पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधागुण, चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)।

3. विशति = विश् + घञ् = **वेशः** 'प्रवेश करनेवाला' (पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधागुण)।

4. स्पृशति = स्पृश् + घञ् = **स्पर्शः** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

विशेष– स्पृश उपताप इति वक्व्यम् (वा॰)
स्पृश् धातु से उपताप अर्थ में घञ् का विधान होना चाहिए। अतः स्पर्शः का अर्थ उपताप = रोग है।

2. विधि– सृ स्थिरे 3.3.17
सृ धातु से स्थिर = चिरस्थायी कर्ता वाच्य हो तो घञ्।

अनु॰– घञ् (3.3.16)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सृ गतौ (भ्वा॰ पर॰)।

प्रयोग– सरति = सृ + घञ् = **सारः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् परः 1.1.51 से रपरत्व)। यथा– चन्दनस्य सारः = **चन्दनसारः** (चन्दन में सार चिरस्थायी है)

विशेष– व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् (वा॰)
यथा– व्याधि - **अतीसारः** (उपसर्गस्य घञ्य॰ 6.3.122 से दीर्घ)। मत्स्य = **विसारः**, बल– **सारः**।

विशेष– सूत्र में 'स्थिरे' के कहने से सामान्य 'चलनेवाला' अर्थ में– सर्त्ता (सृ + तृच्), सारकः (सृ + ण्वुल्)।

3. विधि– भावे 3.3.18
भाव अर्थात् धात्वर्थ में धातुसामान्य से 'घञ्'।

अनु॰– घञ् (3.3.16)

अर्थ– भाव।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– पच्, त्यज्।

प्रयोग– पचनम् = पच् + घञ् = **पाकः** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)।

त्यजनम् = त्यज् + घञ् = **त्यागः** (उपधा-वृद्धि, कुत्व पूर्ववत्)।

4. विधि– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् 3.3.19

कर्त्ता से भिन्न कारक में भी धातु से संज्ञाविषय में 'घञ्'।

अनु॰– घञ् (3.3.16)।

अर्थ– कर्तृवर्जित कारक और संज्ञा।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– (क) प्रास्यन्ति तम् = प्र- अस् (असु क्षेपणे, दिवा॰, पर॰) + घञ् = **प्रासः** 'भाला' (उपधावृद्धि, सवर्णदीर्घ)। 'प्रासस्तु कुन्तः' –अमर॰ 2.8.93

(ख) आहरन्ति तस्माद् रसम् = आ - हृ + घञ् = **आहारः** 'भोजन' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

5. विधि– परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः 3.3.20

परिमाण का कथन गम्यमान हो तो सभी धातुओं से 'घञ्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अर्थ– परिमाण, कर्ता से भिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– सभी धातु, यथा-नि-चि चयने, स्वादि, उभयपदी।

प्रयोग– निचीयते यः सः = नि चि + घञ् = **निचायः** 'ढेर' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि)। एचोऽयवायावः 6.1.78 से आयादेश। यथा– तण्डुलानां निचायः = तण्डुलनिचायः 'चावलों का ढेर'।

विशेष– 'निचायः' में नि-चि से एरच् 3.3.56 से अच् प्राप्त था। इस घञ् से अच् बाधित हुआ।

विशेष– दारजारौ कर्तरि णिलुक् च (वा॰)

हेतुमत् ण्यन्त दृ तथा जृ धातुओं से 'घञ्', णिच् के लोप से दार एवं जार शब्द निपातित हैं।

प्रयोग– दारयति = दृ + घञ् = **दाराः** (नित्य बहुवचनान्त) 'पत्नी'। जरयन्ति = जृ + णिच् + घञ् = **जाराः** 'उपपति'। 'एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्' –कुमा॰ 6.63। 'रथकारः स्वकां भार्यां सजारां शिरसावहत्' – पञ्च॰ 4.54

6. विधि– इङश्च 3.3.21

इङ् धातु से भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में एवं भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– एरच् (3.3.16) से प्राप्त अच् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– इङ् अध्ययने, अदा॰ उभ॰ (सर्वदा 'अधि' पूर्व)।

प्रयोग– 1. कर्म में– अधीयते यः सः = अधि – इ + घञ् = **अध्यायः** 'जिसका अध्ययन किया जाता है' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)।

2. संज्ञा– उपेत्य अधीते यस्मात् सः = उप – अधि – इ + घञ् = **उपाध्यायः** 'जिसके समीप जाकर पढ़ा जाता है' (सिद्धि- पूर्ववत्, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से दीर्घ)। 'उपाध्यायोऽध्यापकः' – अमर॰ 2.7.7

विशेष– अपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् (वा॰)

अपादानार्थ में स्त्रीत्व विवक्षा में इङ् धातु से 'घञ्' तथा घञन्त से 'ङीष्' का वैकल्पिक विधान हो।

यथा– उपेत्य अधीते यस्याः सा = उप – अधि + इ + घञ् + ङीष् = **उपाध्यायी**, पक्ष में टाप्– **उपाध्याया** (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4)।

विशेष– शृ वायुवर्णनिवृतेषु (वा॰)

वायु, वर्ण तथा निवृत अर्थों में 'शॄ' धातु से घञ्। यथा– शॄ + घञ् = **शारः** 'वायु, वर्ण, निवृत'। प्रयोग – "गौरिवाकृत**नीशारः** प्रायेण शिशिरे कृशः"।

7. विधि– उपसर्गे रुवः 3.3.22
उपसर्ग से युक्त रु धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में।
अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।
अपवाद– ऋदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।
अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।
प्रकृति– उपसर्गयुक्त रु शब्दे, अदा॰पर॰।
प्रयोग– सम् – रु + घञ् = **संरावः** 'आवाज' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश, नश्चापदा॰ 8.3.24 से अनुस्वार)।
उसी प्रकार **उपरावः** 'आवाज', **विरावः** 'आवाज'। 'उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः–रघु॰ 2/9

8. विधि– समि युद्रुदुवः 3.3.23
सम्-पूर्वक यु, द्रु तता दु धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।
अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)
अपवाद– ऋदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् प्रत्यय का।
अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।
प्रकृति– सम् + यु मिश्रणेऽमिश्रणे च, अदा॰, पर॰, सम् + द्रु, सम् + दु गतौ, भ्वा॰, पर॰।
प्रयोग– 1. संयूयते मिश्रीक्रियते यः सः = सम् – यु + घञ् = **संयावः** 'हलुआ' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि,

एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)। 'वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च' –मनु॰ 5.7

2. सम् – द्रु + घञ् = **संद्रावः** 'भगदड़'।

3. सम् – दु + घञ् = **संदावः** 'भगदड़'।

9. विधि– श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे 3.3.24।
उपसर्गरहित श्रि, णी, भू-धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19) भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– इवर्णान्त धातु से एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का, उवर्णान्त धातु से ऋदोरप् 3.3.57 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– उपसर्गरहित श्रि सेवायाम्, भ्वा॰, उभय॰, णी = नी प्रापणे, भ्वा॰,पर॰, भू सत्तायाम्, भ्वा॰, पर॰।

प्रयोग– श्रि + घञ् = **श्रायः** 'आश्रय' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से अयादेश)
णी-नी + घञ् = **नायः** 'ले जाना'। 'नयो नाये' –अमर॰ 3.2.9
भू + घञ् = **भावः** 'होना'।

10. विधि– वौ क्षुश्रुवः 3.3.25
वि-पूर्वक क्षु तथा श्रु धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– ऋदोरप् 3.3.57 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– वि + क्षु शब्दे, अदा॰पर॰, वि + श्रु श्रवणे, भ्वा॰, पर॰।

प्रयोग– 1. वि-क्षु + घञ् = **विक्षावः** 'छींकने की ध्वनि'।

'निगारोद्गारविक्षावोद्ग्राहास्तु गरणादिषु – अमर॰ 3.2.37

2. वि-श्रु + घञ् = **विश्रावः** 'कीर्ति'।

(अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)। 'विश्रावस्तु प्रविख्यातिः' – अमर॰ 3.2.28

11. विधि– अवोदोर्नियः 3.3.26

अव तथा उद् उपसर्गपूर्वक नी धातु से कर्तृ-भिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञाविषय, भाव।

प्रकृति– अव-नी प्रापणे, भ्वा॰, उभय॰, उत् - नी

प्रयोग– 1. अव – नी + घञ् = **अवनायः** 'अवनति'। 'अवनायस्तु निपातनम्' –अमर॰ 3.2.27

2. उत् – नी + घञ् = **उन्नायः** 'उन्नति'। 'उन्नाय उन्नये' – अमर॰ 3.2.12

(अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, 'उन्नाय' में यरोऽनु॰ 8.4.44 से तकार को नकार)।

12. विधि– प्रे द्रुस्तुस्रुवः 3.3.27

प्र-पूर्वक द्रु, स्तु, स्रु– इन धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञाविषय, भाव।

प्रकृति– प्र + द्रु गतौ, भ्वा॰, प्र + स्तु (ष्टु) स्तुतौ, अदा॰, प्र + स्रु गतौ, भ्वा॰।

प्रयोग– 1. प्रद्रवणम् = प्र + द्रु + घञ् = **प्रद्रावः** 'भागना'।

'प्रद्रावोद्रावसंद्रावसंदावा' –अमर॰ 2.8.11

2. प्रस्तूयते = प्र – स्तु + घञ् = **प्रस्तावः** 'प्रस्ताव'। 'नाममात्रप्रस्तावः' –अ॰शा॰ 7

3. प्रस्रूयते = प्र – स्रु + घञ् = **प्रस्रावः** 'बहना, मूत्र'। सर्वत्र (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)। 'मूत्रं प्रस्रावः' –अमर॰ 2.6.67

13. विधि– निरभ्योः पूल्वोः 3.3.28

निर्, अभि पूर्वक क्रमशः पू, लू धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञाविषय, भाव।

प्रकृति– निर् + पू (पूङ् पवने, भ्वा॰, आत्म॰, पूञ् पवने, क्र्या॰, उभ॰), अभि + लू (लूञ् छेदने, क्र्या॰, उभ॰)।

प्रयोग– 1. निष्पवनम् = निर् – पू + घञ् = **निष्पावः** 'पवित्र करना' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश, खरवसानयो॰ 8.3.15 से रेफ को विसर्ग, विसर्जनीयस्य सः 8.3.34 से विसर्ग को सत्व, इदुदुपधस्य॰ 8.3.41 से स को षत्व)। 'निष्पावः पवने पवः' –अमर॰ 3.2.24

2. अभिलवनम् = अभि – लू + घञ् = **अभिलावः** 'काटना' (वृद्धि, आवादेश पूर्ववत्)। 'लवोऽभिलावो लवने' –अमर॰ 3.2.24

14. विधि– उन्न्योर्ग्रः 3.3.29

उत्, नि पूर्वक गृ धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में 'घञ्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञाविषय, भाव।

प्रकृति– उत्, नि + गॄ (गॄ शब्दे क्र्या॰प॰, गॄ निगरणे, तुदा॰प॰)।

प्रयोग– 1. उत् + गॄ + घञ् = **उद्गारः** 'वमन, आवाज'। 'आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः – रघु॰ 6.60

2. नि + गॄ + घञ् = **निगारः** 'भोजन' (उभयत्र अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

15. विधि– कॄ धान्ये 3.3.30

उत्, नि पूर्वक कॄ धातु से धान्यविषय में व 'घञ्', कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में।

अनु॰– उन्योः (3.3.29), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– धान्य का विषय, कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– उत्, नि पूर्वक कॄ (कॄ विक्षेपे तुदा॰प॰, कॄ हिंसायाम्, क्र्या॰उ॰)

प्रयोग– 1. उत्करणम् = उत् + कॄ + घञ् = **उत्कारः** (धानों को इकट्ठा करना और अनाज फटकना)। 'उत्कारश्च निकारश्च द्वौ धान्योत्क्षेपणार्थकौ' –अमर॰ 3.2.36

2. निकरणम् = नि + कॄ + घञ् = **निकारः** (धान को ऊपर फेंकना)

उभयत्र अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'उत्कारश्च निकारश्च' –अमर॰ 3.2.36

16. विधि– यज्ञे समि स्तुवः 3.3.31

यज्ञविषय में सम् पूर्वक स्तु धातु से कर्तृभिन्न कारक यज्ञविषय में 'घञ्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18),

घञ् (3.3.16)

अपवाद– करणाधिकरणयोश्च 3.3.117 से प्राप्त अधिकरण में ल्युट् का।

अर्थ– यज्ञ, कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– सम् + स्तु (ष्टु स्तुतौ, अदा॰उ॰)।

प्रयोग– समेत्य संस्तुवन्ति यस्मिन् देशे छान्दोगाः सः देशः = सम् – स्तु + घञ् = **संस्तावः** 'सामगान करनेवाले ऋत्विजों का स्तुति करने का स्थान' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 आवादेश, नश्चापदान्तस्य॰ 8.3.24 से अनुस्वार)। 'स संस्तावः क्रतुषु या स्तुतिभूमिर्द्विजन्मनाम्' – अमर॰ 3.2.34

17. विधि– प्रे स्त्रोऽयज्ञे 3.3.32

प्र पूर्वक स्तॄ धातु से यज्ञविषय को छोड़ कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय तथा भाव में 'घञ्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव तथा अयज्ञ।

प्रकृति– प्र – स्तॄ आच्छादने क्र्या॰।

प्रयोग– प्र – स्तॄ + घञ् = **प्रस्तारः** 'फैलाव' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। यथा– शङ्खानां प्रस्तारः = **शङ्खप्रस्तारः**, छन्दसां प्रस्तारः = **छन्दः-प्रस्तारः**।

18. विधि– प्रथने वावशब्दे 3.3.33

वि पूर्वक स्तॄ धातु से अशब्दविषय विस्तार हो तो कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में 'घञ्'।

अनु॰– स्त्रः (3.3.32), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.18), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– शब्दविषयक प्रथन = विस्तार का न होना, कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– वि – स्तृ आच्छादने क्र्या॰उ॰।

प्रयोग– विस्तरणम् = वि – स्तृ + घञ् = **विस्तारः** 'फैलाव' (वृद्धि, रपरत्व पूर्ववत्, देखें विधि 17)। यथा– पटस्य विस्तारः। 'विस्तारो विग्रहो व्यासः' – अमर॰ 3.2.22

19. विधि– छन्दोनाम्नि च 3.3.34

वि पूर्वक स्तृ धातु से छन्द का नाम कहना हो तो भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में 'घञ्'।

अनु॰– वौ (3.3.33), स्त्रः (3.3.32), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– छन्दोनाम अर्थात् विष्टारपङ्क्ति आदि छन्द (न कि वेद), कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– वि + स्तृ आच्छादने क्र्या॰।

प्रयोग– वि + स्तृ + घञ् = विस्तार (पूर्ववत्) = **विष्टारपङ्क्तिः** 'छन्दोविशेष'। यहाँ 'विष्टार' शब्द में छन्दोनाम्नि च 8.3.94 से षत्व तथा ष्टुना ष्टुः 8.4.4 से ष्टुत्व हुआ है।

20. विधि– उदि ग्रहः 3.3.35

उत् पूर्वक ग्रह् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– उत् + ग्रह् उपादाने क्र्या॰, उभ॰

प्रयोग– उद्ग्रहणम् = उत् – ग्रह् + घञ् = **उद्ग्राहः** 'डकार लेना' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि) 'निगारोद्गार –

विक्षावोद्ग्राहास्तु गरणादिषु' – अमर॰ 3.2.37

विशेष– छन्दसि निपूर्वादपीष्यते स्रुगुद्यमननिपातयोः (वा॰)
स्रुगात्मक आहुतिप्रदान के साधनीभूत पदार्थविशेष के उन्नयन तथा उसके अवनमन अर्थों में नि + ग्रह् धातु से वेद-विषय में 'घञ्'।

प्रयोग– उद् – ग्रह् = **उद्ग्राभम्**, नि – ग्रह् = **निग्राभम्** (निपातन से हकार का भकार)।

21. विधि– समि मुष्टौ 3.3.36
सम् पूर्वक ग्रह् धातु से कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा तथा भाव में मुष्टि 'मुट्ठी' अर्थ में 'घञ्'।

अनु॰– ग्रहः (3.3.35), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव और मुष्टि अर्थात् मुट्ठी की पकड़।

प्रकृति– सम् – ग्रह् उपादाने क्र्या॰ उभय॰।

प्रयोग– संग्रहणम् = सम् – ग्रह् + घञ् = **संग्राहः** 'पकड़' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। 'मृष्टिबन्धस्तु संग्राहः' – अमर॰ 3.2.14
यथा– अहो! मल्लस्य संग्राहः (ओह! पहलवान की मुट्ठी की पकड़)।

22. विधि– परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः 3.3.37
परि तथा नि पूर्वक क्रमशः नी तथा इण् धातु से कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा तथा भाव में क्रमशः द्यूत तथा अभ्रेष विषय में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव, द्यूत एवं अभ्रेष।

प्रकृति– परि – नी (णीञ् प्रापणे, भ्वा॰, उभ॰), नि – इ (इण् गतौ, अदा॰)।

प्रयोग– 1. द्यूत में– परितो वामदक्षिणतो नयनम् = परि – नी + घञ् = **परिणायः** 'गोटी को चलाना' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवयावः 6.1.78 से आयादेश, उपसर्गादसमासेऽपि॰ 8.4.14 से णत्व)। 'परिणायस्तु शारीणां समन्तान्नयनेऽस्त्रियाम्' – अमर॰ 3.2.46

यथा– परिणायेन शारान् हन्ति 'चारों ओर से जाकर जतुए के पासों को मारता है'।

2. अभ्रेष में– नियमेन ईयते = नि + इ + घञ् = **न्यायः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)। यथा– एषोऽत्र न्यायः 'यही यहाँ उचित है'। 'अभ्रेषन्यायकल्पास्तु देशरूपं समञ्जसम्' –अमर॰ 2.8.24

विशेष– द्यूत– अभ्रेष अर्थ न होने पर- **परिणयः** (परि – नी + अच्), **न्ययं** गतं पापः (नि – इ + अच्)।

23. विधि– परावनुपात्यय इणः 3.3.38

परि पूर्वक इण् धातु से अनुपात्यय = क्रम अर्थ में कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– अनुपात्यय (= क्रम), कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव

प्रकृति– परि – इ (इण् गतौ, अदा॰प॰)।

प्रयोग– पर्ययणम् = परि – इ + घञ् = **पर्यायः** 'बारी अथवा क्रम' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)। यथा– तव पर्यायः 'तेरी बारी'; मम पर्यायः 'मेरी बारी'। 'आनुपूर्वी स्त्रियां वावृत् परिपाटी अनुक्रमः, पर्यायश्च' – अमर॰ 2.7.36

विशेष– अनुपात्यय (= क्रम) अर्थ न हो तो–
कालस्य **पर्ययः** (परि + इ + अच्) 'अतिपात'।

24. विधि– व्युपयोः शेतेः पर्याये 3.3.39
वि, उप पूर्वक शीङ् धातु से पर्याय अर्थ में कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– पूर्ववत्।

अपवाद– एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– पर्याय (बारी), कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा, भाव।

प्रकृति– वि – शीङ् स्वप्ने (अदा॰, आत्म), उप – शीङ्।

प्रयोग– 1. विशयनम् = वि-शी + घञ् = **विशायः** 'सोने की बारी' अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश)।

2. उपशयनम् = उप – शी + घञ् = **उपशायः** 'सोने की बारी' (रूपसिद्धि पूर्ववत्)। यथा– मम विशायः 'मेरे सोने की बारी', तव उपशायः 'तेरे सोने की बारी'। 'उपशायो विशायश्च पर्यायशयनार्थकौ' – अमर 3.2.32

विशेष– पर्याय अर्थ न होने पर– विशयः, उपशयः (वि, उप + शी + अच्)

25. विधि– हस्तादाने चेरस्तेये 3.3.40
चौर्य से रहित हाथ से ग्रहण करना अर्थ हो तो चि धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा और भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– हाथ से ग्रहण करना, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– चि (चिञ्) चयने, स्वादि, उभय॰।

प्रयोग– प्र – चि + घञ् = **प्रचायः** 'तोड़ना' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78)

यथा– पुष्पप्रचायः 'हाथ से पुष्प तोड़ना'।

विशेष– उच्चयस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः (वा॰)

उत् – चि से (घञ् का निषेध कहना चाहिए और उच्चय (अच्प्रत्ययान्त) ही सही है।

26. विधि– निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः 3.3.41

निवास आदि अर्थों में चि धातु से घञ्, आदि चकार को ककार।

अनु॰– चेः (3.3.40),अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– निवास, चिति (चयन), शरीर, उपसमाधान (राशि)।

प्रकृति– चि (चिञ्) चयने, स्वादि, उभय॰।

प्रयोग– 1. निवास– निचीयते अत्र = नि – चि + घञ् = **निकायः** 'निवास' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, प्रस्तुत सूत्र से चकार को ककार)। यथा– एषोऽस्य **निकायः** 'यह इसका निवास स्थान है'।

2. चिति– **आकायम्** अग्निं चिन्वीत 'श्मशान की आग का चयन' (आ – चि + घञ्)।

3. शरीर– **अनित्यकायः** 'शरीर अनित्य है' (अनित्य – चि + घञ्)।

4. उपसमाधान– महान् फल**निकायः** 'बड़ा भारी फलों का ढेर' (नि – चि + घञ्)।

27. विधि– सङ्घे चानौत्तराधर्ये 3.3.42

ऊपर-नीचे स्थित होने का प्रतिषेध होने से एकधर्मान्वय अर्थ में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में घञ्, आदि चकार को ककार।

अनु॰– चेः (3.3.40), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– एरच् (3.3.56) से प्राप्त अच् का।

अर्थ– अनौत्तराधर्य (=ऊपर-नीचे स्थित होना) का प्रतिषेध, संघ (=एक धर्म में अन्वित)। कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– चि (चिञ्) चयने, स्वादि, उभय॰)।

प्रयोग– निचीयते = नि – चि + घञ् = **निकायः** 'समुदाय'।
यथा– **भिक्षुकनिकायः** 'भिक्षुकों का समुदाय', **ब्राह्मणनिकायः** 'ब्राह्मणों का समुदाय', **वैयाकरणनिकायः** 'वैयाकरणों का समुदाय'। 'अथ सधर्मिणां स्यान्निकायः' – अमर॰ 2.5.42

28. विधि– आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः 3.3.45
आक्रोश अर्थ में अव और नि पूर्वक ग्रह् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव, आक्रोश (क्रोध में कुछ कहना)।

प्रकृति– अव + ग्रह् (उपादाने, क्र्या॰, उभय॰), नि + ग्रह्।

प्रयोग– 1. अव + ग्रह् + घञ् = **अवग्राहः** 'अभिभव' (पराजय)।
2. नि + ग्रह् + घञ् = **निग्राहः** 'बाधा'। उभय रूपों में अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा की वृद्धि।
यथा–'अवग्राहो दुष्ट! ते भूयात्'।

29. विधि– प्रे लिप्सायाम् 3.3.46
लिप्सा गम्यमान हो तो प्र पूर्वक ग्रह् से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– ग्रहः (3.3.45), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अर्थ– लिप्सा (प्राप्त करने की इच्छा), कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– प्र – ग्रह् उपादाने, क्र्या॰ उभय॰।

प्रयोग– प्रगृह्यते = प्र – ग्रह् + घञ् = **प्रग्राहः** 'पकड़' (अत उपधायाः 7.2.116 से वृद्धि)।

यथा– पात्र**प्रग्राहेण** चरति भिक्षुकः अर्थी 'अन्न चाहनेवाला भिक्षु अन्न का पात्र लिए विचरता है'।

स्रुव**प्रग्राहेण** चरति द्विजो दक्षिणार्थी 'दक्षिणा चाहनेवाला द्विज स्रुव लेकर घूमता है'।

30. विधि– परौ यज्ञे 3.3.47

यज्ञविषय में परि पूर्वक ग्रह् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ्।

अनु॰– ग्रहः (3.3.45), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमस्य (3.3.58) से प्राप्त अप् का।

अर्थ– यज्ञ, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– परि – ग्रह् उपादाने, क्र्या॰, उभय॰

प्रयोग– परि – ग्रह् + घञ् = **परिग्राहः** 'यज्ञविधि-विशेष' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। यथा– उत्तरः **परिग्राहः** 'दर्शपौर्णमास यज्ञ में उत्तर वेदि का निर्माण'। अधरः **परिग्राहः** 'नीचे वेदि का निर्माण'।

31. विधि– नौ वृ धान्ये 3.3.48

नि पूर्वक वृ धातु से धान्यविशेष अर्थ में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में घञ्।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– धान्य, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– नि + वृ (वृङ् संभक्तौ, क्र्या॰, आत्म॰), वृञ् वरणे, स्वादि, उभय॰)।

प्रयोग– निव्रियन्ते = नि – वृ + घञ् = **नीवाराः** व्रीहयः 'नीवार नाम का धान्यविशेष' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् 6.3.122

से उपसर्ग के इकार को दीर्घ)। 'तृणधान्यानि नीवारः' – अमर॰ 2.9.25, 'नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः' – अभि॰शा॰ 1.14

32. विधि– उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः 3.3.49

उत् पूर्वक श्रि, यु, पू, द्रु धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ्।

अपवाद– श्रि धातु में एरच् 3.3.56 से प्राप्त अच् का, शेष धातुओं में ऋदोरप् 3.3.57 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– 1. उत् पूर्वक श्रि (श्रिञ् सेवायाम्, भ्वा॰),
2. उत् – यु मिश्रणेऽमिश्रणे च, अदा॰, पर॰,
3. उत् – पू (पूङ् पवने, भ्वा॰, आत्म॰, पूञ् पवने, क्र्या॰, उभय॰),
4. उत् – द्रु गतौ, भ्वा॰, पर॰।

प्रयोग– 1. उच्छ्रयणम् = उत् – श्रि + घञ् = **उच्छ्रायः** 'ऊँचाई' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.39 से श्चुत्व, शश्छोऽटि 8.4.62 से छत्व)। 'नगाद्यारोह उच्छ्रायः' – अमर॰ 2.4.10
2. उद्यवनम् = उत् – यु + घञ् = **उद्यावः** 'इकट्ठा करना' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)।
3. उत्पवनम् = उत् – पू + घञ् = **उत्पावः** 'यज्ञीय पात्रों का संस्कारविशेष' (वृद्धि, आवादेश, 'उद्याव' जैसा)
4. उद्द्रवणम् = उत् – द्रु + घञ् = **उद्द्रावः** 'भागना' (वृद्धि, आवादेश, 'उद्याव' जैसा)। 'प्रद्रावोद्रावसंद्राव॰' – अमर॰ 2.8.111

33. विधि– विभाषाङि रुप्लुवोः 3.3.50

आङ् पूर्वक रु तथा प्लु धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में 'घञ्', विकल्प से। पक्ष में ॠदोरप् 3.3.57 से 'अप्'।

अनु०– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ॠदोरप् 3.3.57 से प्राप्त अप् का, विकल्प से।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष, भाव।

प्रकृति– आ – रु (शब्दे, अदा०,पर०), आ + प्लु (प्लुङ् गतौ, भ्वा०, आत्म०)

प्रयोग– 1. आरवणम् = आ – रु + घञ् = **आरावः** 'एक प्रकार की आवाज'। 'आरवारावसंरावविरावाः' – अमर० 1.6.23

2. आप्लवनम् = आ – प्लु + घञ् = **आप्लावः** 'स्नान, डुबकी मारना'।

उभय स्थलों में (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय० 6.1.78 से आवादेश)। 'आप्लाव आप्लवः' – अमर० 2.6.121

विशेष– पक्ष में, ॠदोरप् 3.3.57 से अप् - आरवः, आप्लवः।

34. विधि– अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे 3.3.51

वर्षप्रतिबन्ध अर्थ में अवपूर्वक ग्रह् धातु के कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में 'घञ्', विकल्प से।

अनु०– विभाषा (3.3.50), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58 से प्राप्त अप् का, विकल्प से।

अर्थ– वर्षप्रतिबन्ध (=वर्षा का समय हो जाने पर भी वर्षा का न होना), कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष, भाव।

प्रकृति– अव – ग्रह् (उपादाने, क्र्या० उभय०)।

प्रयोग– अव + ग्रह् + घञ् = **अवग्राहः** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

यथा– **अवग्राहः** देवस्य 'देव का न बरसना'।

विशेष– घञ् के अभाव पक्ष में– ग्रहवृदृ० 3.3.58 से अप्– **अवग्रहः** देवस्य।

35. विधि– प्रे वणिजाम् 3.3.52
वणिक् सम्बन्धी अर्थ में प्र पूर्वक ग्रह् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष, भाव में विकल्प से घञ्।

अनु०– विभाषा (3.3.50), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमस्य 3.3.58 से प्राप्त अप् का।

अर्थ– वणिक् सम्बन्धी, कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष, भाव।

प्रकृति– प्र – ग्रह् (उपादाने, क्र्या० उभय०)

प्रयोग– प्रगृह्यते = प्र – ग्रह् + घञ् = **प्रग्राहः** 'तराजू का मध्यसूत्र' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
'तुलासूत्रेश्वादिरश्मौ प्रग्राहः प्रग्रहोऽपि च' – अमर० 3.3.237
यथा– तुला**प्रग्राहेण** चरति 'तराजू का मध्य-सूत्र पकड़े घूमता है)।

विशेष– घञ् के अभाव में ग्रहवृदृ० 3.3.58 से अप्– तुला**प्रग्रहेण** चरति।

36. विधि– रश्मौ च 3.3.53
रश्मि (=घोड़े की लगाम) अर्थ में कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष तथा भाव में विकल्प से 'घञ्'।

अनु०– प्रे (3.3.52), ग्रहः (3.3.51), विभाषा (3.3.50), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58 से प्राप्त अप् का विकल्प से।

अर्थ– रश्मि (=घोड़े की लगाम), कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष, भाव०।

प्रकृति– प्र – ग्रह् (उपादाने, क्र्या० उभय०)

प्रयोग– प्र – ग्रह् + घञ् = **प्रग्राहः** 'लगाम' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

विशेष– घञ् के अभाव पक्ष में ग्रहवृदृ॰ 3.3.58 से अप् - **प्रग्रहः** यथा–'बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च' –कठोपनिषद्।

37. विधि– वृणोतेराच्छादने 3.3.54

आच्छादन अर्थ में प्र पूर्वक वृ धातु से विकल्प से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष तथा भाव में 'घञ्'।

अनु॰– प्रे (3.3.52), विभाषा (3.3.50), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च 3.3.58 से प्राप्त अप् का, विकल्प से।

अर्थ– आच्छादन (=चादर), कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष, भाव।

प्रकृति– प्र – वृ (वृङ् संभक्तौ), क्र्या॰,आत्म॰, वृञ् वरणे, स्वादि॰, उभय॰।

प्रयोग– प्रव्रियतेऽनेन = प्र – वृ + घञ् = **प्रावारः** 'चादर' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् 6.3.122 से उपसर्ग को दीर्घ)। 'द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ' –अमर॰ 2.6.117

विशेष– घञ् के अभाव पक्ष में ग्रहवृदृ॰ 3.3.58 से अप्– **'प्रवरः'**।

38. विधि– परौ भुवोऽवज्ञाने 3.3.55

अवज्ञान (=तिरस्कार) अर्थ में परि पूर्वक भू धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविशेष तथा भाव में विकल्प से 'घञ्'।

अनु॰– विभाषा (3.3.50), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), घञ् (3.3.16)।

अपवाद– ॠदोरप् (3.3.57) से प्राप्त अप् का विकल्प से बाधक।

अर्थ– अवज्ञान (=तिरस्कार), कर्तृभिन्न कारक संज्ञा-विशेष, भाव।

प्रकृति– परि – भू सत्तायाम्, भ्वा॰,पर॰।

प्रयोग– परिभवनम् = परि – भू + घञ् = **परिभावः** 'निरादर' (अचो ञ्णिति 3.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)।

विशेष– घञ् के अभाव पक्ष में ॠदोरप् 3.3.57 से अप्– **परिभवः** 'चारों तरफ होना'।

39. विधि– अवे तृस्त्रोर्घञ् 3.3.120

अव पूर्वक तृ एवं स्तृ धातुओं से करण और अधिकरण कारक में संज्ञाविषय में प्रायः घञ् (पुंल्लिंग में)।

अनु॰– पुंसि संज्ञायां प्रायेण 3.3.118, करणाधिकरणयोः 3.3.117

अपवाद– पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण 3.3.118 से प्राप्त 'घ' का। घञ् के ञित् होने से 'अवतारः' में अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि एवं ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से प्रकृति का आदि उदात्त।

अर्थ– करण/अधिकरण संज्ञा (पुंल्लिंग)। प्रायः (प्रायग्रहणमकात्स्न्यार्थम्– काशिका 3.3.118)।

प्रकृति– अव + तॄ (तॄ प्लवनतरणयोः, भ्वा॰, पर॰), अव + स्तॄ (स्तॄञ् आच्छादने, स्वा॰, उभय॰)।

प्रयोग– 1. अव + तॄ + घञ् = **अवतारः** 'उतरना'

2. अव + स्तॄ + घञ् = **अवस्तारः** 'कनात'। उभयत्र अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

40. विधि– हलश्च 3.3.121

हलन्त धातुओं से भी संज्ञाविषय में करण तथा अधिकरण कारक में (पुंल्लिंग में) प्रायः 'घञ्'।

अनु॰– घञ् 3.3.120, पुंसि संज्ञायां प्रायेण 3.3.118, करणाधिकरणयोः 3.3.117

अपवाद– पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण 3.3.118 से प्राप्त घ का। घञ् के ञित् होने से वृद्धि (अचो ञ्णिति 7.2.116) एवं उदात्त (ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197)।

अर्थ– करण/अधिकरण संज्ञाविषय (पुंल्लिंग)। प्रायः (प्रायग्रहणमकात्स्न्यार्थम्– काशिका 3.3.118)

प्रकृति– हलन्त धातुसामान्य, यथा– मृज् (मृजूष् शुद्धौ, अदा॰,पर॰), लिख् अक्षरविन्यासे, तुदा॰, पर॰)।

प्रयोग– 1. मृज्यतेऽस्मिन् = मृज् + घञ् = **मार्गः** 'रास्ता' (मृजेर्वृद्धिः 7.2.114 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व,

चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)। 'मार्गाचलव्यति-कराकुलितेव सिन्धुः' – कुमार॰ 5.85

2. लिख्यतेऽस्मिन् = लिख् + घञ् = **लेखः** 'लेख' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

41. विधि– अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च 3.3.122

अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार– इन घञन्त शब्दों का पुंल्लिंग करण/अधिकरण कारक संज्ञा में निपातन।

अनु॰– घञ् (3.3.120), पुंसि संज्ञायाम् (3.3.118), करणाधिकरणयोः (3.3.117)।

अपवाद– पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण (3.3.118) से प्राप्त 'घ' का।

प्रकृति– 1. अधि + इङ् अध्ययने (अदा॰, आत्म॰),

2. नि + इण् गतौ (अदा॰, पर॰),

3. उत् + यु मिश्रणेऽमिश्रणे च (अदा॰,पर॰)।

प्रयोग– 1. अधीयतेऽस्मिन् = अधि – इ + घञ् = **अध्यायः** 'अध्याय' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश, इको यणचि॰ 6.1.77 से यण्)

2. नीयन्तेऽनेन कार्याणि = नि – इ + घञ् = **न्यायः** 'न्याय' (रूपसिद्धि 'अध्याय' के समान)।

3. उद्युवन्ति अस्मिन् = उत् – यु + घञ् = **उद्यावः** 'जहाँ सब इकट्ठे होते हैं' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से दकार)।

4. संह्रियन्तेऽनेन = सम् – हृ + घञ् = **संहारः** 'नाश, प्रलय' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, नश्चापदान्तस्य झलि 8.4.24 से अनुस्वार)।

विशेष– अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् (वा॰ 3.3.122) अवहार, आधार, अवाय जैसे घञन्त की गणना करें।

अध्यायन्यायो॰ 3.3.122 से चकार से कुछ ऐसे घञन्तों का

भी ग्रहण होता है। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः- काशिका 3.3.122

प्रयोग- अवहरति = अव - हृ + घञ् = **अवहारः** 'घड़ियाल', आध्रियतेऽत्र = आ - धृ + घञ् = **आधारः**, अव - इ + घञ् = **अवायः**। 'ग्राहोऽवहारः' -अमर॰ 1.10.21, 'आधारोऽधिकरणम्' -अष्टा॰ 1.4.45

42. विधि- उदङ्कोऽनुदके 3.3.123

उदक विषय न होने पर 'उदङ्क' इस घञन्त का निपातन पुंल्लिंग अधिकरण कारक में संज्ञा-विषय होने पर।

अनु॰- घञ् (3.3.120), पुंसि संज्ञायाम् (3.3.118), करणाधिकरणयोः (3.3.117)।

अर्थ- पुंल्लिंग, अधिकरण संज्ञा।

प्रकृति- उत् - अञ्चु (अञ्चु गतिपूजनयोः, भ्वा॰, पर॰)

प्रयोग- उत् - अञ्च् + घञ् = **उदङ्कः** (चजोः कु॰ 7.3.52 से च् को कुत्व से ककार, अतः ञ् को स्वतः नकार, नश्चापदान्तस्य झलि 8.3.24 से अनुस्वार, अनुस्वारस्य ययि॰ 8.4.57 से अनुस्वार को अनुनासिक ङकार, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से तकार को दकार)। यथा- **तैलोदङ्कः** (तैलस्य उदङ्कः) 'तेल का कुप्पा', **घृतोदङ्कः** (घृतस्य उदङ्कः) 'घी का कुप्पा'।

43. विधि- जालमानायः 3.3.124

जाल अर्थ में आनाय- इस घञ्-प्रत्ययान्त का निपातन।

अनु॰- घञ् (3.3.120), पुंसि संज्ञायाम् (3.3.118), करणे (3.3.117)

अर्थ- पुंल्लिंग करण, संज्ञा।

प्रकृति- आ - नी (णीञ्) प्रापणे, भ्वा॰ उभय॰।

प्रयोग- आनयन्ति मत्स्यादीन् अनेन = आ - नी + घञ् = **आनायः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश)।

यथा- **आनायः** मत्स्यानाम् 'मछलियों का जाल', **आनायः**

मृगाणाम् 'मृगों का जाल'। 'आनायः पुंसि जालं स्यात्' –अमर॰ 1.10.16

44. विधि– खनो घ च 3.3.125

खन् धातु से पुंल्लिंग करण अथवा अधिकरण कारक संज्ञा में घ एवं घञ्।

अनु॰– घञ् (3.3.120), पुंसि संज्ञायाम् (3.3.118), करणाधिकरणयोः (3.3.117)।

अर्थ– पुंल्लिंग, करण अथवा अधिकरण संज्ञा।

प्रकृति– खन् अवदारणे, भ्वा॰, पर॰।

प्रयोग– आखनन्ति अस्मिन् = आ – खन् + घञ् = **आखानः** 'फावड़ा' (त उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

'घ' के पक्ष में– **आखनः**।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ 1. घञपोश्च 2.4.38

घञ् तथा अप् प्रत्यय परे हो तो 'अद्' धातु के स्थान पर घस् (घस्लृ) आदेश।

प्रयोग– अद् + घञ् = **घासः** 'भोजन' (भावे 3.3.18 से घञ्)।

सम्ब॰ 2. थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् 6.2.114

थ, अथ, **घञ्**, क्त, अच्, अप्, इत्र, क– प्रत्ययान्त शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त।

सम्ब॰ 3. घञि च भावकरणयोः 6.4.27

भावार्थक तथा करणार्थक घञ् प्रत्यय के परे भी रञ्ज् धातु की उपधा 'न्' का लोप।

प्रयोग– रञ्ज् + घञ् = **रागः** (भावे 3.3.18 से घञ्, घञि च॰ 6.4.27 से 'न' लोप, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

यथा– भावे– आश्चर्यो **रागः**, विचित्रो **रागः**, करणे–रज्यतेऽनेन = **रागः** (अकर्तरि च॰ 3.3.19 से घञ्)।

सम्ब॰ 4. स्यदो जवे 6.4.28

वेग अर्थ में घञ्-प्रत्ययान्त 'स्यद' का निपातन।

प्रयोग– स्यन्द् + घञ् = **स्यदः** (भावे 3.3.18 से घञ्, निपातन से नकार का लोप और अत उपधायाः 7.2.116 से प्राप्त उपधावृद्धि का अभाव)।

सम्ब॰ 5. अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः 6.4.29

अवोद, एध, प्रश्रथ, हिमश्रथ– इन घञन्तों का निपातन।

प्रयोग– 1. अव + उन्द् + घञ् = **अवोदः** (भावे 3.3.18 से घञ्, 'न' लोप का निपातन)।

2. इध्यतेऽनेन = इन्ध् + घञ् = **एधः** 'जलावन' ('न' लोप और गुण निपातन से)। 'इन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित् स्त्रियाम्' –अमर॰ 2.4.13

3. प्र – श्रन्थ् + घञ् = **प्रश्रथः**

4. हिम – श्रन्थ् + घञ् = **हिमश्रथः**

उभयत्र 'न्' लोप और वृद्धि का अभाव निपातन से।

विशेष– 'ओद्म' में ऊन्द् + मन् है।

सम्ब॰ 6. उपसर्गात् खल्घञोः 7.1.67

खल् तथा **घञ्** प्रत्ययों के परे उपसर्गविशिष्ट 'लभ्' धातु को नुम् आगम।

प्रयोग– 1. प्र - लभ् + घञ् = **प्रलम्भः** (भावे 3.3.18 अथवा अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् 3.3.19 से घञ्)।

2. विशेषेण प्रलम्भनम् = वि-प्र + लभ् + घञ् = **विप्रलम्भः**। 'विप्रलम्भः विसंवादः' –अमर॰ 1.7.36

सम्ब॰ 7. न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् 7.1.68

दूसरे उपसर्ग से रहित, केवल सु अथवा दुर् उपसर्ग से युक्त लभ् धातु को 'खल्' तथा 'घञ्' के परे रहते 'नुम्' नहीं होता है।

प्रयोग– 1. सु – लभ् + घञ् = **सुलाभः**, 2. दुर् – लभ् + घञ् = दुर्लाभः। उभयत्र नुम् का अभाव, अतः अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि।

विशेष– 'केवलाभ्याम्' के कहने से अन्य उपसर्गों से युक्त होने पर सु – लभ् एवं दुर्–लभ् को नुम् होता है। यथा–

सुप्रलभ् + घञ् = **सुप्रलम्भः**।

घिनुण्

घिनुण् = इन्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से घ् की तथा हलन्त्यम् 1.3.3 से ण् की एवं उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. घित् (1.3.8)। अतः चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से चकारान्त एवं जकारान्त धातु की कुत्व। न क्वादेः 7.3.59 एवं अजिव्रज्योश्च 7.3.60 से कुत्व का निषेध।
2. णित् (1.3.3)। अतः अचो ञ्णिति 7.2.115 से धातु की वृद्धि, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा में वृद्धि। नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः 7.3.34 से शमादि मान्त धातुओं से वृद्धि का निषेध।

1. विधि– शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् 3.2.141

शम् आदि आठ धातुओं से घिनुण्, तच्छीलादि कर्ता हो और वर्तमान काल हो।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु 3.2.134, वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– वर्तमान काल, तच्छील, तद्धर्मा, तत्साधुकारी।

प्रकृति– शम् (शमु) उपशमे, दिव्-आदि क्रमशः आठ धातु (दिवादि)।

प्रयोग– 1. शमः शीलमस्ति अस्य = शम् + घिनुण् = **शमी** 'शान्त'।

2. तम् (तमु काङ्क्षायाम्) = तम् + घिनुण् = **तमी** 'आकाङ्क्षी'।

3. दम् (दमु उपशमे) = दम् + घिनुण् = **दमी** 'शान्त'।

4. श्रम् (श्रमु तपसि खेदे च) = श्रम् + घिनुण् = **श्रमी** 'परिश्रमी'।

5. भ्रम् (भ्रमु अनवस्थाने) = भ्रम् + घिनुण् = **भ्रमी** 'घुमनेवाला'।

6. क्षम् (क्षमू सहने) = क्षम् + घिनुण् = **क्षमी** 'क्षमा करनेवाला'।

7. क्लम् (क्लमु ग्लानौ) = क्लम् + घिनुण् = **क्लमी** 'थका हुआ'।

उपर्युक्त उदाहरणों में अत उपधायाः 7.2.116 से प्राप्त उपधावृद्धि का नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः 7.3.34 से निषेध हुआ। मूल प्रातिपदिक शमिन्, तमिन्, दमिन्, श्रमिन्, भ्रमिन्, क्षमिन्, क्लमिन् बने।

8. मद् (मदी हर्षे) - प्र-मद् + घिनुण् = **प्रमादी**, उत् - मद् घिनुण् = **उन्मादी**। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि।

2. विधि– सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिवहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च 3.2.142

सम् - पृच् आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्ता होने पर वर्तमान काल में घिनुण्।

अनु॰– घिनुण् (3.2.141), तच्छीलतद्धर्म॰ (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– वर्तमान काल, तच्छील, तद्धर्मा, तत्साधुकारी।

प्रकृति– सम् - पृच् आदि धातु।

प्रयोग– 1. सम् - पृच् (पृची सम्पर्के, रुधादि॰ पर॰) + घिनुण् = **सम्पर्की** 'सम्पर्क करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, मूल शब्द सम्पर्किन्)।

2. अनु - रुध् (रुधिर् आवरणे, रुधादि॰ पर॰) + घिनुण् = **अनुरोधी** 'अनुरोध करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण)। मूलशब्द–अनुरोधिन्)

3. आ + यम् (यम उपरमे, भ्वा॰पर॰) + घिनुण् = **आयामी** 'विस्तार करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

4. आ – यस् (यसु प्रयत्ने, दिवा॰,पर॰) + घिनुण् = **आयासी** 'प्रयत्न करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
5. परि – सृ (सृ गतौ, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **परिसारी** 'सब जगह जानेवाला' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि एवं उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।
6. सम् – सृज् (सृज विसर्गे, दिवा॰, आत्म॰) + घिनुण् = **संसर्गी** 'संसर्ग करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व)।
7. परि – देव् (देवृ देवने, भ्वा॰, आत्म॰) + घिनुण् = **परिदेवी** 'शोक करनेवाला'।
8. सम् – ज्वर् (ज्वर रोगे, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **संज्वारी** 'रोगी' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
9. परि – क्षिप् (क्षिप प्रेरणे, तुदा॰, उभय॰) + घिनुण् = **परिक्षेपी** 'चोरों ओर फेंकनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।
10. परि–रट् (परिभाषणे, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **परिराटी** 'खूब रटनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
11. परि – वद् (व्यक्तायां वाचि, भ्वा, पर॰) + घिनुण् = **परिवादी** 'खरीखोटी सुनानेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। 'भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः' – रघु॰ 8.35
12. परि – दह् (भस्मीकरणे, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **परिदाही** 'जलानेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
13. परि – मुह् (वैचित्ये, दिवा॰,पर॰) + घिनुण् = **परिमोही**

'खूब मोह करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

14. दुष् (वैकृत्ये, दिवा॰,पर॰) + घिनुण् = **दोषी** 'दोषयुक्त' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

15. द्विष् (अप्रीतौ, अदा॰, उभ॰) + घिनुण् = **द्वेषी** 'द्वेष करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

16. द्रुह् (जिघांसायाम्, दिवा॰,पर॰) + घिनुण् = **द्रोही** 'द्रोह करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

17. युज् (युजिर् योगे, रुधा॰ उभ॰) + घिनुण् = **योगी** 'योग करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)।

18. आ + क्रीड् (विहारे, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **आक्रीडी** 'खूब खेलनेवाला'।

19. वि + विच् (विचिर् पृथग्भावे, रुधा॰उ॰) + घिनुण् = **विवेकी** 'विवेकशील' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)।

20. त्यज् (हानौ, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **त्यागी** 'त्याग करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)।

21. रज् (रञ्ज् रागे, दिवा॰, उ॰) + घिनुण् = **रागी** 'राग करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि एवं चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व, घिनुणि च रञ्जेरुपसंख्यानं कर्तव्यम् (वा॰ 6.4.24) से उपधा नकार का लोप)। 'रागी कर्मफलप्रेप्सुः' –गीता॰ 18.27

22. भज् (सेवायाम्, भ्वा॰, उभ॰) + घिनुण् = **भागी** 'सेवन करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि एवं चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)। 'गोत्ररिक्थांशभागिनः' – मनु॰ 9.163

23. अति + चर् (गतौ, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **अतिचारी** 'खूब घूमनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

24. अप + चर् (गतौ, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **अपचारी** 'व्यभिचारी' ('अतिचारी' जैसा रूप)।

25. आ + मुष् (स्तेये, क्र्या॰ पर॰) + घिनुण् = **आमोषी** 'चोर' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

26. अभि-आ + हन् (हिंसागत्योः, अदा॰,पर॰) + घिनुण् = **अभ्याघाती** (हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से ह को घत्व, हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से नकार को तकार, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

3. विधि– वौ कषलसकत्थस्रम्भः 3.2.143

वि-पूर्वक कष्, लस्, कत्थ्, स्रम्भ्– धातुओं से तच्छीलादि कर्ता अर्थ में वर्तमान काल में घिनुण्।

अनु॰– घिनुण् 3.2.141, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु 3.2.134, वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– वर्तमानकाल, तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी।

प्रकृति– वि + कष्, वि + लस्, वि + कत्थ्, वि + स्रम्भ्

प्रयोग– 1. वि + कष् (हिंसायाम्, भ्वा॰,प॰) + घिनुण् = **विकाषी** 'मारनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

2. वि + लस् (श्लेषणक्रीडनयोः, भ्वा॰प॰) + घिनुण् = **विलासी** 'विलास करनेवाला'। 'विकाषी' जैसी, रूपसिद्धि। 'विस्रस्तमंसादपरो विलासी' –रघु॰ 6.14

3. वि + कत्थ् (श्लाघायाम्, भ्वा॰,आ॰) + घिनुण् = **विकत्थी** 'आत्मश्लाघा करनेवाला'।

4. वि + स्रम्भ् (विश्वासे, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **विस्रम्भी** 'विश्वास करनेवाला'।

4. विधि– अपे च लषः 3.2.144

अप्–लष् तथा वि–लष् धातु से वर्तमानकाल में तच्छील आदि

अर्थों में 'घिनुण्'।

अनु॰– वौ (3.2.143), घिनुण् (3.2.141), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी, वर्तमानकाल

प्रकृति– अप–लष् (हिंसायाम्, भ्वा॰,पर॰), वि + लष्।

प्रयोग– 1. अप–लष् + घिनुण् = **अपलाषी** 'लालची'।

2. वि–लष् + घिनुण् = **विलाषी** 'लालची'।

उभयत्र अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि।

5. विधि– प्रे लपसृद्रुमथवदवसः 3.2.145

प्र–पूर्वक लप्, सृ, द्रु, मथ्, वद् एवं वस्-धातुओं से तच्छीलादि कर्ता अर्थ में वर्तमानकाल में 'घिनुण्'।

अनु॰– घिनुण् (3.2.141), तच्छीलतद्धर्म॰ (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– वर्तमानकाल, तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी।

प्रकृति– प्र–लप्, प्र–सृ, प्र–द्रु, प्र–मथ्, प्र–वद्, प्र–वस्

प्रयोग– 1. प्र–लप् (व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰पर॰) + घिनुण् = **प्रलापी** 'प्रलाप करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

2. प्र–सृ (गतौ, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **प्रसारी** 'घूमनेवाला' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

3. प्र–द्रु (गतौ, भ्वा॰, पर॰) + घिनुण् = **प्रद्रावी** 'दौड़नेवाला' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।

4. प्र–मथ् (मथि हिंसाक्लेशनयोः, भ्वा॰, पर॰, मथ विलोडने, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **प्रमाथी** 'मथनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। 'इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः' – गीता 2.60

5. प्र–वद् (व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰,पर॰) + घिनुण् = **प्रवादी** 'खूब बोलनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
6. प्र + वस् (निवासे, भ्वा॰, पर॰) + घिनुण् = प्रवासी 'बाहर रहनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ 1. उगितश्च 4.1.6

उगित् होने से घिनुण्-अन्त से स्त्रीत्व में ङीप्।

प्रयोग– प्रवादिन् + ङीप् = **प्रवादिनी।**

सम्ब॰ 2. घिनुणि च रञ्जेरुपसंख्यानं कर्तव्यम् (वा॰ 6.4.24)

घिनुण् के रहते रञ्ज् धातु की उपधा नकार का लोप होना चाहिए।

प्रयोग– रञ्ज् + घिनुण् = **रागी** (सम्पृचानु॰ 3.2.142 से घिनुण्, प्रस्तुत वार्त्तिक से उपधा नकार का लोप, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व)।

घुरच्

घुरच् = उर। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से घ् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. घित् (1.3.8)। अतः चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से जकारान्त धातु को कुत्व।
2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1. विधि– भञ्जभासमिदो घुरच् 3.2.161

भञ्ज्, भास्, मिद्– इन धातुओं से तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमानकाल में घुरच्।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्म॰ 3.2.134, वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– वर्तमानकाल, तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी।

प्रकृति– भञ्ज्, भास्, मिद्।

प्रयोग– 1. भञ्ज् (आमर्दने, रुधादि, पर॰) + घुरच् = भञ्ज् + उर = **भङ्गुरं** काष्ठम् 'टूटनेवाली लकड़ी' (चजोः कु॰ 7.3.52 से जकार को कुत्व से गकार, कुत्व के कारण ञकार को ङकार)। 'आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तत्क्षणभङ्गुराः' –हितो॰ 1/88

2. भास् (दीप्तौ, भ्वा॰,आ॰) + घुरच् = **भासुरं** ज्योतिः 'दीप्तिशील ज्योति'। 'तं भूपतिर्भासुरहेमराशिम्' –रघु॰ 5.30

3. मिद् (ञिमिदा स्नेहने, भ्वा॰,आ॰) + घुरच् = **मेदुरः** पशुः 'चर्बीवाला अर्थात् मोटा पशु'। (मिदेर्गुणः 7.3.82 से गुण)। 'मेघैर्मेदुरमम्बरम्' –गीत॰ 1

ङ्वनिप्

ङ्वनिप् = वन्। लशक्वतिद्धिते 1.3.8 से ङ् की हलन्त्यम् 1.3.3 से इकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से इतों का लोप।

स्वभाव–

1. ङित् (1.3.8)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।
2. पित् (1.3.3)। अतः ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.69 तुक् का आगमन।
3. वशादि कृत्। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इट् का निषेध।

1. विधि– सुयजोर्ङ्वनिप् 3.2.103

सु (षुञ्) और यज् धातु से भूतकाल में ङ्वनिप्।

अधिकार– भूते (3.2.84)।

अर्थ– भूतकाल।

प्रकृति– सु और यज् धातु।

प्रयोग– 1. सु (षुञ् अभिषवे, स्वादि, उभ॰) + ङ्वनिप् = सुत्वन् > **सुत्वा** 'जिसने सोमरस निचोड़ा (धात्वादेः षः सः 6.1.64 से षकार को सत्व, ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.69 से तुक् आगम)।

2. यज् (देवपूजासंगतिकरणदानेषु, भ्वा॰, उभ॰) + ङ्वनिप् = **यज्वा** 'जिसने यज्ञ किया'। 'यूपचिह्नेषु यज्वनाम्' - रघु॰ 1/44

सम्बद्धस्थल–

(1) वनो र च 4.1.7

वन्–अन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व में ङीप्, नकार को रेफ आदेश।

प्रयोग– सुत्वन् + ङीप् = **सुत्वरी, अतिसुत्वरी**

चानश्

चानश् = आन। चुटू 1.3.7 से च् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से श् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इतों का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. सार्वधातुक (तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113)।
3. ङित्– अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से ङिद्वद्भाव। अतः क्ङिति च 1.1.5 से धातु को गुणनिषेध।
4. चित् (1.3.7)। अतः चितः 6.1.163 से चानश्-अन्त का अन्त 'उदात्त' होता है।

1. विधि– ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् 3.2.129

ताच्छील्य, वयोवचन, शक्ति– इन अर्थों में धातु से वर्तमानकाल में चानश्।

अनु॰– वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– ताच्छील्य, वयोवचन, शक्ति, वर्तमानकाल।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– ताच्छील्य–

1. मुण्डं करोति = मुण्ड + णिच् = मुण्डयति ('मुण्डय' धातु, सनाद्यन्ता धातवः 3.1.62 से धातु-संज्ञा)। मुण्डयनं शीलं यस्य = मुण्डय + चानश् = **मुण्डयमानः** (आने मुक् 7.2.82 से धातु से मुक्– आगम)। प्रयोग- कतीह मुण्डयमानाः 'कितने यहाँ मुण्डन किये हुए हैं'।
2. भूष् (अलंकरणे, चुरा॰ पर॰) + णिच् (स्वार्थे) + चानश् = **भूषयमाणाः** 'सजे हुए हैं'।

   (कर्तरि शप् 3.1.68 से शप्, आने मुक् 7.2.82 से धातु से मुक्-आगम्, अट्कुप्वाङ् 8.4.2 से णत्व)।

   प्रयोग– कतीह भूषयमाणाः 'कितने यहाँ सजे हुए हैं'।

   वयोवचन– भृ (डुभृञ् धारणपोषणयोः, दिवादि, उभय॰)

+ चानश् = **बिभ्राणः** 'धारण करता हुआ'। (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः 2.4.75 से श्लु, श्लौ 6.1.10 से धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य)। प्रयोग– 'कवचं **बिभ्राणाः**' कवच के धारण से शरीर की अवस्था यौवन का पता चलते हैं। 'बिभ्राणामनलात्मिकाम्'– दुर्गासप्तशती।

शक्ति– नि – हन् (हिंसागत्योः, अदा०,पर०) + चानश् = **निघानः** 'मारनेवाला' (सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से चानश् का ङिद्वद्भाव, गमहनजन० 6.4.98 से हन् के उपधा अकार का लोप, हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से धातु के ह को कुत्व से घकार)।

सम्बद्धस्थल–

(1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

तृन् (शानन्, **चानश्**, शतृ, तृन्) के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती।

प्रयोग– नटम् **आघ्नानः**। आ – हन् + चानश् (ताच्छल्यवयोवचनशक्तिषु चानश् 3.2.129 से चानश्) = आघ्नान। इसके प्रयोग में षष्ठी शेषे 2.3.50 से प्राप्त षष्ठी विभक्ति का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।

ञ्युट्

ञ्युट् = यु = अन। चुटू 1.3.7 से अकार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से टकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को अन-आदेश।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. ञित् (1.3.7)। अतः अत उपधायाः 7.2.116 से धातु के उपधा अकार को वृद्धि।
3. टित् (1.3.3)। अतः ञ्युट्-प्रत्ययान्त से स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से ङीप्।

1. विधि– कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् 3.2.65

कव्य, पुरीष, पुरीष्य– ये यदि उपपद हों तो वैदिक विषय में वह् धातु से ञ्युट्।

अनु॰– वहः (3.2.64), छन्दसि (3.2.63), सुपि (3.2.4), तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (3.1.92) से 'कव्य' आदि सप्तमी विभिक्ति में रहने के कारण 'उपपद' हैं।

अर्थ– कर्ता, वैदिक प्रयोग।

प्रकृति– कव्य + वह्, पुरीष + वह्, पुरीष्य + वह् (प्रापणे, भ्वा॰,पर॰)

प्रयोग– 1. कव्यं वहति = कव्य – वह् + ञ्युट् = कव्यवह् + अन = **कव्यवाहनः।**

2. पुरीषं वहति = पुरीष – वह् + ञ्युट् = **पुरीषवाहनः।**

3. पुरीष्यं वहति = पुरीष्य – वह् + ञ्युट् = **पुरीष्यवाहनः।**

सर्वत्र अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार को वृद्धि।

2. विधि– हव्येऽनन्तःपादम् 3.2.66

'हव्य' सुबन्त उपपद हो तो वैदिक विषय में धातु से ञ्युट्, यदि वह् धातु पाद के मध्य में वर्तमान न हो।

अनु॰– वहः (3.4.64), छन्दसि (3.4.63), ञ्युट् (3.2.65), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता, वैदिक प्रयोग।

प्रकृति– हव्य + वह् (प्रापणे, भ्वा॰, पर॰)।

प्रयोग– हव्यं वहति = हव्य-वह् + ञ्युट् = हव्यवह् + अन = **हव्यवाहनः** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

विशेष– सूत्र में 'अनन्तःपाद' का कथन है। अतः वह् धातु को ऋचा के पाद (चरण) के मध्य नहीं होना चाहिए।

यथा– दूतश्च हव्यवाहनः (ऋ॰ 6.16.23)।

यहाँ ञ्युट्-प्रत्ययान्त 'हव्यवाहन' ऋचा के पाद के मध्य में नहीं अपितु अन्त में है, अतः यहाँ ञ्युट् हुआ।

सम्बद्धस्थल–

(1) टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15

टित्–प्रत्ययान्त से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप्। ञ्युट् एक टित् प्रत्यय है। अतः ञ्युट्-प्रत्ययान्त से स्त्रीत्व में ङीप्।

ट

ट = अ। चुटू 1.3.7 से टकार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. टित् (1.3.7)। अतः टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से स्त्रीत्व में ङीप्।

1. विधि– चरेष्टः 3.2.16
अधिकरण सुबन्त उपपद हो तो चर् धातु से 'ट'।

अनु॰– अधिकरणे (3.2.15), सुपि (3.2.4)। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (3.1.92) से अधिकरण एवं सुबन्त 'उपपद' हैं।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– अधिकरण पूर्वक चर् (गतौ, भ्वा॰,पर॰), यथा– कुरुषु चरति।

प्रयोग– कुरुषु चरति = कुरु - चर् + ट = कुरुचर् + अ = **कुरुचरः** 'कुरु देश में घूमनेवाला'।

विशेष– टित् प्रत्यय होने से 'ट'प्रत्ययान्त से टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से स्त्रीत्व में ङीप्।

प्रयोग– कुरुषु चरति- (स्त्री) = कुरु-चर् + ट + ङीप् = **कुरुचरी।**

2. विधि– भिक्षासेनादायेषु च 3.2.17
भिक्षा, सेना, आदाय– ये शब्द उपपद हों तो चर् धातु से 'ट'।

अनु॰– चरेष्टः (3.2.16), सुपि (3.2.4), तत्रोपपदं॰ 3.1.92 से भिक्षादि युक्त सुबन्त 'उपपद' हैं।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– भिक्षादिपूर्वक चर् (गतौ, भ्वा॰ पर॰)।

प्रयोग–
1. भिक्षया चरति = भिक्षा-चर् + ट = **भिक्षाचरः** 'भिक्षा के हेतु घूमता है'।
2. सेनया चरति = सेना- चर् + ट = **सेनाचरः** 'सेना के हेतु घूमता है'।
3. आदाय चरति = आदाय-चर् + ट = **आदायचरः** 'लेकर घूमता है'।

आदाय = आ-दा + क्त्वा (ल्यप्)।

3. विधि– पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः 3.2.18

पुरस्, अग्रतस्, अग्रे– ये अव्यय उपपद हों तो सृ धातु से 'ट'।

अनु॰– टः (3.2.16)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– पुरस् आदि अव्यय से युक्त सृ (गतौ, भ्वा॰, पर॰)।

प्रयोग– 1. पुरः सरति = पुरः – सृ + ट = **पुरःसरः** 'आगे चलनेवाला'।

2. अग्रतः सरति = अग्रतः–सृ + ट = **अग्रतःसरः** 'आगे चलनेवाला'।

3. अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति = अग्रे–सृ + ट = **अग्रेसरः** 'आगे चलनेवाला'।

सर्वत्र सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व। 'अग्रे'– यह एकारान्त अव्यय निपातनसिद्ध है।

4. विधि– पूर्वे कर्तरि 3.2.19

कर्तृवाची 'पूर्व' सुबन्त उपपद हो ते सृ धातु से 'ट'।

अनु॰– सर्तेः (3.2.18), टः (3.2.16)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्तृवाची 'पूर्व' उपपद से युक्त सृ (गतौ, भ्वा॰,पर॰)।

प्रयोग– पूर्वः सरति = पूर्व–सृ + ट = **पूर्वसरः** 'पहला सरकनेवाला' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

विशेष– पूर्व शब्द प्रथमान्त कर्तृवाची होना अपेक्षित है। अतः पूर्वं देशं सरति = पूर्वसारः।

5. विधि– कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु 3.2.20

कर्म उपपद हो तो कृञ् धातु से हेतु, ताच्छील्य, आनुलोम्य–अर्थों में 'ट'।

अनु॰– टः (3.2.16), कर्मणि (3.2.1)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), हेतु = कारण, ताच्छील्य, उसका स्वभाव, आनुलोम्य = अनुकूलता।

प्रकृति– कर्म उपपद युक्त कृञ् (करणे, तनादि, उभ॰)।

प्रयोग– 1. हेतु–

यशः करोति = यशः–कृ + ट = **यशस्करी** विद्या (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, अतः कृकमि॰ 8.3.46 से विसर्ग को सकार, टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से स्त्रीत्व में ङीप्)

शोकं करोति = शोक – कृ + ट = **शोककरी** अविद्या।

2. ताच्छील्य–

धर्मं करोति = धर्म–कृ + ट = **धर्मकरः** 'धर्म करने के स्वभाववाला'।

अर्थं करोति = अर्थ – कृ + ट = **अर्थकरः** 'अर्थ कमाने के स्वभाववाला'।

3. आनुलोम्य–

वचनं करोति = वचन – कृ + ट = **वचनकरः** पुत्रः 'वचन के अनुकूल कार्य करनेवाला पुत्र'।

आज्ञाकरः शिष्यः। **प्रैषकरः** सेवकः 'प्रेरणा के अनुकूल करनेवाला'।

6. विधि– दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु 3.2.21

दिवा, विभा, निशा इत्यादि सुबन्त अथवा कर्म उपपद हों तो कृ से ट।

अनु॰– कर्मणि (3.2.1), सुपि (3.2.4), कृञः (3.2.20), टः (3.2.16)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्म अथवा सुबन्त (यथायथ सम्बन्ध से) दिवा आदि उपपद युक्त 'कृ'।

प्रयोग– 1. दिवा करोति = दिवा - कृ + ट = **दिवाकरः** 'सूर्य (सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. विभां करोति = विभा- कृ + = **विभाकरः** 'सूर्य'।

3. निशां करोति = निशा- कृ + ट = **निशाकरः** 'चन्द्रमा'।

4. प्रभां करोति = प्रभा - कृ + ट = **प्रभाकरः** 'सूर्य'।

5. भासं करोति = भास् - कृ + ट = **भास्करः** 'सूर्य'।

6. अन्तं करोति = **अन्तकरः** 'समाप्त करनेवाला'।

7. अनन्तं करोति = **अनन्तकरः** 'अनन्त कार्य करनेवाला'।

8. आदिं करोति = **आदिकरः** 'आरम्भ करनेवाला'।

9. बहु करोति = **बहुकरः** 'बहुत करनेवाला'।

10. नान्दीं करोति = नान्दी – कृ + ट = **नान्दीकरः** 'मङ्गलाचरण करनेवाला'।

11. किं करोति = किम् – कृ + ट = **किङ्करः** 'नौकर'।

12. लिपिं करोति = लिपि – कृ + ट = **लिपिकरः** 'प्रतिलिपि करनेवाला'।

13. लिबिं करोति = लिबि – कृ + ट = **लिबिकरः** 'प्रतिलिपि करनेवाला'।

14. बलिं करोति = बलि – कृ + ट = **बलिकरः** 'बलि दनेवाला'।

15. कर्तारं करोति = कर्तृ – कृ + ट = **कर्तृकरः** 'कर्ता को बनानेवाला'।

16. चित्रं करोति = चित्र – कृ + ट = **चित्रकरः** 'चित्र बनानेवाला'।

17. क्षेत्रं करोति = क्षेत्र – कृ + ट = **क्षेत्रकरः** 'किसान'।

18. संख्या– एकं करोति = एक - कृ + ट = **एककरः** 'एक को बनानेवाला'।

द्वे करोति = **द्विकरः**, त्रीन् करोति = **त्रिकरः**।

19. जङ्घां करोति = जङ्घा - कृ + ट = **जङ्घाकरः** 'दौड़नेवाला'

20. बाहुं करोति = बाहु - कृ + ट = **बाहुकरः** 'पुरुषार्थी'।

21. अहः करोति = अहन् - कृ + ट = **अहस्करः** 'सूर्य' (रोऽसुपि 8.2.69 से नकार को रुत्व, खरवसानयो॰ 8.3.15 से विसर्ग, अतः कृकमि॰ 8.3.46 से सत्व)।

22. यत् करोति = यत् - कृ + ट = **यत्करः** 'जिसको करनेवाला'।

23. तत् करोति = तत् - कृ + ट = **तत्करः** 'उसको करनेवाला'।

24. धनुः करोति = धनुः - कृ + ट = **धनुष्करः** 'धनुर्धारी' (नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य 8.3.45 से षत्व)।

25. अरुः करोति = अरुः - कृ + ट = **अरुष्करः** 'घाव बनानेवाला' (नित्यं समासे॰ 8.3.45 से षत्व)।

7. विधि– कर्मणि भृतौ 3.2.22
कर्मवाची कर्म शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से 'ट', भृति अर्थात् वेतन गम्यमान होने पर।

अनु॰– कृञः (3.2.20), टः (3.2.16), कर्मणि (3.2.1)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), भृति = वेतन।

प्रकृति– कर्मन् - कृ (करने, तनादि, उभ॰)। यहाँ 'कर्मन्' शब्द का स्वरूपतः ग्रहण है।

प्रयोग– कर्म करोति = कर्मन् - कृ + ट = **कर्मकरः** 'नौकर' (नलोपः॰ 8.2.7 से नकार का लोप)।

विशेष– भृति अर्थ के न रहने पर यह ट प्रत्यय नहीं होता। कर्म करोति = **कर्मकारः** (कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्)।

8. विधि– न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु 3.2.23
शब्द, श्लोक, कलह आदि कर्म उपपद रहते कृ धातु से 'ट' प्रत्यय नहीं होता।

अनु॰– कृञः (3.2.20), टः (3.2.16), कर्मणि (3.2.1)।

अपवाद– कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (3.2.20) से प्राप्त 'ट' का, अतः सामान्यतः कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– शब्द आदि उपपद से युक्त कृ (करणे, तनादि, उभ॰)।

प्रयोग– 1. शब्दं करोति = **शब्दकारः** (कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्, अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। शब्दकारः 'वैयाकरण'।

2. **श्लोककारः** 'श्लोक बनानेवाला'।

3. **कलहकारः** 'झगड़ालू',

4. **वैरकारः** 'शत्रु',

5. **गाथाकारः** 'आख्यायिका बनानेवाला',

6. **चाटुकारः** 'चापलूस',

7. **सूत्रकारः** 'सूत्र बनानेवाला',

8. **मन्त्रकारः** 'मन्त्रद्रष्टा',

9. **पदकारः** 'पदविभाग करनेवाला'।

टक्

टक् = अ। चुटू 1.3.7 से टकार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से ककार की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. टित् (1.3.7)। अतः टिड्ढाणञ्० से स्त्रीत्व में ङीप्।
3. कित् (1.3.3)। अतः आतो लोप इटि च 6.4.64 से आकारान्त धातु के आकार का लोप होता है। क्ङिति च 1.1.5 से धातु का गुणनिषेध।

विधि–

(1) गापोष्टक् 3.2.8

कर्म उपपद रहते गा तथा पा धातुओं से 'टक्'।

अनु०– कर्मणि (3.2.1), अनुपसर्गे (3.2.3।

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का। सरूप अपवाद होने से वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94 के अनुसार यह नित्य बाधक है।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्म उपपद युक्त गा (गै शब्दे, भ्वा०पर०) एवं पा (पाने, भ्वा० पर०)।

प्रयोग– 1. साम गायति = सामन् – गा + टक् = **सामगः** 'साम को गानेवाला' (आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातुगत आकार का लोप, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से नकार का लोप)। स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्० 4.1.15 से ङीप् - **सामगी**।

2.(क) सुरां पिबति = सुरा – पा + टक् = **सुरापः** 'सुरा पीनेवाला' (आतो लोप० 6.4.64 से आकार का लोप)। स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्० 4.1.15 से ङीप् – **सुरापी**।

(ख) शीधु पिबति– **शीधुपः** 'ईख का रस पीनेवाला'। स्त्रीत्व में - **शीधुपी**।

विशेष– पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम् वा॰ 3.2.8

'पा' धातु से पूर्व केवल सुरा एवं शीधु के उपपद रहने पर यह 'टक्' होता है। अन्यथा, क्षीरं पिबति– **क्षीरपः** (क्षीर – पा + क, आतोऽनुपसर्गे कः 3.2.3 से क)। स्त्रीत्व में टित् न होने से टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से ङीप् की अप्राप्ति, अतः अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप् – **क्षीरपा**।

विशेष– इस टक् के प्रसङ्ग में धातु को उपसर्ग से युक्त नहीं होना चाहिए। अतः साम संगायति = **सामसंगायः** (कर्मण्यण् 3.2.1 से अण्)।

2. विधि– लक्षणे जायापत्योष्टक् 3.2.52

जाया एवं पति कर्म उपपद हो तो लक्षणवान् कर्ता अभिधेय होने पर हन् धातु से 'टक्'।

अनु॰– हनः 3.2.49, कर्मणि 3.2.1

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का। सरूप अपवाद होने से वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94 के अनुसार यह नित्य बाधक है।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– जाया/पति रूपी कर्म के साथ 'हन्' (हिंसागत्योः, अदादि॰, पर॰)।

प्रयोग– 1. जायां हन्ति = जाया–हन् + टक् = **जायाघ्नः** वृषलः 'पत्नी को मारने के लक्षण वाला नीच पुरुष'

2. पतिं हन्ति = पति–हन् + टक् = **पतिघ्नी** वृषली 'पति को मारने के लक्षण वाली नीच स्त्री'।

उदाहरणों में गमहनजन॰ 6.4.98 से हन् धातु की उपधा का लोप, हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हकार को घकार। स्त्रीत्व में 'टिड्ढाणञ्॰' 4.1.15 से ङीप्।

3. विधि– अमनुष्यकर्तृके च 3.2.53

मनुष्य से भिन्न कर्ता होने पर कर्म उपपद युक्त हन् धातु से 'टक्'।

अनु॰– टक् 3.2.52, हनः 3.2.49, कर्मणि 3.2.1

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का। सरूप अपवाद होने से यह नित्य अपवाद है (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्म उपपद युक्त हन् (हिंसागत्योः अदा॰ पर॰)।

प्रयोग– श्लेष्म हन्ति = श्लेष्मन् – हन् + टक् = **श्लेष्मघ्नं** मधु 'कफ को नष्ट करनेवाला मधु'।

पित्तं हन्ति = **पित्तघ्नं** घृतम् 'पित्त को मारनेवाला घी'।

उक्त उदाहरणों में गमहनजन॰ 6.4.98 से धातु की उपधा का लोप, हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हकार को घकार।

विशेष– 1. 'अमनुष्यकर्तृक' के कथन से मनुष्यकर्तृकता में यह टक् नहीं होता। यथा– **आखुघातः** शूद्रः 'चूहेमार शूद्र' (आखु – हन् + अण्)

2. **चौरघातः** हस्ती 'चोर को मारनेवाला हाथी'– यहाँ अमनुष्यकर्तृकता के रहने पर भी कृत्यल्युटो बहुलम् 3.3.113 से 'बहुल' कथन से टक् न होकर अण् हुआ।

4. विधि– शक्तौ हस्तिकपाटयोः 3.2.54

हस्तिन् तथा कपाट कर्म उपपद रहते शक्ति अर्थ में हन् धातु से 'टक्'।

अनु॰– टक् 3.2.52, हनः 3.2.49, कर्मणि 3.2.1

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का। सरूप अपवाद होने से यह नित्य बाधक है।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), शक्ति।

प्रकृति– हस्तिन् तथा कपाटरूपी 'कर्म' के साथ हन् (हिंसागत्योः, अदा॰, पर॰) धातु

प्रयोग– 1. हस्तिनं हन्तुं शक्नोति = हस्तिन् – हन् + टक् = **हस्तिघ्नः** मनुष्यः 'हाथी को मार सकनेवाला मनुष्य'।

2. कपाटं हन्तुं शक्नोति = कपाट – हन् + टक् = **कपाटघ्नः** चौरः 'किवाड़ तोड़ने में समर्थ चोर'।

उदाहरणों में गमहनजन॰ 6.4.98 से धातु की उपधा का लोप, हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हकार को घकार, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से हस्तिन् के नकार का लोप।

5. विधि– दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने 3.4.73

दाश तथा गोघ्न– ये कृदन्त शब्द सम्प्रदान कारक में निपातित होते हैं।

अपवाद– कर्तरि कृत् 3.4.67 से कर्ता में प्राप्त कृत् प्रत्यय का।

प्रकृति– गो – हन् (हिंसागत्योः, अदादि, पर॰)।

प्रयोग– गां=दुग्धादिकं घ्नन्ति = प्राप्नुवन्ति यस्मै सः **गोघ्नः** अतिथिः 'गौ का विकार दूध आदि जिसके लिए प्राप्त किया जाता है, ऐसा अतिथि।' इसमें गमहनजन॰ 6.4.98 से हन् धातु की उपधा का लोप, हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हकार को घकार।

ड

ड = अ। चुटू 1.3.7 से उकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत् का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. डित् (1.3.7)। डित्त्व की सामर्थ्य से धातु के 'टि' (अचोन्त्यादि टि 1.1.64) भाग का लोप होता है– डित्यभस्याप्यनुबन्ध-करणसामर्थ्यात् (टेः 6.4.143 सूत्र पर भाष्य–वार्त्तिक)।

विधि–

1. गिरौ डश्छन्दसि (वा॰ 3.2.15)

अधिकरणत्वविशिष्ट 'गिरि' शब्द से युक्त शीङ् धातु से 'ड'।

अनु॰– अधिकरणे शेतेः (3.2.15)

अपवाद– अधिकरणे शेतेः (3.2.15) से प्राप्त अच् का।

प्रकृति– अधिकरणवाची गिरि शब्द के साथ शी (शीङ् स्वप्ने, अदादि॰, आत्मने॰)।

प्रयोग– गिरौ शेते = गिरि – शी + उ = **गिरिशः** 'शङ्कर'। ड के डित्त्व की सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से धातु के टि अर्थात् ई का लोप। 'गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी' –कुमार॰ 1.60

2. विधि– अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः 3.2.48

कर्मत्वविशिष्ट अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व तथा अनन्त शब्द उपपद हों तो गम् धातु से 'ड'।

अनु॰– गमः 3.2.47, कर्मणि 3.2.1

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का।

प्रकृति– कर्मत्वविशिष्ट अन्त आदि से युक्त गम् (गम्लृ गतौ भ्वादि॰पर॰) धातु।

प्रयोग– 1. अन्तं गच्छति = अन्त – गम् + ड = **अन्तगः** 'अन्त को प्राप्त होनेवाला'।

2. अत्यन्तं गच्छति = **अत्यन्तगः** 'अत्यन्त जानेवाला'।

3. अध्वं गच्छति = **अध्वगः** 'रास्ते में चलनेवाला'।
'सन्तानकतरुच्छायाऽऽसुप्तविद्याधराध्वगम्'–कुमार॰ 6.46
4. दूरं गच्छति = **दूरगः** 'दूर जानेवाला'।
5. पारं गच्छति = **पारगः** 'पार जानेवाला'। 'आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः' –मनु. 2.148
6. सर्वं गच्छति = **सर्वगः** 'सबको प्राप्त होनेवाला।
7. अनन्तं गच्छति = **अनन्तगः** 'अनन्त को प्राप्त होनेवाला'।

3. विधि– डप्रकरणे सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् (वा॰ 3.2.48)
सर्वत्र एवं कर्मत्वविशिष्ट पन्न उपपद हों तो गम् धातु से 'ड'।

अनु॰– गमः 3.2.47, कर्मणि 3.2.1

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का।

प्रकृति– सर्वत्र गच्छति = सर्वत्र–गम् + ड = **सर्वत्रगः**। पन्नं गच्छति = पन्न–गम् + ड = **पन्नगः** 'साँप'। विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते' –अभि॰शा॰ 6.30
उभयत्र टेः 6.4.143 से गम् के टि का लोप।

4. विधि– उरसो लोपश्च (वा॰ 3.2.48)
सुबन्त उरस् उपपद हो तो 'गम्' धातु से 'ड' एवं उरस् के सकार का लोप।

अनु॰ एवं अपवाद– विधि सं. 3 जैसे।

प्रकृति– उरस् – गम्।

प्रयोग– उरसा गच्छति = उरस् – गम् + ड = **उरगः** 'साँप'।
टेः 6.4.143 से 'गम्' के टि का लोप, प्रस्तुत वार्तिक से उरस् के सकार का लोप। 'त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता' –रघु॰ 1.28

5. विधि– सुदुरोरधिकरणे (वा॰ 3.2.48)
सु एवं दुर् उपपद हों तो 'गम्' धातु से 'ड'।

अनु॰ एवं अपवाद– विधि सं. 3 जैसे।

प्रकृति– सु – गम्, दुर् – गम्।

प्रयोग– 1. सुखेन गच्छति अस्मिन् = सु – गम् + ड = **सुगः** 'अच्छा मार्ग'।

2. दुःखेन गच्छति अस्मिन् = दुर् – गम् + ड = **दुर्गः** 'दुर्गम मार्ग'। 'निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात्' –मनु॰ 3.98

6. विधि– निरो देशे (वा॰ 3.2.48)

निर् उपपद हो तो गम् से 'ड', देशवाचक होने पर।

अनु॰ एवं अपवाद– विधि सं. 3 जैसे।

प्रकृति– निर् – गम्।

प्रयोग– नितरां गच्छति अस्मिन् = निर् – गम् + ड = **निर्गः** देशः।

7. विधि– डप्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते (वा॰ 3.2.48)

दूसरे शब्द भी उपपद हों तो भी गम् धातु से 'ड'। (ऐसा कुछ आचार्यों का मत है)।

अनु॰ एवं अपवाद– विधि सं. 3 जैसे।

प्रकृति– उपपद युक्त गम्, यथा- ग्राम – गम्

प्रयोग– 1. स्त्र्यगारं गच्छति = स्त्र्यगार – गम् + ड = **स्त्र्यगारगः**

2. ग्रामं गच्छति = **ग्रामगः**

3. गुरुतल्पं गच्छति = **गुरुतल्पगः**

8. विधि– आशिषि हनः 3.2.49

आशीर्वचन गम्य हो तो हन् धातु से कर्म उपपद रहते 'ड'।

अनु॰– डः 3.2.48, कर्मणि 3.2.1

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), अशीर्वचन।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त हन् (हिंसागत्योः, अदा॰, परस्मै॰)

प्रयोग– 1. शत्रून् वध्यात् = शत्रु – हन् + ड = **शत्रुहः** 'शत्रु को मारनेवाला'।

वाक्य–शत्रुहः ते पुत्रः भूयात्।

2. दुःखं हन्ति = दुःख – हन् + ड = **दुःखहः** 'दुःख को नष्ट करनेवाला'।
उभयत्र 'ड' के डित्त्व की सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से हन् के टि = अन् का लोप।

9. विधि– अपे क्लेशतमसोः 3.2.50
क्लेश और तमस् कर्म उपपद हो तो अप + हन् से 'ड'।
अनु॰– हनः 3.2.49, डः 3.2.48, कर्मणि 3.2.1
अपवाद– कर्मण्यण् से प्राप्त अण् का।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)
प्रकृति– क्लेश–अप + हन्, तमस् – अप + हन्।
प्रयोग– 1. क्लेशम् अपहन्ति = क्लेश – अप + हन् + ड = **क्लेशापहः** पुत्रः 'क्लेश को दूर करनेवाला पुत्र'।
2. तमः अपहन्ति = तमस् – अप + हन् + ड = **तमोपहः** सूर्यः 'अन्धकार को दूर करनेवाला सूर्य, अग्नि और चन्द्र'। 'अग्नीन्द्वर्कास्तमोपहाः' –अमर॰ 3.3.238
उभयत्र टेः 6.4.143 से हन् के टि = अन् का लोप। तमोपहः में ससजुषो रुः 8.2.66 से स् को रु। अतो रोरप्लुदादप्लुते 6.1.109 से र् को उ, आद्गुणः 6.1.84 से गुण एकादेश, एङः पदान्तादति 6.1.105 से अपहः के अकार को पूर्वरूप एकादेश।

10. विधि– सप्तम्यां जनेर्डः 3.2.97
सप्तम्यन्त उपपद हो तो जन् धातु से भूतकाल में 'ड'।
अनु॰– भूते 3.2.84
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), भूतकाल में।
प्रकृति– सप्तम्यन्त के साथ जन् (जनी प्रादुर्भावे, दिवादि, आत्म॰)।
प्रयोग– 1. उपसरे जातः = उपसर – जन् + ड = **उपसरजः** 'प्रथम बार में गर्भधारण करने से उत्पन्न हुआ'।
2. मन्दुरायां जातः = मन्दुरा – जन् + उ = **मन्दुरजः** 'घोड़ों

की शाला में उत्पन्न हुआ'। (ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् 6.3.63 से मन्दुरा को ह्रस्व)।

3. कटे जातः = **कटजः** 'चटाई में पैदा होनेवाला'।

4. वारिणि जातम् = **वारिजम्** 'कमल',

सर्वत्र ड के डित्त्व की सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से 'जन्' के टि = अन् का लोप।

11. विधि– पञ्चम्यामजातौ 3.2.98

अजातिवाची पञ्चम्यन्त उपपद हो तो जन् धातु से 'ड', भूतकाल में।

अनु॰– जनेर्डः 3.2.97, भूते 3.2.84

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), भूतकाल में।

प्रकृति– पञ्चम्यन्त के साथ जन् (जनी प्रादुर्भावे, दिवा॰ आत्म॰)।

प्रयोग– 1. शोकात् जातः = शोक – जन् + ड = **शोकजः** रोगः 'शोक से उत्पन्न रोग'।

2. संस्कारात् जातः = **संस्कारजः** 'संस्कार से उत्पन्न'

3. बुद्धेः जातः = **बुद्धिजः** 'बुद्धि से उत्पन्न'।

सर्वत्र डित्त्व की सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से 'जन्' के टि = अन् का लोप।

विशेष– सूत्र में 'अजातौ' के कथन से–

हस्तिनः जातः, अश्वात् जातः में 'ड' प्रत्यय नहीं।

12. विधि– उपसर्गे च संज्ञायाम् 3.2.99

उपसर्ग उपपद हो तो भी संज्ञाविषय में जन् धातु से भूतकाल में 'ड'।

अनु॰– जनेर्डः 3.2.97, भूते 3.2.84

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), भूतकाल में।

प्रकृति– उपसर्ग से युक्त जन् (जनी प्रादुर्भावे, दिवादि, आत्मने॰)।

प्रयोग– प्र–जन् + ड = **प्रजाः**, वाक्य- 'अथेमा मानवीः प्रजाः'। 'प्रजा'– एक संज्ञा है। यहाँ पूर्ववत् टेः 6.4.143 से 'जन्' के

टि = अन् का लोप। स्त्रीत्व (लौकिक प्रयोग में) में अजाद्यतष्टाप् 2.2.33 से टाप्। 'प्रजा स्यात् सान्ततौ जने' –अमर॰ 3.3.32

13. विधि– अनौ कर्मणि 3.2.100

कर्म उपपद रहते अनु – जन् धातु से ड, भूतकाल में।

अनु॰– जनेर्डः 3.2.97, भूते 3.2.84

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), भूतकाल में।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त अनु – जन् (जनी प्रादुर्भावे, दिवा॰, आत्मने॰)।

प्रयोग– 1. पुमांसम् अनुजातः = पुम् – अनु – जन् + ड = **पुमनुजः** 'भाई के पश्चात् पैदा हुआ भाई'।

2. स्त्रियम् अनुजातः = **स्त्र्यनुजः** 'बहन के पश्चात् पैदा हुआ भाई'। उभयत्र टेः 6.4.143 से टि का लोप।

14. विधि– अन्येष्वपि दृश्यते 3.2.101

पूर्व सूत्रों में जिनके उपपद रहते जन् धातु से 'ड' का विधान हुआ है, उससे अन्य कोई उपपद हो तो भी जन् धातु से 'ड', भूतकाल में। अन्य, यथा– सप्तम्यां जनेर्डः 3.2.97 से सप्तमी उपपद में 'ड' आता है। उससे भिन्न उपपद 'अन्य' है।

अनु॰– जनेर्डः 3.2.97, भूते 3.2.84

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), भूतकाल में।

प्रकृति– पूर्वसूत्रों में कथित उपपदों से भिन्न उपपद से युक्त जन् (जनी प्रादुर्भावे, दिवादि, आत्मने॰)।

प्रयोग– (क) यथा– सप्तम्यां जनेर्डः 3.2.97 से भिन्न अर्थात् सप्तमीतर उपपद में भी–

1. न जातः = न – जन् + ड = **अजः** 'परमेश्वर' (नलोपो नञः 6.3.73 से न् का लोप)। 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्' –गीता॰ 2.20

2. द्विः जातः = द्वि – जन् + ड = **द्विजः** 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, दाँत, अण्डज पक्षी आदि'। 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' –अमर॰ 3.3.30

(ख) पञ्चम्यामजातौ 3.2.98 से भिन्न अर्थात् जाति में भी–

1. ब्राह्मणात् जातः– **ब्राह्मणजः** धर्मः 'ब्राह्मण से पैदा हुआ धर्म'।

2. क्षत्रियात् जातम् = **क्षत्रियजं** युद्धम् 'क्षत्रिय से पैदा हुआ युद्ध'।

(ग) उपसर्गे च संज्ञायाम् 3.2.88 से भिन्न अर्थात् असंज्ञा में भी–

1. अभिजातः = अभि – जन् + ड = **अभिजः** 'पैदा होनेवाला'।

2. परिजाताः = **परिजाः** 'केश'।

(घ) अनौ कर्मणि 3.2.100 से भिन्न अर्थात् अकर्म में भी–

1. अनुजातः = अनु – जन् + ड = **अनुजः** 'छोटा भाई'।

विशेष– सूत्र में 'अपि' के ग्रहण से 'जन्' धातु से भिन्न धातु से भी और अन्य कारक में भी यह 'ड' प्रत्यय होता है। ('अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः'- काशिका 3.2.101)।

यथा– परितः खाता = परि – खन् + ड + टाप् = **परिखा** 'खाई'। 'महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम्' – रघु॰ 12.66

आ समन्तात् खाता = आ – खन् + ड + टाप् = **आखा**।

सर्वत्र टेः 6.4.143 से धातु के टि का लोप।

15. विधि– डो वक्तव्यः (वा॰ 3.3.125)

खन् धातु से करण एवं अधिकरण में 'ड' प्रत्यय भी वक्तव्य है।

अनु॰– खनो घ च 3.3.125, करणाधिकरणयोः 3.3.117

अर्थ– करण एवं अधिकरण।

प्रकृति– खन् (खनु अवदारणे, भ्वादि, परस्मै॰)।

प्रयोग– आ खनन्ति अनेन अस्मिन् वा =

आ–खन् + ड = **आखः** 'फावड़ा'

ड प्रत्यय के डित्त्व के सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से खन् के टि अर्थात् अन् का लोप।

डर

डर = अर। चुटू 1.3.7 से डकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत् का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. डित् (1.3.7)। डित्त्व के सामर्थ्य से धातु के 'टि' (अचोन्त्यादि टि 1.1.64) भाग का लोप होता है– 'डित्यभस्याप्यनुबन्धकरणसामर्थ्यात्' (टेः 6.4.143 सूत्र पर भाष्यवार्त्तिक)।

विधि–

(1) डरो वक्तव्यः (वा॰ 3.3.125)
खन् धातु से करण एवं अधिकरण में 'डर' प्रत्यय भी वक्तव्य है।

अनु॰– खनो घ च 3.3.125, करणाधिकरणयोः 3.3.117

अर्थ– करण एवं अधिकरण।

प्रकृति– खन् (खनु अवदारणे, भ्वा॰,पर॰)।

प्रयोग– आखनन्ति अनेन अस्मिन् वा = आ – खन् + डर = **आखरः** 'फावड़ा'। 'डर' प्रत्यय के डित्त्व के सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से खन् के टि अर्थात् अन् का लोप।

डु

डु = उ। चुटू 1.3.7 से डकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत् का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. डित् (1.3.7)। डित्त्व के सामर्थ्य से धातु के टि (अचोन्त्यादि टि 1.1.64) भाग का लोप होता है। 'डित्यभस्याप्यनुबन्ध-करणसामर्थ्यात्' (टेः 6.4.143 सूत्र पर भाष्य-वार्तिक)।

1. विधि– विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् 3.2.180
संज्ञा गम्यमान न हो तो वि, प्र एवं सम् उपसर्गपूर्वक भू धातु से 'डु' प्रत्यय, वर्तमानकाल में।

अनु॰– भुवः 3.2.179, वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), वर्तमानकाल।

प्रकृति– वि + भू, प्र + भू, सम् + भू (सत्तायाम्, भ्वादि॰, परस्मै॰)।

प्रयोग– 1. विभवति = वि – भू + डु + **विभुः** 'व्यापक'।
2. प्रभवति = प्र – भू + डु = **प्रभुः** 'स्वामी'।
3. संभवति = सम् – भू + डु = **सम्भुः** 'उत्पन्न होनेवाला'।

उक्त उदाहरणों में 'डु' प्रत्यय के डित्त्व के सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से धातु के टि अर्थात् ऊ का लोप।

विशेष–1. सूत्र में 'असंज्ञायाम्' के कथन से संज्ञा गम्यमान होने पर 'डु' प्रत्यय नहीं आता– **विभूः** (वि + भू + क्विप्, भुवः संज्ञान्तरयोः 3.2.179 से क्विप्)।

विशेष–2. डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम् (वा॰, 3.2.180)
'मित' उपपदक द्रु धातु आदि से भी 'डु' प्रत्यय आना चाहिए।

प्रयोग– मितं द्रवति– मित – द्रु + डु = **मितद्रुः** शं भवति = शम् – भू + डु = **शम्भुः**

डित्त्व की सामर्थ्य से टेः 6.4.143 से धातु के टि का लोप।

ण

ण = अ। चुटू 1.3.7 से ण् की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत् का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. णित् (1.3.7)।
   (i) अतः अचो ञ्णिति 7.2.115 से इगन्ताङ्ग की वृद्धि होती है।
   (ii) अत अपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार की वृद्धि होती है।
   (iii) हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से हन् को तकार आदेश।
   (iv) आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से आकारान्त अङ्ग को युक्– आगम।
   (v) नोदात्तोपदेशस्य॰ 7.3.34 से उदात्तोपदेश एवं मान्त ('चमि' को छोड़कर) की उपधावृद्धि (7.2.116 से) नहीं होती है।
   (vi) जनिवध्योश्च 7.3.35 से जन् तथा वध् की उपधावृद्धि (7.2.116 से) नहीं होती है।

विधि–1. ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः 3.1.140
अनुपसर्ग 'ज्वल' से लेकर 'कस' पर्यन्त जितनी धातुएँ हैं, उनसे 'ण', विकल्प से।

अनु॰– विभाषा (3.1.139), अनुपसर्गात् (3.1.138)।

अपवाद– नन्दिग्रहि॰ 3.1.134 से प्राप्त अच् का।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– उपसर्ग से रहित ज्वल (दीप्तौ, भ्वा॰पर॰) से लेकर कस (गतौ, भ्वा॰पर॰) तक।

प्रयोग– 1. ज्वलति = ज्वल् + ण = **ज्वालः** 'जलनेवाला'। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि। पक्ष में नन्दिग्रहि॰ 3.1.134 से अच्– **ज्वलः**।

2. चलति = चल् (कम्पने, भ्वा॰पर॰) + ण = **चालः**, पक्ष में **चलः** (अच्) 'काँपनेवाला'।
3. जलति = जल् (घातने, भ्वा॰ पर॰)- **जालः - जलः** 'तीक्ष्णता दर्शानेवाला'।
4. टलति = टल् (वैक्लव्ये, भ्वा॰,पर॰)– **टालः-टलः**।
5. ट्वलति = ट्वल् (वैक्लव्ये, भ्वा॰,पर॰)– **ट्वालः-ट्वलः**।
6. स्थलति = ष्ठल् (स्थाने, भ्वा॰,पर॰)– **स्थालः–स्थलः**।
7. हलति = हल् (विलेखने, भ्वा॰,पर॰)– **हालः-हलः** 'हल चलानेवाला'।
8. नलति = णल् (गन्धे, भ्वा॰पर॰)– **नालः-नलः**।
9. पलति = पल् (गतौ, भ्वा॰,पर॰)– **पालः-पलः**।
10. बलति– बल् (प्राणने धान्यावरोधने च, भ्वा॰,पर॰)- **बालः-बलः**।
11. पोलति = पुल् (महत्त्वे, भ्वा॰,पर॰)– **पोलः**।
12. कोलति = कुल् (संस्त्याने बन्धुषु च, भ्वा॰, पर॰)- **कोलः**।
13. शलति = शल् (गतौ, भ्वा॰,पर॰)– **शालः-शलः**।
14. होलति = हुल् (गतौ, भ्वा॰,पर॰)– **होलः**।
15. पतति = पत् (गतौ, भ्वा॰, पर॰)– **पातः-पतः**।
16. क्वथति = क्वथ् (निष्पाके, भ्वा॰,पर॰)– **क्वाथः-क्वथः**।
17. पथति = पथ् (गतौ, भ्वा॰,पर॰)– **पाथः-पथः**।
18. मथति = मथ् (विलोडने, भ्वा॰पर॰)– **माथः-मथः**।
19. वमति = वम् (उद्गिरणे, भ्वा॰,पर॰)– **वामः-वमः**।
20. भ्रमति = भ्रम् (चलने, भ्वा॰ पर॰)- **भ्रामः-भ्रमः**।
21. क्षरति = क्षर् (संचलने, भ्वा॰पर॰)– **क्षारः-क्षरः**।

22. सहते = षह् (मर्षणे, भ्वा॰,पर॰)– **साहः-सहः।**

23. रमते = रम् (क्रीडायाम्, भ्व॰,पर॰)– **रामः-रमः।**

24. सीदति = षद् (विशरण-गति-अवसादनेषु, भ्वा॰,पर॰)– **सादः-सदः।**

25. शीयते = शद् (शातने, भ्वा॰पर॰)–**शादः-शदः।**

26. क्रोशति = क्रुश् (आह्वाने, भ्वा॰, पर॰)– **क्रोशः।**

27. कोचति = कुच् (सम्पर्चन-कौटिल्य-प्रतिष्टम्भ-विलेखनेषु, भ्वा॰पर॰)– **कोचः।**

28. बोधति = बुध् (अवगमने, भ्वा॰पर॰)- **बोधः।**

29. रोहति = रुह् (बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, भ्वा॰पर॰)– **रोहः।**

30. कसति = कस् (गतौ, भ्वा॰,पर॰)– **कासः-कसः।**

2. विधि– तनोतेर्ण उपसंख्यानम् (वा॰ 3.1.140)

तन् धातु से भी 'ण' प्रत्यय का प्रतिपादन अपेक्षित है।

प्रयोग– अवतनोति = अव – तन् (विस्तारे, तना॰, पर॰)– अव – तन् + ण = **अवतानः** 'फैलानेवाला'। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि।

3. विधि– श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च 3.1.141

श्यैङ् धातु, आकारान्त धातु, व्यध्, आ – स्रु, सम् – स्रु, अति – इण्, अव – षो, अव – हृ, लिह्, श्लिष् और श्वस् धातु से भी 'ण' प्रत्यय।

अनु॰– णः (3.1.140)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– श्यैङ् गतौ आदि यथोक्त धातु।

प्रयोग– 1. श्यायते (श्यैङ् गतौ, भ्वा॰,पर॰) = श्यै + ण = श्या + अ = **श्यायः** (आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से ऐकार को आत्व, आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से धातु से युक्-आगम)। प्रयोग– **अवश्यायः** 'पाला, सफेद ओस', **प्रतिश्यायः।**

'अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्'– उत्तर॰ 6.29

2. आकारान्त धातु, यथा– दा (डुदाञ् दाने, जुहो॰, उभय॰) ददाति = दा + ण = **दायः** 'देनेवाला'

दधाति = धा + ण = **धायः** 'धारण करनेवाला'

(आतो युक्॰ 7.3.33 से धातु को युक्-आगम)।

3. विध्यति (व्यध् ताडने, दिवा॰,पर॰) = व्यध् + ण = **व्याधः** 'शिकार करनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। 'व्याधो मृगवधाजीवः'–अमर॰ 2.10.21

4. आस्रवति (आ – स्रु गतौ, भ्वा॰, पर॰) = आ – स्रु + ण = **आस्रावः** 'घाव, बहाव'

5. संस्रवति (सम् – स्रु गतौ, भ्वा॰,पर॰) = सम् – स्रु + ण = **संस्रावः**

उभयत्र अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश।

6. अत्येति (अति – इण् गतौ, अदा॰, पर॰) = अति – इ + ण = **अत्यायः** 'अतिक्रमण'।

अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश।

7. अवस्यति (अव – षो अन्तकर्मणि, दिवा॰,पर॰) = अव – सो + ण = **अवसायः** 'उपसंहार'।

(आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से ओकार को आत्व, आतो युक् चिण्कृतो 7.3.33 से धातु को युक्- आगम)।

8. अवहरति (अव – हृञ् हरणे, भ्वा॰,पर॰) = अव + हृ + ण = **अवहारः** 'घड़ियाल'। (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'ग्राहोऽवहारो' – अमर॰1.10.21

9. लेढि (लिह् आस्वादने, अदा॰,पर॰) = लिह् + ण =

लेहः 'चाट, चटनी' (पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधा गुण। 'जेमनं लेह आहारो' –अमर॰ 2.9.56

10. श्लिष्यति (श्लिष् आलिङ्गने, दिवा॰,पर॰) = श्लिष् + ण = **श्लेषः** 'आलिङ्गन'। (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)। 'निरन्तरश्लेषधनाः' –काद॰

11. श्वसिति (श्वस् प्राणने, अदा॰,पर॰) = श्वस् + ण् = **श्वासः** 'ऊँची साँस'।

प्रयोग– 'अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः'– अभि॰शा॰1.29

4. विधि– दुन्योरनुपसर्गे 3.1.142

दु एवं नी धातुओं से 'ण', यदि धातु से पूर्व उपसर्ग न हो।

अनु॰– णः (3.1.140)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– उपसर्गरहित दु (टु दु उपतापे, स्वादि, पर॰) और नी (णीञ् प्रापणे, भ्वा॰, उभय॰)

प्रयोग– 1. दुनोति = दु + ण = **दावः** 'वन' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश। 'दवदावौ वनारण्यवह्नी' –अमर॰ 3.3.206

2. नयति = नी + ण = **नायः** 'नेता' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आयादेश)।

5. विधि– विभाषा ग्रहः 3.1.143

ग्रह् धातु से विकल्प से ण।

अनु॰– णः (3.1.140)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.167)।

प्रकृति– ग्रह् (उपादाने, क्र्यादि, उभय॰)

प्रयोग– गृह्णाति = ग्रह् + ण = **ग्राहः** 'मकर' (अत उपाधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)। पक्ष में, नन्दिग्रहि॰ 3.1.134 से अच् = **ग्रहः** 'नक्षत्र'। 'ग्राहोऽवहारो' –अमर॰ 1.10.21

6. विधि– भवतेश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 3.1.143)।
भू धातु से भी विकल्प से 'ण' हो। अनुवर्त्तन आदि पूर्ववत्।

प्रयोग– भवति = भू + ण = **भावः** 'होनेवाला' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽय॰ 6.1.78 से आवादेश)।

7. विधि– नौ ण च 3.3.60
निपूर्वक अद् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा एवं भाव में 'ण' और 'अप्' प्रत्यय।

अनु॰– अदः (3.3.59), अप् (3.3.57), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, संज्ञा और भाव।

प्रकृति– नि + अद् (भक्षणे, अदा॰,पर॰)।

प्रयोग– नितराम् अदन्ति तस्मात् रसम् = नि – अद् + ण = **न्यादः** 'भोजन'। (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि।)
अपर पक्ष में, नि – अद् + अप् = **निघसः** 'भोजन'। (घञपोश्च 2.4.38 से घस्लृ-आदेश)। 'जेमनं लेह आहारो निघासो न्याद इत्यपि' –अमर॰ 1.1.56

8. विधि– शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः (वा॰ 3.2.1)
शीलि, कामि, भक्षि, आ + चर् धातुओं से कर्म-उपपद के रहते 'ण'।

अनु॰– कर्मणि (3.2.1)।

अपवाद– कर्मण्यण् 3.2.1 से प्राप्त अण् का।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– कर्म-उपपद शील आदि धातु।

प्रयोग– 1. मांसं शीलयति (शील उपधारणे, चुरा॰, पर॰) = मांस – शील + ण = **मांसशीलः** 'मांस खाने में अभ्यस्त'। उपधारण = अभ्यास। स्त्रीत्व में, अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप् = **मांसशीला**'।

2. मांसं कामयते (कमु कान्तौ, भ्वा॰, आत्म॰) = मांस – कम्

+ णिच् (स्वार्थे) + ण = **मांसकामः** 'मांस चाहनेवाला'। स्त्रीत्व में, **मांसकामा** (अजाद्यत॰ 4.1.4 से टाप्)।

3. मांसं भक्षयति = (भक्ष अदने, चुरा॰,पर॰) = मांस – भक्ष + ण = **मांसभक्षः** 'मांस खानेवाला' स्त्रीत्व में, मांसभक्षा (अजाद्यत॰ 4.1.4 से टाप्)।

4. कल्याणम् आचरति (चर् गतौ, भ्वा॰,पर॰) = कल्याण – आचर् + ण = **कल्याणाचरः** 'कल्याण आचरण करनेवाला'। स्त्रीत्व में, **कल्याणाचरा** (अजाद्यत॰ 4.1.4 से टाप्)।

विशेष– कर्मण्यण् 3.2.1 से अण् करने पर स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 ङीप् की प्राप्ति होती। अतः इन स्थलों में 'ण' प्रत्यय अण् का अपवाद बना और स्त्रीत्व में टाप् हुआ।

9. विधि– ईक्षिक्षमिभ्यां च (वा॰ 3.2.1)

ईक्ष और क्षम् धातुओं से भी कर्म-उपपद के रहते 'ण'।

अनु॰– कर्मणि (3.2.1), ण (वा॰ 3.2.1)।

अपवाद– कर्मण्यण् (3.2.1) से प्राप्त अण् का।

अण् और ण में भेद यह है कि अण् के आने पर स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ् 4.1.15 से ङीप् आता, परन्तु ण के आने पर अजाद्यत॰ 4.1.4 से टाप् आता है।

प्रकृति– कर्म-उपपद ईक्ष एवं क्षम् धातु।

प्रयोग– 1. सुखं प्रतीक्षते (ईक्ष दर्शने, भ्वा॰ आत्म॰) = सुख-प्रति + ईक्ष + ण = **सुखप्रतीक्षः** 'सुख की प्रतीक्षा करनेवाला'। स्त्रीत्व में, आजाद्यत॰ 4.1.4 से टाप् = **सुखप्रतीक्षा**।

2. बहु क्षाम्यति- (क्षम् सहने, दिवा॰पर॰) = बहु – क्षम् + ण = **बहुक्षामः** 'बहुत सहनेवाला'। स्त्रीत्व में, अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप् = **बहुक्षामा**। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि।

णच्

णच् = चुटू 1.3.7 से ण् की और हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत्-संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत् का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. णित् (1.3.7)। अतः सभी णित् के कार्य (देखें– 'ण' प्रत्यय)।
3. चकारान्त। णचः स्त्रियामञ् (5.4.14) से णच्-अन्त से अञ् विधान के लिए स्पष्टता हेतु यह 'च्' विशेषण का काम करता है (का॰ 3.3.43)।

विधि–1. कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् 3.3.43

कर्मव्यतिहार अर्थात् क्रिया के अदल-बदल बोध्य होने पर स्त्रीत्व में धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में 'णच्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् 3.3.19, भावे 3.3.18

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक संज्ञा (3.3.19), भाव (3.3.18)।

प्रकृति– धातुसामान्य (कर्मव्यतिहार अर्थ के साथ), यथा– वि – अव – क्रुश् (आह्वाने रोदने च, भ्वा॰,पर॰)।

प्रयोग– यथा– वि – अव – क्रुश् + णच् = व्यवक्रोश (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण), व्यवक्रोश + अञ् = **व्यावक्रोशः** (णचः स्त्रियामञ् 5.4.14 से अञ्, तद्धितेष्वचामादेः 7.2.117 से आदि वृद्धि), व्यावक्रोश + ङीप् = व्यावक्रोशी 'आपस में झगड़ना' (टिड्ढाणञ् 4.1.15 से ङीप्, यस्येति च 6.4.148 से अकार लोप)

इसी प्रकार,

वि – अव – लिख् + णच् + अञ् + ङीप् = **व्यावलेखी** 'अदल-बदल कर लिखना'।

वि – अव – हस् + णच् + अञ् + ङीप् = **व्यावहासी** 'अदल-बदल कर हँसना'। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि।

विशेष–1. सूत्र में 'स्त्रियाम्' क्यों?
स्त्रीलिङ्ग से इतर णच् नहीं– **व्यतिपाकः** (घञ्)।

विशेष–2. इस सूत्र को स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से प्रारम्भ होनेवाले स्त्र्यधिकार के अन्तर्गत क्यों नहीं पढ़ा गया और स्वतन्त्र रूप से 'स्त्रियाम्' क्यों कहा गया?

उत्तर– वि – अति – ईक्ष् + अ + टाप् = **व्यतीक्षा** (अ प्रत्ययात् 3.3.102 से अ, अजाद्यत० 4.1.4 से टाप्)।
वि – अति – ईह् + अ + टाप् = **व्यतीहा** (गुरोश्च हलः 3.3.103 से अ, अजाद्यत० 4.1.4 से टाप्)। इनमें स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से प्राप्त क्तिन् का नित्य अपवाद है (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94)। परन्तु 'अ' प्रत्यय से सरूप होने पर भी यह 'णच्' प्रत्यय उसका नित्य अपवाद नहीं हुआ, क्योंकि यह स्त्र्यधिकार से बाहर स्वतन्त्र पठित हुआ है।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब० (1) णचः स्त्रियामञ् 5.4.14
कर्मव्यतिहारार्थक णच्-प्रत्ययान्त शब्द से स्वार्थ में स्त्रीलिङ्ग में 'अञ्' प्रत्यय।

प्रयोग– व्यावक्रोशी- वि – अव – क्रुश् + णच् + अञ् + ङीप् (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् 3.3.43 से णच्, टिड्ढाणञ्० 4.1.15 से ङीप्)।

विशेष– कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् 3.3.43 से जब स्त्रीलिङ्ग में ही णच् विहित है तब इस सूत्र में पुनः 'स्त्रियाम्' क्यों?

उत्तर– इससे ज्ञापित होता है कि स्वार्थिक प्रत्यय अपनी मूल प्रकृति के लिङ्ग और वचन से भिन्न लिङ्ग और वचन में भी हो जाते हैं। यथा– देवः एव देवता। (का० 5.4.14)

(2) न कर्मव्यतिहारे 7.3.6
कर्मव्यतिहार (क्रिया-विनिमय) में उक्त (न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् 7.3.3 से) वृद्धि–निषेध और ऐच्–आगम नहीं होते हैं।

प्रयोग– व्यावक्रोशी- वि – अव – क्रुश् + णच् + अञ् + ङीप्– कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् 3.3.43 से णच्, णचः स्त्रियामञ् 5.4.14 से अञ्, टिड्ढाणञ्॰ 4.1.15 से ङीप्, तद्धितेष्वचामादेः 7.2.117 से वृद्धि, न य्वाभ्यां 7.3.3 से प्राप्त वृद्धि-निषेध और ऐच्-आगम प्रस्तुत सूत्र के कारण नहीं हुए।

णमुल्

णमुल् = अम्। चुटू 1.3.7 से ण्, हलन्त्यम् 1.3.3 से ल्, उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से उ की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. णित् (1.3.7)। अतः (1) अचो ञ्णिति 7.2.115 से इगन्ताङ्ग को वृद्धि, (2) अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार को वृद्धि, (3) हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से हन् को तकार आदेश, (4) आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से आकारान्त अङ्ग को युक्-आगम, (5) नोदात्तोपदेशस्य॰ 7.3.34 से उदात्तोपदेश एवं मान्त ('चमि' को छोड़कर) को उपधावृद्धि नहीं, (6) जनिवध्योश्च 7.3.35 से जन् तथा वध् को (7.2.116 से) उपधा-वृद्धि नहीं होती है।
3. लित्।
4. मान्त कृत्। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से णमुल्-अन्त की अव्यय संज्ञा, अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से सुप् का लोप।

विधि–1. शकि णमुल्कमुलौ 3.4.12

शक् धातु उपपद हो तो वेद-विषय में तुमर्थ में धातु से 'णमुल्' तथा 'कमुल्'।

अनु॰– तुमर्थे 3.4.9, छन्दसि 3.4.6

अर्थ– तुमर्थ (क्रियार्थक क्रिया उपपद में 3.3.10)।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– वि – भज् + णमुल् = वि – भज् + अम् = **विभाजम्** 'बाँटने के लिए'। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा-वृद्धि, कृन्मेजन्तः 1.1.39 से अव्ययसंज्ञा, अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से सुप् का लोप।

प्रयोग– 'अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्।'

2. विधि– आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22

आभीक्ष्ण्य (पौनःपुन्य) अर्थ में समानकर्तृक दो धातुओं में पूर्वकालिक धातु से 'णमुल्' (और क्त्वा)।

अनु॰– समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (3.4.21), क्त्वा (3.4.18)

अर्थ– पौनःपुन्य।

प्रकृति– धातुसामान्य (यथा– भुज् पालनाभ्यवहारयोः, रुधा॰,पर॰)

प्रयोग– 1. भुज् + णमुल् = **भोजम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण) आभीक्ष्ण्य में धातु को द्वित्व होता है।

प्रयोग– **भोजं भोजं** व्रजति (खा खाकर चलता है)

2. पा + णमुल् = पायम् (आतो युक्॰ 7.3.33 से युक्)

प्रयोग– **पायं पायं** व्रजति (पी पीकर चलता है)। 'क्त्वा के पक्ष में, भुक्त्वा व्रजति, पीत्वा व्रजति।

विशेष– न यद्यनाकाङ्क्षे 3.4.23

समानकर्तृक दो धातुओं में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में 'यत्' शब्द के उपपद होने पर आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22 से होनेवाले णमुल् एवं क्त्वा नहीं होते हैं, यदि अन्य वाक्य की आकाङ्क्षा न रखनेवाला वाक्य हो।

प्रयोग– यद् अयं भुङ्क्ते ततः पठति 'यह बार-बार पहले खाता है, पीछे पढ़ता है'। यद् अयम् अधीते ततः शेते 'यह पहले बार-बार पढ़ता है तब सोता है'। यहाँ प्रथम में भोजन अथवा द्वितीय में पठन करनेवाला वाक्य अन्य किसी वाक्य की आकाङ्क्षा नहीं रखता है। अतः णमुल् नहीं हुआ।

3. विधि– विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु 3.4.24

अग्रे, प्रथम एवं पूर्व उपपद हों तो समानकर्तृक पूर्वकालिक धातु से विकल्प से क्त्वा एवं णमुल्।

अनु॰– समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (3.4.21), क्त्वा (3.4.18), णमुल् (3.4.22)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), समानकर्तृक एवं पूर्वकालिक क्रिया।

प्रकृति– अग्रे, प्रथम, पूर्व उपपद से युक्त धातुसामान्य (यथा– भुज पालनाभ्यवहारयोः, रुधा०,पर०)

प्रयोग– भुज् + णमुल् = भोजम् (पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधागुण, प्रयोग– अग्रे **भोजं** व्रजति, प्रथमं **भोजं** व्रजति, पूर्वं **भोजं** व्रजति। 'पहले खाकर जाता है'।

क्त्वा के पक्ष में, अग्रे भुक्त्वा व्रजति इत्यादि।

विशेष– 'विभाषा' कथन से पक्ष में लट् आदि भी– अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति।

4. विधि– स्वादुमि णमुल् 3.4.26

स्वादुवाची शब्दों के उपपद रहते समानकर्तृक पूर्वकालिक कृञ् धातु से 'णमुल्'।

अनु०– कृञः (3.4.25), समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (3.4.21)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), समानकर्तृक पूर्वकालिक क्रिया।

प्रकृति– स्वादु-अर्थक शब्दों से युक्त कृञ् (डुकृञ् करणे, तना० उभय०)

प्रयोग– स्वादुम् – कृ + णमुल् = **स्वादुङ्कारम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)

प्रयोग– स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते, सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते, लवणङ्कारं भुङ्क्ते। 'भोजन को स्वादिष्ट, सम्पन्न अथवा लवणयुक्त बनाकर खाता है।'

विशेष– सूत्र में 'स्वादुम्' मकारान्त पठित है, अतः प्रयोग में भी यह मकारान्त रहता है। अतः 'स्वाद्वीं कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते = **स्वादुङ्कारं** यवागूं भुङ्क्ते' में स्वादु से अपेक्षित स्त्रीत्ववाचक ङीष् (वोतो गुणवचनात् 4.1.44) नहीं हुआ।

5. विशेष– अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् 3.4.27

अन्यथा, एवं, कथं, इत्थम्– शब्दों के उपपद रहते कृञ् से 'णमुल्', यदि कृञ् का अप्रयोग सिद्ध हो।

अनु०– णमुल् 3.4.26, कृञः 3.4.25, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– अन्यथा आदि उपपद से युक्त कृ (डुकृञ् करणे, तनादि०,उभ०)

प्रयोग– अन्यथा – कृ + णमुल् = अन्यथाकारम् (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

प्रयोग– 1. **अन्यथाकारं** भुङ्क्ते - बिगाड़कर खाता है।

2. **एवंकारं** भुङ्क्ते- इस प्रकार खाता है।

3. **कथङ्कारं** भुङ्क्ते– किस प्रकार खाता है।

4. **इत्थंकारं** भुङ्क्ते– इस प्रकार खाता है।

विशेष– इन प्रयोगों में अन्यथा भुङ्क्ते, एवं भुङ्क्ते, कथं भुङ्क्ते एवं इत्थं भुङ्क्ते का अर्थ है अर्थात् बिना कृ धातु के प्रयोग के ही अर्थ हो सकता है। अतः 'कृ' धातु के इस प्रयाग को 'सिद्धाप्रयोग' कहते हैं।

6. विधि– यथातथयोरसूयाप्रतिवचने 3.4.28

यथा और तथा शब्द उपपद हो तो 'असूयाप्रतिवचन = निन्दा से प्रत्युत्तर' गम्यमान होने पर कृञ् धातु से 'णमुल्', यदि कृञ् का अप्रयोग सिद्ध हो।

अनु०– सिद्धाप्रयोगः 3.4.27, णमुल् 3.4.26, कृञः 3.4.25

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), असूयाप्रतिवचन।

प्रकृति– यथा–कृ, तथा–कृ (करणे, तना०,उभ०)

प्रयोग– 1. यथा–कृ + णमुल् = **यथाकारम्।**

2. तथा–कृ + णमुल् = **तथाकारम्।** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

प्रयोग– किसी ने किसी से पूछा कि तुम कैसे खाते हो? तो उसने असूया से उत्तर दिया– **यथाकारम्** अहं भोक्ष्ये, **तथाकारम्** अहं, किं तवानेन 'मैं जैसे खाऊँ वैसे खाऊँ उससे तुमको क्या?'

विशेष– उपर्युक्त प्रयोग में 'यथा भोक्ष्ये' का जो अर्थ है, 'यथाकारं भोक्ष्ये' का भी वही अर्थ है। अतः कृञ् का अप्रयोग सिद्ध है।

7. विधि– कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये 3.4.29

साकल्य = सम्पूर्णताविशिष्ट कर्म उपपद हो तो दृश् तथा विद् धातुओं से 'णमुल्'।

अनु॰– णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– साकल्यविशिष्ट कर्म उपपद से युक्त दृश् (दृशिर् प्रेक्षणे, भ्वा॰, पर॰), विद् (विद ज्ञाने, अदादि॰, पर॰)।

प्रयोग– 1. कन्या–दृश् + णमुल् = **कन्यादर्शम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. ब्राह्मण–विद् + णमुल् = **ब्राह्मणवेदम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)

प्रयोग– **कन्यादर्शं** वरयति 'जिन-जिन (सब) कन्याओं को देखता है, उन्हें वरण कर लेता है'

ब्राह्मणवेदं भोजयति 'जिन-जिन (सब) ब्राह्मणों को देखता है, उन्हें खिलाता है।

विशेष– साकल्य अर्थ के अभाव में 'ब्राह्मणं दृष्ट्वा भोजयति।'

8. विशेष– यावति विन्दजीवोः 3.4.30

यावत् शब्द उपपद हो तो विद् (लाभे) और जीव् धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 1. यावत् – विद् (विद्लृ, तुदा॰, पर॰),

2. यावत् – जीव् (प्राणधारणे, भ्वा॰, पर॰)।

प्रयोग– 1. यावत् – विद् + णमुल् = यावद्वेदम् (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)। **यावद्वेदं** भोजयति 'जितना पाता है उतना खिलाता है।'

2. यावत् – जीव् + णमुल् = यावज्जीवम्। **यावज्जीवम्** अधीते विप्रः 'मरणपर्यन्त विप्र पढ़ता है।'

9. विधि– चर्मोदरयोः पुरे 3.4.31

चर्म तथा उदर कर्म उपपद हो तो ण्यन्त 'पूरि' धातु से णमुल्।

अनु॰– कर्मणि 3.4.29, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– चर्म तथा उदर कर्म उपपद युक्त पूर् (पूरी आप्यायने, चुरा॰,पर॰)

प्रयोग– 1. चर्मन् – पूर् + णिच् (स्वार्थे) + णमुल् = **चर्मपूरम्** (णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप, न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से न लोप)।

प्रयोग– **चर्मपूरं** स्तृणाति 'सब चमड़े को ढाँपता है।'

2. उदर – पूर् + णिच् + णमुल् = **उदरपूरम्** णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप।

प्रयोग– **उदरपूरं** भुङ्क्ते 'पेट भरकर खाता है'।

10. विधि– वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् 3.4.32

वर्षा का प्रमाण (कितनी वर्षा हुई) सिद्ध हो तो कर्म उपपद होने पर ण्यन्त 'पूरि' धातु से 'णमुल्', तथा इस धातु के ऊकार का विकल्प से लोप।

अनु॰– पूरेः 3.4.31, कर्मणि 3.4.29, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), वर्षा का प्रमाण गम्य हो।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त पूर् (पूरी आप्यायने, चुरा॰,पर॰).

प्रयोग– 1. गोष्पद – पूर् + णिच् (स्वार्थे) + णमुल् = **गोष्पदप्रम्** (णेरनिटि 6.4.51 णिच् का लोप, प्रस्तुत सूत्र से धातु के ऊकार का लोप, विकल्प से) ऊकार के लोप के अभाव में, **गोष्पदपूरम्।**

प्रयोग– गोष्पदप्रं वृष्टो देवः अथवा, गोष्पदपूरं वृष्टो देवः 'भूमि में गाय के खुर के द्वारा हुए गड्ढे के भरने जितनी वर्षा हुई।'

11. विधि– चेले क्नोपेः 3.4.33

चेलवाची कर्म उपपद हो तो वर्षा का प्रमाण गम्यमान होने पर ण्यन्त 'क्नुप्' धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– वर्षप्रमाणे 3.4.32, कर्मणि 3.4.29, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), वर्षा का प्रमाण गम्य हो।

प्रकृति– क्नोपि (क्नूयी शब्दे उन्दे च, भ्वा॰, आत्म॰ से णिच्) ही सूत्र में निर्दिष्ट है, अतः क्नोपि– इस ण्यन्त धातु से णमुल्।

प्रयोग– चेल – क्नोपि + णमुल् = **चेलक्नोपम्** (णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप)।

प्रयोग– **चेलक्नोपं** वृष्टो देवः 'कपड़ा गीला हो गया, इतनी वर्षा हुई'। इसी प्रकार, वस्त्रक्नोपम्, वसनक्नोपम्।

12. विधि– निमूलसमूलयोः कषः 3.4.34

निमूल तथा समूल कर्म उपपद हो तो कष् धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– कर्मणि 3.4.29, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– निमूल (कर्म) – कष्, समूल (कर्म) – कष् (हिंसायाम्, भ्वा॰, पर॰)

प्रयोग– 1. निमूल – कष् + णमुल् = **निमूलकाषम्**,

2. समूल – कष् + णमुल् = **समूलकाषम्**

(अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

प्रयोग– निमूलकाषं कषति 'जड़ को छोड़कर काटता है।'

समूलकाषं कषति 'जड़ समेत काटता है।'

13. विधि– शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः 3.4.35

शुष्क, चूर्ण तथा रूक्ष कर्म उपपद हो तो 'पिष्' धातु से णमुल्।

अनु॰– कर्मणि 3.4.29, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– शुष्क, चूर्ण अथवा रूक्ष कर्म उपपद युक्त पिष् (संचूर्णने, रुधादि, पर॰)

प्रयोग– 1. शुष्क – पिष् + णमुल् = **शुष्कपेषम्** (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)।
'शुष्कपेषं पिनष्टि'– सूखे को पीसता है।
2. चूर्ण – पिष् + णमुल् = **चूर्णपेषम्** 'चूर्णपेषं पिनष्टि'– चूर्ण को पीसता है।
3. रूक्ष – पिष् + णमुल् = **रूक्षपेषम्**
'रूक्षपेषं पिनष्टि'– रुखे को पीसता है।

14. विधि– समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः 3.4.36
समूल, अकृत तथा जीव कर्म उपपद हों तो क्रमशः हन्, कृ एवं ग्रह् धातु से 'णमुल्'।
अनु॰– कर्मणि 3.4.29, णमुल् 3.3.26
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– 1. समूल (कर्म) – हन् (हिंसागत्योः, अदा॰,पर॰),
2. अकृत (कर्म) – कृ (करणे, तना॰ उभ॰),
3. जीव (कर्म) – ग्रह् (उपादाने, क्र्या॰, उभ॰)।
प्रयोग– 1. समूल – हन् + णमुल् = **समूलघातम्** (हो हन्तेः॰ 7.3.54 से हकार को कुत्व से घकार, हनस्तो॰ 7.3.32 से धातु के नकार को तकार, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
प्रयोग– समूलघातं हन्ति 'मूल समेत मारता है'।
2. अकृत – कृ + णमुल् = **अकृतकारम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।
प्रयोग– अकृतकारं करोति 'न किये को करता है'।
3. जीव् – ग्रह् + णमुल् = **जीवग्राहम्** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
प्रयोग– जीवग्राहं गृह्णाति 'जीव को ग्रहण करता है'।

15. विधि– करणे हनः 3.4.37
करण कारक उपपद हो तो हन् धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– णमुल् (3.4.26)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– करण कारक उपपद से युक्त हन् (हिंसागत्योः, अदा॰,पर॰)।
प्रयोग– पाणिना उपहन्ति = पाणि – उप – हन् + णमुल् = **पाण्युपघातम्** (हो हन्ते॰ 7.3.54 से हकार को घकार, हनस्तो॰ 7.3.32 से धातु के नकार को तकार, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।
प्रयोग– पाण्युपघातं वेदिं हन्ति 'हाथ से वेदी को कूटता है'। इसीप्रकार,
पादोपघातं वेदिं हन्ति 'पैर से वेदि को कूटता है'।
विशेष– पूर्वविप्रतिषेधेन हन्तेर्हिंसार्थस्यापि प्रत्ययोऽनेनैवेष्यते (वा॰ 3.4.37)
पूर्वविप्रतिषेध के आधार पर हिंसार्थक 'हन्' धातु से भी 'णमुल्' का विधान इसी सूत्र से।
प्रयोग– असिना हन्ति = **असिघातं** हन्ति 'तलवार से मारता है।'
शरेण हन्ति = **शरघातं** हन्ति 'तीर से मारता है'।
यहाँ हिंसार्थक हन् धातु से विप्रतिषेधे परं कार्यम् 1.4.2 के अनुसार पर सूत्र हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् 3.4.48 से 'णमुल्' प्राप्त है। इस भाष्य-वार्तिक के अनुसार विप्रतिषेध नियम से यहाँ वर्तमान सूत्र करणे हनः 3.4.37 से ही 'णमुल्' न कि हिंसार्थानाम्॰ इत्यादि सूत्र से।

16. विधि– स्नेहने पिषः 3.4.38
स्नेहनवाची करण उपपद हो तो पिष् धातु से 'णमुल्'।
अनु॰– करणे 3.4.37, णमुल् 3.4.26
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– स्नेहनवाचक करण उपपद से युक्त पिष् (संचूर्णने, रुधा॰, पर॰) यथा– उदक – पिष्।
प्रयोग– उदकेन पिनष्टि = उदक – पिष् + णमुल् = **उदपेषम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

प्रयोग– उदपेषं पिनष्टि 'जल से पीसता है'।
तैलपेषं पिनष्टि 'तेल से पीसता है'।

17. विधि– हस्ते वर्तिग्रहोः 3.4.39
हस्तवाची करण उपपद हो तो वर्ति (णिजन्त वृत्) एवं ग्रह् धातुओं से 'णमुल्'।
अनु॰– करणे (3.4.37), णमुल् (3.4.26)
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– हस्तवाचक करण उपपद से युक्त वर्ति (वृतु वर्तने, भ्वा॰, आत्म॰ से णिच्) तथा ग्रह् (उपादाने, क्र्या॰,पर॰)।
प्रयोग– 1. हस्तेन वर्तयति = हस्त – वृत् + णिच् + णमुल् = **हस्तवर्त्तम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप, अचो रहाभ्यां द्वे 8.4.46 से तकार का वैकल्पिक द्वित्व)।
प्रयोग– हस्तवर्तं करवर्तं वर्तयति 'हाथ से करता है'।
2. हस्तेन गृह्णाति = हस्त – ग्रह् + णमुल् = **हस्तग्राहम्**। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि।
प्रयोग– हस्तग्राहं गृह्णाति 'हाथ से ग्रहण करता है'।
करग्राहं गृह्णाति 'हाथ से ग्रहण करता है'।

18. विधि– स्वे पुषः 3.4.40
स्ववाची करण उपपद रहते पुष् धातु से 'णमुल्'।
अनु॰– करणे 3.4.37, णमुल् 3.4.26
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– स्ववाची करण उपपद से युक्त पुष् (पुष्टौ, क्र्या॰,पर॰)।
'स्व' का अर्थ अपना, आत्मीय, ज्ञाति तथा धन है।
'आत्मात्मीयज्ञातिधनवचनः स्वशब्दः' (का॰ 3.4.40)।
प्रयोग– स्वेन पुष्णाति = स्व + पुष् + णमुल् = **स्वपोषम्** (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)

प्रयोग– स्वपोषं पुष्णाति 'अपने द्वारा पुष्ट करता है'। आत्मपोषं पुष्णाति, गोपोषं पुष्णाति, धनपोषं पुष्णाति, रैपोषं पुष्णाति।

19. विधि– अधिकरणे बन्धः 3.4.41

अधिकरणवाची शब्द उपपद हों तो 'बन्ध' धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– णमुल् (3.4.26)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– अधिकरणवाची उपपद से युक्त बन्ध् (बन्धने, क्र्या॰,पर॰)।

प्रयोग– चक्रबन्धे बध्नाति = चक्र-बन्ध् + णमुल् = **चक्रबन्धम्।**

प्रयोग– चक्रबन्धं बध्नाति 'चक्र में बाँधता है'। इसीप्रकार, कूटबन्धं बध्नाति 'लोहे के मुद्गर में बाँधता है'। मुष्टिबन्धं बध्नाति 'मुट्ठी में बाँधता है'। चोरकबन्धं बध्नाति 'चोरक बन्धविशेष में बाँधता है'।

20. विधि– संज्ञायाम् 3.4.42

संज्ञाविषय में बन्ध् धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– बन्धः 3.4.41, णमुल् 3.4.26। अधिकरणे (3.4.41) का अनु॰ नहीं, अतः कोई भी कारक उपपद हो तो यह णमुल् हो जाएगा।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कारक सामान्य उपपद से युक्त बन्ध् (बन्धने, क्र्या॰,पर॰)।

प्रयोग– क्रौञ्चं बध्नाति = क्रौञ्च – बन्ध् + णमुल् = **क्रौञ्चबन्धम्।**

प्रयोग– **क्रौञ्चबन्धं** बध्नाति 'क्रौञ्चबन्ध नामक बाँध विशेष को बाँधता है'।

इसी प्रकार मयूरिकाबन्धं बध्नाति, अट्टालिकाबन्धं बध्नाति।

21. विधि– कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः 3.4.43

कर्तृवाची जीव तथा पुरुष शब्द उपपद हों तो क्रमशः नश् तथा वह् धातुओं से 'णमुल्'।

अनु॰– णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्तृकारक जीव – नश् (णश् अदर्शने, दिवा॰,पर॰), कर्तृकारक पुरुष – वह् (प्रापणे, भ्वा॰, पर॰)

प्रयोग– 1. जीवः नश्यति = जीव – नश् + णमुल् = **जीवनाशम्।**
(अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

2. पुरुषः वहति = पुरुष – वह् + णमुल् = **पुरुषवाहम्**
(अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

प्रयोग– पुरुषवाहं वहति 'पुरुष वहन करता है'।

22. विधि– ऊर्ध्वे शुषिपूरोः 3.4.44
कर्तृवाची ऊर्ध्व शब्द उपपद हो तो शुष् एवं पूर् धातुओं से 'णमुल्'।

अनु॰– कर्त्रोः 3.4.43, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्तृकारक ऊर्ध्व – शुष् (शोषणे, दिवा॰,पर॰), कर्तृकारक ऊर्ध्व – पूर् (आप्यायने, दिवा॰,पर॰)।

प्रयोग– 1. ऊर्ध्व – शुष् + णमुल् = **ऊर्ध्वशोषम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)

प्रयोग– ऊर्ध्वशोषं शुष्यति 'ऊपर सूखता है'।

2. ऊर्ध्व + पूर् + णमुल् = **ऊर्ध्वपूरम्।**

प्रयोग–ऊर्ध्वपूरं पूर्यते 'ऊपर वर्षा के जल आदि से पूरा होता है'।

23. विधि– उपमाने कर्मणि च 3.4.45
उपमानवाची कर्म उपपद रहते (चकार से) और कर्ता उपपद रहते भी धातुसामान्य से 'णमुल्'।

अनु॰– कर्त्रोः 3.4.43, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– उपमानवाची कर्म उपपद से युक्त धातु सामान्य, उपमानवाची कर्ता उपपद से युक्त धातु सामान्य।

प्रयोग– 1. कर्म में– मातरम् इव धयति = मातृ – धे (पाने, भ्वा॰

पर०) + णमुल् = **मातृधायम्** (आदेच उपदेशे० 6.1.45 से धातु के एकार को आकार, आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से युक्–आगम)।

प्रयोग– मातृधायं धयति 'जैसे माता का दूध पीता है वैसे दूध पीता है'।

इसीप्रकार, गुरुम् इव सेवते = गुरु – सेव् + णमुल् = **गुरुसेवम्**।

प्रयोग– गुरुसेवं सेवते 'जैसे गुरु की सेवा करता है वैसे सेवा करता है'।

2. कर्ता में– बाल इव रोदिति = बाल – रुद् (अश्रुविमोचने, अदा०,पर०) + णमुल् = **बालरोदम्** (पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधागुण)

प्रयोग– बालरोदं रोदिति 'जैसे बालक रोता है वैसे रोता है।'

इसीप्रकार,

सिंहगर्जं गर्जति 'जैसे सिंह गरजता है वैसे गरजता है।'

24. विधि– कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः 3.4.46

(निमूलसमूलयोः कषः 3.4.34 से लेकर इस सूत्र तक) कषादि धातुओं में यथाविधि अनुप्रयोग होता है, अर्थात् जिस धातु से 'णमुल्' का विधान करेंगे उसका ही पश्चात् प्रयोग होगा।

विशेष– यह एक परिभाषा सूत्र है।

प्रयोग– यथा– **निमूलकाषं** कषति (निमूलसमूलयोः कषः 3.4.34 से निमूल + कष् से णमुल्, अतः 'कषति' में 'कष्' धातु का अनुप्रयोग। यथा– **स्वपोषं** पुष्णाति। स्व + पुष् से स्वे पुषः 3.4.40 से णमुल्, अतः पुष् धातु का अनुप्रयोग– पुष्णाति।

25. विधि– उपदंशस्तृतीयायाम् 3.4.47

तृतीयान्त शब्द उपपद हो तो उप + दंश् धातु से 'णमुल्'।

अनु०– णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– तृतीयान्त शब्द + दंश् (दशने, भ्वा॰,पर॰)।

प्रयोग– यथा– मूलकेन उपदशति = मूलकेन – उप + दंश् + णमुल् = **उपदंशम्**। मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते 'मूली को काटकर उसी से अन्नादि खाता है'।

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् 3.3.21 से वैकल्पिक समास होता है– 'मूलकोपदंशं भुङ्क्ते'। समास के अभाव पक्ष में– मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते।

यथा– आर्द्रकेण उपदंशं भुङ्क्ते, आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते 'अदरख को काटकर उसी से अन्न आदि खाता है'।

26. विधि– हिंसार्थानाञ्च समानकर्मकाणाम् 3.4.48

अनुप्रयुक्त धातु के साथ समान कर्मवाली हिंसार्थक धातुओं से भी तृतीयान्त उपपद रहते 'णमुल्'।

विशेष– अनुप्रयोग की हुई धातु का तथा जिससे णमुल् हो रहा हो उन धातुओं का समान कर्म होना चाहिए।

अनु॰– तृतीयायाम् 3.4.47, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– तृतीयान्त उपपद से युक्त अनुप्रयुक्त समानकर्मक हिंसार्थक धातु, यथा– दण्डेन उप + हन् (कालयति गाः)।

प्रयोग– दण्डेन उपहन्ति (गाः कालयति) = दण्ड – उप + हन् + णमुल् = **दण्डोपघातम्** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, हो हन्ते॰ 7.3.54 से हकार को कुत्व से घकार, हनस्तः 7.3.32 से नकार को तकार)

प्रयोग– **दण्डोपघातं** गाः कालयति 'डण्डे से मारकर गौ को हाँकता है'। अथवा, **दण्डेन उपघातम्**।

इसीप्रकार, **नखोपघातं** यूकान् गृह्णाति, **नखेन उपघातम्**। 'नाखून से दबाकर जूँ को पकड़ता है'।

इन प्रयोगों में गाः कालयति, यूकान् गृह्णाति में कालयति, गृह्णाति अनुप्रयुक्त धातु हैं। इन दोनों धातुओं और हन् के गाः अथवा यूकान् समान कर्म हैं। अतः इस प्रकार की समानकर्मक

धातुओं के कारण हन् धातु से 'णमुल्'। इनमें तृतीयाप्रभृती॰ 2.2.21 से विकल्प से समास।

27. विधि– सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः 3.4.49

तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद हो तो उप पूर्वक पीड्, रुध् तथा कृष् धातुओं से भी 'णमुल्'।

अनु॰– तृतीयायाम् 3.4.47, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– तृतीयान्त अथवा सप्तम्यन्त से युक्त 1. उप + पीड्, 2. उप + रुध् (आवरणे, रुधा॰, पर॰), 3. उप + कृष् (विलेखने, भ्वा॰,पर॰)।

प्रयोग– 1. पार्श्व – उप – पीड् + णमुल् = **पार्श्वोपपीडम्।** प्रयोग– पार्श्वोपपीडम् उपधानं शेते 'बगल से या बगल में तकिया दबाकर सोता है'। (तृतीयाप्रभृती॰ 2.2.21 से वैकल्पिक समास)। समास के अभाव में, पार्श्वयोः उपपीडं शेते (सप्तमी), पार्श्वाभ्याम् उपपीडं शेते (तृतीया)।

2. पाणि – उप – रुध् + णमुल् = **पाण्युपरोधम्** (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधा गुण)। प्रयोग– पाण्युपरोधं चूर्णं पिनष्टि (समास में), समास के अभाव में– पाणिना उपरोधं चूर्णं पिनष्टि (तृतीया) 'हाथ से दबाकर आटा पीसता है।'

3. पाणि – उप – कृष् + णमुल् = **पाण्युपकर्षम्** (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधा गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व) समास में प्रयोग–पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति। समास के अभाव में– पाणौ उपकर्षं धानाः संगृह्णाति (सप्तमी), पाणिना उपकर्षं धानाः संगृह्णाति (तृतीया) 'हाथ से पकड़कर धानों को इकट्ठा करता है।'

28. विधि– समासत्तौ 3.4.50

समासत्ति– सन्निकटता गम्यमान हो तो तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद से युक्त धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– सप्तम्याम् 3.4.49, तृतीयायाम् 3.4.47, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), सन्निकटता।

प्रकृति– तृतीयान्त उपपद युक्त धातुसामान्य, यथा– केशैः ग्रह् (उपादाने),

सप्तम्यन्त उपपद युक्त धातुसामान्य, यथा– केशेषु ग्रह् (उपादाने)।

प्रयोग– 1. केशैः गृह्णाति = केश – ग्रह् + णमुल् = **केशग्राहम्।**

अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि।

प्रयोग– केशग्राहं युध्यन्ते– केशों को पकड़कर लड़ते हैं। तृतीयाप्रभृती॰ 2.2.21 से वैकल्पिक समास, समास के अभाव पक्ष में– केशैः ग्राहं युध्यन्ते।

2. केशेषु गृह्णाति = केश – ग्रह् + णमुल् = **केशग्राहम्।**

प्रयोग– केशग्राहं युध्यन्ते (समास में), केशेषु ग्राहं युध्यन्ते (समासाभाव में)।

29. विधि– प्रमाणे च 3.4.51

'प्रमाण = आयाम = लम्बाई' गम्यमान हो तो भी सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त उपपद रहते धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– सप्तम्याम् 3.4.49, तृतीयायाम् 3.4.47 णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), प्रमाण।

प्रकृति– 1. सप्तम्यन्त उपपद युक्त धातुसामान्य, यथा– द्व्यङ्गुले उत् – कृष्,

2. तृतीयान्त उपपद युक्त धातुसामान्य, यथा–द्व्यङ्गुलेन उत् – कृष् (विलेखने, भ्वा॰,पर॰)।

प्रयोग– 1. द्व्यङ्गुल – उत् – कृष् + णमुल् = **द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्।**

प्रयोग– द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति 'दो दो अङ्गुल छोड़कर लकड़ी काटता है' (समास में)। द्व्यङ्गुले उत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति (समासाभाव में)।

2. द्व्यङ्गुल – उत् – कृष् + णमुल् = **द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्।**

प्रयोग– द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति (समास में), द्व्यङ्गुलेन उत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति (समासाभाव में)।

उभयत्र पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व। तृतीयाप्रभृती॰ 2.2.21 से वैकल्पिक समास।

30. विधि– अपादाने परीप्सायाम् 3.4.52

परीप्सा अर्थात् शीघ्रता अर्थ में अपादान उपपद से युक्त धातु सामान्य से 'णमुल्'।

अनु॰– णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), परीप्सा।

प्रकृति– अपादान उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा– शय्यायाः उत्-स्था।

प्रयोग– शय्यायाः उत्तिष्ठति = शय्या – उत् – स्था + णमुल् = **शय्योत्थायं** धावति 'खाट से उठते ही भागता है'। उदः स्थास्तम्भोः 8.4.60 से स्था धातु को पूर्वसवर्ण आदेश, आतो युक् 7.3.33 से धातु को युक्-आगम।

31. विधि– द्वितीयायाञ्च 3.4.53

द्वितीयान्त उपपद से युक्त धातु से भी णमुल्, यदि परीप्सा (शीघ्रता) गम्यमान हो।

अनु॰– परीप्सायाम् 3.4.52, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), परीप्सा।

प्रकृति– द्वितीयान्त उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा– यष्टिं ग्रह्।

प्रयोग– यष्टिं गृह्णाति = यष्टि – ग्रह् + णमुल् = **यष्टिग्राहं** युध्यन्ते 'लाठी लेकर लड़ते हैं'। **असिग्राहं** युध्यन्ते 'तलवार लेकर लड़ते हैं।'

32. विधि– स्वाङ्गेऽध्रुवे 3.4.54

अध्रुव स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद हो तो धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– द्वितीयायाम् 3.4.53, णमुल् 3.4.26

अनु॰- कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति- अध्रुव स्वाङ्गवाचक शब्द से युक्त धातुसामान्य, यथा- अक्षि - नि - कण्, भ्रू - वि - क्षिप्।

प्रयोग- अक्षि-नि - कण् (गतौ, भ्वा॰) + णमुल् = **अक्षिनिकाणं** जल्पति 'आँख बन्द कर बड़बड़ाता है।'

भ्रू- वि - क्षिप् (प्रेरणे, तुदादि॰) + णमुल् = **भ्रूविक्षेपं** कथयति 'भौंहें टेढ़ी करके कहता है।'

प्रथम में अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि तथा द्वितीय में पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण।

विशेष- अध्रुव = जिस अङ्ग के नष्ट हो जाने पर भी प्राणी मरता नहीं, वही अध्रुव है। यथा- अक्षि, कर्ण आदि।

33. विधि- परिक्लिश्यमाने च 3.4.55

चारों ओर से क्लेश प्राप्त करता हो ऐसा स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद हो तो धातु से 'णमुल्'।

अनु॰- स्वाङ्गे 3.4.54, द्वितीयायाम् 3.4.53, णमुल् 3.4.26

अर्थ- कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति- क्लेश पानेवाले शब्द से युक्त धातुसामान्य, यथा- उरः-पिष्, शिरः-पिष्

प्रयोग- 1. उरः-पिष् (पिष्लृ संचूर्णने, रुधादि) + णमुल् = **उरःपेषं** युध्यन्ते ('सम्पूर्ण छाती को कष्ट देते हुए लड़ते हैं')।

2. शिरः-पिष् + णमुल् = **शिरःपेषं** युध्यन्ते (सम्पूर्ण शिर को कष्ट देते हुए लड़ते हैं)।

विशेष- पूर्वसूत्र स्वाङ्गेऽध्रुवे 3.4.54 की तुलना में यहाँ ध्रुव स्वाङ्ग का ग्रहण है, अर्थात् जिस अङ्ग के नष्ट होने पर प्राणी मरता है। यथा- उरः, शिरः। 'ध्रुवार्थोऽयमारम्भः' (का.)

34. विधि- विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः 3.4.56

व्याप्य-मान तथा आसेव्यमान अर्थ हों तो द्वितीयान्त उपपद से युक्त विश्, पत्, पद् तथा स्कन्द् धातुओं से णमुल्।

अनु०– द्वितीयायाम् 3.4.53, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), व्याप्ति एवं आसेवा। व्याप्ति = क्रिया से पदार्थों का सामूहिक सम्बन्ध ('विश्यादिभिः क्रियाभिरनवयवेन पदार्थानां सम्बन्धो व्याप्तिः' - काशिका)

आसेवा = क्रिया का बार-बार होना ('क्रियायाः पौनःपुन्यमासेवा'– सि०कौ०)

प्रकृति– द्वितीयान्त उपपद से युक्त विश्, पत्, पद् तथा स्कन्द् धातु, यथा– गेहम् अनु - प्र – विश्।

प्रयोग– 1. गेहम् अनु – प्र – विश् + णमुल् = **गेहानुप्रवेशम्** आस्ते (पुगन्तलघू० 7.3.86 से उपधा गुण)

व्याप्ति में– **गेहानुप्रवेशम्** आस्ते 'घर-घर में प्रवेश करके रहता है'।

आसेवा में– **गेहानुप्रवेशम्** आस्ते 'घर में प्रवेश कर-करके रहता है'।

समास होने से ही व्याप्ति एवं आसेवा का कथन होने से 'नित्यवीप्सयोः' 8.1.4 से द्वित्व नहीं हुआ।

असमास पक्ष में–

व्याप्ति– गेहं गेहम् **अनुप्रवेशम्** आस्ते।

(नित्यवीप्सयोः 8.1.4 से द्रव्य 'गेहम्' का द्वित्व)

आसेवा– गेहम् **अनुप्रवेशम् अनुप्रवेशम्** आस्ते।

नित्यवीप्सयोः 8.1.4 से क्रिया 'अनुप्रवेशम्' का द्वित्व)

2. गेहम् अनु – प्र – पत् + णमुल् = **गेहानुप्रपातम्।** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)

समास में पूर्ववत् द्वित्व का अभाव–

व्याप्ति– **गेहानुप्रपातम्** आस्ते– 'घर-घर में जा जाकर रहता है'।

असमास में पूर्ववत् व्याप्ति में द्रव्य का एवं आसेवा में क्रिया का द्वित्व–

व्याप्ति– गेहं गेहम् **अनुप्रपातम्** आस्ते।

आसेवा– गेहम् **अनुप्रपातम् अनुप्रपातम्** आस्ते।

3. गेहम् अनु – प्र – पद् + णमुल् = गेहानुप्रपादम् (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)। समास में पूर्ववत् द्वित्व का अभाव–

व्याप्ति एवं आसेवा– **गेहानुप्रपादम्** आस्ते 'घर-घर में जाकर रहता है'।

असमास में पूर्ववत् द्वित्व–

व्याप्ति– गेहं गेहम् **अनुप्रपादम्** आस्ते।

आसेवा– गेहम् **अनुप्रपादम् अनुप्रपादम्** आस्ते।

4. गेहम् अव – स्कन्द् (स्कदिर् गतिशोषणयोः, भ्वा॰, पर॰) + णमुल् = **गेहावस्कन्दम्।**

समास में पूर्ववत् द्वित्व का अभाव–

व्याप्ति एवं आसेवा– **गेहावस्कन्दम्** आस्ते 'घर-घर में जाकर रहता है'।

असमास में पूर्ववत् द्वित्व–

व्याप्ति– गेहं गेहम् **अवस्कन्दम्** आस्ते।

आसेवा– गेहम् **अवस्कन्दम् अवस्कन्दम्** आस्ते।

35. अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु 3.4.57

क्रिया के व्यवधान में असु एवं तृष् धातुओं से कालवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद रहते 'णमुल्'।

अनु॰– द्वितीयायाम् 3.4.53, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), क्रियान्तर।

प्रकृति– कालवाची द्वितीयान्त उपपद से युक्त– असु क्षेपणे, दिवा॰ एवं तृष् (ञितृषा) पिपासायाम्, दिवा॰ धातु। यथा द्व्यहम्–अति – अस्।

प्रयोग– 1. द्व्यहम् – अति – अस् + णमुल् = द्व्यहम् **अत्यासम्** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

समास में–

द्व्यहात्यासं गाः पाययति 'दो दिन छोड़कर गायों को जल पिलाता है।'

असमास में–

द्व्यहम् **अत्यासं** गाः पाययति।

2. द्व्यहम् – तृष् + णमुल् = द्व्यहं **तर्षम्।** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

समास में–

द्व्यहतर्षं गाः पाययति (दो दिन प्यासा रखकर गउओं को पानी पिलाता है।'

असमास में–

द्व्यहं तर्षं गाः पाययति।

विशेष– यहाँ 'अत्यसन (अति + अस्) = कालातिक्रमण' और तर्षण क्रियाओं से पिलाने की क्रिया व्यवहित होती है। आज पिलाकर दो दिन छोड़कर पुनः पिलाता है– यह अभिप्राय है।

36. विधि– नाम्यादिशिग्रहोः 3.4.58

द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद रहते आङ् – दिशि एवं ग्रह् धातु से 'णमुल्'।

अनु॰– द्वितीयायाम् 3.4.53, णमुल् 3.4.26

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– द्वितीयान्त 'नाम'उपपद से युक्त आङ् – दिश् एवं ग्रह्।

प्रयोग– 1. नाम– आ – दिश् + णमुल् = **नामादेशम्** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण)। नामादेशम् आचष्टे 'नाम लेकर कहता है।'

2. नाम– ग्रह् + णमुल् = **नामग्राहम्** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)। नामग्राहम् आचष्टे 'नाम लेकर कहता है।'

37. विधि– अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ 3.4.59 'अयथाभिप्रेताख्यान = इष्ट का कथन जैसा होना चाहिए वैसा न होना' गम्यमान हो तो अव्यय शब्द उपपद रहते कृञ् धातु से क्त्वा एवं 'णमुल्'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), अयथाभिप्रेताख्यान (अच्छी बात जोर से करनी चाहिए एवं निन्दनीय बात धीरे से कही जानी चाहिए। इसे 'यथाभिप्रेताख्यान' कहते हैं। यदि इसके विपरीत हर्ष में जोर से उल्लसित होकर न कहें तथा निन्दित बात को जोर से हर्ष से बोले तो यह 'अयथाप्रेताख्यान' है)।

प्रकृति– अव्यय (नीचैः उच्चैः जैसा) उपपद से युक्त कृञ् करणे, तनादि, उ०।

प्रयोग– 1. नीचैः – कृ + णमुल् = **नीचैःकारम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. उच्चैः – कृ + णमुल् = **उच्चैःकारम्।**

उभयत्र 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्' 2.2.21 से विकल्प से समास होता है।

वाक्य प्रयोग– ब्राह्मण! पुत्रस्ते जातः 'ब्राह्मण! तुम्हे पुत्र हुआ है।

वृषल! नीचैःकारम् आचक्षे 'रे मूर्ख! धीरे से क्यों बोलते हो' (प्रिय बात जोर से बोलनी चाहिए)।

ब्राह्मण! तव पुत्रेण वधः कृतः 'तुम्हारे पुत्र ने वध कर दिया'।
वृषल! उच्चैःकारम् आचक्षे 'रे मूर्ख! जोर से क्यों बोलते हो।' (निन्दित बात धीरे से कहनी चाहिए)।

क्त्वा के साथ– नीचेः कृत्वा (असमास में), नीचैः कृत्य (समास करने पर)

उच्चैः कृत्वा (असमास में), उच्चैः कृत्य (समास करने पर)

38. विधि– तिर्यच्यपवर्गे 3.4.60

तिर्यक् शब्द उपपद रहते अपवर्ग गम्यमान होने पर कृञ् से क्त्वा एवं 'णमुल्'। अपवर्ग = समाप्ति।

अनु॰– कृञः, क्त्वाणमुलौ (3.4.59)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), अपवर्ग अर्थात् समाप्ति।

प्रकृति– तिर्यक् उपपद से युक्त कृञ् करणे, तनादि, उ॰।

प्रयोग– तिर्यक् – कृ + णमुल् = **तिर्यक्कारम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् 2.2.21 से विकल्प से समास होता है।

वाक्य प्रयोग–तिर्यक्कारं गतः। 'सारा कार्य समाप्त करके चला गया।'

क्त्वा के साथ– तिर्यक्कृत्वा (असमास में), तिर्यक्कृत्य (समास करने पर)।

39. विधि– स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः 3.4.61

तस् (तः) प्रत्ययान्त कोई स्वाङ्गवाचक शब्द यदि उपपद हो तो कृ और भू धातु से क्त्वा एवं णमुल्। यहाँ कृ से 'क्त्वा' और भू से 'णमुल्'– ऐसा यथासंख्य विधान नहीं है। अतः उभय धातुओं से उभय प्रत्यय आते हैं। ('यथासंख्यमत्र नेष्यते, अस्वरितत्वात्'– काशिका, 3.4.61)

अनु॰– क्त्वाणमुलौ (3.4.59)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– मुख, पाणि आदि स्वाङ्गवाचक शब्द उपपद तस् प्रत्ययान्त (अपादाने चाहीयरुहोः 5.4.45 सूत्र से तसिल् (तस्-तः) प्रत्यय से युक्त) हो तो कृ करणे, तनादि, उभ॰, एवं भू सत्तायाम्, भ्वादि, पर॰, धातु।

प्रयोग– 1. मुखतः – कृ + णमुल् = **मुखतःकारम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. पाणितः – कृ + णमुल् = **पाणितःकारम्** (रूपसिद्धि पूर्ववत्)।
3. मुखतः – भू + णमुल् = **मुखतोभावम्।** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आव्-आदेश, हशि च 6.1.114 से उत्व, गुण एकादेश।
4. पाणितः – भू + णमुल् = **पाणितोभावम्।** (रूपसिद्धि पूर्ववत्)।

इन चारों स्थलों में तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् 2.2.21 से विकल्प से समास होता है।

वाक्यप्रयोग– 1. मुखतःकारं गतः 'सामने करके चला गया'।
2. पाणितःकारं गतः 'हाथ से करके चला गया'।
3. मुखतोभावं गतः 'सामने होकर चला गया'।
4. पाणितोभावं गतः 'हाथ से होकर चला गया'।

क्त्वा के साथ–

मुखतः कृत्वा (असमास), मुखतःकृत्य (समास होने पर)
पाणितः कृत्वा (असमास), पाणितःकृत्य (समास होने पर)
मुखतो भूत्वा (असमास), मुखतोभूय (समास होने पर)
पाणितो भूत्वा (असमास), पाणितोभूय (समास होने पर)

विशेष– 1. सूत्र में 'स्वाङ्गे' का कथन होने से स्वाङ्गवाचक शब्द के अभाव में ये प्रत्यय नहीं होते, जैसे सर्वतः कृत्वा गतः।
2. सूत्र में 'तस्प्रत्यये' का कथन होने से तस्प्रत्यय के अभाव में स्वाङ्गवाचक शब्दों का प्रयोग होने पर भी ये प्रत्यय नहीं होते, जैसे– मुखीकृत्य गतः, मुखीभूय गतः।
3. सूत्र में 'तस्प्रत्यय' में 'प्रत्यये' का कथन होने से 'तस्' प्रत्यय के अभाव में 'तः' के रहने पर भी ये प्रत्यय नहीं होते, जैसे– मुखे तस्यति = मुखतः, मुखतः कृत्वा गतः।

40. विधि– नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे 3.4.62

'च्वि' (अभूततद्भाव) के अर्थ में विद्यमान 'ना' अथवा 'धा'

अर्थक प्रत्ययों से युक्त शब्द यदि उपपद हो तो 'कृञ्' तथा 'भू' धातुओं से क्त्वा एवं णमुल्।

'च्वि' का अर्थ अभूततद्भाव है, अर्थात् जो नहीं था वह हो गया। 'ना'– विनञ्भ्यां नानाञौ न सह– 5.2.27 से पृथग्भावार्थक वि तथा नञ् शब्दों से स्वार्थ में 'ना' प्रत्यय होता है– विना, नाना। 'धा'– संख्याया विधार्थे धा 5.3.42 से प्रकार अर्थ में वर्तमान संख्यावाचक शब्द से 'धा' प्रत्यय होता है– एकधा, द्विधा, त्रिधा इत्यादि।

'धमुञ्'– द्वित्र्योश्च धमुञ् 5.3.45 से द्वि एवं त्रि से 'धा' का विकल्प से धमुञ् आदेश– द्विधा = द्वैधम्, त्रिधा = त्रैधम्।

अनु॰– कृभ्वोः (3.4.61), क्त्वाणमुलौ (3.4.59)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– अभूततद्भाव अर्थ में वर्तमान 'ना' अथवा 'धा' अर्थक प्रत्ययों से युक्त शब्द उपपद में और कृ करणे, तनादि, उभ॰ तथा भू सत्तायाम्, भ्वादि, पर॰।

प्रयोग– **'ना' प्रत्ययान्त–**

1. अनाना नाना कृत्वा गतः = नाना – कृ + णमुल् = **नानाकारं** गतः 'जो अनेक प्रकार नहीं उसे अनेक प्रकार का बनाकर चला गया'। अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।
2. अविना विना कृत्वा गतः = विना – कृ + णमुल् = **विनाकारं गतः** 'जो छोड़ने योग्य नहीं उसे छोड़कर चला गया'। (रूपसिद्धि पूर्ववत्)।
3. अनाना नाना भूत्वा गतः = नाना – भू + णमुल् = **नानाभावं** गतः 'जो भिन्न प्रकार का नहीं वह भिन्न प्रकार का होकर चला गया'।
   (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आव्- आदेश)।
4. अविना विना भूत्वा गतः = विना – भू + णमुल् = **विनाभावं** गतः 'जो अलग नहीं वह अलग होकर चला

गया'। (रूपसिद्धि पूर्ववत्)

'धा' प्रत्ययान्त– (1) अद्विधा द्विधा कृत्वा गतः = द्विधा – कृ + णमुल् = **द्विधाकारं** गतः 'जो दो प्रकार का नहीं था उसे दो प्रकार का बनाकर चला गया'।

(अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. अद्वैधं द्वैधं कृत्वा गतः = द्वैधम् – कृ + णमुल् = **द्वैधंकारं** गतः 'जो दो प्रकार का नहीं उसे दो प्रकार का बनाकर चला गया' (रूपसिद्धि पूर्ववत्)।

3. अद्विधा द्विधा भूत्वा गतः = द्विधा – भू + णमुल् = **द्विधाभावं** गतः 'जो दो प्रकार का नहीं वह दो प्रकार का होकर चला गया' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।

4. अद्वैधं द्वैधं भूत्वा गतः = द्वेधम् – भू + णमुल् = **द्वैधंभावं** गतः 'जो दो प्रकार का नहीं वह दो प्रकार का होकर चला गया' (रूपसिद्धि पूर्ववत्)।

पक्ष में, क्त्वा प्रत्यय होने से समास एवं असमास में क्रमशः ये रूप होते हैं–

विनाकृत्य गतः, विना कृत्वा गतः

नानाकृत्य गतः, नाना कृत्वा गतः

विनाभूय गतः, विना भूत्वा गतः

नानाभूय गतः, नाना भूत्वा गतः

द्विधाकृत्य गतः, द्विधा कृत्वा गतः

द्वैधंकृत्य गतः, द्वैधं कृत्वा गतः

विशेष– सूत्र में 'प्रत्यय' का कथन होने से 'ना' अर्थ में आगत शब्द के प्रसङ्ग में यह प्रत्ययव्यवस्था नहीं होती, जैसे– हिरुक्कृत्वा, पृथक् कृत्वा, (यहाँ हिरुक् एवं पृथक् शब्द हैं, प्रत्यय नहीं)। सूत्र में 'च्व्यर्थे' का कथन होने से अभूततद्भाव अर्थ (च्वि-अर्थ) के न रहने से 'ना' प्रत्यय रहने पर भी यह प्रत्यय-व्यवस्था नहीं होती, जैसे– नाना कृत्वा काष्ठानि गतः।

41. विधि– तूष्णीमि भुवः 3.4.63
'तूष्णीम्' शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और 'णमुल्'।
अनु॰– क्त्वाणमुलौ (3.4.59)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– 'तूष्णीम्' उपपद से युक्त भू सत्तायाम्, भ्वा॰,पर॰।
प्रयोग– तूष्णीम् – भू + णमुल् = **तूष्णींभावम्** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।
वाक्य में प्रयोग– तूष्णींभावं गतः 'चुप होकर चला गया'।
पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय होने से समास एवं असमास में क्रमशः तूष्णींभूय गतः, तूष्णीं भूत्वा गतः।

42. विधि– अन्वच्यानुलोम्ये 3.4.64
आनुलोम्य अर्थात् अनुकूलता अर्थ हो तो 'अन्वक्' शब्द यदि उपपद रहे तब भू धातु से क्त्वा और 'णमुल्'।
आनुलोम्य = अनुकूलता (आनुलोम्यम् अनुलोमता, अनुकूलत्वं परचित्तानुविधानम्– काशिका)
अनु॰– भुवः (3.4.63), क्त्वाणमुलौ (3.4.59)
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), आनुलोम्य अर्थात् अनुकूलता।
प्रकृति– 'अन्वक्' शब्द उपपद से युक्त भू सत्तायाम्, भ्वादि, पर॰।
प्रयोग– अन्वक् – भू + णमुल् = **अन्वग्भावम्** आस्ते 'अनुकूल बनकर रहता है' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।
पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय होने से समास एवं असमास में क्रमशः– अन्वग्भूय आस्ते, अन्वग् भूत्वा आस्ते।

सम्बद्धस्थल–

(1) अपगुरो णमुलि 6.1.53
'अप' उपसर्गपूर्वक 'गुरी' धातु से णमुल् प्रत्यय रहने पर धातु के एच् के स्थान में विकल्प से आकार आदेश होता है।
प्रकृति– अप + गुर् (गुरी उद्यमने, तुदा॰ आत्म॰)
प्रयोग– अप – गुर् + णमुल् = **अपगारम् अपगारम्, अपगोरम् अपगोरम्** (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22 से णमुल्,

पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण से ओकार, अपगुरो णमुलि 6.1.53 से विकल्प से ओकार के स्थान में आकार, आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः, वा॰ 8.1.12 से धातु को द्वित्व)।

2. आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् 6.1.191

णमुल् प्रत्यय परे हो तो धातु का आदि विकल्प से उदात्त हो जाता है।

प्रयोग– **लोलूयम्– लोलूयम्** (धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् 3.1.22 से यङ्, यङ्कार्य, प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से आदि उदात्त, आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः, वा॰ 8.1.22 से धातु का द्वित्व) पक्ष में लिति 6.1.190 से मध्योदात्त।

3. चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् 6.4.93

चिण् तथा णमुल् प्रत्ययों के परे रहते अङ्गसंज्ञक एवं णिच् परक मित् धातुओं की उपधा को विकल्प से दीर्घादेश।

प्रकृति– मित् धातु– (शम उपशमे, दिवा॰ पर॰)।

प्रयोग– शम् + णिच् + णमुल् = **शमं शमम्, शामं शामम्** (हेतुमति च 3.1.26 से णिच्, आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22 से णमुल्, प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से उपधा को दीर्घ आदेश, णेरनिटि 6.4.51 से णि का लोप, आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः वा॰ 8.1.22 से धातु को द्वित्व)

इसप्रकार, तम् (तम काङ्क्षायां खेदे च, दिवा॰, पर॰) से– **तमं तमम्, तामं तामम्**।

4. विभाषा चिण्णमुलोः 7.1.69

चिण् तथा णमुल् प्रत्ययों के परे रहते 'लभ्' धातु को विकल्प से नुम् का आगम।

प्रकृति– लभ प्राप्तौ, भ्वादि, आत्म॰।

प्रयोग– लभ् + णमुल् = **लाभं लाभम्, लम्भं लम्भम्** (आभीक्ष्ण्ये णमुल् च 3.4.22 से णमुल्, प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से नुम् का आगम, नुम् के अभाव पक्ष में अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

णिनि

णिनि (इन्)

णिनि = इन्। चुटू 1.3.7 से ण्, उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से उ की इत्संज्ञा; तस्य लोपः 1.3.9 से दोनों इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. अजादि।
2. णित् (1.3.7)। अतः
   - (i) अचो ञ्णिति 7.2.115 से इगन्त अङ्ग वृद्धि,
   - (ii) अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार को वृद्धि,
   - (iii) हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से हन् को तकार आदेश,
   - (iv) आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से आकारान्त अङ्ग को युक्-आगम,
   - (v) नोदात्तोपदेशस्य 7.3.34 से उदात्तोपदेश एवं मान्त ('चामि' को छोड़कर) को 7.2.116 से प्राप्त उपधावृद्धि नहीं,
   - (vi) जनिवध्योश्च 7.3.25 से जन् तथा वध् को 7.2.116 से प्राप्त उपधावृद्धि नहीं होती है।

1. विधि– नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः 3.1.134
   ग्रह् आदि धातुओं से 'णिनि'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– ग्रह् आदि गणपठित धातु।

प्रयोग– 1. गृह्णाति = ग्रह् + णिनि = ग्रह् + इन् = **ग्राही** 'ग्रहण करने वाला' (ग्राहिन् + सु में सौ च 6.4.13 से उपधा इकार को दीर्घ आदेश, हल्ङ्याब्भ्यो 6.1.66 से सु-लोप, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से न् का लोप)

2. उत्सहते = उत्– सह् (षह मर्षणे, भ्वा॰, आत्म॰) + णिनि = **उत्साही**।

3. उद्दासति = उत्- दास् (दासृ दाने, भ्वा॰, उभ॰) + णिनि = **उद्दासी।**

4. उद्भासते = उद्- भास् (भासृ दीप्तौ, भ्वा॰, आत्म॰) + णिनि = **उद्भासी।**

5. तिष्ठति = स्था (ष्ठा गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰, पर॰) + णिनि = **स्थायी** (आतो युक्चिण्कृतोः 7.3.33 से युक्)।

6. मन्त्र् (सौत्र धातु) + णिनि = **मन्त्री।**

7. सम्- मर्द (सौत्र धातु) + णिनि = **सम्मर्दी।**

विशेष- रक्षश्रुवसवपशां नौ (गणवार्त्तिक) अर्थात् नि + रक्ष्, नि + श्रु, नि + वस्, नि + वप्, नि + शो धातु से णिनि।

8. निरक्षति = नि-रक्ष् (रक्ष पालने भ्वा॰पर॰) + णिनि = **निरक्षी।**

9. निशृणोति = नि-श्रु (श्रु श्रवणे भ्वा॰पर॰) + णिनि = **निश्रावी** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।

10. निवसति = नि-वस् (वस निवासे भ्वा॰पर॰) + णिनि = **निवासी** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

11. निवपति = नि-वप् (वप बीजसन्ताने, भ्वा॰उभ॰) + णिनि = **निवापी** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

12. निश्यति = नि-शो (शो तनूकरणे, दिवा॰पर॰) + णिनि = **निशावी** (एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

विशेष- याचिव्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम् (गणवार्त्तिक) अर्थात् प्रतिकूल अर्थवाली (नञ्पूर्वक याच्, व्याहृ, संव्याहृ, व्रज्, वद् एवं वस्) धातुओं से णिनि।

13. न याचते = न- याच् (याचृ याच्ञायाम् भ्वा॰उभ॰) + णिनि = **अयाची** (नलोपो नञः 6.3.73 से नलोप) 'जो बिना किसी से कुछ माँगे जीता है' (यः सर्वात्मना याचनं

विनैव देहयात्रां करोति'– कृदन्तरूपमाला, भाग-5, पृ. 1078)।

14. न व्याहरति = न-वि-आ-हृ (हृञ् हरणे, भ्वा॰उभ॰) + णिनि = अव्याहारी (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, नलोपो नञः 6.3.73 से नलोप)।

15. न संव्याहरति = न-सम्-वि-आ-हृ (हृञ् हरणे, भ्वा॰उभ॰) + णिनि = **असंव्याहारी** (अव्याहारी के समान रूपसिद्धि)।

16. न व्रजति = न-व्रज् (व्रज गतौ, भ्वा॰पर॰) + णिनि = **अव्राजी** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

17. न वदति = न-वद् (वद व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰पर॰) + णिनि = **अवादी** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

18. न वसति = न-वस् (वस निवासे भ्वा॰ पर॰) + णिनि = **अवासी** (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

विशेष– अचामचित्तकर्तृकाणाम् (गणवार्त्तिक)

अर्थात् अचित्तकर्तृक नञ्पूर्वक अजन्त धातुओं से णिनि। यथा–

19. न करोति = न-कृ (डुकृञ् करणे, तना॰ उभ॰) + णिनि = **अकारी** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, नलोपो नञः 6.3.73 से न लोप)।

20. न हरति = न-हृ (हृञ् हरणे, भ्वा॰उभ॰) + णिनि = **अहारी** (अकारी के समान रूपसिद्धि)।

21. न विनयते = न-वि-नी (णीञ् प्रापणे, भ्वा॰ उभ॰) + णिनि = **अविनायी** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आयादेश)।

22. न विशेते = न-वि-शी (शीङ् स्वप्ने, अदा॰ आत्म॰) + णिनि = **अविशायी** (अविनायी के समान रूपसिद्धि)।

विशेष– 'विशयी विषयी देशे' (गणवार्त्तिक) अर्थात् देश अर्थ में णिनि प्रत्ययान्त 'विशयी' और 'विषयी' का निपातन।

23. विशेते = वि-शी (शीङ् स्वप्ने, अदा॰ आत्म॰) + णिनि = **विशयी, विषयी** (निपातन से वृद्धि निषेध एवं गुण, पक्ष में षत्व) 'देश'।

विशेष– 'अभिभावी भूते' (गणवार्त्तिक) अर्थात् भूत अर्थ में णिनिप्रत्ययान्त 'अभिभावी' शब्द का निपातन।

24. अभिभवति = अभि-भू + णिनि = **अभिभावी** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।

25. अपराध्नोति = अप-राध् (राध संसिद्धौ स्वा॰ पर॰) + णिनि = **अपराधी।**

26. उपरुणद्धि = उप-रुध् (रुधिर् आवरणे, रुधा॰उभ॰) + णिनि = **उपरोधी** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण)।

27. परिभवति =परि-भू + णिनि = **परिभावी, परिभवी** (निपातन से विकल्प से वृद्धि एवं गुण, अवादेश)।

2. विधि– कुमारशीर्षयोर्णिनिः 3.2.51

कुमार तथा शीर्ष के उपपद होने पर 'हन्' धातु से 'णिनि'।

अनु॰– हनः (आशिषि हनः 3.2.49), कर्मणि (कर्मण्यण् 3.2.1)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कुमार और शीर्ष उपपद से युक्त हन् (हन हिंसागत्योः, अदा॰,पर॰)

प्रयोग– 1. कुमारं हन्ति = कुमार-हन् + णिनि = **कुमारघाती** 'बच्चों को मारनेवाला' (हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हकार को कुत्व से घकार, हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से नकार को तकार, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

2. शिरः हन्ति = शिरस्-हन् + णिनि = **शीर्षघाती** 'मस्तक काटनेवाला' (निपातन से शिरस् को 'शीर्ष' आदेश, शेष 'कुमारघाती' के समान)

3. विधि– सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये 3.2.78
अजातिवाचक सुबन्त के उपपद होने पर धातु से ताच्छील्य अर्थ में णिनि प्रत्यय।

अर्थ– ताच्छील्य (तत् शीलं यस्य तत् तच्छीलम्, तच्छीलस्य भावः ताच्छील्यम्)।

प्रकृति– अजातिवाचक सुबन्त उपपद से युक्त धातुसामान्य।

प्रयोग– 1. उष्णं भोक्तुं शीलम् अस्य = उष्ण-भुज् + णिनि = **उष्णभोजी** 'गरम गरम खाने का स्वभाववाला' (पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधा गुण)।

2. शीतं भोक्तुं शीलम् अस्य = शीत-भुज् + णिनि = **शीतभोजी** 'ठण्ढ़ा ठण्ढ़ा खाने का स्वभाववाला'

3. प्रियं वक्तुं शीलम् अस्य = प्रिय-वद् + णिनि = **प्रियवादी** 'जिसका स्वभाव ही प्रिय बोलने का हो' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

विशेष– 1. सूत्र में 'अजातौ' के कथन से 'ब्राह्मणानाम् आमन्त्रयिता' (ब्राह्मणों को बुलानेवाला) में आ-मन्त्र धातु से णिनि प्रत्यय नहीं आया, क्योंकि उपपद 'ब्राह्मण' एक जाति है।

2. सूत्र में 'ताच्छील्ये' के कथन से 'उष्णं भुङ्क्ते कदाचित्', (कभी कभी गरम खा लेता है) में भुज् धातु से णिनि प्रत्यय नहीं आया, क्योंकि यहाँ गरम खाने का स्वभाव (ताच्छील्य) अर्थ नहीं है।

4. विधि– उत्प्रतिभ्यामाङि सर्तेरुपसंख्यानम् (वा॰ 3.2.78) उत् एवं प्रति उपपदपूर्वक आङ्–सृ धातु से भी णिनि प्रत्यय का विधान होना चाहिए।

अर्थ– ताच्छील्य (3.2.78)।

प्रकृति– उत्-आ + सृ (सृ गतौ भ्वा॰पर॰), प्रति-आ+ सृ।

प्रयोग– 1. उदासरणं शीलं यासां ताः = उत्- आ – सृ + णिनि =**उदासारिण्यः** (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण्

रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. प्रत्यासरणं शीलं यासां ताः = प्रति-आ – सृ + णिनि = **प्रत्यासारिण्यः** ('उदासारिण्यः' के समान रूपसिद्धि)।

विशेष– सूत्र में सुपि स्थः (3.2.4) से सुपि का अनु॰ होने पर भी सुपि के कथन से उपसर्ग उपपद होने पर यह 'णिनि' प्रत्यय नहीं आता है। इसीलिए 'उत्प्रतिभ्याम्' वार्त्तिक का पाठ किया गया है और उपसर्ग उपपद युक्त धातु से 'उदासारिण्यः', 'प्रत्यासारिण्यः' जैसे रूप बनते हैं।

भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी में इसका विरोध किया है और कहा है कि यहाँ उपसर्गयुक्त धातु से भी णिनि प्रत्यय अभीष्ट एवं प्रसिद्ध है। अतः यह वार्त्तिक उपेक्ष्य है। उन्होंने कुछ प्रसिद्ध उदाहरण भी दिए हैं–

स बभू**वोपजीविनाम्**। **अनुयायिवर्गः** (कालिदास),
पतत्यधो धाम **विसारि** सर्वतः (शिशुपालवध),
न वञ्चनीयाः प्रभवोऽ**नुजीविभिः** (किरातार्जुनीयम्)।

5. विधि– साधुकारिणि च (वा॰ 3.2.78)

साधुपूर्वक धातु से ताच्छील्य भिन्न अर्थ में णिनि प्रत्यय।

अर्थ– ताच्छील्य से भिन्न अर्थ।

प्रकृति– साधु उपपद से युक्त धातु।

प्रयोग– 1. साधु करोति = साधु-कृ + णिनि = **साधुकारी** 'उत्तम कार्यकर्ता' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)

2. साधु ददाति = साधु-दा + णिनि = **साधुदायी** 'उत्तम दाता' (आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से युक् आगम)।

6. विधि– ब्रह्मणि वदः वा॰ (3.2.78)

ब्रह्मन् उपपद-पूर्वक वद् धातु से णिनि प्रत्यय।

ब्रह्म वदन्ति = ब्रह्म–वद् + णिनि = **ब्रह्मवादिनः** 'ब्रह्म को बोलनेवाले' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

7. विधि– कर्त्तर्युपमाने 3.2.79

उपमानवाची कर्ता उपपद हो तो धातुमात्र से 'णिनि'।

अनु॰– णिनिः (3.2.78)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– उपमानवाची कर्ता उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा– क्रुश् (क्रुश आह्वाने रोदने च, भ्वा॰पर॰), रु शब्दे, अदा॰पर॰।

प्रयोग– 1. उष्ट्र इव क्रोशति = उष्ट्र-क्रुश् + णिनि = **उष्ट्रक्रोशी** 'ऊँट के समान आवाज करनेवाला' (पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधा गुण)।

2. ध्वाङ्क्ष इव रौति = ध्वाङ्क्ष– रु + णिनि = **ध्वाङ्क्षरावी** 'कौवे के समान आवाज करनेवाला' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश)।

विशेष– यह सूत्र ताच्छील्य से भिन्न अर्थ में णिनि प्रत्यय विधान के लिए उद्दिष्ट है। यहाँ जाति का अर्थ भी हो सकता है।

विशेष– सूत्र में 'कर्तरि' के कथन से 'अपूपानीव भक्षयति माषान्' में णिनि नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ उपमान कर्म है।

विशेष– सूत्र में उपमाने के कथन से केवल 'उष्ट्रः क्रोशति' में णिनि नहीं हुआ।

8. विधि– व्रते 3.2.80

'व्रत' अर्थ गम्यमान हो तो सुबन्त उपपद से युक्त धातु से 'णिनि'।

अनु॰– णिनिः (3.2.78), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– व्रत (धातु, उपपद एवं प्रत्यय का सम्मिलित अर्थ), यहाँ ताच्छील्य अर्थ नहीं है।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा-शी (शीङ् स्वप्ने, अदा॰ आत्म॰), भुज् (भुज पालनाभ्यवहारयोः, रुधा॰ उभ॰)।

प्रयोग– 1. स्थण्डिले शयितुं व्रतम् अस्य = स्थण्डिल – शी + णिनि = **स्थण्डिलशायी** 'चबूतरे पर सोने का व्रत जिसका है'

(अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आयादेश)।

2. अश्राद्धं भोक्तुं व्रतम् अस्य = अश्राद्ध-भुज् + णिनि = **अश्राद्धभोजी** 'श्राद्ध को न खाने का व्रत जिसका है' (पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधागुण)।

विशेष– स्थण्डिलशायी– अगर सोना है तो केवल चबूतरे पर ही सोनेवाला। अश्राद्धभोजी– भोजन करना है तो अश्राद्ध ही भोजन करनेवाला (न कि श्राद्ध)। यही 'व्रत' है, जो पूरे धातु, उपपद एवं प्रत्यय का सामुदायिक अर्थ है।

विशेष– 'व्रत' के कथन से 'स्थण्डिले शेते देवदत्तः' (चबूतरे पर देवदत्त सोता है)– इस ताच्छील्य अर्थ में णिनि नहीं होता है।

9. विधि– बहुलमाभीक्ष्ण्ये 3.2.81

आभीक्ष्ण्य अर्थ में धातु से बहुल करके 'णिनि'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67), पौनःपुन्य अर्थ एवं बहुल रूपों में।

अनु॰– णिनिः (3.2.78), सुपि (3.2.4)।

प्रकृति– किसी सुबन्त उपपद से युक्त सामान्य धातु, यथा– पा पाने, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. पौनःपुन्येन कषायं पिबन्ति = कषाय-पा + णिनि = **कषायपायिणः** गान्धाराः 'बार-बार एक विशेष रस को पीनेवाले गान्धार' (आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से धातु से युक्-आगम)।

2. पोनःपुन्येन क्षीरं पिबन्ति = क्षीर-पा + णिनि = **क्षीरपायिणः** उशीनराः 'बार-बार दूध पीनेवाले उशीनर लोग' (रूपसिद्धि 'कषायपायिणः' के समान)।

3. पौनःपुन्येन सौवीरं पिबन्ति = सौवीर-पा + णिनि = **सौवीरपायिणः** बाह्लीकाः 'सौवीर अर्थात् काँजी विशेष को बार-बार पीनेवाले लोग'।

विशेष– 'बहुलम्' के कथन से पौनःपुन्येन कुल्माषं खादन्ति = कुल्माषखादः में 'णिनि' नहीं हुआ।

10. विधि– मनः 3.2.82

सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से 'णिनि'।

अनु॰– णिनिः (3.2.78), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपदयुक्त मन् (मन ज्ञाने, दिवा॰ आत्म॰)।

प्रयोग– 1. दर्शनीयं मन्यते = दर्शनीय-मन् + णिनि = **दर्शनीयमानी** 'देखने योग्य को माननेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

2. शोभनं मन्यते = शोभन-मन् + णिनि = **शोभनमानी** 'शोभन को माननेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

3. सुरूपं मन्यते = सुरूप-मन् + णिनि = **सुरूपमानी** 'सुरूप को माननेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

11. विधि– आत्ममाने खश्च 3.2.83

'अपने आप को मानना' इस अर्थ में वर्तमान मन् धातु से 'णिनि' (एवं खश्)।

अनु॰– मनः (3.2.82), णिनिः (3.2.78), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त मन् (मन ज्ञाने, दिवा॰आत्म॰)।

प्रयोग– 1. आत्मानं दर्शनीयं मन्यते = दर्शनीय-मन् + णिनि = **दर्शनीयमानी** 'अपने आप को दर्शनीय माननेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

2. आत्मानं पण्डितं मन्यते = **पण्डितमानी** 'अपने आप को पण्डित माननेवाला'।

पक्ष में खश्– **दर्शनीयंमन्यः, पण्डितंमन्यः**

(दिवादिभ्यः श्यन् 3.1.69 से श्यन्, अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् 6.3.66 से मुम्)।

12. विधि– करणे यजः 3.2.85

करण कारक उपपद होने पर यज् धातु से भूतकाल में 'णिनि'

अनु॰– भूते (3.2.84), णिनिः (3.2.78)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– करण कारक उपपद से युक्त यज् (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, भ्वा॰ उभ॰)।

प्रयोग– अग्निष्टोमेन इष्टवान् = अग्निष्टोम-यज् + णिनि = **अग्निष्टोमयाजी** 'अग्निष्टोम के द्वारा यज्ञ किया' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा वृद्धि)।

विशेष– 'भूते' के अनु॰ से 'अग्निष्टोमेन यजते' इस वर्तमानकाल से णिनि नहीं होता है।

13. विधि– कर्मणि हनः 3.2.86

कर्म उपपद रहते हन् धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय।

अनु॰– भूते (3.2.84), णिनिः (3.2.78)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– कर्म उपपद से युक्त हन् (हन हिंसागत्योः, अदा॰ पर॰)।

प्रयोग– 1. पितृव्यं हतवान् = पितृव्य-हन् + णिनि = **पितृव्यघाती** 'जिसने चाचा को मारा' (हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु 7.3.54 से हकार को घकार आदेश, हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से नकार को तकार आदेश, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

विशेष– सूत्र में कुत्सित अर्थात् निन्द्य हनन का ग्रहण होना चाहिए। अतः उचित हनन में यह प्रत्यय नहीं होता है; यथा– चोरं हतवान् 'चोर को मारा' (कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम्, इह मा भूत्– चोरं हतवान्–(काशिका)।

14. विधि– आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः 3.3.170

आवश्यक और 'आधमर्ण्य = ऋण' विशिष्ट कर्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय।

अर्थ– आवश्यक और आधमर्ण्य विशिष्ट कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– कृ (डुकृञ् करणे, तना॰ उभ॰), दा (डुदाञ् दाने, अदा॰ उभ॰)।

प्रयोग– 1. अवश्यं करोति = अवश्य-कृ + णिनि = **अवश्यंकारी** 'अवश्य करनेवाला' (मयूरव्यंसकादयश्च 2.1.72 से समास, अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

2. शतं ददाति – शत-दा + णिनि = **शतंदायी** 'सौ रुपये का ऋणी' (आतो युक् 7.3.33 से युक् - आगम)।

विशेष– 'शतं दायी' में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्म 'शत' शब्द से षष्ठी की प्राप्ति थी, परन्तु अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः 2.3.70 से उसका निषेध हुआ, कर्मणि द्वितीया 2.3.2 से द्वितीया विभक्ति हुई।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः 2.3.70

अक एवं इन् (णिनि) प्रत्यय, जो भविष्यत्काल तथा आधमर्ण्य अर्थों में विहित हैं, ऐसे प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

प्रयोग– णिनि– 1. **ग्रामं गमी** 'गाँव जानेवाला'– यहाँ भविष्यत् काल में भविष्यति गम्यादयः 3.3.3 से णिनि प्रत्यय हुआ है। इसमें कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्म 'ग्राम' में प्राप्त षष्ठी का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

2. **शतंदायी**– यहाँ आधमर्ण्य अर्थ में आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः 3.3.170 से णिनि प्रत्यय हुआ है। इसमें कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्म 'शत' में प्राप्त षष्ठी का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

सम्ब॰ (2) भविष्यति गम्यादयः 3.3.3

भविष्यत् काल में गमी आदि शब्द साधु हैं।

प्रयोग– ग्रामं गमी (गम् + णिनि)। यह उणादि प्रत्यय है।

इस प्रयोग में कर्म ग्राम में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से प्राप्त षष्ठी का अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः 2.3.70 से निषेध हुआ एवं कर्मणि द्वितीया 2.3.2 से द्वितीया हुई।

सम्ब॰ (3) णिनि 6.2.79

णिन्– अन्त उत्तरपद रहते पूर्वपद को आदि उदात्त।

प्रयोग– फलं हर्तुं व्रतम् अस्य – फल - हृ + णिनि = **फलहारी** (व्रते 3.2.80 से णिनि) यहाँ पूर्वपद फल का आदि स्वर उदात्त हुआ है।

सम्ब॰ (4) उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव 3.2.80

शब्दार्थवाली प्रकृति है जिन णिन्– प्रत्ययान्त शब्दों की, उनके उत्तरपद रहते उपमानवाची पूर्वपद को आदि उदात्त।

प्रयोग– 1. उष्ट्र इव क्रोशति = उष्ट्र-क्रुश् + णिनि = **उष्ट्रक्रोशी** (कर्तर्युपमाने 3.2.79 से णिनि)। यहाँ उपमानवाची पूर्वपद उष्ट्र को आदि उदात्त।

ण्यत्

ण्यत् = य। चुटू 1.3.7 से ण्, हलन्त्यम् 1.3.3 से त् की इत् संज्ञा; तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. णित् (1.3.7)- अतः
   (i) अचो ञ्णिति 7.2.115 से इगन्त अङ्ग को वृद्धि।
   (ii) अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार को वृद्धि।
   (iii) हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से हन् के नकार को तकार।
   (iv) नोदात्तोपदेशस्य 7.3.34 से उदात्तोपदेश एवं मान्त ('चमि' को छोड़कर) को उपधावृद्धि नहीं।
   (v) जनिवध्योश्च 7.3.35 से जन् तथा वध् को उपधावृद्धि नहीं।
2. तित्– तित् स्वरितम् 6.1.185 से स्वरित।
3. कृत्य– (कृत्याः प्राङ्ण्वुलः 3.1.95 से), अतः
   (i) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 से भाव एवं कर्मवाच्य में ही।
   (ii) प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च 3.3.163 से प्रैष, अतिसर्ग तथा कारणीभूत कालसम्प्राप्ति अर्थों में धातु से कृत्य (और लोट् भी)।
   (iii) लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके 3.3.164 से प्रैष आदि अर्थ के गम्यमान होने पर ऊर्ध्वमौहूर्तिक अर्थ में वर्तमान धातुओं से कृत्य (और लिङ् भी)
   (iv) अर्हे कृत्यतृचश्च 3.3.169 से योग्य कर्ता के वाच्य अथवा गम्यमान होने पर धातु से कृत्य। (तृच् तथा लिङ् भी)
   (v) कृत्याश्च 3.3.171 से आवश्यक तथा आधमर्ण्य विशिष्ट कर्ता के वाच्य होने पर धातु से कृत्य।
   (vi) शकि लिङ् च 3.3.172 से 'शक्' धात्वर्थ उपाधिक धातु से कृत्य (और लिङ् भी)।

1. विधि– पाणौ सृजेर्ण्यद् वक्तव्यः (वा॰ 3.1.110)
'पाणि' उपपद हो तो सृज् धातु से ण्यत् प्रत्यय का विधान होना चाहिए।
अर्थ– कर्म (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70)।
प्रकृति– पाणि-सृज् विसर्गे, तुदा॰पर॰।
प्रयोग– पाणिभ्यां सृज्यते = पाणि- सृज् + ण्यत् = **पाणिसर्ग्या** रज्जुः 'हाथों से छुटनेवाली रस्सी'। (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा-गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से जकार को कुत्व से गकार, स्त्रीत्व में अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्)।

2. विधि– समवपूर्वाच्च (वा॰ 3.1.110)
सम्, अव उपसर्गपूर्वक सृज् धातु से भी ण्यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिए।
अर्थ– कर्म (तयोरेव॰ 3.4.70)।
प्रकृति– सम्- अव + सृज् विसर्गे, तुदा॰ पर॰।
प्रयोग– समवसृज्यते = सम्– अव – सृज् + ण्यत् = **समवसर्ग्या** रज्जुः 'छुटनेवाली रस्सी' (उपधागुण, रपरत्व, कुत्व 'पाणिसर्ग्या' (विधि-1) के समान)।

3. विधि– संपूर्वाद् विभाषा (वा॰ 3.1.112)
समश्च बहुलम् (वा॰ 3.1.112 सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार) असंज्ञा अर्थ में सम् उपसर्ग से युक्त भृञ् से विकल्प में ('बहुल' अर्थ में– सिद्धान्तकौमुदी) 'ण्यत्' का विधान। पक्ष में भृञोऽसंज्ञायाम् 3.1.112 से क्यप्।
अर्थ– कर्म (तयोरेव॰ 3.4.70), असंज्ञा (भृञोऽसंज्ञायाम् 3.1.112)
प्रकृति– संभ्रियन्ते = सम्– भृञ् + ण्यत् = **संभार्याः** संभाराः 'सही ढंग से भरने योग्य भार'। (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

4. विधि– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124

ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से 'ण्यत्'।

अपवाद– ऋकारान्त धातु के प्रसङ्ग में अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का।

अर्थ– भाव और कर्म (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70)

प्रकृति– ऋकारान्त धातु यथा– कृ, धृ। हलन्त धातु यथा– पठ्, पच्।

प्रयोग– ऋकारान्त– कृ + ण्यत् = **कार्यम्** 'करने योग्य'। अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व। धृ + ण्यत् = **धार्यम्** 'धारण करने योग्य'।

हलन्त– पठ् + ण्यत् = **पाठ्यम्** 'पढ़ने योग्य'।

पच् + ण्यत् = **पाक्यम्** 'पकाने योग्य'।

अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, चजोः कु 7.3.52 से कुत्व।

5. विधि– ओरावश्यके 3.1.125

उकारान्त धातुओं से 'आवश्यक' अर्थ में 'ण्यत्'।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124।

अपवाद– अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का।

अर्थ– आवश्यक, कर्म एवं भाव (तयोरेव॰ 3.4.70)।

प्रकृति– उकारान्त धातु, यथा– लूञ् छेदने, क्र्या॰उभ॰। पूञ् पवने, क्र्या॰उभ॰।

प्रयोग– 1. लू + ण्यत् = **लाव्यम्** 'अवश्य तोड़ने योग्य'।

पू + ण्यत् = **पाव्यम्** 'अवश्य पवित्र करने योग्य'।

(अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि–लौ + य, पौ + य, वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 से आवादेश)।

विशेष– आवश्यक अर्थ न होने पर अचो यत् 3.1.97 से यत्– लू + यत् = **लव्यम्**, पू + यत् = **पव्यम्** (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 से अवादेश)।

6. विधि– आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च 3.1.126

आ + सु, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप्, चम् धातुओं से 'ण्यत्'।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124

अपवाद– आ + सु, यु धातुओं से अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का और वप्, रप्, लप्, त्रप् तथा चम् धातुओं से पोरदुपधात् 3.1.98 से प्राप्त यत् का।

अर्थ– कर्म एवं भाव (तयोरेव॰ 3.4.70)।

प्रकृति– 1. आङ् – सु (षुञ्) अभिषवे, स्वादि, उभ॰, 2. यु मिश्रणे अदा॰पर॰, 3. वप् (डुवप्) बीजसन्ताने, भ्वादि, उभ॰, 4. रप् व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰ पर॰, 5. लप् व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰ पर॰, 6. त्रप् (त्रपूष्) लज्जायाम्, भ्वा॰ आत्म॰, 7. चम् (चमु) अदने, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. आ– सु + ण्यत् = **आसाव्यम्** 'छानने योग्य' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 से आव्-आदेश)।

2. यु + ण्यत् = **याव्यम्** 'मिलाने योग्य'। (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 से आवादेश)।

3. वप् + ण्यत् = **वाप्यम्** 'बोने योग्य'।

4. रप् + ण्यत् = **राप्यम्** 'बोलने योग्य' 'बोलना चाहिए'।

5. लप् + ण्यत् = **लाप्यम्** 'बोलना चाहिए'।

6. त्रप् + ण्यत् = **त्राप्यम्** 'शरमाना चाहिए'।

7. आ– चम् + ण्यत् = **आचाम्यम्** 'आचमन करना चाहिए'।

इन उदाहरणों में अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि।

7. विधि– आनाय्योऽनित्ये 3.2.127

'अनित्य' अर्थ में आङ्पूर्वक नी धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय जोड़ने से 'आनाय्य'– शब्द निपातन सिद्ध होता है।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124

अपवाद– अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त 'यत्' का यह अपवाद है।

अर्थ– अनित्य

प्रकृति– आ-नी (णीञ्) प्रापणे, भ्वा॰उभ॰।

प्रयोग– आ–नी + ण्यत् = '**आनाय्यः**' 'अनित्य दक्षिणाग्निविशेष' (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि –आ नै य। निपातन से ऐकार को आय् आदेश)। 'यो गार्हपत्यादानीय दक्षिणाग्निः प्रणीयते, तस्मिन्नानाय्यः'– अमर॰ 2.7.21

विशेष– दक्षिणाग्निविशेष 'गार्हपत्य' अग्नि से लायी जाती है और नित्य प्रज्वलित नहीं होती है, अत एव अनित्य है। अतः इस अनित्य अर्थ में 'आनाय्य' का प्रयोग होता है। यदि अनित्य अर्थ न हो तो– आ-नी + यत् (अचो यत् 3.1.97) = **आनेयः** घटादिः 'लाने योग्य घड़ा आदि'।

8. विधि– प्रणाय्योऽसम्मतौ 3.1.128

असम्मति (अवाच्छनीयता अथवा विरक्ति) अर्थ में प्र-नी धातु से ण्यत् लाकर 'प्रणाय्य' का निपातन।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124

अपवाद– अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का यह अपवाद है।

अर्थ– असम्मति अर्थात् (1) प्रीति का विषय न बनना अर्थात् अवाञ्छनीयता, (2) भोगों से विरक्ति।

प्रकृति– प्र-नी (णीञ्) प्रापणे, भ्वा॰ उभ॰।

प्रयोग– प्र-नी + ण्यत् = **प्रणाय्यः** चोरः। (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि। प्र नै य। निपातन से ऐकार को आय्– आदेश, उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य 8.4.14 से णत्व)।

9. विधि– पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु 3.1.129

मान, हविष्, निवास एवं सामिधेनी अर्थों में क्रमशः पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य एवं धाय्य– इन चार ण्यत्प्रत्ययान्तों का निपातन।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124

अपवाद– अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का।

अर्थ– 'मान' अर्थ में पाय्य, 'हविष्' अर्थ में सान्नाय्य, 'निवास' अर्थ में निकाय्य और 'सामिधेनी' (जिस ऋक्-मन्त्र के द्वारा लकड़ी पकड़ी जाती है) ऋक् अर्थ में धाय्य –इन ण्यत्-प्रत्ययान्तों का निपातन।

प्रकृति– 1. मा माने, अदादि पर॰, 2. सम्- नी (णीञ्) प्रापणे, भ्वा॰उभ॰, 3. नि-चि (चिञ्) चयने, स्वादि, उभ॰, 4. धा (डुधाञ्) धारण-पोषणयोः, जुहो॰, उभय॰।

प्रयोग– 1. मा + ण्यत् = **पाय्यम्** 'इसके द्वारा मापा जाता है'। (निपातन से मकार को पकार, आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से धातु के आकार से परे युक् आगम)। 'यौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानार्थकं त्रयम्'– अमर॰ 2.9.85

2. सम्–नी + ण्यत् = **सान्नाय्यं** हविर्विशेषः 'हवन के लिए अग्नि के निकट जिसे सही ढंग से लिया जाता है'। (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि। सम् – नै य। ऐकार को आय्-आदेश, सम् उपसर्ग के अकार को दीर्घत्व निपातन से)। 'सान्नाय्यं हविः' –अमर॰ 2.7.27

3. नि-चि + ण्यत् = **निकाय्यः** निवासः 'जहाँ धान्य आदि चुने जाते हैं'। (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, निपातन से ऐकार को आय्-आदेश, धातु के चकार को कुत्व)। 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः' –अमर॰ 2.1.5

4. धा + ण्यत् = **धाय्या** ऋक् 'जिस ऋक् मन्त्र के द्वारा लकड़ी पकड़ी जाती है, वह सामिधेनी ऋक्'। (करण में ण्यत् का निपातन, आतो युक्॰ 7.3.33 से धातु के आकार को युक् (य्) आगम)। –ऋक् सामिधेनी धाय्या च या स्यादग्निसमिन्धने' – अमर॰ 2.7.22

विशेष– 1. मान अर्थ न हो तो मा + यत् (अचो यत् 3.1.97) = **मेयम्**।

2. हविष् अर्थ न हो तो सम् – नी + यत् = **संनेयम्।**

3. निवास अर्थ न हो तो नि-चि + यत् = **निचेयम्।**

4. सामिधेनी ऋक् अर्थ न हो तो धा + यत् = **धेयम्।**

10. विधि– क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ 3.1.130

'क्रतु' अर्थ में कुण्डपाय्य एवं संचाय्य– इन दो ण्यत् प्रत्ययान्तों का निपातन।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124

अपवाद– अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का।

अर्थ– क्रतु (यज्ञविशेष), अधिकरण, कर्म।

प्रकृति– 1. कुण्ड - पा पाने, भ्वा॰पर॰

2. सम् - चि (चिञ्) चयने, स्वादि॰ उभ॰।

प्रयोग– 1. कुण्डेन पीयते अस्मिन् = कुण्ड-पा + ण्यत् = **कुण्डपाय्यः** क्रतुः (अधिकरण में निपातन से ण्यत्, आतो युक्॰ 7.3.33 से धातु के अन्त्यावयव में युक्-आगम)

2. सञ्चीयतेऽसौ = सम्-चि + ण्यत् = **संचाय्यः/सञ्चाय्यः** क्रतुः (अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, निपातन से ऐकार को आय्-आदेश)।

11. विधि– अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः 3.1.131

'अग्नि' अर्थ में परिचाय्य, उपचाय्य एवं समूह्य– इन ण्यत् – प्रत्ययान्तों (शब्दों) का निपातन।

अनु॰– ण्यत् 3.1.124

अपवाद– परिचाय्य एवं उपचाय्य में अचो यत् 3.1.97 से प्राप्त यत् का।

अर्थ– अग्निधारण के लिए स्थलविशेष (अधिकरण)।

प्रकृति– 1. परि-चि (चिञ्) चयने, स्वा॰ उभ॰,

2. उप-चि (चिञ्) चयने, स्वा॰उभ॰,

3. सम् - वह् प्रापणे, भ्वा॰, पर॰।

प्रयोग– 1. परिचीयते = परि-चि + ण्यत् = **परिचाय्यः।**

2. उपचीयते = उप-चि + ण्यत् = **उपचाय्यः।**

उभयत्र आयादेश निपातन से।

3. समूह्यते = सम्-वह् + ण्यत् = **समूह्यः**।
धातो की सम्प्रसारण एवं दीर्घ निपातन से।
'समूह्यः परिचाय्योपचाय्यादग्नौ प्रयोगिणाः'

—अमर॰ 2.7.20

12. विधि– भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थापनीयजन्याप्लाव्यापात्या वा 3.4.68
आप्लाव्य एवं आपात्य (ण्यत् प्रत्ययान्त) शब्दों का विकल्प से कर्ता में निपातन किया जाता है।

अनु॰– कर्तरि (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

अपवाद– तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 से भाव में नित्य प्राप्त ण्यत् का यह विकल्प से अपवाद है। अतः भाव एवं कर्ता दोनों अर्थों में ये निपातन होते हैं।

अर्थ– कर्ता (3.4.67), भाव (तयोरेव॰ 3.4.70)।

प्रकृति– आ-प्लु (प्लुङ्) गतौ, भ्वा॰ आत्म॰।
आ-पत् (पत्लृ) गतौ, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. कर्ता– आप्लवतेऽसौ = आ-प्लु + ण्यत् = **आप्लाव्यः**
भाव– आ-प्लु + ण्यत् = **आप्लाव्यम्** अनेन (निपातन से ण्यत्, अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 से आवादेश)

2. कर्ता– आपतति असौ = आ-पत् + ण्यत् = **आपात्यः**
भाव– आ-पत् + ण्यत् = **आपात्यम्** अनेन (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) कृत्यानां कर्तरि वा 2.3.71
कृत्य प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता से विकल्प से षष्ठी होती है, न कि कर्म में। 'कर्तृकर्मणोः कृति' (2.3.65) से कर्ता में नित्य प्राप्त षष्ठी का यहाँ विकल्प में विधान किया गया है।

प्रयोग– भवता कटः कार्यः, भवतः कटः कार्यः।
कृ + ण्यत् = कार्यः (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्) के

प्रयोग में भवत् शब्द से विकल्प से षष्ठी हुई है– भवतः। पक्ष में कर्तृकरणयोस्तृतीया 2.3.18 से तृतीया होती है– भवता।

सम्ब॰ (2) उभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठ्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः (वा॰ 2.3.71)
कृत्य प्रत्यय के प्रयोग में यदि उभय कर्ता एवं कर्म में षष्ठी की प्राप्ति हो तो सबसे षष्ठी का प्रतिषेध करना चाहिए।

प्रयोग– हार्या ग्रामम् अजा देवदत्तेन 'देवदत्त को बकरी गाँव तक ले जाना चाहिए'। इसमें हृ + ण्यत् = हार्या (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्) के प्रयोग में कर्तृकर्मणोः कृतिः 2.3.65 से उभय कर्ता देवदत्त एवं मुख्य कर्म अजा में प्राप्त षष्ठी का निषेध हुआ है।

(3) अस्तेर्भूः 2.4.52
आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते 'अस्' के स्थान पर 'भू' आदेश।

प्रयोग– **अवश्यभाव्यम्** । अवश्य– भू + ण्यत् (ओरावश्यके 3.1.125 से ण्यत्) ण्यत् आर्धधातुक है, अतः 'अस्' के स्थान पर 'भू' का आदेश हुआ है।

सम्ब॰ (4) ब्रुवो वचिः 2.4.53
आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते 'ब्रू' के स्थान पर 'वच्' आदेश होता है।

प्रयोग– ब्रू + ण्यत् = वच् + ण्यत् = **वाच्यम्**, **वाक्यम्** (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्)। ण्यत् आर्धधातुक है, अतः 'ब्रू' के स्थान पर 'वच्' आदेश। चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व– वाक्यम्। शब्दसंज्ञा वाक्य का अर्थ शब्दसंज्ञा न हो तो वचोऽशब्दसंज्ञायाम् 7.3.67 से कुत्व का निषेध– वाच्यम्।

सम्ब॰ (5) ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः 6.1.214
ण्यत् प्रत्ययान्त ईड, वन्द, वृ, शंस तथा दुह् धातुओं का आदि स्वर उदात्त हो जाता है।

प्रयोग– ईड् + ण्यत् = **ईड्यम्**। वन्द् + ण्यत् = **वन्द्यम्**।
वृ + ण्यत् = **वार्यम्**। शंस् + ण्यत् = **शंस्यम्**।

दुह् + ण्यत् = **दोह्या** धेनुः। प्रत्येक में ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्। प्रकृत सूत्र से प्रत्येक का आदि स्वर उदात्त हुआ है।

सम्ब॰ (6) चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52

घित् एवं ण्यत् प्रत्ययों के परे रहते चकार एवं जकार को कवर्गादेश।

प्रयोग– ब्रू = वच् + ण्यत् = वाक्यम्। ब्रूवो वचिः 2.4.53 से वचि-आदेश, ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्।

सम्ब॰ (7) न क्वादेः 7.3.59

कवर्गादि धातु के चकार तथा जकार के स्थान में कवर्गादेश नहीं।

यह चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 का अपवाद है।

प्रयोग– गर्ज् + ण्यत् = **गर्ज्यम्**। ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व की प्राप्ति, प्रकृत सूत्र से कुत्व नहीं।

सम्ब॰ (8) अजिव्रज्योश्च 7.3.60

अजि एवं व्रजि धातुओं के जकार के स्थान में कवर्गादेश नहीं।

यह चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 का अपवाद है।

प्रयोग– परि-व्रज् + ण्यत् = **परिव्राज्यम्**। ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व की प्राप्ति, वर्तमान सूत्र से उसका निषेध।

सम्ब॰ (9) वञ्चेर्गतौ 7.3.63

अङ्गसंज्ञक गत्यर्थक 'वञ्च्' धातु से चकार के स्थान में कुत्व नहीं।

प्रयोग– वञ्च् + ण्यत् = **वञ्च्यम्**। वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः 'गन्तव्य स्थल को बनिया लोग जाते हैं'। वञ्च् गतौ धातु से ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से कुत्व का निषेध।

विशेष– वञ्च् धातु गत्यर्थक न हो तो पूर्व कुत्व होता है– वञ्च् + ण्यत् =

वङ्क्यम् काष्ठम् 'ठेढ़ी लकड़ी' इसमें चजोः कु॰ 7.3.52 से कुत्व हुआ।

सम्ब॰ (10) ण्य आवश्यके 7.3.65

आवश्यकार्थक ण्य प्रत्यय के परे कवर्गादेश नहीं होता।

प्रयोग– अवश्य-पच् + ण्यत् = **अवश्यपाच्यम्**।

ओरावश्यके 3.1.125 से ण्यत्, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से प्राप्त कुत्व, प्रकृत सूत्र से यहाँ कुत्व का निषेध।

सम्ब॰ (11) यजयाचरुचप्रवचर्चश्च 7.3.66

यज्, याच्, रुच्, प्र-वच् एवं ऋच् धातुओं के चकार एवं जकार के स्थान पर भी ण्य प्रत्यय के परे कुत्व नहीं।

प्रयोग– 1. यज् + ण्यत् = **याज्यम्**, 2. याच् + ण्यत् = **याच्यम्**, 3. रुच् + ण्यत् = **रोच्यम्**, 4. प्र-वच् + ण्यत् = **प्रवाच्यम्**, 5. ऋच् + ण्यत् = **अर्च्यम्**। इनमें ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत् प्रत्यय, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से प्राप्त कुत्व का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।

सम्ब॰ (12) ण्यति प्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् (वा॰ 7.3.66)

त्यज् धातु के जकार का ण्यत् प्रत्यय के परे रहते कुत्व निषेध होना चाहिए।

प्रयोग– त्यज् + ण्यत् = **त्याज्यम्**। ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से प्राप्त कुत्व का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।

सम्ब॰ (13) वचोऽशब्दसंज्ञायाम् 7.3.67

शब्दसंज्ञा अर्थ न हो तो 'ण्यत्' के परे रहते 'वच्' धातु के चकार को कुत्व नहीं।

प्रयोग– वच् + ण्यत् = **वाच्यम्**। ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्, चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से कुत्व की प्राप्ति, शब्दसंज्ञा का अर्थ न होने से प्रस्तुत सूत्र से कुत्व का निषेध।

शब्दसंज्ञा अर्थ के रहने पर कुत्व– वच् + ण्यत् = **वाक्यम्**।

सम्ब॰ (14) प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे 7.3.68

शब्दार्थ में प्रयोज्य एवं नियोज्य (ण्यत्–प्रत्ययान्त) का निपातन।

प्रयोग– प्र– युज् + ण्यत् = **प्रयोज्यः**,

नि-युज् + ण्यस् = **नियोज्यः**। उभयत्र ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत्; चजोः कु घिण्ण्यतोः 7.3.52 से प्राप्त कुत्व का निपातन के कारण निषेध।

शक्यार्थ न रहने पर कुत्व– **प्रयोग्यः, नियोग्यः**।

सम्ब॰ (15) भोज्यं भक्ष्ये 7.3.69

भक्ष्य अर्थ हो तो ण्यत्- प्रत्ययान्त 'भोज्य' का निपातन।

प्रयोग– भुज् + ण्यत् = **भोज्यम्**। ण्यत्, कुत्वनिषेध निपातन से (सम्ब॰ 14 की तरह)।

भक्ष्य अर्थ के न रहने पर कुत्व– भोग्यः कम्बलः।

ण्युट्

ण्युट् = अन। चुटू 1.3.7 से ण् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से ट् की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को 'अन' आदेश।

स्वभाव–

1. णित् (1.3.7)।
अतः आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से आकारान्त अङ्ग को युक्–आगम।

2. टित् (1.3.3)। अतः टिड्ढाणञ्。 4.1.15 से स्त्रीत्व में ङीप्।

1. विधि– ण्युट् च 3.1.147
शिल्पी अर्थ में गा (गै) धातु से 'ण्युट्'।
अनु॰– गः (3.1.146), शिल्पिनि (3.1.145)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– गा (गै) शब्दे भ्वा॰ पर॰।
प्रयोग– गायति = गा + ण्युट् = **गायनः** 'गानेवाला'। युवोरनाकौ 3.1.1 से यु को अन-आदेश, आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से धातु को युक्–आगम। 'तथैव तत्पुरुषगायनीकृताः' – नैष॰ 1.103
स्त्रीत्व में गायन + ङीप् = **गायनी** 'गानेवाली'
(टिड्ढाणञ् 4.1.15 से ङीप्, यस्येति च 6.4.148 से गायन शब्द के अन्तिम अकार का लोप)।

2. विधि– हश्च व्रीहिकालयोः 3.1.148
व्रीहि एवं काल अर्थ में 'हा' धातु से 'ण्युट्'।
अनु॰– ण्युट् (3.1.147)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– हा (ओ हाक्) त्यागे, अदा॰ पर॰, हा (ओ हाङ्) गतौ, अदा॰ आत्म॰। सूत्रे 'हा' के ग्रहण से क् एवं ङ् अनुबन्ध युक्त उभय धातु का बोध है।

प्रयोग– 1. जहाति उदकम् = हा + ण्युट् = **हायनः** व्रीहिः 'धान्यविशेष'।

2. जहाति भावान् पदार्थान् वा = हा + ण्युट् = **हायनः** वर्षम्।

3. जिहीते प्राप्नोति वा भावान् = हा + ण्युट् = **हायनः** वर्षम्। सर्वत्र (आतो युक्॰ 7.3.33 से युक् आगम)। प्रथम एवं द्वितीय उदाहरणों में ओ हाक् त्यागे एवं तृतीय उदाहरण में ओ हाङ् गतौ धातु का प्रयोग है।

'अथ हायनाः
वर्षार्चिव्रीहिभेदाश्च' – अमर॰ 3.3.108

ण्वि

ण्वि = ०। चुटू 1.3.7 से ण् की, उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से इकार की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप, अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1.2.41 से व् की अपृक्त-संज्ञा, व् का वेरपृक्तस्य 6.1.67 से लोप। अतः इस प्रत्यय का कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

स्वभाव–

1. णित् (1.3.7)। अतः अत उपधायाः 7.2.116 से धातु की उपधा को वृद्धि। अर्ध–भज् + ण्वि = अर्धभाक्।

1. विधि– भजो ण्विः 3.2.62

सुबन्त उपपद रहते उपसर्गयुक्त अथवा निरुपसर्ग भज् धातु से 'ण्वि'।

अनु॰– उपसर्गेऽपि (3.2.61), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– भज् सेवायाम्, भ्वा॰ उभ॰ (सुबन्त उपपद युक्त, निरुपसर्ग अथवा उपसर्गयुक्त)।

प्रयोग– अर्धं भजते अर्ध-भज् + ण्वि = **अर्धभाक्** 'आधा पानेवाला'। (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, चोः कुः 8.2.30 से जकार को कुत्व से गकार, वाऽवसाने 8.4.56 से गकार को विकल्प से ककार), दोषं भजते = **दोषभाक्** 'दोष करनेवाला' स्नेहं भजते = **स्नेहभाक्** 'स्नेह पानेवाला'। प्रभजते = **प्रभाक्**।

2. विधि– छन्दसि सहः 3.2.63

वैदिक प्रयोग में सुबन्त उपपद रहते सह् धातु से 'ण्वि'।

अनु॰– ण्विः (3.2.62), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त सह् (षह) मर्षणे, भ्वा॰ आ॰।

प्रयोग– यथा– तुरं सहते = तुर - सह् + ण्वि = **तुराषाट्** 'त्वरित अभिभूत करनेवाला' (अन्येषामपि॰ 6.3.135 से तुर के अकार

को दीर्घ, सहेः साडः सः 8.3.56 से स को मूर्धन्यादेश, हो ढः 8.2.31 से हकार को ढकार, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से ढकार को डकार, वाऽवसाने 8.4.55 से डकार को विकल्प से डकार, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)

'उग्रस्तु**राषाड**भिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः' –ऋग्॰वे॰ 3.48.4

3. विधि– वहश्च 3.2.64

वैदिक प्रयोग में सुबन्त उपपद रहते वह् धातु से भी 'ण्वि'।

अनु॰– छन्दसि (3.2.63), ण्विः (3.2.62),सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त वह् प्रापणे, भ्वा॰ उभ॰।

प्रयोग– यथा–1. प्रष्ठं वहति = प्रष्ठ– वह् + ण्वि = **प्रष्ठवाट्**।

2. दित्यं वहति = दित्य– वह् + ण्वि = **दित्यवाट्** (उभयत्र अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, हो ढः 8.2.31 से हकार को ढकार आदेश, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से ढकार को डकार, वाऽवसाने 8.4.55 से डकार को विकल्प से टकार। प्रयोग– दित्यवाट् (यजु॰ 14/10)।

ण्विन्

ण्विन् = 0। चुटू 1.3.7 से ण्, हलन्त्यम् 1.3.3 से न् और उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से इकार की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से सभी इत्संज्ञकों का लोप, अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1.2.41 से वकार की अपृक्त संज्ञा, वेरपृक्तस्य 6.1.67 से वकार का लोप। अतः इस प्रत्यय का कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

स्वभाव–

1. नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।
2. णित् (1.3.7)। अतः अत उपधायाः 7.2.116 से धातु की उपधा को वृद्धि।

1. विधि– मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् 3.2.71
वैदिक प्रयोग में श्वेतवह, उक्थशस् एवं पुरोडाश्-ये ण्विन्-प्रत्ययान्त शब्द निपातनसिद्ध होते हैं।

अनु॰– सुपि (3.2.4)

अर्थ– श्वेतवह एवं पुरोडाश् में कर्म, उक्थशस् में कर्ता।

प्रकृति– 1. कर्ता 'श्वेत' उपपद से युक्त वह् प्रापणे, भ्वा॰ उभ॰।
2. कर्म अथवा करण 'उक्थ' उपपद से युक्त शंस् स्तुतौ, भ्वा॰प॰। 3. 'पुरः' उपपद से युक्त दाशृ दाने, भ्वा॰ उभ॰।

प्रयोग– 1. श्वेताः एनं वहन्ति = श्वेत – वह् + ण्विन् = **श्वेतवाः** इन्द्रः 'श्वेतवहादीनां डस् पदस्येति वक्व्यम्' (वा॰) इस वार्त्तिक के अनुसार 'श्वेतवह् + सु' (प्रथमा विभक्ति एकवचन) के प्रसङ्ग में 'ण्विन्' के स्थान में 'डस्' आदेश, अनुबन्ध लोप– श्वेतवह् अस् सु। टेः 6.4.143 से डित्त्व के सामर्थ्य से भ संज्ञक न होकर भी श्वेतवह् के टि 'अह्' का लोप-श्वेतवस् सु। अत्वसन्तस्य चाधातोः 6.4.14 से उपधादीर्घ– श्वेतवास् - सु। सु के उकार की इत्संज्ञा और लोप। हल्ङ्याब्भ्यो॰ 6.1.66 से सु के सकार का लोप,

सकार का रुत्व एवं विसर्ग– श्वेतवाः।

2. उक्थानि शंसति अथवा उक्थैः शंसति = उक्थशंस् + ण्विन् = **उक्थशाः** यजमानः। निपातन से धातु के नकार का लोप। 'श्वेतवहादीनां डस् पदस्येति वक्व्यम् (वा०) से 'सु' विभक्ति के प्रसङ्ग में ण्विन् के स्थान पर डस् का आदेश– उक्थशस् + डस् + सु। शेष 'श्वेतवाः' के समान।

3. पुरः दाशन्ते एनम् = पुरः दाश् + ण्विन् = **पुरोडाः।** निपातन से धातु के आदि दकार को डकार।
'श्वेतवहादीनां डस् पदस्येति वक्तव्यम्' (वा०) से 'सु' विभक्ति के प्रसङ्ग में ण्विन् के स्थान पर डस् का आदेश। शेष 'श्वेतवाः' के समान।

विशेष– 'श्वेतवहादीनां०' वार्त्तिक में 'पदस्य' के कथन से पदरहित स्थल में यह डस् आदेश नहीं होता। अतः श्वेतवह् + औ = श्वेतवहौ। उक्थशस् + औ = उक्थशसौ। पुरोडश् + औ = पुरोडशौ।

2. विधि– अवे यजः 3.2.72

अव उपपद रहते यज् धातु से 'ण्विन्', वैदिक प्रयोग में।

अनु०– मन्त्रे, ण्विन् (3.2.71)।

अर्थ– कर्ता (3.4.67)।

प्रकृति– अव – यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, भ्वा० उभ०।

प्रयोग– अवयजते = अव–यज् + ण्विन् = **अवयाः।**
'त्वं यज्ञे वरुणास्यावया असि।'
'श्वेतवहादीनां डस् पदस्येति वक्व्यम्' (वा०) से 'सु' विभक्ति के प्रसङ्ग में ण्विन् के स्थान पर डस् आदेश, शेष 'श्वेतवाः' (3.2.71) के समान।

विशेष– मन्त्रे श्वेतवह० 3.2.71 सूत्र के साथ ही इस स्वतन्त्र सूत्र को जोड़ा जा सकता था, किन्तु इस स्वतन्त्र सूत्र (अवे यजः) का प्रयोजन पर सूत्र 'विजुपे छन्दसि' 3.2.73 के लिए है। वहाँ केवल 'यज्' धातु का व्यवहार है जो इसी सूत्र से अनुवर्त्तित है।

ण्वुच्

ण्वुच् = अक। चुटू 1.3.7 से ण् की और हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत्संज्ञको का लोप, युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को 'अक' आदेश।

स्वभाव–

1. णित् (1.3.7)। अतः अत उपधायाः 7.2.116 से धातु की उपधा की वृद्धि, यथा– अग्रगामिका।
2. आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से आकारान्त अङ्ग को युक्–आगम।
2. चित् (1.3.3)। अतः चितः 6.1.63 से ण्वुच्-प्रत्ययान्त शब्द का अन्तिम स्वर उदात्त होता है।

1. विधि– पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् 3.3.11
पर्याय (परिपाटी, क्रम), अर्ह (योग्य होना), ऋण, उत्पत्ति– इन अर्थों के रहने पर धातुसामान्य से स्त्रीलिङ्ग भाव में विकल्प से ण्वुच्।

अनु॰– विभाषा (3.3.110)।

अधि॰– भावे (3.3.75), स्त्रियाम् (3.3.94)।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 आदि से प्राप्त क्तिन् आदि का विकल्प से।

अर्थ– भाव और स्त्रीत्व।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– (1) शीङ् स्वप्ने, अदा॰ आ॰, (2) ग्रस् अदने भ्वा॰ आ॰, (3) गम् गतौ, भ्वा॰ पर॰, (4) भक्ष् अदने, चुरा॰ उ॰, (5) पा पाने, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– 1. पर्याय– अर्थ में (क) शी + ण्वुच् + टाप् (स्त्रीत्व में) = **शायिका**। भवतः शायिका 'आपके सोने की वारी'। (युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को अक-आदेश, अचो ञ्णिति 7.2.115 से धातु के ईकार को वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आयादेश, आजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्,

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः 7.3.44 से शायक के अकार को इकार आदेश) (ख) ग्रस् + ण्वुच् + टाप् = ग्रासिका, भवतः **अग्रग्रासिका** 'पहले खाने की बारी आपकी' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, टाप्, अकार को इकार 'शायिका' जैसा)। (ग) गम् + ण्वुच् + टाप् = गामिका, भवतः **अग्रगामिका** 'आगे चलने की बारी आपकी' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, टाप्, अकार को इकार आदेश, 'शायिका' जैसा)।

2. अर्ह– अर्थ में– (क) भक्ष् + ण्वुच् + टाप् = भक्षिका, **इक्षुभक्षिकाम्** अर्हति भवान् 'आप ईख चूस सकते हैं' (टाप्, अकार को इकार 'शायिका' के समान) (ख) पा + ण्वुच् + टाप् = पायिका, **पयःपायिकाम्** अर्हति भवान् 'आप पानी पी सकते हैं' (आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से युक्-आगम, टाप्, इत्त्व पूर्ववत्)।
3. ऋण अर्थ में– भुज् + ण्वुच् + टाप् = भोजिका, (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से पुक्– आगम, टाप्, इत्त्व पूर्ववत्)।

   त्वम् **ओदनभोजिकां** मे धारयसि, त्वं **पयःपायिकां** मे धारयसि 'जो तुमने मेरी ओर से भात खाया, दूध पीया, वह ऋण तूने मुझे देना है अर्थात् मुझे भात खिलाना, दूध पिलाना है'।
4. उत्पत्ति– अर्थ में– **इक्षुभक्षिकां** मे उदपादि भवान् 'मेरे लिए ईख चूसना आपने उत्पन्न किया'। ओदनभोजिकां पयःपायिकां च उदपादि भवान्।

विशेष– ण्वुच् प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः अन्य प्रत्यय भी स्त्रीत्व एवं भाव में आ सकते हैं, यथा– उत्पत्ति अर्थ में चिकीर्ष + अ + टाप् = चिकीर्षा, चिकीर्षा उत्पद्यते (स्त्रीत्व में अ प्रत्ययात् 3.3.102 से अ, अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्)।

ण्वुल्

ण्वुल् = अक। चुटू 1.3.7 से ण्, हलन्त्यम् 1.3.3. से ल् की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से 'वु' के स्थान पर 'अक' आदेश।

स्वभाव–

1. अजादि (ण्वुल् = अक होने के कारण), अतः जभ् + ण्वुल् = जम्भकः। रधिजभोरचि 7.3.35 से नुम् - आगम।
2. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः भू + ण्वुल् = भावकः में अस्तेर्भूः 2.4.52 से अस् को 'भू' का आदेश।
3. णित् (चुटू 1.3.7 से) अतः–
   (i) अचो ञ्णिति 7.2.115 से इगन्ताङ्ग की वृद्धि, यथा– इ + ण्वुल् =- आयकः।
   (ii) अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार की वृद्धि, यथा– पठ् + ण्वुल् = पाठकः।
   (iii) आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.3 से आकारान्त अङ्ग को युक्-आगम, यथा– क्षा (क्षै) + ण्वुल् = क्षायकः।
   (iv) हनस्तोऽचिण्णलोः 7.3.32 से हन् के नकार को तकार आदेश– हन् + ण्वुल् = घातकः।
   (v) नोदात्तोपदेशस्य॰ 7.3.34 से उदात्तोपदेश एवं मान्त ('चमि' को छोड़कर) को उपधावृद्धि नहीं, यथा– क्लम् + ण्वुल् = क्लमकः।
   (vi) जनिवध्योश्च 7.3.35 से जन् तथा वध् को उपधावृद्धि (7.2.116 से प्राप्त) नहीं, यथा– जन् + ण्वुल् = जनकः।
4. लित् (हलन्त्यम् 1.3.3 से)। अतः लिति 6.1.193 से ण्वुल् से पूर्व की उदात्त संज्ञा।

1. विधि– ण्वुलतृचौ 3.1.133
धातु से 'ण्वुल्' और 'तृच्'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– करोति इति = कृ + ण्वुल् = **कारकः** 'करनेवाला'।
अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

विशेष– अन्यः कारकः = **अन्यत्कारकः** 'दूसरा करनेवाला'। अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थितोत्सुकेतिकारकरागच्छेषु 6.3.99 से अन्य शब्द के बाद दुक् (द्) आगम, खरि च 8.4.55 से चर्त्व से दकार को तकार।

2. विधि– तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.10
क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो धातु से भविष्यत्काल में 'तुमुन्' और 'ण्वुल्'।

अनु॰– भविष्यति (3.3.3)।

अर्थ– भविष्यत् काल की क्रिया, क्रियार्थक क्रिया = क्रिया के लिए जो क्रिया उपपद हो तो (यथा– 'खाने के लिए जा रहा है'– इस वाक्य में जाना क्रिया इसलिए हो रही है कि वह खाए। अतः जा रहा है 'व्रजति' क्रियार्थक क्रिया है।) ऐसी क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो भविष्यत्काल में तुमुन् और ण्वुल्। यथा–'भोक्तुं व्रजति' 'भोजकः व्रजति' में भुज् धातु से तुमुन् और ण्वुल् हुए हैं।

प्रकृति– क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो धातुसामान्य।

प्रयोग– यथा– भुज् + ण्वुल् = **भोजकः** व्रजति 'खानेवाला जा रहा है (अर्थात् खाने के लिए ही जा रहा है)'। पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण।

तुमुन्– भोक्तुं व्रजति– 'खाने के लिए जा रहा है।'

3. विधि– रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् 3.3.108
रोगविशेष की संज्ञा में धातु से स्त्रीलिंग में बहुल करके 'ण्वुल्'।

अनु॰– स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अपवाद– स्त्रियां क्तिन् (3.3.94) से प्राप्त क्तिन् का।

अर्थ– रोगविशेष, भाव।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– प्र-छर्द् वमने, चुरा॰उभ॰, प्र-वह् प्रापणे, भ्वा॰ उभ॰, वि-चर्च् परिभाषणहिंसातर्जनेषु, भ्वा॰पर॰।

प्रयोग– 1. प्र-छर्द् + ण्वुल् = **प्रच्छर्दिका** 'वमन'।
छे च 6.1.73 से प्र के बाद तुक्(त्) आगम, स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.40 से श्चुत्व से चकार। प्रच्छर्दक। अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से स्त्रीत्व में टाप् (आ), अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ, प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः 7.3.44 से ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश। 'प्रच्छर्दिका वमिश्च स्त्री पुमांस्तु वमथुः समाः' –अमर॰ 2.6.55

2. प्र-वह् + ण्वुल् = **प्रवाहिका** 'पेचिश'। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा अकार की वृद्धि। स्त्रीत्व में टाप्, इत्त्व 'प्रच्छर्दिका' की तरह। 'ग्रहणी रुक्प्रवाहिका' –अमर॰ 2.6.55

3. वि-चर्च् + ण्वुल् = **विचर्चिका** 'दाद, खुजली'।
स्त्रीत्व में टाप्, इत्त्व 'प्रच्छर्दिका' की तरह। 'कच्छ्वां तु पामपामे विचर्चिका' –अमर॰ 2.6.53

विशेष– बहुल-ग्रहण से कहीं-कहीं यह ण्वुल् नहीं होता है। यथा– शिरोर्त्तिः

4. विधि– धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः (वा॰ 3.3.108)
धात्वर्थ के निर्देश में धातुओं से स्त्रीत्व में ण्वुल्।

अर्थ– भाव, धात्वर्थ।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– अश् भोजने, क्र्या॰पर॰, शीङ् स्वप्ने, अदा॰आत्म॰।

प्रयोग– 1. अश् + ण्वुल् = **आशिका** 'भोजन'।
अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि, स्त्रीत्व में

अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप् (आ), प्रत्ययस्थात्० 7.3.44 से ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश।

2. शी + ण्वुल् = **शायिका** 'सोना'।

अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायाव: 6.1.78 से आयादेश, स्त्रीत्व में टाप्, इत्त्व 'आशिका' के समान।

5. विधि– संज्ञायाम् 3.3.109

संज्ञाविषय में धातु से स्त्रीलिङ्ग में ण्वुल्, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में।

अनु०– ण्वुल् (3.3.108), स्त्रियाम् (3.3.94), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– संज्ञा, भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– भञ्ज् आमर्दने, रुधा०पर०, चि चयने, स्वा०उभ०, खाद् भक्षणे, भ्वा०,पर०।

प्रयोग– 1. उद्दालकपुष्पस्य भञ्जनम् = उद्दालकपुष्प-भञ्ज् + ण्वुल् + टाप् = **उद्दालकपुष्पभञ्जिका** 'खेलविशेष जिसमें उद्दालक नामक फूलों को तोड़ा जाता है।' स्त्रीत्व में अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्, प्रत्ययस्थात्० 7.3.44 से ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश।

नित्यं क्रीडाजीविकयो: 2.2.17 से नित्य षष्ठीतत्पुरुष समास।

2. वारणपुष्पाणां प्रचयनम् = वारणपुष्प-प्र-चि+ ण्वुल् + टाप् = **वारणपुष्पप्रचायिका** 'खेलविशेष जिसमें वारणपुष्पों को चुना जाता है'। अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायाव: 6.1.78 से आयादेश, स्त्रीत्व में टाप्, इत्त्व पूर्ववत्।

3. अभ्यूष- खाद् + ण्वुल् + टाप् = **अभ्यूषखादिका** 'अभ्यूष अर्थात् लिट्टि खाने की क्रीडाविशेष'। स्त्रीत्व में टाप्, इत्त्व पूर्ववत्।

4. आचोष - खाद् + ण्वुल् + टाप् = **आचोषखादिका** 'चूस कर खाने की क्रीडा'।

5. शाल - भञ्ज् + ण्वुल् + टाप् = **शालभञ्जिका** 'शालवृक्ष के पुष्पों को तोड़ने की क्रीडाविशेष'।

6. ताल-भञ्ज् + ण्वुल् + टाप् = **तालभञ्जिका** 'तालवृक्ष के पुष्पों को तोड़ने की क्रीडाविशेष'।

6. विधि– विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च 3.3.110
उत्तर तथा परिप्रश्न अर्थ में धातु से स्त्रीलिङ्ग में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से इञ्, (चकार से) 'ण्वुल्' भी। पक्ष में यथाप्राप्त भाव के सब प्रत्यय।

अनु॰– ण्वुल् (3.3.108), स्त्रियाम् (3.3.94, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– परिप्रश्न अर्थात् पूछना और उत्तर देना, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– कृ (डुकृञ्) करणे, तना॰उभ॰।

प्रयोग– 1. परिप्रश्न – कृ + ण्वुल् + टाप् = **कारिका** 'काम'। भवान् कां कारिकां कृतवान्? 'आपने क्या काम किया।' कारिका शब्द में अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से स्त्रीत्व में टाप्, प्रत्ययस्थात् 7.3.44 से ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश।

2. आख्यान–कृ + ण्वुल् + टाप् = **कारिका**। अहं सर्वां कारिकां कृतवान् 'मैंने सब काम कर लिया'। कारिका की रूपसिद्धि पूर्ववत्।

इसी प्रकार

इञ् प्रत्यय – कृ + इञ् = कां कारिम्? सर्वां कारिम्,
क्तिन् प्रत्यय– कृ + क्तिन् = कां कृतिम्? सर्वां कृतिम्,
श प्रत्यय– कृ + श = कां क्रियाम्? सर्वां क्रियाम्,
क्यप् प्रत्यय– कृ + क्यप् = कां कृत्याम्? सर्वां कृत्याम्।

विशेष– आख्यान एवं परिप्रश्न अर्थ न रहें तो ण्वुल्, इञ् आदि प्रत्यय

नहीं होते हैं, किन्तु स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से क्तिन् प्रत्यय होता है, यथा– कृ + क्तिन् = **कृतिः**।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) तृजकाभ्यां कर्तरि 2.2.15

कर्ता में हुई षष्ठी से युक्त पद का तृच् और अक (ण्वुल्) प्रत्ययान्त के साथ समास नहीं।

प्रयोग– भवतः शायिका। इसमें कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्ता भवत् में षष्ठी विभक्ति हुई है। शी + ण्वुल् = शायिका (धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः, वा॰ 3.3.108 से ण्वुल्) शब्द के साथ 'भवतः' का समास 'षष्ठी' 2.2.8 सूत्र से प्राप्त था। प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध हुआ।

सम्ब॰ (2) कर्तरि च 2.2.16

कर्ता में आयी षष्ठी का भी अक-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास नहीं होता।

प्रयोग– तव शायिका। यहाँ ण्वुल्-प्रत्ययान्त 'शायिका' के साथ 'तव' का समास नहीं हुआ।

सम्ब॰ (3) अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः 2.3.70

भविष्यत् काल में विहित अक (ण्वुल्) तथा भविष्यत् तथा आधमर्ण्य अर्थ में विहित इन् प्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

प्रयोग– कटं कारकः व्रजति 'चटाई बनानेवाला जा रहा है'। ओदनं भोजकः व्रजति 'भात खानेवाला जा रहा है। यहाँ कृ, भुज् धातुओं से तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.10 सूत्र से ण्वुल् (अक) हुआ है। यहाँ कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्म कट एवं ओदन में षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति थी, यह सूत्र उसका निषेध करता है।

सम्ब॰ (4) अस्तेर्भूः 2.4.52

आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते 'अस्' धातु के स्थान पर 'भू' आदेश।

प्रयोग– अस् + ण्वुल् = **भावकः** 'होनेवाला'। ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से ण्वुल्। ण्वुल् की आर्धधातुक संज्ञा (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114 से) होने से प्रस्तुत सूत्र से 'अस्' को 'भू' आदेश, अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आवादेश।

सम्ब॰ (5) ब्रुवो वचिः 2.4.53

आर्धधातुक विषय में 'ब्रू' के स्थान पर 'वच्' आदेश।

प्रयोग– ब्रू + ण्वुल् = **वाचकः** 'बोलनेवाला'। ण्वुल्तृचौ 3.2.133 से ण्वुल्, उसकी आर्धधातुकता के कारण प्रस्तुत सूत्र से 'ब्रू' को 'वच्' आदेश, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि।

सम्ब॰ (6) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54

आर्धधातुक विषय में 'चक्षिङ्' धातु के स्थान पर 'ख्याञ्' आदेश।

प्रयोग– आ- चक्षिङ् + ण्वुल् = **आख्यायकः** 'बोलनेवाला'। ण्वुल् की आर्धधातुक संज्ञा पूर्ववत्। प्रस्तुत सूत्र से चक्षिङ् को ख्या आदेश, आतो युक्चिण्कृतोः 7.3.3 से युक्-आगम।

विशेष– ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते (वा॰ 2.4.54)

ख्याञ् के स्थान में ख्शाञ् आदेश भी अभीष्ट है। आ– चक्षिङ् + ण्वुल् = **आख्शायकः** 'बोलनेवाला'। चक्षिङ् को ख्शा आदेश, शेष 'आख्यायकः' जैसा।

(7) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56

घञ् तथा अप् से भिन्न आर्धधातुक विषय में अज् धातु के स्थान में 'वी' आदेश होता है।

प्रयोग– प्र-अज् + घञ् = **प्रवायकः** 'जानेवाला'। ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से ण्वुल्, आर्धधातुक संज्ञा, प्रस्तुत सूत्र से 'अज्' के स्थान में 'वी' आदेश, अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि, एचोऽयवायावः 6.1.78 से आयादेश।

सम्ब॰ (8) अके जीविकार्थे 6.2.73

जीविकार्थक समास में अक-प्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद होने पर पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त।

प्रयोग– दन्तलेखकः। 'लेखक' ण्वुल्–प्रत्ययान्त शब्द (ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से ण्वुल्) है, अतः उसके पूर्व शब्द 'दन्त' शब्द का आदि स्वर अकार उदात्त है।

सम्ब॰ (9) प्राचां क्रीडायाम् 6.2.74

प्राच्यदेशवासी की क्रीडा के वाचक समास में अकप्रत्ययान्त शब्द के उत्तरपद होने पर पूर्वपद का आदि स्वर उदात्त होता है।

प्रयोग– उद्दालकपुष्पभञ्जिका। संज्ञायाम् 3.3.109 से ण्वुल्– भञ्जिका (देखें–विवरण-विधि सं. 4), प्रस्तुत सूत्र से पूर्वशब्द 'उद्दालकपुष्प' के प्रथम उकार का स्वर उदात्त होता है।

तवेङ्

तवेङ् = तवे। हलन्त्यम् 1.3.3 से ङ् की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से तवे-अन्त प्रातिपदिक की अव्यय संज्ञा। फलतः अव्यायादाप्सुपः 2.4.82 से सुप् का लोप–सूतवे।

(2) ङित् (1.3.3)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन ..... तवेनः 3.4.9

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में धातु से 'तवेङ्'।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्।

अर्थ– भाव ('तुमर्थो भावः'–काशिका 3.4.9)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– सू (षूङ्) प्राणिगर्भविमोचने, अदा॰ आ॰।

प्रयोग– सू + तवेङ् = **सूतवे** 'जन्म देने के लिए' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण की प्राप्ति, क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध। 'दशमे मासि सूतवे' (ऋ॰ 10.184.3)।

तवेन्

तवेन् = तवे। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 तवे– अन्त प्रातिपदिक की अव्यय-संज्ञा। फलतः अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से सुप् का लोप।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 अथवा पुगन्तलघू० 7.3.86 से गुण।

(3) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन .... तवेनः 3.4.9
वेद में तुमुन् अर्थ में 'तवेन्' प्रत्यय।

अनु०– छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ– भाव (काशिका 3.4.9)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा कृ करणे, तना०उ०। हृ हरणे, भ्वा०उ०।

प्रयोग– कृ + तवेन् = **कर्तवे** 'करने के लिए', हृ + तवेन् = **हर्तवे** 'हरने के लिए' (सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से धातु के इक् को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'स्वर्देवेषु **गन्तवे**' (यजु० 15.15)।

तवै

तवै = तवै।

स्वभाव– (1) एजन्त। अतः कृन्मेजन्तः 1.1.39 से तवै-अन्त प्रातिपदिक की अव्यय संज्ञा।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 अथवा पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण।

1. विधि– तुमर्थे सेसेन ...... तवेनः 3.4.9

वेद में तुमुन्– अर्थ में 'तवै' प्रत्यय।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ– भाव (काशिका 3.4.9)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– पा रक्षणे, अदा॰प॰।

प्रयोग– पा + तवै = **पातवै** 'बचाने के लिए'।

'सोममिन्द्राय पातवै'

2. विधि– कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः 3.4.14

कृत्य अर्थ में वेद में धातु से तवै, केन्, केन्य और त्वन्।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

अर्थ– कृत्य– अर्थ अर्थात् भाव एवं कर्म (तयोरेव कृत्य॰ 3.4.70)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– इ (इण्) गतौ, अदा॰ प॰।

प्रयोग– इ + तवै = **एतवै** 'जाने योग्य' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण)।

सम्बद्धस्थल– (1) तवै चान्तश्च युगपत् 6.2.51

तवै-प्रत्यय का अन्त्य स्वर उदात्त होता है।

प्रयोग– **अन्वेतवै** (अनु-इ + तवै, कृत्यार्थे तवैकेन् 3.4.14 से तवै-प्रत्यय, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश), 'अन्वेतवै' का अन्तिम स्वर उदात्त होता है।

तव्य/तव्यत्

तव्य/तव्यत् = तव्य। 'तव्य' प्रत्यय का कोई अनुबन्ध नहीं है। तव्यत् के तकार की हलन्त्यम् 1.3.3 से इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव-

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः-
   (i) आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इट् आगम- पठ् + तव्य = पठितव्यम्।
   (ii) सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु के इगन्ताङ्ग को गुण- जि + तव्य = जेतव्यम्।
   (iii) अस्तेर्भूः 2.4.52 से अस् को भू आदेश- अस् + तव्य = भवितव्यम्।
   (iv) ब्रुवो वचिः 2.4.53 से 'ब्रू' को 'वच्' आदेश- ब्रू + तव्य =वक्तव्यम्।
   (v) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54 से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश- आ-चक्षिङ् + तव्य = आख्यातव्यम्।
   (vi) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 (बलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते, वा॰) से अज् को विकल्प से 'वी' आदेश- अज् + तव्य = वेतव्यम्- अजितव्यम्।
2. खरादि। अतः खरि च 8.4.55 से धातु के झल् के स्थान पर चर् आदेश, यथा- भिद् + तव्य = भेत्तव्यम्।
3. तित् (केवल 'तव्यत्')। अतः तव्यत् प्रत्यय के योग में तव्यत् के यकार की तित् स्वरितम् 6.1.185 से स्वरित संज्ञा होती है। 'तव्य' प्रत्यय आद्युदात्तश्च 3.1.3 से आद्युदात्त एवं शेष अनुदात्त है। केवल यही स्वर की विशिष्टता तव्य एवं तव्यत् का भेदक है। अन्यथा तव्य एवं तव्यत्- इन दोनों में कोई भेद नहीं है।
4. कृत्य-कृत्याः 3.1.95 से तव्य एवं तव्यत् दोनों की 'कृत्य'संज्ञा। अतः तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 से भाव

एवं कर्म में तव्य अथवा तव्यत्। (देखें– सम्बद्धस्थल)।

1. विधि– तव्यत्तव्यानीयरः 3.1.96
धातु से तव्यत्, तव्य एवं अनीयर् प्रत्यय होते हैं।

अर्थ– भाव अथवा कर्म (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70) वाच्य, औचित्य, प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल (प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च 3.3.163), सामर्थ्य (शक्ति लिङ् च 3.3.172)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा–कृ (डुकृञ्) करणे, तना॰उभ॰।

प्रयोग– कृ + तव्य/तव्यत् = **कर्तव्यम्**। सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व। त्वया इदं कर्तव्यम् 'तुम्हें ऐसा करना चाहिए'।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) पुरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरण्येन 2.2.11
तव्य प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं।

प्रयोग– ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्। इसमें षष्ठी 2.2.8 से प्राप्त षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता।

विशेष– ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् = 'ब्राह्मणकर्तव्यम्' ऐसा जहाँ समास मिलता है वहाँ धातु से 'तव्यत्' ऐसा तकारानुबन्ध प्रत्यय मानना चाहिए। यद्यपि उभय प्रत्यय में शब्दनिर्माण की दृष्टि से कोई भेद नहीं है तथापि प्रस्तुत सूत्र में अनुबन्धरहित 'तव्य' का ही ग्रहण है, न कि सानुबन्ध 'तव्यत्' का। परिभाषा भी कहती है– 'निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य' (जहाँ अनुबन्धरहित प्रत्ययादि का ग्रहण हो वहाँ अनुबन्धसहित प्रत्ययादि का ग्रहण नहीं होता है।) अतः जहाँ तव्य-युक्त शब्दों के साथ समास दिखायी पड़े वहाँ प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं है– ऐसा समझना चाहिए। पुनश्च, वहाँ सानुबन्ध प्रत्यय 'तव्यत्' का ही ग्रहण हुआ है, ऐसा मानना चाहिए।

सम्ब॰ (2) कृत्यानां कर्तरि वा 2.3.71
कृत्य प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती

है, परन्तु कर्म में कभी नहीं।

प्रयोग– भवतः कटः कर्तव्यः– भवता कटः कर्तव्यः। यहाँ कर्ता 'भवत्' शब्द में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से नित्य षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति थी। प्रस्तुत सूत्र से उस षष्ठी को वैकल्पिक बनाया गया है– भवतः। पक्ष में कर्तृकरणयोस्तृतीया 2.3.18 से तृतीया– भवता।

तुमुन्

तुमुन् = तुम्। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की और उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से उकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः–
   - (i) आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इट्– आगम, यथा– पठ् + तुमुन् = पठितुम्।
   - (ii) सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु के इगन्ताङ्ग को गुण, यथा– जि + तुमुन् = जेतुम्।
   - (iii) अस्तेर्भूः 2.4.52 से अस् को भू आदेश, अस् + तुमुन् = भवितुम्।
   - (iv) ब्रुवो वचिः 2.4.53 से ब्रू को वच् आदेश, ब्रु + तुमुन् = वक्तुम्।
   - (v) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54 से चक्षिङ को ख्याञ् आदेश ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते वा॰ 2.4.54 ख्या को ख्शा आदेश भी), चक्षिङ् + तुमुन् = ख्यातुम् – ख्शातुम्।
   - (vi) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 (बलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते, वा॰) से अज् को विकल्प से 'वी' आदेश, अज् + तुमुन् = वेतुम् – अजितुम्।
2. खरादि। अतः खरि च 8.4.55 से धातु के झल् के स्थान पर चर् आदेश, यथा– भिद् + तुमुन् = भेत्तुम्।
3. नित्। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से धातु का आदि स्वर उदात्त।
4. अव्यय। अनुबन्धलोप के पश्चात् मकारान्त कृत् होने से कृन्मेजन्तः 1.1.39 से तुमुन्-अन्त शब्द 'अव्यय' संज्ञक होते हैं– पठ् + तुमुन् = पठितुम्।

1. विधि– तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् 3.3.10
क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो धातु से भविष्यत्काल में तुमुन् और ण्वुल्।
अनु॰– भविष्यति (3.3.3)
अर्थ– भविष्यत्काल की क्रिया, क्रियार्थक क्रिया = क्रिया के लिए जो क्रिया उपपद हो तो (यथा– 'पढ़ने के लिए जा रहा है'– इस वाक्य में 'जाना' क्रिया इसलिए हो रही है कि वह पढ़े। अतः 'गच्छति' क्रियार्थक क्रिया है।) ऐसी क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो भविष्यत्काल में तुमुन् और ण्वुल्। यथा– पठितुं गच्छति/ पाठकः गच्छति। इन वाक्यों में पठ् धातु से तुमुन् और ण्वुल् हुए हैं।
प्रकृति– क्रियार्थक क्रिया उपपद हो तो धातुसामान्य।
प्रयोग– यथा– पठ् + तुमुन् = **पठितुम्**। पठितुं गच्छति 'पढ़ने के लिए जा रहा है' (अर्थात् भविष्यत्काल में वह पढ़ेगा, अभी तो केवल जा रहा है)। आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इट्-आगम। ण्वुल्– पाठकः व्रजति 'पढ़नेवाला (पढ़ने के लिए) जा रहा है'।

2. विधि– समानकर्तृकेषु तुमुन् 3.3.158
समान है कर्ता जिनका ऐसी इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।
अनु॰– इच्छार्थेषु (3.3.157)।
अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।
प्रकृति– इच्छार्थक धातु उपपद हो तो धातुसामान्य।
प्रयोग– पा + तुमुन् = **पातुम्**। श्रीहरिः इच्छति पातुम्, कामयते पातुम्, वाञ्छति पातुम् 'श्रीहरि पीना चाहता है'। इनमें इच्छति, कामयते आदि इच्छार्थक धातुएँ उपपद हैं, इच्छा करने का कर्ता तथा पीने का कर्ता भी श्रीहरि है, अतः समानकर्तृक धातु उपपद है। इसीलिए 'पा' धातु से तुमुन् प्रत्यय हुआ।
विशेष– सूत्र में 'समानकर्तृकेषु' के कथन से श्रीहरिं पिबन्तम् इच्छति

मिहिरः' (पीनेवाले श्रीहरि को मिहिर चाहता है)– इस वाक्य में समान-कर्तृकता के न रहने से 'पा' धातु से तुमुन् प्रत्यय नहीं हुआ है।

विशेष– 'इच्छन् करोति' जैसे वाक्य में कृ धातु से तुमुन् का व्यवहार दिखायी नहीं पड़ता है। वस्तुतः तुमुन् का प्रयोग वहीं होता है जहाँ उभय क्रियाओं का कर्ता एक होता हो। यथा– पठितुम् इच्छति, पठितुं गच्छति। (अतः 'रामः पठितुं श्यामः गच्छति/ इच्छति– ऐसा प्रयोग नहीं होता है।)

2. विधि– कालसमयवेलासु तुमुन् 3.3.167

काल, समय तथा वेला– ये शब्द उपपद हों तो धातु से तुमुन्।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– काल, समय अथवा वेला शब्द उपपद हों तो धातुसामान्य।

प्रयोग– प्र – स्था + तुमुन् = प्रस्थातुम्।

1. कालः **प्रस्थातुम्** 'प्रस्थान करने का समय हो गया है'।
2. समयः खलु स्नानभोजने **सेवितुम्** 'स्नान और भोजन करने का समय हो गया है'।
3. वेला **भोक्तुम्** 'भोजन करने का समय हो गया है'। पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, चोः कुः 8.2.30 से कुत्व।

विशेष– 1. वस्तुतः कालवाचक शब्द के उपपद रहते धातु से 'तुमुन्' होता है, यथा– अवसरोऽयम् आत्मानं **प्रकाशयितुम्** (प्र-काश् + णिच् + तुमुन्) 'अपने आप को प्रकट करने का यह उचित अवसर है'। (अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथमाङ्क)

2. कालः पचति भूतानि– इस वाक्य में पच् धातु से तुमुन् नहीं हुआ है, क्योंकि प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च 3.3.163 से प्रैष (भेजना), अतिसर्ग (कामचारपूर्वक आज्ञा देना), प्राप्तकाल (समय आ जाना) अर्थ का इस 'कालसमय' आदि सूत्र से सम्बन्ध है। अर्थात् जहाँ प्रैष

आदि अर्थ नहीं है वहाँ तुमुन् नहीं होता है, जैसा कि उद्धृत वाक्य– 'कालः पचति भूतानि' में।

3. कालः भोजनस्य– इस वाक्य में भुज् धातु से तुमुन् नहीं है। वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94 के अनुसार यहाँ भुज् धातु से ल्युट् का प्रयोग हुआ है। स्त्र्यधिकार (स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से आक्रोशे नञ्यनिः 3.3.112 तक) के बाद वाऽसरूप विधि अनित्य है। अतः उक्त प्रयोग में विकल्प से ल्युट् का भी प्रयोग हो सकता है।

4. विधि– शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् 3.4.65 शक्, धृष्, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह तथा अस्ति अर्थवाली धातुओं (= शक्नोति, धृष्णोति आदि) के उपपद रहते धातुमात्र से 'तुमुन्' प्रत्यय।

1. शक् शक्तौ, स्वा॰ पर॰, 2. धृष् प्रागल्भ्ये, स्वा॰पर॰, 3. ज्ञा अवबोधने, क्र्या॰ उभ॰ 4. ग्ला हर्षक्षये, भ्वा॰ पर॰, 5. घट् चेष्टायाम्, भ्वा॰ आत्म॰, 6. रभ् राभस्ये, भ्रा॰ आत्म॰, 7. लभ् प्राप्तौ, आत्म॰, 8. क्रम् पादविक्षेये, भ्वा॰ उभ॰, 9. सह् मर्षणे, भ्वा॰ आत्म॰, 10. अर्ह पूजायां योग्यत्वे च, भ्वा॰पर॰, 11. अस् भुवि, अदा॰पर॰।

अस्त्यर्थक धातुएँ यथा– भू-भवति, विद्-विद्यते।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)

प्रकृति– उपर्युक्त शक आदि धातुओं के उपपद रहते धातुसामान्य।

प्रयोग–
1. शक्नोति धावितुम् 'दौड़ने में कुशल या समर्थ हैं।
2. धृष्णोति भोक्तुम् 'खाने में कुशल है'।
3. जानाति पठितुम् 'पढ़ना जानता है'।
4. ग्लायति सेवितुम् 'सेवा करने में अशक्त है'।
5. घटते शयितुम् 'सोने में होशियार है'।
6. आरभते लेखितुम् 'लिखना आरम्भ करता है'।
7. लभते खादितुम् 'भोजन प्राप्त करता है'।

8. प्रक्रमते चलितुम् 'चलना आरम्भ करता है'।
9. उत्सहते वक्तुम् 'बोलने में प्रवृत्त होता है'।
10. अर्हति गन्तुम् 'जा सकता है'।
11. अस्ति पातुम् 'पीना है'। भवति कर्तुम् 'करना है'। विद्यते भोक्तुम् 'भोजन है'।

5. विधि– पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु 3.4.66
अलम् अर्थ = सामर्थ्य अर्थवाले परिपूर्णतावाची शब्दों के उपपद रहते धातु से तुमुन्।

अनु०– तुमुन् (3.4.65)

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)। पर्याप्ति = अन्यूनता अर्थात् परिपूर्णता है।

प्रकृति– अलम् अर्थक अथवा परिपूर्णतावाचक शब्द उपपद हों तो धातुसामान्य।

प्रयोग– पर्याप्तः भोक्तुम् (भुज् + तुमुन्),
समर्थः भोक्तुम् (भुज् + तुमुन्) 'खाने में समर्थ',
अलं भोक्तुम् (भुज् + तुमुन्)।
यहाँ उपपद में आनेवाले परिपूर्णतावाची शब्दों में परिपूर्णता दो प्रकार की होती है– भोजन की अधिकता से अथवा भोजन करनेवाले की क्षमता से। यहाँ 'भोजन करनेवाले की क्षमता' का ही ग्रहण हो, अतः सूत्र में 'अलमर्थेषु' को 'पर्याप्तिवचनेषु' का विशेषण बनाया गया है।
शिष्ट प्रयोग–
'लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः' (हितोपदेश)
'लोकान् अलं दग्धुं हि तत्तपः' (कुमारसम्भवम् 2/56)

सम्बद्धस्थल–

सम्ब० (1) लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि।
समो वा हिततततयोर्मांसस्य पचियुड्घञोः।। कारिका 6.1.144
तुमुन् = तुम् के मकार का लोप होता है काम और मनस् शब्द के परे रहते।

प्रयोग– 1. गन्तुं कामः = गन्तुकामः 'जाने की इच्छा रखनेवाला'

2. श्रोतुं मनः = श्रोतुमनः 'सुनने के लिए मन' उभय स्थलों में तुमुन् = तुम् के मकार का लोप हुआ है।

सम्ब॰ (2) तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यै-शध्यैनतवैतवेङ्तवेवः 3.4.9

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ (के लिए) में, से, सेन् आदि प्रत्यय होते हैं।

प्रयोग– 1. से–**वक्षे रायः**। 2. सेन्-ता **वामेषे** रथानाम्।

3. असे, असेन्– क्रत्वे दक्षाय-**जीवसे**।

4. क्से, कसेन्– प्रेषे भगाय **श्रियसे**।

5. अध्यै, अध्यैन्–कर्मण्य**ुपाचरध्यै**।

6. कध्यै– इन्द्राग्नी **आहुवध्यै**।

7. कध्यैन्– **श्रियध्यै**।

8. शध्यै, शध्यैन्– **पिबध्यै**, सह **मादयध्यै**।

9. तवै– सोममिन्द्राय **पातवै**।

10. तवेङ्– दशमे मासि **सूतवे**।

11. तवेन्- स्वर्देवेषु **गन्तवे, कर्तवे, हर्त्तवे**।

(विशेष विववण सम्बद्ध प्रत्यय के विवरण-स्थल में देखें)

सम्ब॰ (3) प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै 3.4.10

वेद में तुमुन् के अर्थ में कै आदि प्रत्ययान्त शब्द प्रयै, रोहिष्यै तथा अव्यथिष्यै का निपातन।

प्रयोग– 1. प्र–या + कै = **प्रयै**। प्रयै देवेभ्यः। प्रयै अर्थात् प्रयातुम् 'जाने के लिए'।

2. रुह् + इष्यै = **रोहिष्यै** अर्थात् रोहणाय 'आरोहण के लिए'। अपामोषधीनां **रोहिष्यै**।

3. न-व्यथ् + इष्यै = **अव्यथिष्यै** अर्थात् अव्यथनाय 'दुःखी न होने के लिए'।

(विशेष विवरण कै, इष्यै प्रत्यय स्थल में देखें।)

सम्ब॰ (4) दृशे विख्ये च 3.4.11

वेद में तुमुन्–अर्थक के-प्रत्ययान्त 'दृशे' तथा 'विख्ये' शब्दों का निपातन।

प्रयोग– 1. दृश् + के = दृशे अर्थात् द्रष्टुम् 'देखने के लिए'। **दृशे** विश्वाय सूर्यम्।

2. वि – ख्या + के = विख्ये अर्थात् विख्यातुम् 'वर्णन करने के लिए'। **विख्ये** त्वा हरामि।

सम्ब॰ (5) शकि णमुल्कमुलौ च 3.4.12

शक् धातु के उपपद होने पर धातु से वेद में तुमुन् अर्थ में णमुल् तथा कमुल् प्रत्यय।

प्रयोग– 1. वि – भज् + णमुल् = विभाजम् अर्थात् विभक्तुम् 'बाँटने के लिए'। अग्निं वै देवा **विभाजं** नाशक्नुवन्।

2. अप-लुप् + कमुल् = अपलुपम् अर्थात् अपलोप्तुम् 'लोप करने के लिए'। **अपलुपं** नाशक्नुवन्।

(विशेष विवरण के लिए णमुल्, कमुल् प्रत्यय-स्थल देखें।)

सम्ब॰ (6) ईश्वरे तोसुन्कसुनौ 3.4.13

ईश्वर शब्द के उपपद होने पर वेद में धातु से तुमुन् अर्थ में तोसुन् और कसुन् प्रत्यय।

प्रयोग– 1. अभि-चर् + तोसुन् = अभिचरितोः अर्थात् अभिचरितुम्। ईश्वरोऽ**भिचरितोः**।

2. वि-लिख् + कसुन् = विलिखः अर्थात् विलिखितुम्। ईश्वरो **विलिखः**।

(विशेष विररण के लिए तोसुन्, कसुन् प्रत्यय-स्थल देखें।)

सम्ब॰ (7) भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् 3.4.16

भावलक्षण अर्थ में वर्तमान स्था, इण्, कृञ्, वद्, चर्, हु, तम् तथा जन् धातुओं से तुमुन्– अर्थ में वेद में तोसुन् प्रत्यय।

प्रयोग– 1. सम्- स्था + तोसुन् = संस्थातोः अर्थात् संस्थातुम्। आ **संस्थातोर्वेद्यां** सीदन्ति।

2. उत् - इण् + तोसुन् = उदेतोः अर्थात् उदेतुम्। पुरा **सूर्यस्योदेतो**राधेयः।

3. अप-आ-कृ + तोसुन् = अपाकर्त्तोः अर्थात् अपाकर्तुम्। पुरा वत्साना**मपाकर्त्तोः**।

4. प्र-वद् + तोसुन् = प्रवदितोः अर्थात् प्रवदितुम्। पुरा **प्रवदितोर**ग्नौ प्रहोतव्यम्।

5. प्र-चर् + तोसुन् = प्रचरितोः अर्थात् प्रचरितुम्। पुरा **प्रचरितो**राग्नेध्रे होतव्यम्।

6. हु + तोसुन् = होतोः अर्थात् होतुम्। आ **होतोर**प्रमत्तस्तिष्ठति।

7. तम् + तोसुन् = तमितोः अर्थात् ततुम्। आ **तमितो**रासीत।

8. वि-जन् + तोसुन् = विजनितोः अर्थात् विजनितुम्। आ **विजनितोः** सम्भवामि।

(विशेष विवरण के लिए सम्बद्ध प्रत्ययस्थल देखें।)

सम्ब॰ (8) सृपितृदोः कसुन् 3.4.17

वेद में भावलक्षक अर्थ में वर्तमान सृप् तथा तृद् धातुओं से 'तुमुन्' अर्थ में कसुन्।

प्रयोग– 1. वि-सृप् + कसुन् = विसृपः अर्थात् विसर्पितुम्। पुरा क्रूरस्य **विसृपो** विरप्शिन्।

2. आ-तृद् + कसुन् = आतृदः अर्थात् आतर्दितुम्। पुरा जतृभ्य **आतृदः**।

(विशेष विवरण कसुन् प्रत्यय-स्थल में देखें।)

तृच्

तृच् = तृ। च् की हलन्त्यम् 1.3.3 से इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से लोप।

स्वभाव–

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः–
   - (i) आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इट्–आगम–पठ् + तृच् = पठिता।
   - (ii) सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु के इगन्ताङ्ग को गुण– जि + तृच् = जेता।
   - (iii) अस्तेर्भूः 2.4.52 से अस् को भू आदेश– अस् + तृच् = भू + तृच् = भविता।
   - (iv) ब्रूवो वचिः 2.4.53 से ब्रू को वच् आदेश– ब्रू + तृच् = वक्ता।
   - (v) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54 से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश (ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते वा॰ 2.4.54 से ख्या को ख्शा आदेश भी)।
     चक्षिङ् + तृच् = ख्याता - ख्शाता।
   - (vi) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 (बलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते वा॰) से अज् को विकल्प से 'वी' आदेश– अच् + तृच् = वेता-अजिता।
2. खरादि। अतः खरि च 8.4.55 से धातु के झल् के स्थान पर चर् आदेश, यथा– भिद् + तृच् = भेत्ता।
3. चित्। अतः चितः 6.1.163 से तृच्-प्रत्ययान्त का अन्त्य स्वर उदात्त होता है।

1. विधि– ण्वुल्तृचौ 3.1.133
   धातु से 'ण्वुल्' और 'तृच्'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– कृ (डुकृञ्) करणे, तना॰ उभय॰।

प्रयोग– करोति = कृ + तृच् = **कर्ता** 'करनेवाला'। सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) तृजकाभ्यां कर्तरि 2.2.15

कर्ता में जो तृच् और अक्-प्रत्ययान्त सुबन्त उनके साथ कर्ता में हुई षष्ठी का समास नहीं होता।

विशेष– तृच् प्रत्यय केवल कर्ता में ही आता है, यथा– करोति इति कर्ता, पश्यति इति द्रष्टा, ददाति इति दाता इत्यादि। अतः तृच् के योग में कर्ता में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग नहीं मिलता है। अतः यह सूत्र केवल अक अर्थात् ण्वुल् प्रत्यय के योग से कर्ता में, जहाँ षष्ठी विभक्ति होती है, उसी के साथ कर्ता में जहाँ षष्ठी विभक्ति होती है, उसी के साथ समास का निषेध करता है, यथा– भवतः शायिका (शी + ण्वुल्)। इसलिए इस सूत्र में 'तृच्' का ग्रहण अगले सूत्र कर्तरि च 2.2.16 के लिए है।

सम्ब॰ (2) कर्तरि च 2.2.16

कर्तृविहित अक (ण्वुल्) प्रत्ययान्त एवं तृच्-प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता। पूर्वसूत्र 2.2.15 से 'तृजकाभ्याम्' का अनु॰ है। किन्तु 'कर्तरि' का अन्वय केवल अक के साथ है, न कि किसी दूसरे अर्थ में (जबकि अक (ण्वुल्) 'धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः' वा॰ 3.3.108 से भाव में धात्वर्थनिर्देश के लिए भी आता है।)

प्रयोग– यथा– अपां स्रष्टा। यहाँ सृज् + तृच् = स्रष्टा।

इस तृच्– प्रत्ययान्त के योग से षष्ठ्यन्त 'अपाम्' का 'षष्ठी' 2.2.8 से प्राप्त तत्पुरुष नहीं होता है।

सम्ब॰ (3) साढ्यै साढ्वा साढेति निगमे 6.3.113

वैदिक प्रयोग में तृच्–प्रत्ययान्त 'साढ़ा' का निपातन।

प्रयोग– सह् + तृच् = साढा। हो ढः 8.2.31 से हकार को ढकार, झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40 से तृच् के तकार को धकार, ष्टुना ष्टुः

8.4.41 से धकार को ष्टुत्व से ढकार, ढो ढे लोपः 8.3.13 से पूर्व ढकार का लोप। सहिवहोरोदवर्णस्य 6.3.112 से धातु के अकार को प्राप्त ओकार का प्रस्तुत सूत्र के निपातन से निषेध और ढ्रलोपे पूर्वस्य॰ 6.3.111 से अकार को आकार– साढृ, प्रथमा विभक्ति एकवचन में सु– साढा।

लौकिक प्रयोग में ओत्व– सह् + तृच् = सोढा।

सम्ब॰ (4) अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् 6.4.11

तृच्–प्रत्ययान्त शब्द की उपधा को दीर्घ हो जाता है सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे रहते।

प्रयोग– कर्तृ + औ = कर्तारौ। ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः 7.3.110 से ऋकार को गुण से अकार, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, प्रस्तुत सूत्र से शब्द की उपधा को दीर्घ से आकार– कर्तारौ। इसीप्रकार, कर्तृ + जस् = कर्तारः, कर्तृ + अम् = कर्तारम्। असम्बुद्धि सर्वनामस्थान अर्थात् सम्बोधन के एकवचन को छोड़कर प्रथमा विभक्ति के सु, औ, जस् एवं द्वितीया विभक्ति के अम्, औ के परे रहते यह दीर्घ आदेश होता है।

सम्ब॰ (5) ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5

ऋकारान्त (और नकारान्त) प्रतिपदिकों से स्त्रीत्व में ङीप्। तृच्-प्रत्ययान्त शब्द ऋकारान्त है। अतः उससे यह ङीप् होता है।

प्रयोग– कर्तृ + ङीप् = कर्त्री, दातृ + ङीप् = दात्री। इको यणचि 6.1.77 से यणादेश।

सम्ब॰ (6) तुश्छन्दसि 5.3.59

तृन् एवं तृच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग में इष्ठन् एवं ईयसुन्– ये तद्धित प्रत्यय होते हैं।

प्रयोग– कर्तृ + इष्ठन् = करिष्ठः। तुरिष्ठेमेयस्सु 6.4.154 से कर्तृ शब्द के 'तृ' का लोप। आसुतिं **करिष्ठः**। दोग्धृ + ईयसुन् + ङीप् = दोहीयसी। दुह् + तृच् = दोग्धृ। ईयसुन् प्रत्यय के योग के बाद तुरिष्ठेमेयस्सु 6.4.154 से 'तृ' का लोप। **दोहीयसी** धेनुः।

सम्ब॰ (7) जनिता मन्त्रे 6.4.53

इडागमविशिष्ट तृच् प्रत्यय के परे रहते 'जन्' धातु के णिच् का लोप निपातित होता है, मन्त्रविषय के प्रयोग में।

प्रयोग– जन् + णिच् + तृच् = जनिता। यो नः पिता **जनिता।** आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से तृच् को इडागम, प्रस्तुत सूत्र से णिच् का लोप। यदि मन्त्रविषय न हो तो जन् + णिच् + तृच् = जनयिता।

सम्ब॰ (8) शमिता यज्ञे 6.4.54

यज्ञविषय में इडागमविशिष्ट तृच् प्रत्यय के परे यज्ञविषय में इडागमविशिष्ट तृच् प्रत्यय के परे 'शम्' से विहित 'णिच्' का लोप निपातित होता है।

प्रयोग– शम् + णिच् + तृच् = शमिता। शृतं हविः **शमितः।** सम्ब॰ 7 में कथित 'जनिता' के समान।

यज्ञविषय न हो तो शम् + णिच् + तृच् = शमयिता।

तृन्

तृन् = तृ। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 अथवा पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण।

(2) झलादि। अतः चोः कुः 8.2.30 से कुत्व। यथा– वक्ता।

(3) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– तृन् 3.2.135

तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमान काल में धातुसामान्य से 'तृन्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारी कर्ता।

प्रकृति– धातुसामान्य।

प्रयोग– (1) तच्छील, यथा– वच् (परिभाषणे, अदा॰,प॰) + तृन् = **वक्ता** (चोः कुः 8.2.30 से चकार को कुत्व से ककार)। मृदु वक्ता 'नरम बोलने के स्वभाववाला'।

(2) तद्धर्म, यथा– उप-दिश् (अतिसर्जने, तुदा॰ प॰) + तृन् = **उपदेष्टा** (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण, व्रश्चभ्रस्ज॰ 8.2.36 से शकार को षत्व, ष्टुना ष्टुः 8.4.40 से तकार को टकार)। धर्मम् उपदेष्टा 'धर्म का उपदेश करनेवाला'।

(3) तत्साधुकारी, यथा– पच् (डुपचष् पाके, भ्वा॰ उ॰) + तृन् = **पक्ता** (चोः कुः 8.2.30 से कुत्व)। ओदनं पक्ता 'चावल अच्छी तरह पकानेवाला'।

विशेष-1– तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्य (वा॰, 3.2.135) ऋत्विग् अर्थ में भी उपसर्ग रहित धातु से 'तृन्'।

प्रयोग– हु + तृन् = **होता**। उपसर्ग के योग से उत् – गै + तृच् =

उद्गाता (ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से तृच्)। तृन् एवं तृच् में केवल स्वरगत भिन्नता है, रूपगत नहीं।

विशेष-2– नमतेः षुक् च (वा॰ 3.2.135)

'नी' धातु से तृन् और धातु को षुक्-आगम भी।

प्रयोग– नी + षुक् + तृन् = **नेष्टा** 'लेनेवाला'। (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, ष्टुना ष्टुः 8.4.40 से ष्टुत्व)।

विशेष-3– त्विषेर्देवतानामकारश्चोपधाया अनिट्त्वं च (वा॰, 3.2.135)

'त्विष्' धातु से देवता वाच्य होने पर 'तृन्' तथा उपधा को अकार आदेश।

प्रयोग– त्विष् (दीप्तौ, भ्वा॰उ॰) + तृन् = **त्वष्टा** 'देवताविशेष' (प्रस्तुत वार्तिक से उपधा को अकार और इट् का अभाव, ष्टुना ष्टुः 8.4.40 से ष्टुत्व)।

विशेष-4– क्षदेश्च नियुक्ते (वा॰ 3.2.135)

क्षद् धातु से नियुक्त या अधिकृत अर्थ में 'तृन्'।

प्रयोग– क्षद् + तृन् = **क्षत्ता** 'अधिकृत' (खरि च 8.4.55 से चर्त्व)।

विशेष-5– छन्दसि तृच्च (वा॰ 3.2.135)

वेद में क्षद् धातु से अधिकृत अर्थ में तृन् और तृच् भी।

प्रयोग– क्षद् + तृन् = क्षत्ता, क्षद् + तृत् = क्षत्ता। स्वर में भेद है।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

'तृन्' प्रत्यय के प्रयोग होने पर कृद्योगा षष्ठी नहीं होती है।

प्रयोग– कर्ता कटान्। (कर्ता में कृ धातु से तृन् 3.2.135 से तृन् प्रत्यय, कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से कर्तृ शब्द से षष्ठी की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध)।

सम्ब॰ (2) ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5

ऋकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्वविवक्षा में 'ङीप्'।

प्रयोग– वक्तृ + ङीप् = वक्त्री 'बोलनेवाली' (वक्तृ शब्द में वच् धातु से तृन् 3.2.135 से तृन्)।

सम्ब॰ (3) तुश्छन्दसि 5.3.59

तृन्-प्रत्ययान्त एवं तृच्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से वेद में इष्ठन् एवं ईयसुन् प्रत्यय।

प्रयोग– (क) कृ + तृन् = कर्तृ (तृन् 3.2.135 से तृन् प्रत्यय)। अतिशयेन कर्ता = कर्तृ + इष्ठन् = करिष्ठः 'सबसे उत्तम कर्ता'।

तुरिष्ठेमेयस्सु 6.4.154 से 'तृ' का लोप। 'आसुतिं करिष्ठः'।

(ख) दुह् + तृन् + ङीप् = दोहित्री (तृन् 3.2.135 से तृन्, ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5 से ङीप्), अधिकं दोहित्री = दोहित्री + ईयसुन् (प्रस्तुत सूत्र से) = दोहीयसी (भस्याढे तद्धिते पुंवद्भावो वक्तव्यः, वा॰, 6.3.35 से पुंवद्भाव)।

सम्ब॰ (4) विभाषा तृन्नन्नतीक्ष्णशुचिषु 6.2.161

नञ् से उत्तरवर्ती उत्तरपदस्थानीय तृन्-प्रत्ययान्त शब्द का अन्त्य स्वर विकल्प से उदात्त होता है।

प्रयोग– अकर्ता (तृन् 3.2.135 से तृन्)। अन्तिम स्वर आकार को विकल्प से उदात्त स्वर।

सम्ब॰(5) अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् 6.4.11

अङ्गसंज्ञक तृन्प्रत्ययान्त शब्द की उपधा को दीर्घ हो जाता है सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे रहते।

प्रयोग– कर्ता कटान्। (कृ धातु से 'तृन्' 3.2.135 से तृन् = कर्तृ। कर्तृ + सु (प्रथमा एकवचन), ऋदुशनस्॰ 7.1.94 से ऋकार के स्थान में अनङ्, हल्ङ्याब्भ्यो॰ 6.1.68 से स् का लोप, प्रस्तुत सूत्र से उपधादीर्घ, नलोपः॰ 8.2.7 से नकार का लोप)।

तोसुन्

तोसुन् = तोस् = तोः। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की और उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से उकार की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप। सकार का ससजुषो रुः 8.2.66 से रुत्व एवं खरवसानयोर्विसर्जनीयः 8.3.15 से रेफ को विसर्ग आदेश।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

(3) अव्यय, तोसुन्– अन्त की अव्यय संज्ञा (क्त्वातोसुन्कसुनः 1.1.4)।

1. विधि– ईश्वरे तोसुन्कसुनौ 3.4.13

ईश्वरशब्द के उपपद होने पर धातु से वेद में तुमुन्-अर्थ में 'तोसुन्' (एवं कसुन्)।

अनु॰– तुमर्थे (3.4.9), छन्दसि (3.4.6)।

प्रसङ्ग– तुमुन्–अर्थ— भाव (तुमर्थो भावः, काशिका 3.4.9)।

प्रकृति– 'ईश्वर' उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा– अभि-चर् गतौ, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– ईश्वरः अभि-चर् + तोसुन् = ईश्वरोऽ**भिचरितोः** इच्छति 'ईश्वर लिखने के लिए चाहता है'।

(आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्-आगम)।

2. विधि– भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् 3.4.16

भाव अर्थात् क्रिया के लक्षण में वर्तमान स्था, इण् आदि धातुओं से वेद में तुमर्थ में 'तोसुन्'।

अनु॰– तुमर्थे (3.4.9), छन्दसि (3.4.6)

प्रसङ्ग– तुमुन्-अर्थ— भाव (काशिका– 3.4.9)।

प्रकृति– (1)स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰प॰, (2) इण् गतौ, अदा॰प॰, (3) कृ करणे, तना॰ उ॰, (4) वद् व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰प॰, (5) चर् गतौ, भ्वा॰प॰, (6) हु दानाऽऽदानयोः, जुहो॰ प॰,

(7) तम् काङ्क्षायां खेदे च, दिवा॰प॰, (8) जन् प्रादुर्भावे, दिवा॰आ॰।

प्रयोग– (1) सम् - स्था + तोसुन् = **संस्थातो**: 'समाप्तिपर्यन्त' आ संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति 'यज्ञ की समाप्तिपर्यन्त बैठते हैं'।

(2) उत् - इ (इण्) + तोसुन् = **उदेतो**: 'उगने तक'। सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण। 'पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः' (का॰सं॰ 8/3)।

(3) अप-आ-कृ + तोसुन् = **अपाकर्तो**: 'हटाने के लिए'। सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व। 'पुरा वत्सानामपाकर्तोः'।

(4) प्र-वद् + तोसुन् = **प्रवदितो**: 'बोलने के लिए', आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्-आगम। 'पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम्'।

(5) प्र-चर् + तोसुम् = **प्रचरितो**: 'प्रचार करने के लिए', आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्-आगम। 'पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम्',

(6) हु + तोसुन् = **होतो**: 'हवन करने के लिए'। सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण। 'आ होतोरप्रमत्तास्तिष्ठन्ति'।

(7) तम् + तोसुन् = **तमितो**: 'चाहने के लिए'। आर्धधातुकस्येड्॰ 7.2.35 से इट्-आगम। आ तमितोरासीत'।

(8) वि-जन् + तोसुन् = **विजनितो**: 'जन्म लेने के लिए' आर्धधातुक॰ 7.2.35 से इट् आगम। 'आ विजनितोः सम्भवाम'।

सम्बद्धस्थल–

(1) अव्ययप्रतिषेधे तोसुन्कसुनोरप्रतिषेधः (वा॰ 2.3.69) अव्यय के प्रयोग में 'न लोकाव्यय॰' 2.3.69 के द्वारा उपदिष्ट षष्ठी का प्रतिषेध तोसुन् एवं कसुन् प्रत्ययान्त अव्यय के प्रयोग में नहीं

मानना चाहिए। अर्थात् तोसुन् एवं कसुन् प्रत्ययान्त के प्रयोग में सम्भावित षष्ठी विभक्ति होती है।

प्रयोग– पुरा **सूर्यस्योदेतोराधेयः** (उत् + इ + तोसुन् = उदेतोः, भावलक्षणे॰ 3.4.16 से तोसुन्, कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से 'सूर्यस्य' में षष्ठीविभक्ति, न लोकाव्यय॰ 2.3.69 से प्राप्त षष्ठी निषेध का यह वार्तिक प्रतिप्रसव है)।

त्वन्

त्वन् = त्व। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 अथवा पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से गुण।

(2) झलादि। अतः चोः कुः 8.2.30 से कुत्व।

(3) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः 3.4.14

कृत्य-अर्थ में वेदविषय में धातु से 'त्वन्'।

अनु॰– छन्दसि 3.4.6

अर्थ– (1) कृत्य– अर्थ में अर्थात् योग्य कर्ता के गम्यमान होने पर (अर्हे कृत्यतृचश्च 3.3.169)।

(2) भाव और कर्म वाच्य में (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70)

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– कृ (डुकृञ्) करणे।

प्रयोग– कृ + त्व = **कर्त्वम्** 'करना चाहिए'। (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'कर्त्वं हविः' (अथर्व॰ 1.4.3)।

थकन्

थकन् = थक। हलन्त्यम्। 1.3.3 से न् की इत् संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव- (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि- गस्थकन् 3.1.146

गै धातु से 'थकन्', यदि शिल्पी कर्ता वाच्य हो।

अनु०- शिल्पिनि (3.1.145)।

अर्थ- शिल्पी

वाच्य- कर्ता

प्रकृति- गै शब्दे, भ्वा० प०।

प्रयोग- गायति = गै + थकन् = **गाथकः** 'गवैया' (आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से धातु के ऐकार को आत्व)।

स्त्रीत्व में **गाथिका** 'गानेवाली' (अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्, प्रत्ययस्थात्० 7.3.44 से इत्व)।

नङ्

नङ् = न। हलन्त्यम् 1.3.3 से ङ् की इत् संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) ङित् (1.3.3)।

(3) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम का निषेध।

1. विधि– यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् 3.3.90

यज्, याच् आदि धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में 'नङ्'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक संज्ञा, भाव।

प्रकृति– (1) यज् देवपूजासंगतिकरणयजनदानेषु, भ्वा॰ उ॰

(2) याच् याच्ञायाम्, भ्वा॰उ॰

(3) यत् प्रयत्ने, भ्वा॰ आ॰

(4) विच्छ् भाषायां दीप्तौ च, चुरा॰उ॰

(5) प्रच्छ् ज्ञीप्सायाम्, तुदा॰ प॰

(6) रक्ष् पालने, भ्वा॰ प॰

प्रयोग– (1) यज् + नङ् = **यज्ञः** (स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.39 से न् को शुत्व से ञ्)।

(2) याच् + नङ् + टाप् (स्त्रीत्वं लोकात्) = **याच्ञा** 'माँगना'। (स्तोः श्चुना॰ 8.4.39 से न् को श्चुत्व से ञ्)।

(3) यत् + नङ् = **यत्नः** 'प्रयास'।

(4) विश् + नङ् = **विश्नः** 'नक्षत्र'

(5) प्रच्छ + नङ् = **प्रश्नः**।

(6) रक्ष् + नङ् = **रक्ष्णः** 'रक्षा करना' (ष्टुना ष्टुः 8.4.40 से न् को ष्टुत्व से ण्)।

"याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा" –मेघदूतम्, पू. मे. 6

नजिङ्

नजिङ् = नज्। हलन्त्यम् 1.3.3 से ङ् की और उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इ की इत्-संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114),
(2) ङित् (1.3.3)। अतः क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध।
(3) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम का निषेध।

1. विधि– स्वपितृषोर्नजिङ् 3.2.172
स्वप् तथा तृष् धातुओं से तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमान काल में 'नजिङ्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.129), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) स्वप् (ञिष्वप्) शयने, अदादि, प॰।
(2) तृष् (ञितृषा) पिपासायाम्, दिवा॰,प॰।

प्रयोग– (1) स्वपनं शीलमस्य = स्वप् + नजिङ् = स्वप्नज्– **स्वप्नक्** 'सोने के स्वभाववाला'। 'स्वप्नक् शयालुर्निद्रालुः' –अमर॰ 3.1.33
(2) तृषा शीलमस्य = तृष् + नजिङ् = तृष्णज्– **तृष्णक्** 'अधिक प्यासा, लोभी' (रषाभ्यां नो णः 8.4.1 से णत्व)। 'लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक्' –अमर॰ 3.1.22

2. विधि– धृषेश्चेति वक्तव्यम् (वा॰ 3.2.172)
धृष् धातु से भी तच्छीलादि कर्ता के गम्य होने पर वर्तमान काल में 'नजिङ्'।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– धृष् प्रागल्भ्ये, स्वादि, पः।

प्रयोग– धर्षणं शीलम् अस्य = धृष् + नजिङ् = धृष्णज्– **धृष्णक्** 'अविनीत, ढीठ' (रषाभ्यां नो णः समानपदे 8.4.1 से णत्व)। 'धृष्टे धृष्णग्वियातश्च' –अमर॰ 3.1.25

नन्

नन् = न। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की इत्-संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुक शेषः 3.4.114)।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

(3) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम का निषेध।

1. विधि– स्वपो नन् 3.3.91

स्वप् धातु से भाव में 'नन्'।

अनु॰– भावे (3.3.18)।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– स्वप् (ञिष्वप्) शयने, अदा॰प॰।

प्रयोग– स्वप् + नन् = **स्वप्नः** 'सोना'।

'स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु' (अभि॰शा॰ 6.9)

नि

नि = नि।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

(2) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम का निषेध।

1. विधि– ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः (वा॰ 3.3.94)

ग्ला आदि धातुओं से भाव तता कर्तृभिन्न कारक में स्त्रीलिङ्ग में 'नि'।

अनु॰– अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18), स्त्रियाम् (3.3.94)

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक, भाव।

प्रकृति– (1) ग्ला (ग्लै) हर्षक्षये, भ्वा॰ प॰,

(2) म्ला (म्लै) हर्षक्षये, भ्वा॰ प॰,

(3) ज्या वयोहानौ, क्र्या॰,प॰,

(4) हा (ओहाक्) त्यागे, जुहो॰, प॰।

प्रयोग– (1) ग्ला + नि = **ग्लानिः** 'अवसाद'।

'मनश्च ग्लानिमृच्छति' (मनु॰ 1.53)

(2) म्ला + नि = **म्लानिः** 'मुर्झाना, कुम्हलाना'

(3) ज्या + नि = **ज्यानिः** 'वयोहानि'। 'ज्यानिर्जीर्णौ' – अमर॰ 3.2.9

(4) हा + नि = **हानिः** 'परित्याग'

'क्वचित् स्फुटालङ्कारविरहेऽपि न काव्यत्वहानिः' (का॰प्र॰ 1)

मनिन्

मनिन् =मन्। हलन्त्यम् 1.3.3 से न् की और उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

(3) नान्त। अतः ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5 से स्त्रीत्व में ङीप् की प्राप्ति, किन्तु 'मन्' होने के कारण मनः 4.1.11 से ङीप् का निषेध हो जाता है।

(4) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम का निषेध।

1. विधि– आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च 3.2.74

वेदविषय में आकारान्त धातुओं से सुबन्त उपपद रहते 'मनिन्' (और 'क्वनिप्', 'वनिप्', तथा 'विच्' भी)।

अनु॰– छन्दसि, विच् (3.2.73), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त धातुसामान्य, यथा– सु– दा (डुदाञ्) दाने, जुहो॰ उ॰।

प्रयोग– शोभनं ददाति = सु– दा + मनिन् = सुदामन्– **सुदामा** 'जो उदारतापूर्वक देता है'।

2. विधि– अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते 3.2.75

आकारान्त धातुओं से भिन्न धातुओं से भी 'मनिन्' (और 'क्वनिप्', 'वनिप्' तथा 'विच्')। यहाँ 'छन्दसि' (3.2.73) की अनुवृत्ति नहीं आती है। अतः इनका प्रयोग लोक में होता है।

अनु॰– मनिन्क्वनिब्वनिपः (3.2.74), विच् (3.2.73)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त-उपपद अथवा उपपद के बिना धातुसामान्य, यथा– (1) सु–शृ हिंसायाम्, क्र्या॰ प॰, (2) पा रक्षणे, अदा॰प॰।

प्रयोग– (1) शोभनं शृणाति सु-शृ + मनिन् = सुशर्मन्– **सुशर्मा** 'हिंसक' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)

(2) पाति = पा + मनिन् = पामन्– **पामा** 'रक्षक'।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) मनः 4.1.11

मन्-अन्त प्रातिपदिक से 'ङीप्' नहीं।

सम्ब॰ (2) डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् 4.1.13

मन्नन्त प्रातिपदिक से विकल्प से 'डाप्' (स्त्रीत्व में)।

प्रयोग– पामन् + डाप् = पामा, डाप् के अभाव में पामन्।

यत्

यत् = य। हलन्त्यम् 1.3.3 से त् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से इत् का लोप।

स्वभाव–

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः
   (i) सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु के इगन्ताङ्ग को गुण, यथा– जि + यत् = जेयम्।
   (ii) अस्तेर्भूः 2.4.52 से अस् को भू आदेश,
   अस् + यत् = भू + यत् = भव्यम्।
   (iii) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54 से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश (ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते, वा॰ 2.4.54 से ख्या को ख्शा आदेश भी)।
   चक्षि + यत् = ख्येयम्– ख्शेयम्।
   (iv) अजेर्व्यघञपोः 2.4.56 से अज् को वी आदेश।
   अज् = वी + यत् = वेयम्।
2. यादि। अतः वान्तो यि प्रत्यये 6.1.79 से ओकारान्त धातु को अव् आदेश, यथा–
   लू + यत् = लो + यत् = लव्यम्।
   धातोस्तन्निमित्तस्यैव 6.1.80 से यादि प्रत्यय 'यत्' को निमित्त मानकर आये ओकार को अव्- आदेश, यथा– लो + यत् = लव्यम्।
3. यत्। अतः यतोऽनावः 6.1.213 से दो स्वरों वाला यत्-प्रत्ययान्त शब्द का आदि स्वर उदात्त। यथा– चेयम्, जेयम् (आदि स्वर उदात्त)
4. कृत्य। कृत्याः 3.1.95 से यत् की कृत्य संज्ञा। अतः
   (1) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 से भाव एवं कर्म में यत्, यथा– त्वया पुष्पाणि चेयानि।
   (2) प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च 3.3.163 से प्रैष, अतिसर्ग तथा कारणीभूतकालसम्प्राप्ति अर्थों में धातु से

कृत्य (और लोट् भी)।

(3) लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके 3.3.164 से प्रैष आदि अर्थ के गम्यमान होने पर ऊर्ध्वमौहूर्तिक अर्थ में वर्तमान धातुओं से कृत्य (और लिङ् भी)।

(4) अर्हे कृत्यतृचश्च 3.3.169 से योग्य कर्ता के वाच्य अथवा गम्यमान होने पर धातु से कृत्य, (तृच् तथा लिङ् भी)।

(5) कृत्याश्च 3.3.171 से आवश्यक तथा आधमर्ण्य विशिष्ट कर्ता के वाच्य होने पर धातु से कृत्य।

(6) शकि लिङ् च 3.3.172 से शक्-धात्वर्थ उपाधिक धात्वर्थ में धातु से कृत्य (और लिङ् भी)।

1. विधि– अचो यत् 3.1.97
अजन्त धातु से 'यत्'।

अर्थ– योग्य, औचित्य अर्थ। कर्म या भाववाच्य।

प्रकृति– अजन्त धातु, यथा– पा पाने, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– पा + यत् = **पेयम्**। ईद्यति 6.4.65 से धातु के आकार को ईकार, सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से ईकार को गुण से एकार।

विशेष– हलन्त धातु से ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से ण्यत् का विधान है। किन्तु जो धातु मूलतः अजन्त है और प्रक्रिया में आकर हलन्त बन जाती है, वैसी धातु से भी यत् का विधान (ण्यत् का नहीं) करने हेतु प्रस्तुत सूत्र में 'अचः' का कथन है। यथा– 'दो तनूकरणे' धातु से इच्छार्थक सन्–दित्स (सनि मीमाघु॰ 7.4.54 से इत्व), सनाद्यन्ता धातवः 3.1.32 से धातु संज्ञा, अजन्त होने से योग्य अर्थ में 'अचो यत्' सूत्र से यत्– दित्स-य। अतो लोपः 6.4.48 से सकार के अकार का लोप– दित्स्-य। इस समय धातु हलन्त है तथापि अचो यत् 3.1.97 सूत्र में 'अचः' के कथन से दित्स् से यत् ही होगा, ण्यत् नहीं– **दित्स्यम्** 'काटने की इच्छा करने योग्य'।

2. विधि– तकिशसिचतिजनीनामुपसंख्यानम् वा॰ 3.1.97
तक्, शस्, चत् और जन् धातु से भी 'यत्'।
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।
अर्थ– योग्य / औचित्य, वाच्य-कर्म अथवा भाव।
प्रकृति– 1. तक् हसने सहने च, भ्वा॰ पर॰।
2. शस् हिंसायाम्, भ्वा॰ पर॰।
3. चत् याचने, भ्वा॰पर॰।
4. जन् प्रादुर्भावे, दिवा॰ आत्म॰।
प्रयोग– 1. तक् + यत् = **तक्यम्** 'हँसने या सहने योग्य'
2. शस् + यत् = **शस्यम्** 'हिंसा योग्य'
3. चत् + यत् = **चत्यम्** 'माँगने योग्य'
4. जन् + यत् = **जन्यम्** 'जन्म लेने योग्य'
विशेष– यदि तक् आदि धातुओं से यत् का विधान नहीं होता तब उत्सर्गतः ण्यत् होकर धातु की उपधा वृद्धि के कारण ताक्य, शास्य जैसे अनिष्ट प्रयोग हो जाते।

3. विधि– हनो वा वध च वा॰ 3.1.97
हन् धातु से विकल्प से 'यत्' एवं हन् को वध् आदेश।
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।
प्रकृति– हन् हिंसागत्योः, अदा॰पर॰।
प्रयोग– हन् + यत् = **वध्यः** 'मारने योग्य'।
वार्तिक के द्वारा यत् एवं हन् को वध्– आदेश।
पक्ष में ण्यत्– हन् + ण्यत् = घात्यः।

4. विधि– पोरदुपधात् 3.1.98
अकार उपधावाली पवर्गान्त धातु से 'यत्'।
अनु॰– यत् 3.1.97
अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।
अर्थ– योग्य/औचित्य, वाच्य-कर्म अथवा भाव।
प्रकृति– पवर्गान्त एवं अकार उपधावाली धातु, यथा–

1. शप् आक्रोशे, भ्वा॰,दिवा॰, उभ॰,
2. जप् व्यक्तायां वाचि मानसे च, भ्वा॰पर॰।

प्रयोग– 1. शप् + यत् = **शप्यम्** 'शाप के योग्य'।
2. जप् + यत् = **जप्यम्** 'जपने योग्य'।

विशेष– 1. सूत्र में 'पोः' (पवर्गान्त से)– ऐसा कहने से पच् + ण्यत् = पाक्यम् आदि में यत् नहीं हुआ।
2. 'अदुपधात्' (ह्रस्व अकार उपधावाली धातु से)– ऐसा कहने से कुप् + ण्यत् = कोप्यम्, गुप् + ण्यत् = गोप्यम् आदि प्रयोगों में यत् नहीं हुआ। साथ ही– आप् + ण्यत् = आप्यम् में भी यत् नहीं हुआ, क्योंकि 'आप्' धातु की उपधा में 'आकार' है।

5. विधि– शकिसहोश्च 3.1.99
शक् तथा सह् धातुओं से भी 'यत्'।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– ॠहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– योग्य/औचित्य, वाच्य– कर्म अथवा भाव।

प्रकृति– 1. शक् शक्तौ, स्वा॰ पर॰, 2. सह् (षह्) मर्षणे, भ्वा॰ आत्म॰।

प्रयोग– 1. शक् + यत् = शक्यम् 'हो सकने योग्य'।
2. सह् + यत् = सह्यम् 'सहन करने योग्य'।

6. विधि– गदमदचरयमश्चानुपसर्गे 3.1.100
उपसर्गरहित गद्, मद्, चर् और यम् धातुओं से भी 'यत्'।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– ॠहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– योग्य/औचित्य, वाच्य– कर्म अथवा भाव।

प्रकृति– उपसर्गरहित 1. गद् व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰पर॰, 2. मद् हर्षे, दिवा॰पर॰ 3. चर् गतिभक्षणयोः भ्वा॰पर॰, 4. यम् उपरमे, भ्वा॰पर॰।

प्रयोग– 1. गद् + यत् = **गद्यम्** 'बोलने योग्य'।
2. मद् + यत् = **मद्यम्** 'हर्ष करने योग्य'।
3. चर् + यत् = **चर्यम्** 'खाने योग्य',
4. यम् + यत् = **यम्यम्** 'शान्त करने योग्य'।

विशेष– 1. सूत्र में 'अनुपसर्गे' के कथन से उपसर्ग के रहते यत् नहीं– प्र – गद् + ण्यत् = प्रगाद्यम्
2. यम् धातु पवर्गान्त एवं अदुपध है, अतः इससे पोरदुपधात् 3.1.98 से यत् हो सकता था, इस सूत्र में उसकी परिगणना करने से यह नियम बना– उपसर्ग के रहने पर भी पोरदुपधात् 3.1.98 से यत् न होगा– प्र-यम् + ण्यत् = प्रयाम्यम्।

7. विधि– चरेराङि चाऽगुरौ (वा॰ 3.1.100)
आ + चर् धातु से 'गुरु' से अतिरिक्त अर्थ में यत्। चर् धातु से पूर्व उपसर्ग के रहने पर गदमद॰ 3.1.100 के अनुसार यत् नहीं होता अपितु ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से) होता। यह वार्त्तिक उसका अपवाद है।

प्रयोग– आ - चर् + यत् = **आचर्यः** देशः 'जाने योग्य देश'। 'गुरु' अर्थ वाच्य होने पर–
आ– चर् + ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124) = **आचार्यः** गुरुः 'जिनके अनुसार अचरण करना चाहिए ऐसे गुरु'। अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि। 'उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।' –मनु॰ 2.140

8. विधि– अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु 3.1.101
गर्ह्य, पणितव्य और अनिरोध अर्थों में क्रमशः अवद्य, पण्य तथा वर्या– इन यत्–प्रत्ययान्तों का निपातन।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– वदः सुपि क्यप् च 3.1.106 से न-वद् से प्राप्त क्यप्, ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् तथा एतिस्तुशास्॰ 3.1.109 से प्राप्त क्यप् का।

अर्थ– गर्ह्य (निन्दनीय), पणितव्य (खरीदने योग्य), अनिरोध (बिना बाधा सेवन करने योग्य)।

प्रकृति– 1. न-वद् व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰पर॰,
2. पण् व्यवहारे (खरीदना), भ्वा॰पर॰,
3. वृ वरणे, स्वा॰उभ॰।

प्रयोग– 1. अ– वद् + यत् = **अवद्यम्** 'अवद्यं पापम्' निन्दनीय पाप।
2. पण् + यत् = **पण्या** गौः 'खरीदने योग्य गाय'।
3. वृ + यत् = **वर्या**। शतने वर्या कन्या अर्थात् सौ में से किसी के द्वारा वरण करने योग्य कन्या। 'अथ स्वयंवरा, पतिंवरा च वर्या च' –अमर॰ 2.6.7
सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

विशेष– गर्ह्य आदि न हो तो यथायोग्य ण्यत् एवं क्यप् होंगे। यथा–
1. न–वद् + क्यप् (वदः सुपि क्यप् च 3.1.106) = **अनुद्यम्** 'बोलने के लिए अयोग्य'।
2. पण् + ण्यत् = **पाण्यम्** 'स्तुति के योग्य'।
3. वृ + क्यप् + टाप् = **वृत्या** 'वरण करने योग्य'।

9. विधि– वह्यं करणम् 3.1.102
करण कारक में 'वह्य'– इस यत्-प्रत्ययान्त का निपातन। कृत्य प्रत्यय तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 सूत्र से भाव एवं कर्म में ही होते हैं। यहाँ यह शब्द करण में निपातित है।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– करण कारक।

प्रकृति– वह् प्रापणे, भ्वा॰उभ॰।

प्रयोग– वहति अनेन = वह् + यत् = **वह्यं** शकटम्। 'ढोनेवाली बैलगाड़ी'।

विशेष– करण कारक वाच्य न हो तो यथाप्राप्त ण्यत्–वाह्यम्।

10. विधि– अर्यः स्वामिवैश्ययोः 3.1.103
स्वामी और वैश्य वाच्य हों तो 'अर्य'– इस यत्- प्रत्ययान्त का निपातन।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– स्वामी अथवा वैश्य। वाच्य–कर्म।

प्रकृति– ऋ गतौ, भ्वा॰पर॰

प्रयोग– अर्यते गम्यते वा इति = ऋ + यत् = **अर्यः** स्वामी अथवा वैश्य। सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

विशेष– 1. स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च वक्तव्यम् वा॰ 3.1.102 से स्वामी-वाचक 'अर्य' का अन्त उदात्त।
2. स्वामी और वैश्य अर्थ न हो तो यथाप्राप्त ण्यत्– **आर्यः** ब्राह्मणः।

11. विधि– उपसर्या काल्या प्रजने 3.1.104
प्रजन अर्थात् प्रथम गर्भग्रहण का समय जिसका हो गया है– इस अर्थ में 'उपसर्या'– इस यत्–प्रत्ययान्त का निपातन।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– प्रजन में अर्थात् प्रथम गर्भग्रहण के विषय में काल्या अर्थात् जिसका समय हो गया है। वाच्य–कर्म।

प्रकृति– उप-सृ गतौ, भ्वा॰पर॰।

प्रयोग– उप-सृ + यत् + टाप् = **उपसर्या** गौः 'ऐसी गाय जिसका प्रथम बार गर्भग्रहण करने का समय आ गया हो'। सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के ऋकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व। स्त्रीत्व के करण अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्।

विशेष– 'प्रजने काल्या' अर्थ न हो तो यथाप्राप्त ण्यत्– **उपसार्या** अयोध्या 'अयोध्या के निकट जाना चाहिए'। अचो ञ्णिति 7.2.115 से वृद्धि एवं उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

12\. विधि– अजर्यं संगतम् 3.1.105

सङ्गत अर्थात् मित्रता अर्थ में 'अजर्य'– ऐसा यत्–प्रत्ययान्त निपातित होता है।

अनु॰– यत् 3.1.97

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– सङ्गत अर्थात् मैत्री। वाच्य-कर्ता (निपातन से)

प्रकृति– न-जॄ वयोहानौ, दिवादि, पर॰।

प्रयोग– न जीर्यति = अ-जॄ + यत् = **अजर्यम्।**

सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

अजर्यम् आर्यसङ्गतम् 'कभी न पुरानी होनेवाली आर्यसङ्गति। निपातन से कर्तृवाच्य में यत्। 'मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टम्' – रघु॰ 18.7

विशेष– 'सङ्गत' अर्थ न हो तो कर्तृवाच्य में ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से तृच्– अजरिता कम्बलः 'कम्बल जो फटता नहीं है'।

13\. विधि– वदः सुपि क्यप् च 3.1.106

अनुपसर्ग वद् धातु से सुबन्त उपपद होने पर 'क्यप्' प्रत्यय होता है और चकार से 'यत्' प्रत्यय भी।

अनु॰– यत् (3.1.97), अनुपसर्गे (3.1.100 से मण्डूकप्लुति से)।

अपवाद– ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124 से प्राप्त ण्यत् का।

अर्थ– भाववाच्य।

प्रकृति– उपसर्गरहित किन्तु सुबन्त उपपद से युक्त वद् व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰पर॰, यथा– ब्रह्म–वद्।

प्रयोग– ब्रह्मणः वदनम् = ब्रह्मन् ङस्-वद् + यत् = **ब्रह्मवद्यम्** 'ब्रह्म का कथन'। कृत्तद्धितसमासाश्च 1.2.46 से प्रातिपदिक संज्ञा होने से सुपो धातुप्रातिपदिकयोः 2.4.71 से ङस् विभक्ति का लोप, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.7 से ब्रह्मन् शब्द के नकार का लोप।

पक्ष में क्यप्– **ब्रह्मोद्यम्।**

विशेष– 1. 'सुपि' के कथन से सुबन्त उपपद के अभाव में यथाप्राप्त ण्यत्– वद् + ण्यत् = **वाद्यम्**।

2. 'अनुपसर्गे' के कथन से उपसर्ग के रहने पर यथाप्राप्त ण्यत्–प्र-वद् + ण्यत् = **प्रवाद्यम्**।

14. विधि– क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ 3.1.130

क्रतु अर्थ में यत्प्रत्ययान्त 'कुण्डपाय्य' का निपातन (ण्यत्प्रत्ययान्त 'संचाय्य' का भी निपातन)।

अनुवाद– ण्यत् 3.1.124

अर्थ– क्रतु (यज्ञविशेष)। वाच्य– अधिकरण।

प्रकृति– तृतीयान्त कुण्ड शब्द के उपपद के रूप में रहने पर पा पाने, भ्वा॰पर॰।

प्रयोग– कुण्डेन पीयते अस्मिन् सोमः = कुण्ड-पा + यत् = **कुण्डपाय्यः** क्रतुः 'जिस यज्ञ में कुण्ड के द्वारा सोम पिया जाता है वह'। अधिकरण में यत् प्रत्यय और धातु के अन्त अवयव में युक् का आगम निपातन से।

विशेष– 1. क्रतु अर्थ न हो तो यह निपातन नहीं, यथा– कुण्डेन पीयते = कुण्ड-पा + ल्युट् = **कुण्डपानम्**।

15. विधि– भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा 3.4.68

कर्ता में भव्य, गेय, जन्य– ये तीन यत्प्रत्ययान्त (प्रवचनीय, उपस्थानीय– दो अनीयर् प्रत्ययान्त एवं आप्लाव्य, आपात्य– दो ण्यत्प्रत्ययान्त) शब्दों का विकल्प से निपातन।

अनु॰– कर्तरि 3.4.67

अपवाद– तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 से भाव एवं कर्म में प्राप्त यत् प्रत्यय का विकल्प से अपवाद एवं कर्ता में विधान।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– 1. भू सत्तायाम्, भ्वादि पर॰ 2. गै शब्दे भ्वा॰ पर॰, 3. जन् प्रादुर्भावे, दिवादि पर॰।

प्रयोग– 1. भवति = भू + यत् = **भव्यम्** 'होनेवाला'।

सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, वान्तो यि प्रत्यये

6.1.79 से अवादेश। 'भव्यमुख्याः समारम्भाः' – रघु॰ 17.53

2. गायति = गै + यत् = **गेयः**। आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से ऐकार को आकार आदेश, ईद्यति 6.4.65 से आकार को ईकार आदेश, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से ईकार को गुण से एकार। गेयः माणवकः साम्नाम् (सामवेद के मन्त्रों का गान करनेवाला लड़का)।

3. जायते = जन् + यत् = **जन्यः** 'पैदा होनेवाला'

पक्ष में, तयोरेव॰ 3.4.70 से भाव अथवा कर्म में यत्– भव्यम् अनेन, गेयानि माणवकेन सामानि, जन्यम् अनेन।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) अर्यक्षत्रियाभ्यां वा (वा॰ 4.1.49)

अर्य (और क्षत्रिय) शब्द से स्त्रीत्व में ङीष् तथा आनुक्–आगम का विधान विकल्प से अपेक्षित है।

प्रकृति– ऋ + यत् = अर्य 'स्वामी' अथवा 'वैश्य' (अर्यः स्वामिवैश्ययोः 3.1.103 से निपातन से यत्)

प्रयोग– अर्यस्य स्त्री = अर्य + ङीष् = **अर्याणी,** ङीष् के पक्ष में आनुक्-आगम।

ङीष् के अभाव पक्ष में– अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्– **अर्या**।

सम्ब॰ (2) क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे 6.1.81

'सकना' अर्थ में क्षय्य और जय्य– इन दो यत्प्रत्ययान्तों का निपातन।

प्रकृति– 1. क्षि क्षये, स्वादि पर॰, 2. जि जये अभिभवे च, भ्वादि, पर॰।

प्रयोग– क्षेतुं शक्यः = क्षि + यत् = **क्षय्यः** 'क्षय के योग्य'।

जेतुं शक्यः = जि + यत् = **जय्यः** 'जितने योग्य'।

उभयत्र अचो यत् 3.1.97 से यत्, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, प्रस्तुत सूत्र से एकार के स्थान पर अय्-आदेश निपातन से।

विशेष– शक्य अर्थ न हो तो यत्, गुण– **क्षेयं** पापम्, **जेयः** वृषलः 'वृषल को जितना चाहिए'।

सम्ब॰ (3) क्रय्यस्तदर्थे 6.1.82

क्री धातु के अर्थ (खरीदना) में यत्प्रत्ययान्त 'क्रय्य' शब्द का निपातन।

प्रकृति– क्री द्रव्यविनिमये, क्र्यादि उभ॰।

प्रयोग– क्री + यत् = **क्रय्यः** 'खरीदने के लिए दुकान में पसारा गया सामान क्रय्य है'– यथा– क्रय्यः कम्बलः 'पसारा गया कम्बल'। अचो यत् 3.1.97 से यत्, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के ईकार को गुण से एकार, निपातन से एकार को अय्-आदेश।

विशेष– यदि उक्त धात्वर्थ न हो तो यथाप्राप्त यत्, गुण–**क्रेयं** धान्यम् 'खरीदने योग्य धान्य'।

सम्ब॰ (4) कृत्यानां कर्तरि वा 2.3.71

कृत्य प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी, कर्म में नहीं। कृत्य होने के कारण यह नियम यत्प्रत्ययान्त के साथ लागू होता है।

प्रयोग– भवतः मनः जेयम्– भवता मनः जेयम्। जेयम्– इस यत्प्रत्ययान्त के योग में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 सूत्र से कर्ता भवत् से प्राप्त नित्य षष्ठी का इस सूत्र से वैकल्पिक प्रयोग होता है– भवतः। पक्ष में, कर्तृकरणयोस्तृतीया 2.3.18 सूत्र से तृतीया– भवता।

सम्ब॰ (5) कृत्यैर्ऋणे 2.1.46

ऋण का अर्थ रहने पर कृत्य प्रत्ययान्तों के साथ सप्तम्यन्त पद का तत्पुरुष समास होता है। उसमें भी 'यत्प्रत्ययान्तेनैव समास इष्यते'– इस न्यास वचन के अनुसार केवल यत्प्रत्ययान्त के साथ यह समास होता है।

प्रयोग– मासे देयम् = **मासेदेयम्** ऋणम् 'एक महीने में चुकाने योग्य ऋण'। इसमें दा + यत् = देयम्– यत् प्रत्ययान्त है। अतः सप्तमी तत्पुरुष समास हुआ। इसीप्रकार संवत्सरे देयम् ऋणम् = संवत्सरेदेयम् ऋणम्।

विशेष– यदि ऋण अर्थ न हो तो यह समास नहीं होता– मासे देया भिक्षा 'एक महीने में देने योग्य भीख'।

सम्ब॰ (6) कृत्यैरधिकार्थवचने 2.1.33

अधिकार्थवचन के रहने पर कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के साथ कर्ता एवं करण में विहित तृतीया से युक्त शब्दों का विकल्प से तत्पुरुष समास होता है। 'कृत्यग्रहणे यण्ण्यतोर्ग्रहणं कर्तव्यम्' वा॰ 2.1.33 के अनुसार सूत्र में कृत्य शब्द से यत् एवं ण्यत् इन दो कृत्य प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है, दूसरे तव्य आदि का नहीं। किसी की स्तुति या निन्दा से कुछ बढ़कर अधिक बात बोल देना 'अधिकार्थवचन' है।

प्रयोग– काकैः पेया = **काकपेया** नदी 'इतने थोड़े जलवाली नदी, जिसे कौवे भी पी डालें'। नदी के कम जल को लेकर बढ़ा चढ़ाकर कहने के इस वाक्य में पा + यत् = पेया– इस यत्प्रत्ययान्त के साथ काकैः का तत्पुरुष समास होता है।

विशेष– वार्त्तिककार के कथनानुसार उक्त सूत्र में केवल यत् एवं ण्यत् का ही ग्रहण है, अतः तव्य आदि प्रत्यय के रहने पर यह समास नहीं होता– काकैः पातव्या।

सम्ब॰ (7) आश्चर्यमनित्ये 6.1.147

अद्भुतत्व को बताने हेतु यत्प्रत्ययान्त 'आश्चर्य' का निपातन।

प्रयोग– आ–चर् धातु से चरेराङि चाऽगुरौ (वा॰ 3.1.100) से यत्, प्रस्तुत सूत्र से निपातन से चर् के आदि में सुट् (स्) आगम– आश्चर्यम्। **आश्चर्यं** यदि स भुञ्जीत। 'वह खा ले तो आश्चर्य है'।

विशेष– अद्भुतत्व अर्थ न हो तो यह सुट् का निपातन नहीं– आचर्यं कर्म शोभनम् 'अच्छा काम करना चाहिए'।

सम्ब॰ (8) ईद्यति 6.4.65

यत्–प्रत्यय के परे अकारान्त धातु को ईकार-आदेश।

प्रयोग– दा + यत् = देयम्। अचो यत् 3.1.97 से यत्, प्रस्तुत सूत्र से धातु के आकार को ईकार आदेश, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से उस ईकार को गुण से एकार।

युच्

युच्= अन। हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की इत् संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को अन-आदेश।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) चित् (1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से युच्-प्रत्ययान्त की उदात्त संज्ञा।

1. विधि– चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् 3.2.148

तच्छील आदि कर्ता हो तो वर्तमानकाल में अकर्मक चलनार्थक एवं शब्दार्थक धातुओं से 'युच्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छील आदि)।

प्रकृति– (1) चलनार्थक धातु, यथा– चल् कम्पने, भ्वा॰प॰, चुप् मन्दायां गतौ, भ्वा॰प॰।

(2) शब्दार्थक धातु, यथा– शब्द् उपसर्गादाविष्कारे च, चुरा॰उ॰, रु शब्दे, अदादि, पर॰

प्रयोग– (1) चलति = चल् + युच् = **चलनः** 'चलनेवाला'।

चोपति = चुप् + युच् = **चोपनः** 'धीरे धीरे चलनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण)।

(2) शब्दयति = शब्द् + युच् = **शब्दनः** 'शब्द करनेवाला'।

रौति = रु + युच् = **रवणः** 'शब्द करनेवाला'।

(सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)।

विशेष– शब्दार्थक धातु को अकर्मक होना चाहिए। अतः विद्यां पठिता। यहाँ सकर्मक शब्दार्थक पठ् धातु से ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से 'तृच्' प्रत्यय हुआ है।

'उत्कण्ठाबन्धनैः शुभ्रं रवणैरम्बरं ततम्' (भट्टि॰ 7.14)

2. विधि– अनुदात्तेतश्च हलादेः 3.2.149

अनुदात्तेत् हलादि अकर्मक धातु से भी तच्छीलादि कर्ता वाच्य हो तो वर्तमानकाल में 'युच्'।

अनु॰– अकर्मकात्, युच् (3.2.148), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता (तच्छील आदि)।

प्रकृति– अनुदात्तेत् हलादि अकर्मक धातुसामान्य, यथा– वृतु वर्तने, भ्वा॰ आ॰, वृध् वृद्धौ, भ्वा॰ आ॰।

प्रयोग– वर्तते = वृत् + युच् = **वर्तनः** 'बरतनेवाला'।

वर्धते = वृध् + युच् = **वर्धनः** 'बढ़नेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधा गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

विशेष (1) धातु का अनुदात्तेत् होना अपेक्षित है, अतः 'भविता' (भू + तृच्) में 'युच्' नहीं।

(2) धातु को हलादि होना चाहिए, अतः 'एधिता' (एध् + तृच्) में 'युच्' नहीं।

(3) धातु को अकर्मक होना चाहिए, अतः 'वसिता वस्त्रम्' (वस् + तृच्) में 'युच्' नहीं।

3. विधि– जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः 3.2.1 तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमानकाल में जु आदि धातुओं से 'युच्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123), युच् (3.2.148)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) जु (सौत्र धातु अर्थात् धातुपाठ में पठित नहीं, केवल इसी प्रयोग के लिए यहीं पठित है),

(2) चङ्क्रम्य (यङन्त 'क्रम्' पादविक्षेपे, भ्वा॰ उ॰),

(3) दन्द्रम्य (यङन्त 'द्रम्' गतौ, भ्वा॰ पर॰),

(4) सृ गतौ, भ्वा॰ प॰, (5) गृध् अभिकाङ्क्षायाम्, दिवा॰ प॰, (6) ज्वल् दीप्तौ, भ्वा॰ प॰, (7) शुच् शोके, भ्वा॰ प॰, (8) लष् कान्तौ, भ्वा॰ उ, (9) पत् गतौ, भ्वा॰प॰, (10) पद् गतौ, दिवा॰ आ॰।

प्रयोग– (1) जु + युच् = **जवनः** 'गति करनेवाला', (सार्वधातु॰

7.3.84 से गुण)। 'तत् प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा' – रघु॰ 9.56

(2) चङ्क्रम्य + युच् = **चङ्क्रमणः** 'टेढ़ी-मेढ़ी गति करनेवाला' (यस्य हलः 6.4.49 से 'य' का लोप')।

(3) दन्द्रम्य + युच् = **दन्द्रमणः** 'टेढ़ी गति करनेवाला' (यस्य हलः 6.4.49 से 'य' का लोप)।

(4) सृ + युच् = **सरणः** 'गति करनेवाला' (सार्वधातु॰ 7.3.84 से गुण, रपरत्व)।

(5) गृध् + युच् = **गर्धनः** 'लालची' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, रपरत्व)।

(6) ज्वल् + युच् = **ज्वलनः** 'जलनेवाला'।

(7) शुच् + युच् = **शोचनः** 'शोक करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

(8) लष् + युच् = **लषणः** 'लालची' (अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)

(9) पत् + युच् = **पतनः** 'गिरनेवाला'।

(10) पद् + युच् = **पदनः** 'गति करनेवाला'।

4. विधि– क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च 3.2.151

क्रुधार्थक एवं मण्डनार्थक धातुओं से भी 'युच्', यदि तच्छीलादि कर्ता हों और वर्तमान काल हो।

अनु॰– युच् (3.2.148), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) क्रुधार्थक धातु, यथा– क्रुध् क्रोधने, दिवा॰ प॰, (2) मण्डनार्थक धातु, यथा– मण्ड् भूषायाम्, भ्वा॰प॰।

प्रयोग– (1) क्रुध् + युच् = **क्रोधनः** 'क्रोध करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)। 'यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रोणायनिः क्रोधनः' (वेणी॰ 3.31)।

(2) मण्ड् + युच् = **मण्डनः** 'सजानेवाला'

5. विधि– न यः 3.2.152

तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमानकाल में यकारान्त धातुओं से 'युच्' नहीं होता है।

प्रयोग– क्नूयिता 'शब्द करनेवाला' (क्नूय् + तृन्, 'तृन्' 3.2.135 से) क्ष्मायिता 'हिलानेवाला' (क्ष्माय् + तृन्, 'तृन्' 3.2.135 से)। इन यकारान्त धातुओं से अनुदात्तेतश्च हलादेः 3.2.149 से युच् की प्राप्ति का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

6. विधि– सूददीपदीक्षश्च 3.2.153

सूद् (क्षरणे, भ्वा॰ आ॰), दीप् (दीप्तौ, दिवा॰ आ॰), दीक्ष् (मौण्ड्ये, भ्वा॰ आ॰) धातुओं से भी 'युच्' नहीं होता है।

प्रयोग– सूद्– सूदिता 'क्षरित होनेवाला'; दीप्– दीपिता 'प्रदीप्त होनेवाला'; दीक्ष्-दीक्षिता 'दीक्षित होनेवाला'। इनमें अनुदात्तेतश्च हलादेः 3.2.149 से प्राप्त 'युच्' का यहाँ निषेध हुआ और 'तृन्' 3.2.135 से औत्सर्गिक 'तृन्' हुआ है।

7. विधि– ण्यासश्रन्थो युच् 3.3.107

ण्यन्त धातुओं से, आस् तथा श्रन्थ् धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में 'युच्'।

अधि॰– भावे (3.3.18), अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), स्त्रियाम् (3.3.94)।

अर्थ– भाव, कर्तृभिन्न कारक।

प्रकृति– (1) णिजन्त धातु, यथा– कारि (कृ + णिच्), हारि (हृ + णिच्),

(2) आस उपवेशने, अदा॰, आ॰, (3) श्रन्थ् विमोचनप्रतिहर्षयोः, क्र्या॰ प॰।

प्रयोग– (1) कारि + युच् + टाप् = **कारणा** 'कराना', हारि + युच् + टाप् = **हारणा** 'हराना' (णेरनिटि 6.4.51 से णि का लोप, अट्कुप्वाङ्॰ 8.4.2 से णत्व)।

(2) आस् + युच् + टाप् = **आसना** 'बैठना'। 'स्यादास्या त्वासना स्थितिः' –अमर॰ 3.2.21

(3) श्रन्थ् + युच् + टाप् = **श्रन्थना** 'ढीलापन'।

8. विधि– घट्टिवन्दिविदिभ्य उपसंख्यानम् (वा॰ 3.3.107)

घट्टि आदि धातुओं से भी उक्त अर्थ में 'युच्' समझना चाहिए।

प्रकृति– (1) घट्ट चलने, तुदा॰ आ॰, (2) वन्द् अभिवादनस्तुत्योः, भ्वा॰आ॰, (3) विद् ज्ञाने, अदा॰प॰।

प्रयोग– (1) घट्ट + युच् + टाप् = **घट्टना** 'चलना'।

(2) वन्द् + युच् + टाप् = **वन्दना** 'अभिवादन करना या स्तुति करना'।

(3) विद् + युच् + टाप् = **वेदना** 'जानना' (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

9. विधि– इषैरनिच्छार्थस्य युज् वक्तव्यः (वा॰ 3.3.107)

अनिच्छार्थक 'इष्' धातु से भी 'युच्' समझना चाहिए।

प्रकृति– अनिच्छार्थक इष् धातु, यथा– अधि + इष् (इच्छायाम्, तुदा॰ प॰) अनु + इष्।

प्रयोग– अधीष् + युच् + टाप् = **अध्येषणा** 'प्रार्थना'।

अन्विष् + युच् + टाप् = **अन्वेषणा** 'खोजना' (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

10. विधि– परेर्वा (वा॰ 3.3.107)

परि + इष् से विकल्प से युच्। पक्ष में स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से क्तिन्।

प्रयोग– परि–इष् + युच् + टाप् = **पर्येषणा** 'चारों ओर की खोज', (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)।

11. विधि– आतो युच् 3.3.128

ईषत्, दुस् अथवा सु यदि उपपद हों तो कृच्छ्र अथवा अकृच्छ्र अर्थ में आकारान्त धातु से 'युच्'।

अनु॰– ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु (3.3.126)।

अप॰– ईषद्दुःसुषु॰ 3.3.126 से प्राप्त 'खल्' का।

अर्थ– भाव अथवा कर्म (खलर्थ प्रत्यय होने से तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः 3.4.70 का प्रयोग है)।

प्रकृति– ईषत्, दुस् अथवा सु उपपद युक्त आकारान्त धातुसामान्य।

प्रयोग– (1) ईषत्-पा + युच् = **ईषत्पानः** 'थोड़ा सा पीना'। 'ईषत्पानः सोमो भवता'।

(2) दुस्-पा + युच् = **दुष्पानः** 'पीना कठिन है'।

(3) सु-दा + युच् = **सुदानः** 'देना सरल है'।

12\. विधि– छन्दसि गत्यर्थेभ्यः 3.3.129

ईषत् आदि उपपद हों तो कृच्छ्र अथवा अकृच्छ्र अर्थ में वेदविषय में गत्यर्थक धातुओं से 'युच्'।

अनु॰– युच् (3.3.128), ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु (3.3.126)

अप॰– ईषद्दुःसुषु॰ 3.3.126 से प्राप्त 'खल्' का।

अर्थ– भाव अथवा कर्म (खलर्थ होने से तयोरेव॰ 3.4.70 का प्रयोग है)।

प्रकृति– ईषत् आदि उपपद से युक्त गत्यर्थक धातु, यथा– सु-उप-सद् (षद्) विशरणगत्यवसादनेषु, तुदा॰ प॰।

प्रयोग– सु-उप-सद् + युच् = **सूपसदनः**। 'सूपसदनोऽग्निः' 'सूपसदनमन्तरिक्षम्'।

13\. विधि– अन्येभ्योपि दृश्यते 3.3.130

ईषदादि उपपद हों तो कृच्छ्र, अकृच्छ्र अर्थ में वेदविषय में गत्यर्थक धातुओं से भिन्न धातुओं से भी 'युच्'।

अनु॰– छन्दसि (3.3.129), युच् (3.3.128), ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु (3.3.126)

अप॰– ईषद्दुःसुषु॰ 3.3.126 से प्राप्त खल् का।

अर्थ– भाव एवं कर्म (तयोरेव॰ 3.4.70), किन्तु छान्दस प्रयोग में बाहुलकता भी है।

प्रकृति– ईषदादि उपपद से युक्त गत्यर्थक धातु से भिन्न धातु, यथा– सु-दुह् प्रपूरणे, अदा॰ उ॰।

प्रयोग– सु-दुह् + युच् + टाप् = **सुदोहनाम्** 'सुदोहनाम् अकृणोद् ब्रह्मणे गाम्'।

14. विधि– भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज् वक्तव्यः (वा॰ 3.3.130)

ईषदादि उपपद हों तो शास्, युध्, दृश्, धृष्, मृष् धातुओं से लौकिक प्रयोग में भी 'युच्'।

अर्थ– भाव अथवा कर्म (तयोरेव॰ 3.4.70)।

प्रकृति– (1) शास् अनुशिष्टौ, अदा॰ प॰, (2) युध् संप्रहारे, दिवा॰ आ॰, (3) दृश् प्रेक्षणे, भ्वा॰ प॰, (4) धृष् प्रागल्भ्ये, स्वा॰प॰, (5) मृष् तितिक्षायाम्, दिवा॰ उ॰।

प्रयोग– (1) दुस्-शास् + युच् = **दुःशासनः** 'जिस पर कठिनता से शासन किया जा सके, महाभारत में धृतराष्ट्र का पुत्र, दुर्योधन का अनुज'।

(2) दुर् + युध् + युच् = **दुर्योधनः** 'जिससे कठिनता से युद्ध किया जा सके, कौरवों का राजा' (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

(3) दुर्-दृश् + युच् = **दुर्दर्शनः** 'जिसका दर्शन, कुरूपता अथवा दुर्लभता के कारण, कठिनता से हो सके' (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(4) दुर्-धृष् + युच् = **दुर्धर्षणः** 'जिसे कठिनता से पराभूत किया जा सके' (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, अट्कु॰ 8.4.2 से णत्व)।

(5) दुर्-मृष् + युच् = **दुर्मर्षणः** 'जिसे कठिनता से सहा जा सके' (रूपसिद्धि 'दुर्धर्षण' जैसी)।

सम्बद्धस्थल– न लोकाव्ययनिष्ठा**खलर्थ**तृनाम् 2.3.69 खलर्थ प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

प्रयोग– ईषत्पानः सोमो भवता। यहाँ 'ईषत्-पा' धातु से आतो युच् 3.3.128 से खलर्थक 'युच्' प्रत्यय का विधान है। अतः कृदन्त 'ईषत्पान' के योग में कर्म सोम से 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' 2.3.66 से प्राप्त षष्ठी का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

इस प्रकार यह निषेध आतो युच्॰ 3.3.128, छन्दसि गत्यर्थेभ्यः 3.3.129, अन्येभ्योऽपि दृश्यते 3.3.130 एवं उनके वार्तिकों से विहित खलर्थक युच् प्रत्यय के विषय में लागू होगा।

र

र = र।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1. विधि– नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः 3.2.167

तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमानकाल में नम् आदि धातुओं से 'र'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) नम् प्रह्वत्वे शब्दे च, भ्वा॰ प॰, (2) कम्प् चलने, भ्वा॰ आ॰, (3) स्मि ईषद्धसने, भ्वा॰ आ॰, (4) नञ्-जस् मोक्षणे, दिवा॰ प॰, (5) कम् कान्तौ, भ्वा॰ आ॰, (6) हिंस् हिंसायाम्, भ्वा॰प॰; (7) दीप् दीप्तौ, दिवा॰ आ॰।

प्रयोग– (1) नम् + र = **नम्रं** काष्ठम् 'नरम लकड़ी'। 'भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः' –अभि॰शा॰ 5.12

(2) कम्प् + र = **कम्प्रा** शाखा 'हिलनेवाली शाखा'। 'विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति' –नैष॰ 1.142

(3) स्मि + र = **स्मेरं** मुखम् 'हँसनेवाला मुख' (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण)।

'विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति' –कुमार॰ 5.70

(4) न-जस् + र = **अजस्रं** जुहोति 'निरन्तर याग करता है'। 'तच्च धूनोत्यजस्रम्' –उत्तर॰ 4.26

(5) कम् + र = **कम्रा** युवतिः 'सुन्दर युवती'।

(6) हिंस् + र = **हिंस्रो** दस्युः 'हिंसक दस्यु'।

(7) दीप् + र = **दीप्रं** काष्ठम् 'जलती हुई लकड़ी'।

रु

रु = रु।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1\. विधि– दाधेट्सिशदसदो रुः 3.2.159

दा, धेट् आदि धातुओं से 'रु', यदि तच्छीलादि कर्ता हों और वर्तमानकाल हो।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) दा दाने, जुहो॰ उ॰, (2) धा (धेट्) पाने, भ्वा॰ प॰,
(3) सि बन्धने, स्वादि, उ॰, (4) शद् शातने, भ्वा॰ प॰,
(5) सद् विशरणगत्यवसादनेषु, तुदा॰ प॰।

प्रयोग– (1) दा + रु = **दारुः** 'दानी'।
(2) धा + रु=**धारुः** 'पीने वाला'। 'धारुर्वत्सो मातरम्' (का॰)
(3) सि + रु = **सेरुः** 'बाँधनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण)।
(4) शद् + रु = **शद्रुः** 'पतनशील'।
(5) सद् + रु = **सद्रुः** 'जानेवाला'।

ल्यप्

ल्यप् = य। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ल् की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से प् की इत्संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. क्त्वा-आदेश। धातु से आए क्त्वा के स्थान में 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' 7.1.37 से ल्यप् प्रत्यय होता है।
2. आर्धधातुक। क्त्वा प्रत्यय की आर्धधातुकं शेषः 3.4.114 से आर्धधातुक संज्ञा होती है। अतः क्त्वा के स्थान में आने के कारण स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ 1.1.56 से ल्यप् की भी आर्धधातुक संज्ञा।
3. कित्। क्त्वा एक कित् प्रत्यय है। क्त्वा के स्थान पर आने के कारण ल्यप् भी कित् माना जाता है। अतः आ–नी + ल्यप् = आनीय– यहाँ सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के ईकार को प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध होता है।
4. अव्यय। क्त्वातोसुन्कसुनः 1.1.40 से क्त्वा-प्रत्ययान्त की अव्ययसंज्ञा होती है। उसके स्थान पर आदिष्ट होने से ल्यप्-प्रत्ययान्त की भी अव्यय संज्ञा होती है। इससे पर सु का अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से लोप हो जाता है।
5. लित्। ल्यप् के आदि लकार की इत्संज्ञा (लशक्वतद्धिते 1.3.8) होने से यह लित् है। अतः लिति 6.1.190 से आद्युदात्त।
6. पित्। ल्यप् प्रत्यय के पकार की इत्संज्ञा (हलन्त्यम् 1.3.3) होने से यह पित् है। अतः ल्यप् के रहते ह्रस्वान्त धातु से ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्-आगम होता है, यथा– वि-जि + ल्यप् = विजित्य।

विशेष– 1. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ 1.1.56 से ल्यप् में क्त्वा के समान आर्धधातुकता एवं कित्त्व के आने पर भी क्त्वा का 'तादि' अथवा 'वलादि' होने का गुण ल्यप् में नहीं आता क्योंकि ये गुण क्त्वा-प्रत्ययगत अल् अर्थात् वर्णविशेष

'त' पर आश्रित होने से अल्विधि हैं और स्थानिवद्भाव की प्रवृत्ति अनल्विधि में होती है।

2. वि-जि + ल्यप् = विजित्य, प्र-हृ + ल्यप् = प्रहृत्य आदि उदाहरणों में वि, प्र जैसे अव्ययों के साथ उत्तरवर्ती शब्दों का कुगतिप्रादयः 2.2.18 से प्रादि समास होता है। अतएव समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37 से क्त्वा के स्थान पर ल्यप् हो जाता है।

1. विधि– समासेऽनञ्पूर्वे कत्वो ल्यप् 7.1.37

जिस समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न कोई अन्य अव्यय स्थित हो तो उस समास में क्त्वा के स्थान पर 'ल्यप्' आदेश होता है।

अर्थ– पूर्वकालिक क्रिया।

प्रकृति– नञ् से भिन्न किसी अन्य अव्यय के साथ समास में आनेवाली धातु, यथा– प्र-हृ।

प्रयोग– प्र-हृ + ल्यप् = प्रहृत्य 'प्रहार करके'।

पूर्वकाल में समानकर्तृकयोः पूर्वकाले 3.4.21 से 'हृ' धातु से क्त्वा, कित्त्व के कारण सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.86 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध — हृ + क्त्वा = हृत्वा। 'प्र' अव्यय के साथ 'हृत्वा' का कुगतिप्रादयः 2.2.18 से समास, अतः समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37 से क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, अनुबन्धलोप– प्र - हृ + य। ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से धातु के बाद तुक् आगम, अनुबन्धलोप– **प्रहृत्य**। प्रथमा विभक्ति एकवचन में विभक्ति सु आयी , अव्ययादाप्सुपः 2.4.82 से सु का लोप हो जाता है।

विशेष– 1. सूत्र में अनञ्पूर्वे के कथन से 'न' के साथ समास होने पर ल्यप् आदेश नहीं होता, यथा– न कृत्वा = अकृत्वा 'न करके'।

2. अनादृत्य (न आदृत्य), असमीक्ष्य (न समीक्ष्य) आदि में आदृत्य, समीक्ष्य जैसे ल्यप्प्रत्ययान्त के साथ नञ् का समास हुआ है। अतः इसमें ल्यप् का निषेध नहीं हुआ है।

2. विधि– क्त्वापि छन्दसि 7.1.38

वैदिक प्रयोग में अनञ्पूर्वक समास से परवर्ती क्त्वा के स्थान में विकल्प से क्त्वा तथा ल्यप्– ये दोनों आदेश होते हैं।

अनु॰– समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37

प्रयोग– कृष्णं वासो यजमानं **परिधापयित्वा**।

परि-धाप् + क्त्वा। इसमें क्त्वा को ल्यप् आदेश नहीं हुआ।

ल्यप्– **उद्धृत्य** जुहोति। उत्-धृ + क्त्वा = उद्-धृ + ल्यप्। इसमें क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश होता है।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् (वा॰ 2.3.28)

पञ्चमी विधि में ल्यबन्त के लोप होने पर उसके कर्मकारक से भी पञ्चमी का विधान समझना चाहिए।

प्रयोग– प्रासादात् प्रेक्षते 'प्रासाद से देख रहा है'। प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते– इस वाक्य के ल्यप्–प्रत्ययान्त 'आरुह्य' का लोप होने से कर्म 'प्रासाद' में पञ्चमी विभक्ति हुई है– प्रासादात्।

सम्ब॰ (2) अदो जग्धिर्ल्यप् ति किति 2.4.36

ल्यप् प्रत्यय तथा तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहते 'अद्' धातु को 'जग्धि' आदेश होता है।

प्रयोग– प्र-अद् + ल्यप् = प्रजग्ध्य।

समासेऽनञ्पूर्वे॰ 7.1.38 से क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, प्रस्तुत सूत्र से अद् को 'जग्धि' आदेश, अनुबन्ध इकार का लोप– **प्रजग्ध्य** 'अच्छी तरह से खाकर'।

सम्ब॰ (3) ल्यपि च 6.1.41

तन्तुसन्तान अर्थक 'वेञ्' धातु के वकार के स्थान में ल्यप् प्रत्यय के परे रहते सम्प्रसारण नहीं होता है।

प्रयोग– प्र - वेञ् + ल्यप् = **प्रवाय** 'अच्छी तरह से बुनकर'। क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से धातु के एकार को आकार, वचिस्वपियजादीनां किति 6.1.15 से धातु

के वकार को सम्प्रसारण की प्राप्ति, प्रस्तुत सूत्र से सम्प्रसारण का निषेध-प्रवाय।

सम्ब॰ (4) ज्यश्च 6.1.42

ल्यप् के परे रहते ज्या धातु से भी सम्प्रसारण नहीं।

प्रयोग– प्र-ज्या वयोहानौ धातु से क्त्वा, क्त्वा के स्थान पर ल्यप्–प्र-ज्या + ल्यप् = **प्रज्याय** 'अत्यन्त जीर्ण होकर'। ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से प्राप्त धातु के सम्प्रसारण का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।

सम्ब॰ (5) व्यश्च 6.1.43

ल्यप् के परे रहते व्येञ् धातु को भी सम्प्रसारण नहीं।

प्रयोग– प्र-व्येञ् (संवरणे) + ल्यप् = **प्रव्याय** 'अच्छी तरह ढककर'। आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से आकारादेश, ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से प्राप्त धातु के सम्प्रसारण का प्रस्तुत सूत्र से निषेध।

सम्ब॰ (6) विभाषा परेः 6.1.44

परि उपसर्ग से उत्तर व्येञ् धातु को विकल्प से सम्प्रसारण नहीं होता।

प्रयोग– परि-व्येञ् (संवरणे) + ल्यप् = **परिव्याय-परिवीय** 'चारों ओर से ढककर'। आदेच उपदेशे॰ 6.1.45 से आकारादेश, ग्रहिज्या॰ 6.1.16 से प्राप्त सम्प्रसारण का विकल्प से निषेध-परिव्याय।

निषेध के अभाव में ग्रहिज्या॰ सूत्र से 'य्' को सम्प्रसारण से इकार, सम्प्रसारणाच्च 6.1.108 से आकार का पूर्वरूप– परि-व् इ य। हलः 6.4.2 से इकार को दीर्घ से ईकार– परिवीय।

सम्ब॰ (7) मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च 6.1.50

मीञ्, डुमिञ् तता दीङ् धातुओं को ल्यप् परे रहते तथा एच् के विषय में भी उपदेश अवस्था में ही आत्व हो जाता है।

प्रयोग– 1. प्र-मी (हिंसायाम्) + ल्यप् = **प्रमाय** 'अच्छी तरह हिंसा करके'।

2. नि-मि (प्रक्षेपणे) + ल्यप् = **निमाय** 'फेंककर'।

3. उप-दी (क्षये) + ल्यप् = **उपदाय** 'क्षीण करके'। समासेऽनञ्पूर्वे॰ 7.1.37 से क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, प्रस्तुत सूत्र से धातु के अन्तिम स्वर के स्थान पर आकार– प्रमाय, निमाय, उपदाय।

सम्ब॰ (8) विभाषा लीयतेः 6.1.51

लीङ् श्लेषणे (दिवादि) और ली श्लेषणे (क्र्यादि)– इन दोनों धातुओं को ल्यप् परे रहते तथा एच् के विषय में विकल्प से उपदेश की अवस्था में ही आत्व हो जाता है।

प्रयोग– वि-ली + ल्यप् = **विलाय-विलीय** 'विशेष रूप से मिलाकर'। समासेऽनञ्पूर्वे॰ 7.1.37 से क्त्वा के स्थान पर ल्यप्, प्रस्तुत सूत्र से धातु के ईकार को विकल्प से आकार- विलाय। आत्व के अभाव-पक्ष में सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध– विलीय।

सम्ब॰ (9) वा ल्यपि 6.4.38

ल्यप् परे होने पर अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश मन्, हन्, गम्, नम्, रम् एवं यम् धातुओं से अनुनासिक का लोप होता है। व्यवस्थितविभाषा होने से नकारान्त धातुओं के अन्त्य नकार का नित्य एवं मकारान्त धातुओं के अन्त्य मकार का विकल्प से लोप होता है।

प्रयोग– यथा–1. नकारान्त धातु–अव-मन् + ल्यप् = **अवमत्य**, हन् - **निहत्य**, वन् - **प्रवत्य**,तन्-**अवतत्य**।

2. मकारान्त धातु–आ-गम् + ल्यप् = **आगत्य-आगम्य**, नम्- **प्रणत्य-प्रणम्य**, रम्-**विरत्य–विरम्य**, यम्- **नियत्य-नियम्य**।

नकार एवं मकार के लोप के पश्चात् 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्' आगम।

सम्ब॰ (10) ल्यपि लघुपूर्वात् 6.4.56

लघु स्वरपूर्वक वर्ण के उत्तरवर्ती 'णि' के स्थान में ल्यप् के परे रहते 'अय्' आदेश होता है।

प्रयोग– प्र-कथ् + इ + य = **प्रकथय्य** 'कहलवाकर' (हेतुमति च 3.1.26 से णिच् (इ), प्रस्तुत सूत्र से णिच् के इकार को अय् आदेश– प्रकथय्य)। इसप्रकार वि-गण् + इ + य = **विगणय्य।**

सम्ब॰ (11) विभाषाऽऽपः 6.4.57

'आप्' धातु से उत्तरवर्ती 'णि' के स्थान में ल्यप् प्रत्यय के परे विकल्प से 'अय्' आदेश होता है।

प्रयोग– प्र – आप् + इ + ल्यप् = **प्रापय्य-प्राप्य** 'पहुँचाकर'। प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से इकार को अय्– आदेश–प्रापय्य। अयादेश के अभाव पक्ष में णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप-प्राप्य।

सम्ब॰ (12) युप्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि 6.4.58

यु (मिश्रणेऽमिश्रणे च, अदादि पर॰) और प्लु (गतौ, भ्वा॰ पर॰) धातुओं को ल्यप् के परे रहते वैदिक प्रयोग में दीर्घ हो जाता है।

प्रयोग– वि-यु + ल्यप् = **वियूय**। परि-प्लु + ल्यप् = **परिप्लूय**। दान्त्यनुपूर्वं वियूय। यत्रा यो दक्षिणा परिप्लूय।

विशेष– यदि वैदिक प्रयोग न हो तो दीर्घ नहीं होता है, यथा– सम्-यु + ल्यप् = संयुत्य, आ-प्लु + ल्यप् = आप्लुत्य।

सम्ब॰ (13) क्षियः 6.4.59

ल्यप् के परे क्षि (हिंसायाम्) धातु के स्थान में भी दीर्घ हो जाता है।

प्रयोग– प्र-क्षि + ल्यप् = **प्रक्षीय** 'पूरी तरह नष्ट होकर'।

सम्ब॰ (14) न ल्यपि 6.4.69

ल्यप् प्रत्यय के परे रहते घुसंज्ञक (दा एवं धा), मा, स्था, गा, पा, हा तथा सा धातुओं के स्थान में ईकार आदेश नहीं होता है। घुमास्थागापाजहातिसां हलि 6.4.66 से प्राप्त ईकारादेश का यह अपवाद है।

प्रयोग– प्र-दा + ल्यप् = **प्रदाय**, धा-**प्रधाय**, मा-**प्रमाय**, गा-**प्रगाय**, स्था-**प्रस्थाय**, पा-**प्रपाय**, हा-**प्रहाय**, सा-**अवसाय।**

सम्ब॰ (15) मयतेरिदन्यतरस्याम् 6.4.70

मेङ् (प्रणिदाने, भ्वा॰ आत्म॰) धातु के स्थान में ल्यप् के परे रहते विकल्प से इत् अर्थात् 'इ' (ह्रस्व) का आदेश होता है।

प्रयोग– अप-मे + ल्यप् = **अपमित्य** - **अपमाय**।
आदेच उपदेशेऽशिति 6.1.45 से धातु के एकार को आकार आदेश, प्रस्तुत सूत्र से आकार के स्थान में विकल्प से इकार = अपमित्य। इत्व के अभाव पक्ष में-अपमाय।

सम्ब॰ (16) ये विभाषा 6.4.43

यकारादि कित् अथवा ङित् प्रत्ययों के परे रहते जन्, सन् तथा खन् धातुओं के स्थान में विकल्प से अकारादेश।

प्रयोग– सम् - जन् + ल्यप् = **संजाय** - **संजन्य** 'पैदा होकर' प्रस्तुत सूत्र से धातु के नकार को विकल्प से अकार, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ। जिस पक्ष में अकार नहीं होता है उस पक्ष में संजन्य।

ल्यु

ल्यु = अन। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ल् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को 'अन' आदेश।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) लित् (1.3.8)। अतः लिति 6.1.193 से प्रत्यय से पूर्व की उदात्त संज्ञा।

(3) अजादि।

1. विधि– नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः 3.1.134
नन्दि आदि धातुओं से कर्ता अर्थ में 'ल्यु'।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– नन्दि आदि धातु। इन धातुओं को धातु पाठ से न लेकर नन्दन आदि प्रातिपदिकों के गण में पहचानना पड़ता है। "नन्दिग्रहिपचादयश्च न धातुपाठतः सन्निविष्टा गृह्यन्ते, किं तर्हि? नन्दनरमणेत्येवमादिषु प्रातिपदिकगणेषु अपोद्धृत्य प्रकृतयो निर्दिश्यन्ते"। काशिका।

विशेष– नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवद्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम् (वा॰ 3.1.134)

इसके अनुसार प्रतिपदिक गणपाठ में पठित नन्दनः, वाशनः आदि की सिद्धि णिजन्त नन्द् आदि से होती है।

प्रयोग– (1) नन्दयति = नन्द् (समृद्धौ, भ्वा॰ प॰) + णिच् + ल्यु = **नन्दनः** 'प्रसन्न करनेवाला पुत्र' (णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप)

(2) वाशयति = वश् (कान्तौ, अदा॰प) + णिच् + ल्यु = **वाशनः** 'शब्द करनेवाला पक्षी'।

(3) मदयति = मद् (हर्षग्लेपनयोः, दिवा॰ प॰) + णिच् + ल्यु = **मदनः** 'प्रसन्न करनेवाला कामदेव' (णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप, मितां ह्रस्वः 6.4.92 से धातु की उपधा को ह्रस्व)। 'व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्' –अ॰शा॰ 1.27

(4) दुष् (वैक्लव्ये, दिवा॰प॰) + णिच् + ल्यु = **दूषणः** 'दूषित करनेवाला'। (णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप, दोषो णौ 6.4.90 से धातु के उकार को ऊकार)।

'दूषण रावण की सेना का एक नायक था जिसे भगवान् राम ने मार गिराया था।'

(5) साधयति- सिध् (संराद्धौ, दिवा॰प॰) + णिच् + ल्यु = **साधनः** 'सिद्ध करनेवाला' (णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप, पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण से एकार, सिध्यतेरपारलौकिके 6.1.49 से एकार को आकार आदेश)।

(6) वर्धयति = वृध् (वृद्धौ, भ्वा॰आ॰) + णिच् + ल्यु = **वर्द्धनः** 'बढ़ानेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप)।

(7) शोभयति = शुभ् (दीप्तौ, भ्वा॰ आ॰) + णिच् + ल्यु = **शोभनः** 'शोभित करनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण, णेरनिटि 6.4.51 से णिलोप)।

(8) रोचयति = रुच् (दीप्तावभिप्रीतौ च, भ्वा॰ आ॰) + णिच् + ल्यु = **रोचनः** 'प्रसन्नता बढ़ानेवाला'।

(पुगन्त 7.3 से उपधागुण, णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप)

विशेष– सहितपिदमेः संज्ञायाम् (वा॰ 3.1.134)

सह्, तप् और दम् धातुओं से संज्ञा में 'ल्यु'।

(9) सहते = सह् (मर्षणे, भ्वा॰ आ॰) + ल्यु = **सहनः** 'सहनेवाला'।

(10) तप्यते = तप् (ऐश्वर्ये, दिवा॰प॰) + ल्यु = **तपनः** 'तपनेवाला, सूर्य'। 'प्रतापात् तपनो यथा' –रघु॰ 4/12

(11) दाम्यति = दम् (उपशमे, दिवा॰ प॰) + ल्यु = **दमनः** 'दमन करनेवाला'।

विशेष– नन्द्यादिगण के प्रसङ्ग में पठित प्रातिपदिकों के आधार पर निम्नोक्त प्रयोग भी दर्शनीय हैं–

(12) जल्पति = जल्प् (व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰प॰) + ल्यु = **जल्पनः** 'बोलनेवाला'।

(13) रमते = रम् (क्रीडायाम्, भ्वा॰आ॰) + ल्यु = **रमणः** 'प्रेमी'। 'पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम्' –रघु॰ 14.27

(14) दृप्यति = दृप् (हर्षमोहनयोः, दिवा॰प॰) + ल्यु = **दर्पणः** 'चमकनेवाला, आयना'। (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति'–छन्दोमञ्जरी 109

(15) संक्रन्दति = सम् - क्रन्द् (रोदने आह्वाने च) + ल्यु = **संक्रन्दनः** 'रोनेवाला, पुकारनेवाला, भगवान् कृष्ण का नाम।

(16) सम्यक् कर्षति = सम् - कृष् (विलेखने, भ्वा॰ प॰) + ल्यु = **सङ्कर्षणः** 'पूरी तरह खींचने वाला, कृष्णाग्रज बलराम का नाम' (पुगन्त 7.3.86 से उपधागुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, अट्कुप्वाङ् 8.4.2 से णत्व)।

(17) सम्यक् हृष्यति = सम् - हृष् (तुष्टौ, दिवा॰प॰) + ल्यु = **संहर्षणः** 'पूरी तरह खुश होनेवाला' (उपधागुण, रपरत्व, णत्व पूर्ववत्)

(18) जननं जनः, तम् अर्दयति = जन- अर्द् (हिंसायाम्, चुरा॰उ॰) + ल्यु = **जनार्दनः** 'जन्मबन्धन को नष्ट करनेवाला, भगवान् विष्णु'।

(19) यौति = यु(मिश्रणेऽमिश्रणे च, अदा॰ प॰) + ल्यु = **यवनः** 'मिलनेवाला' (सार्वधातुका॰ 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)।

(20) मधुं सूदयति = मधु-सूद् (क्षरणे, चुरा॰उ॰) + ल्यु = **मधुसूदनः** 'मधु राक्षस को मारनेवाला, भगवान् विष्णु'।

(21) विशिष्टतया भीषयते = वि-भी (भये, जुहो॰ प॰) + णिच् + ल्यु = **विभीषणः** 'विशेषरूप से डरानेवाला, रावणानुज राक्षस-

विशेष' (भियो हेतुभये षुक् 7.3.40 से षुक्-आगम, णेरनिटि 6.4.51 से णि-लोप)।

(22) लुनाति जाड्यम् = लू (छेदने, क्र्या०उ०) + ल्यु = **लवणः** 'गलानेवाला नमक' (सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से गुण, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश, निपातन से णत्व)।

(23) वित्तं विनाशयति = वित्त-वि-नश् + णिच् + ल्यु = **वित्तविनाशनः** 'वित्त नष्ट करने वाला'।

(24) कुलं दमयति = कुल-दम् + णिच् + ल्यु = **कुलदमनः** 'कुल का नाश करनेवाला'।

(25) शत्रुं दमयति = शत्रु - दम् + णिच् + ल्यु = **शत्रुदमनः** 'शत्रु का नाश करनेवाला'।

ल्युट्

ल्युट् = अन। हलन्त्यम् 1.3.3 से ट् की एवं लशक्वतद्धिते 1.3.8 से ल् की इत्संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को 'अन' आदेश।

स्वभाव

1. आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)। अतः
   (1) सार्वधातुकार्धधातुकयोः 7.3.84 से धातु के इगन्ताङ्ग को गुण, यथा– चि + ल्युट् = चयनम्।
   (2) अस्तेर्भूः 2.4.52 से अस् को भू आदेश– अस् + ल्युट् = भवनम्।
   (3) ब्रुवो वचिः 2.4.53 से ब्रू को वच् आदेश– ब्रू + ल्युट् = वच् + अन = वचनम्।
   (4) चक्षिङः ख्याञ् 2.4.54 से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश (ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते, वा॰ 2.4.54 से ख्या को ख्शा आदेश भी)।
   (5) वा यौ 2.4.57 से 'अज्' धातु को विकल्प से 'वी' आदेश, प्र-अज् + ल्युट् = प्रवयणः-प्राजनः।
2. अन–
   (1) युवोरनाकौ 7.1.1 से यु को अन आदेश होने से ल्युट् प्रत्यय व्यवहारतः 'अन' के रूप में मिलता है।
   (2) अनो भावकर्मवचनः 6.2.150 (भाव एवं कर्म में विहित अन (ल्युट्) प्रत्यय से युक्त कारकोत्तरवर्ती ल्युट् प्रत्ययान्त उत्तरपद का अन्त्य स्वर उदात्त हो जाता है) से उदात्त, यथा– 'ओदनभोजनं सुखम्' में भोजन का अन्त्य अकार उदात्त है।
3. अजादि–
   (1) ऊदुपधाया गोहः 6.4.89 से गुह् धातु की उपधा उकार को 'ऊ' आदेश, नि-गुह् + ल्युट् = निगूह् + अन = निगूहनम्।

(2) रधिजभोरचि 7.1.61 से रध् तथा जभ् धातुओं को नुम्-आगम, रध् (हिंसासंराद्ध्योः) + ल्युट् = रन्धनम्, जभ् (गात्रविताने) + ल्युट् = जम्भनम्।

(3) रभेरशब्लिटोः 7.1.63 से रभ् धातु को नुम्-आगम, रभ् (राभस्ये) + ल्युट् = रम्भणम्।

(4) लभेश्च 7.1.64 से लभ् धातु को नुम्–आगम– लभ् + ल्युट् = लम्भनम्।

4. लित् (लशक्वतद्धिते 1.3.8)। अतः लिति 6.1.193 से ल्युट् से पूर्व धातु का अन्तिम वर्ण उदात्त।

5. टित् (हलन्त्यम् 1.3.3)। अतः टिड्ढाणञ्० 4.1.15 से स्त्रीत्व में ङीप्– लेखन + ङीप् = लेखनी।

6. बहुल। कृत्यल्युटो बहुलम् 3.3.113 से बहुल अर्थ में ल्युट् अर्थात् सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट से भिन्न स्थलों में भी। सूत्रों द्वारा भाव, करण एवं अधिकरण में ल्युट् का विधान है। इनसे भिन्न स्थल में भी ल्युट् होता है, यथा– **राजभोजनाः** शालयः 'राजाओं की भोजनशालाएँ', **राजाच्छादनानि** वासांसि 'राजा के द्वारा पहने जानेवाले वस्त्र'।

1. विधि– ल्युट् च 3.3.115
नपुंसकलिङ्ग भाव में धातु से 'ल्युट्' भी।

अनु०– नपुंसके भावे 3.3.114

अर्थ– भाव।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– हस्, सेव्।

प्रयोग– हस् + ल्युट् = **हसनम्** 'हँसना', सेव् + ल्युट् = **सेवनम्** 'सेवा'। युवोरनाकौ 7.1.1 से 'यु' को 'अन' आदेश।

2. विधि– कर्मणि च येन संस्पर्शात् कर्तुः शरीरसुखम् 3.3.116 जिस कर्म के संस्पर्श से कर्ता को शरीर का सुख मिले ऐसे कर्म के उपपद रहते भी धातु से ल्युट्।

अनु०– ल्युट् (3.3.115), नपुंसके भावे (3.3.114)।

अर्थ– भाव।

प्रकृति– उपर्युक्त कर्म के उपपद रहते धातुसामान्य, यथा– ओदन-भुज्, पयः-पा।

प्रयोग– 1. ओदनं भुज्यते = ओदनस्य भुज् + ल्युट् = ओदन-भुज् + अन = **ओदनभोजनं** सुखम् 'भात खाने का सुख'। पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से लघु उपधा को गुण से ओकार।

2. पयः पीयते = पयः– पा + ल्युट् = **पयःपानं** सुखम् 'दूध पीने का सुख'। अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ एकादेश।

3. विधि– करणाधिकरणयोश्च 3.3.117

धातु से करण और अधिकरण कारक में भी 'ल्युट्'।

अनु॰– ल्युट् 3.3.115

अर्थ– करण, अधिकरण कारक।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– (1) व्रश्च् (ओ व्रश्चू) छेदने, तदादि पर॰। (2) दुह् प्रपूरणे, अदा॰ उभ॰।

प्रयोग– 1. करणे– प्रवृश्चन्ति अनेन = प्र-व्रश्च् + ल्युट् = प्रव्रश्चनः, इध्मानां प्रव्रश्चनः = **इध्मप्रव्रश्चनः** 'कुल्हाड़ी'।

2. अधिकरणे– दुह्यन्ते अस्याम् = दुह् + ल्युट् = दोहनी। गवां दोहनी = **गोदोहनी** 'गाय दुहने का पात्र'। पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधागुण।

सम्बद्धस्थल–

(1) लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि।
समो वा हिततत‌योर्मांसस्य पचि युड्घञोः।। कारिका, 6.1.144

'मांसस्य पचि युड्घञोः' अर्थात् (पच् + युट् =) पचन और (पच् + घञ् =) पाक शब्द से पूर्व मांस शब्द के अकार का लोप हो जाता है।

प्रयोग– मांसस्य पचनम् = **मांस्पचनम्** 'मांस का पकना'। पच् + ल्युट् = 'पचन' शब्द से पूर्व मांस शब्द के अकार का लोप।

विशेष– 1. ल्युट् च 3.3.115 से **ओदनभोजनम्, पयःपानम्**– ऐसे प्रयोगों में ल्युट् की सिद्धि हो सकती थी, तथापि प्रस्तुत सूत्र के पाठ से यह सिद्ध हो जाता है कि उक्त दो उदाहरणों में उपपदमतिङ् 2.2.19 से किया गया उपपद समास नित्य है (अर्थात् उन्हें ओदनस्य भोजनम्, पयसः पानम् – जैसे वाक्यों के द्वारा पुनः व्यक्त नहीं कर सकते हैं)।

2. 'संस्पर्शात्' के कथन से अग्निकुण्डस्य **उपासनं** सुखम् 'अग्निकुण्ड के निकट बैठना आनन्ददायक है'– यहाँ ल्युट् च 3.3.115 से ल्युट् तो हुआ, परन्तु उपपद समास नहीं हुआ। क्योंकि अग्निकुण्ड से स्पर्श का प्रसङ्ग नहीं है।

3. 'कर्तुः' के कथन से गुरोः **स्नापनं** सुखम् 'गुरुजी को नहलाना आनन्दप्रद है'– यहाँ गुरु 'स्नापयति' क्रिया का कर्म है। अतः शरीरसुख कर्ता का नहीं है, अपितु कर्म का है। अतः ल्युट् च 3.3.115 से ल्युट् हुआ, परन्तु 'गुरोः' का उपपदत्व न रहने से उपपद समास नहीं हुआ।

4. 'शरीर' के ग्रहण से केवल मानसिकी प्रीति के प्रसङ्ग में उपपदत्व नहीं होता, यथा– पुत्रस्य **परिष्वजनं** सुखम् 'पुत्र का आलिङ्गन सुखकर है' (यह सुख मानसिक है, शारीरिक नहीं)– इसमें उक्त उपपद समास नहीं हुआ, ल्युट् च 3.3.115 से यद्यपि ल्युट् तो हुआ ही।

5. 'सुख' का उल्लेख है, अतः दुःख के प्रसङ्ग में उक्त उपपदत्व नहीं है, यथा– कण्टकानां **मर्दनं** दुःखम् 'काँटों को कुचलना दुःखप्रद है'। यहाँ ल्युट् च 3.3.115 से ल्युट् हो गया, परन्तु 'कण्टकानां' का उपपदत्व सिद्ध न होने से उपपद समास नहीं हुआ।

वनिप्

वनिप् = वन्।

हलन्त्यम् 1.3.3 से प् की और उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इकार की इत् संज्ञा और तस्य लोपः। 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इडागम का निषेध।

1. विधि– आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च 3.2.74

आकारान्त धातुओं से (मनिन्, क्वनिप् और) 'वनिप्' (तथा विच् भी), यदि सुबन्त उपपद हो और वैदिक विषय हो।

अनु॰– छन्दसि, विच् (3.2.73), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सुबन्त उपपद से युक्त आकारान्त धातु। यथा– भूरि-दा (दाने, जुहो॰उ॰), घृत - पा (पाने, भ्वा॰ प॰)।

प्रयोग– भूरि ददाति = भूरि-दा + वनिप् = भूरिदावन्– **भूरिदावा** 'बहुत देनेवाला'।

घृतं पिबति = घृत-पा + वनिप् = घृतपावन्– **घृतपावा** 'घी पीनेवाला'।

2. विधि– अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते 3.2.75

आकारान्त धातुओं से भिन्न धातुओं से भी मनिन् आदि के साथ 'वनिप्' प्रत्यय देखे जाते हैं।

अनु॰– मनिन्क्वनिब्वनिपः (3.2.74), विच् (3.2.73)।

अर्थ– कर्ता।

प्रकृति– आकारान्त धातुओं से भिन्न धातु।

प्रयोग– (1) विशेषेण जायते = वि– जन् (प्रादुर्भावे, दिवा॰ आ) + वनिप् = विजावन्– **विजावा** 'विशेष रूप से जन्म लेनेवाला'

(2) प्रकृष्टं जायते = प्र-जन् + वनिप् = प्रजावन्– **प्रजावा** 'अच्छी तरह जन्म लेनेवाला'।

(3) अग्रे गच्छति = अग्रे-गम् (गतौ, भ्वा॰ प॰) + वनिप् = अग्रेगावन्– **अग्रेगावा** 'आगे-आगे जानेवाला'।

तीनों स्थानों में विड्वनोरनुनासिकस्यात् 6.4.41 से अनुनासिक न् और म् को आकार आदेश, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ।

सम्बद्धस्थल– (1) वनो र च

वन्-अन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्, अन्त में रेफ आदेश भी।

प्रयोग– (1) प्रजावन् + ङीप् = **प्रजावरी** (अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते 3.2.75 से वनिप्)।

(2) विड्वनोरनुनासिकस्यात् 6.4.41

विट् एवं वन् प्रत्ययों के परे रहते अनुनासिकान्त अङ्ग के स्थान में आकार अन्तादेश होता है।

प्रयोग– वि-जन् + वनिप् = विजावा (न् को आकार आदेश)।

वरच्

वरच् = वर। हलन्त्यम् 1.3.3 च् की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) वशादि। अतः नेड् वशि कृति 7.2.8 से इट् का निषेध।

(3) चित् (1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से युच्-प्रत्ययान्त की उदात्त संज्ञा।

1. विधि– स्थेशभासपिसकसो वरच् 3.2.175

स्था, ईश आदि धातुओं से 'वरच्', यदि तच्छील आदि कर्ता वर्तमान काल में हों।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छील आदि)।

प्रकृति– (1) स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ, भ्वा॰प॰, (2) ईश ऐश्वर्ये, अदा॰ आ॰, (3) भास् (भासृ) दीप्तौ, भ्वा॰प॰, 4.पिस् गतौ, चुरा॰ उ॰, (5) कस् गतौ, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– (1) स्था + वरच् = **स्थावरः** 'जड़'। 'शरीराणां स्थावर-जङ्गमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव'-कुमार. 1/23

(2) ईश् + वरच् = **ईश्वरः** 'स्वामी'। 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' –गीता 18/61

(3) भास् + वरच् = **भास्वरः** 'चमकीला, सूर्य'। 'स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः' –शिशु॰ 1/20

(4) पिस् + वरच् = पेस्वरः 'गतिशील'। (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

(5) कस् + वरच् = कस्वरः 'गतिशील'।

2. विधि– यश्च यङः 3.2.176

यङन्त 'या' 'धातु से 'वरच्', यदि तच्छील आदि कर्ता वर्तमान काल में हों।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.20), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छील आदि)।

प्रकृति– यङन्त या (प्रापणे, अदा॰ प॰) अर्थात् 'यायाय'।

प्रयोग– पुनः पुनः अतिशयेन वा याति = या + यङ् (धातोरेकाचो॰ 3.1.22 से यङ्) = या या य (सन्यङोः 6.1.9 से द्वित्व)। यायाय + वरच् = **यायावरः** 'इतस्ततः घुमते रहने वाला' (अतो लोपः 6.4.47 से यङ् के अकार का लोप, लोपो व्योर्वलि 6.1.66 से यङ् के यकार का लोप, अकारलोप का स्थानिवद्भाव करने से आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातु के आकार का लोप प्राप्त था, किन्तु 'न पदान्तद्विर्वचन॰' 1.1.58 से स्थानिवद्भाव का निषेध होने से आकार लोप नहीं हुआ)।

विच्

विच् = 0। हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की, उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से इ की इत्संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप। तब अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1.2.41 से व् की अपृक्त संज्ञा, वेरपृक्तस्य 6.1.67 से व् का लोप।

स्वभाव– (1) चित् (1.3.3)। अतः चितः 6.1.163 से युच्-प्रत्ययान्त की उदात्त संज्ञा।

(2) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

1. विधि– विजुपे छन्दसि 3.2.73

उप + यज् धातु से वैदिक प्रयोग में 'विच्'।

अनु॰– यजः 3.2.72

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– उप + यज् देवपूजासंगतिकरणयजनदानेषु, भ्वा॰ उ॰।

प्रयोग– उपयजति अथवा उपयजते = उप-यज् + विच् =**उपयट्** — **उपयड्** 'एकादश यज्ञविधि में अन्यतम' (व्रश्चभ्रस्ज॰, 8.2.36 से धातु के ज् को ष् तथा झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से ष् को जश्त्व से ढ्, वाऽवसाने 8.4.56 से विकल्प से चर्त्व से टकार, पक्ष में जश्त्व से डकार)। 'उपयड् भीरूर्ध्वं वहन्ति।

2. विधि– अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते 3.2.75

आकारान्त से भिन्न धातुओं से भी विच् (और मनिन्, क्वनिप् तथा वनिप्)।

अनु॰– मनिन्क्वनिब्वनिपः 3.2.74, विच् 3.2.73

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– रिष् हिंसायाम्, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– रेषति = रिष् + विच् = **रेट्** 'हिंसा करनेवाला'। (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण, मूलशब्द रेष् से प्रथमा एकवचन में सु, सुलोप, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से षकार को ढकार, वाऽवसाने 8.4.56 से विकल्प से टकार, पक्ष में डकार भी), 'रेडसि पर्णं नयेः' –यजु॰ 6/18

विट्

विट् = 0। हलन्त्यम् 1.3.3 से टकार की, उपदेशेऽजनु॰ 1.3.2 से इकार की इत्-संज्ञा, हलन्त्यम् 1.3.9 से उभय का लोप, व् की अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1.2.41 से अपृक्त संज्ञा और वेरपृक्तस्य 6.1.67 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।
(2) टित् (1.3.3)।

1. विधि– जनसनखनक्रमगमो विट् 3.2.67
सुबन्त उपपद हो तो वैदिक प्रयोग में जन आदि धातु से 'विट्'।

अनु॰– छन्दसि (3.2.63), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– (1) जन जनने, दिवा॰ प॰ अथवा जन् (जनी) प्रादुर्भावे, दिवा॰ आ॰, (2) सन् सम्भक्तौ, भ्वा॰प॰ अथवा सन् दाने, तना॰ उ॰, (3) खन् अवधारणे, भ्वा॰ उ॰, (4) क्रम् पादविक्षेये, भ्वा॰ एवं दिवा॰, (5) गम् गतौ, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– (1) अप्सु जायते = अप्-जन् + विट् = **अब्जाः** 'पानी में जन्म लेनेवाला'। 'विट्' प्रत्यय का कुछ भी अवशिष्ट नहीं, विड्वनोरनुनासिकस्यात् 6.4.41 से धातु के नकार को आकार, सवर्णदीर्घ, झलां जशोऽन्ते 8.2.39 से प् को ब् –ऋग्वेद 7.34.16

गवि जायते = गो - जन् + विट् = **गोजाः** 'स्वर्ग में जन्म लेनेवाला अर्थात् ईश्वर'। सिद्धि 'अब्जाः' के समान। – ऋग्वेद 4.40.5

(2) गाः सनोति = गो-सन् + विट् = **गोषाः** 'गायों को देनेवाला' (विड्वनो॰ 6.4.41 से नकार को आकार, सवर्णदीर्घ, सनोतेरनः 8.3.108 से मूर्धन्यादेश)। 'गोषा इन्द्रो नृषा असि' –ऋग्वेद 9.2.10

(3) कूपं खनति = कूप– खन् + विट् = **कूपखाः**

'कुआँ खोदनेवाला' (विड्वनो॰ 6.4.41 से नकार को आकार, सवर्णदीर्घ)।

(4) दधि क्राम्यति = दधि-क्रम् + विट् = **दधिक्राः** 'दही पानेवाला' (विड्वनो॰ 6.4.41 से मकार को आकार, सवर्णदीर्घ)।– ऋग्वेद 4.39.1

(5) अग्रे गच्छति = अग्रे- गम् + विट् = **अग्रेगाः** 'अग्रगामी नेता' (विड्वनो॰ 6.4.41 से मकार को आकार, सवर्णदीर्घ, तत्पुरुषे कृति बहुलम् 6.3.14 से सप्तमीविभक्ति का अलुक्)।

2. विधि– अदोऽनन्ने 3.2.68

'अन्न' के अतिरिक्त कोई सुबन्त उपपद हो तो अद् धातु से 'विट्'।

अनु॰– विट् (3.2.67), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– 'अन्न' के अतिरिक्त किसी सुबन्त उपपद से युक्त अद् भक्षणे, अदा॰ प॰।

प्रयोग– आमम् अत्ति = आम - अद् + विट् = **आमात्** 'कच्चा खानेवाला', सस्यम् अत्ति = सस्य - अद् + विट् = **सस्यात्** 'शाकाहारी' (अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से सवर्णदीर्घ, वाऽवसाने 8.4.56 से दकार को विकल्प से चर्त्व से तकार)।

विशेष– (1) इस सूत्र में छन्दसि (3.2.63) की अनुवृत्ति नहीं है। अतः यह प्रयोग लौकिक है।

(2) 'अन्न' उपपद हो तो– अन्नम् अत्ति = अन्न - अद् + अण् (कर्मण्यण् 3.2.1 से) = **अन्नादः** 'अन्न खानेवाला'।

3. विधि– क्रव्ये च 3.2.69

'क्रव्य' सुबन्त उपपद हो तो अद् धातु से 'विट्'।

अनु॰– अदः (3.2.68), विट् (3.2.67), सुपि (3.2.4)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– क्रव्य– अद् भक्षणे, अदा॰ प॰।

प्रयोग– क्रव्यम् अत्ति = क्रव्य– अद् + विट् = **क्रव्यात्** 'कच्चा मांस खानेवाला, राक्षस (अकः सवर्णे॰ 6.1.101 से सवर्णदीर्घ, वाऽवसाने 8.4.56 से दकार को विकल्प से चर्त्व से तकार)। 'क्रव्याद्गणपरीवारश्चिताग्निरिव जङ्गमः' रघु॰ 15/16

विशेष– पूर्व सूत्र (3.2.68) से साध्य होने पर भी पुनः इस सूत्र के कथन से वाऽसरूपविधि (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94) का निषेध अभिप्रेत है। अतः विट् के विकल्प में अण् (कर्मण्यण् 3.2.1) का विधान नहीं होता। तथापि कृत्तं विकृत्तं वा अत्ति = **क्रव्यादः** 'नोचे गये और पकाये गये मांस को खानेवाला मांसाहारी' (पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् 6.3.109 से कृत्त अथवा विकृत्त के स्थान पर 'क्रव्य' आदेश एवं अण् प्रत्यय भी)।

वुञ्

वुञ् = अक। हलन्त्यम् 1.3.3 से अकार की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप, युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को अक-आदेश।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) ञित् (1.3.3)। अतः अत उपधायाः 7.2.116 से धातु की उपधावृद्धि।

(3) अजादि।

1. विधि– निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् 3.2.146

निन्द्, हिंस् आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्ता वाच्य हो तो वर्तमान काल में 'वुञ्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) निन्द् (णिदि) कुत्सायाम्, भ्वा॰ प॰, (2) हिंस् (हिसि) चेष्टायाम्, रुधा॰प॰, (3) क्लिश् विबाधने, क्र्या॰प॰, 4. खाद् भक्षणे, भ्वा॰ प॰, (5) वि-नश् + णिच् अदर्शने, दिवा॰ प॰, 6. परि-क्षिप् प्रेरणे, तुदा॰प॰, (7) परि-रट् परिभाषणे, भ्वा॰प॰, 8. परि-वद् + णिच् (स्वार्थे) संदेशवचने, चुरा॰ उ॰, (9) वि-आ-भाष् व्यक्तायां वाचि, (10) असूय उपतापे, कण्ड्वादि, उ॰।

प्रयोग– (1) निन्दति (निन्दनं शीलम् अस्य) = णिद् + वुञ् = **निन्दकः** 'निन्दा करनेवाला' (णो नः 6.1.65 से णकार को नकार, इदितो नुम् धातोः 7.1.58 से नुम्)।

(2) हिनस्ति = हिसि + वुञ् = **हिंसकः** 'हिंसा करनेवाला' (इदितो नुम् धातोः 7.1.58 से नुम्)।

(3) क्लिश्नाति = क्लिश् + वुञ् = **क्लेशकः** 'कष्ट देनेवाला' (पुगन्तलघू॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

(4) खादति = खाद् + वुञ् = **खादकः** 'खानेवाला'। अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी, संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकः।। मनुस्मृति 5/51

(5) विनाशयति = वि-नश् + णिच् + वुञ् = **विनाशकः** **'नष्ट करनेवाला'** (णेरनिटि 6.4.51 से णिच् का लोप, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

(6) परिक्षिपति = परि-क्षिप् + वुञ् = **परिक्षेपकः** 'चारों तरफ फेंकनेवाला' (पुगन्त॰ 7.3.86 से उपधागुण)।

(7) परिरटति = परि- रट् + वुञ् = **परिराटकः** 'ऊँचे स्वर से बोलनेवाला' (अत उपधायाः 7.2.116 से उपधावृद्धि)।

(8) परिवादयति = परि-वद् + णिच् (स्वार्थे) + वुञ् = **परिवादकः** 'अभियोगकर्ता'।

(9) व्याभाषते = वि-आ-भाष् + वुञ् = **व्याभाषकः** 'विविध बोलनेवाला, निन्दक'।

(10) असूयति = असूय + वुञ् + **असूयकः** 'निन्दक, अपकर्षी' (अतो लोपः 6.4.48 से अकार का लोप)।

विशेष– ण्वुल्तृचौ 3.1.133 से ण्वुल् के द्वारा भी ये निन्दक, क्लेशक आदि कृदन्त प्रातिपदिक सिद्ध हो सकते थे। तथापि प्रस्तुत सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय के विधान से यह ज्ञापित होता है कि इन तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में उक्त निन्द् आदि धातु से 'वुञ्' प्रत्यय का ही विधान होगा, वाऽसरूपविधि (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् 3.1.94) के द्वारा सम्भावित अन्य असरूप 'तृच्' आदि प्रत्यय नहीं होंगे। अतः तच्छीलादि कर्ता अर्थ में निन्द् + तृच् = निन्दिता जैसे अनिष्ट रूप नहीं होते हैं।

2. विधि– देविक्रुशोश्चोपसर्गे 3.2.147

उपसर्गयुक्त देव् एवं क्रुश् धातु से तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमान काल में 'वुञ्'।

अनु॰– वुञ् (3.2.146), तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)

प्रकृति– (1) सोपसर्ग देव् (दिव् कूजने, चुरा॰ उ॰ अथवा दिव् क्रीडादौ, दिवादि, पर॰ से णिच्– चुरादि से स्वार्थ में, दिवादि से प्रेरणार्थ में), (2) सोपसर्ग क्रुश् आह्वाने, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– (1) आदेवयति = आ-देव् + णिच् + वुञ् = **आदेवकः** 'जुआ खेलने वाला, विलाप करनेवाला' (चुरादिगणीय दिव् से सत्यापपाश॰ 3.1.25 से और दिवादिगणीय दिव् से हेतुमति च 3.1.26 से आए णिच् का णेरनिटि 6.4.51 से लोप)।

(2) आक्रोशति = आ-क्रुश् + वुञ् = **आक्रोशकः** 'क्रोध से चिल्लानेवाला'।

विशेष– 'उपसर्गे' के कथन से उपसर्ग रहित इन धातुओं से वुञ् नहीं, यथा– देव् + तृच् = देवयिता, क्रुश् + तृच् = क्रोष्टा।

वुन्

वुन् = अक। हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की इत्संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप। युवोरनाकौ 7.1.1 से वु को 'अक' आदेश।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

(3) अजादि।

1. विधि– प्रसृल्वः समभिहारे वुन् 3.1.149

समभिहार अर्थात् सही ढंगसे कार्य करना अर्थ यदि गम्यमान हो तो प्रु, सृ और लू धातुओं से 'वुन्'।

अर्थ– समभिहार (यद्यपि समभिहार का अर्थ 'आवृत्ति' है, तथापि इस सूत्र में इस शब्द से ठीक ढंग से कार्य करना अर्थ स्वीकृत है, न कि क्रिया का बार-बार होना।)

प्रकृति– (1) प्रु गतौ, भ्वा० आ०, (2) सृ गतौ, भ्वा०प०, (3) लू छेदने, क्र्या० प०।

प्रयोग– (1) प्रवते = प्रु + वुन् = **प्रवकः** 'अच्छी तरह चलनेवाला' (सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से धातु के उकार को गुण से ओकार, एयोऽयवायावः 6.1.78 से अवादेश)।

(2) सरति = सृ + वुन् = **सरकः** 'अच्छी तरह सरकनेवाला' (सार्वधातुका० 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)।

(3) लुनाति = लू + वुन् = **लवकः** 'अच्छी तरह काटनेवाला' (सार्वधातुका० 7.3.84 से गुण, एचोऽय० 6.1.78 से अवादेश)।

विशेष– (1) 'सृ' के स्थान पर 'स्रु' का पाठान्तर मिलता है (अष्टाध्यायी, सं० श्रीशचन्द्र वसु, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980)। अतः स्रु गतौ, भ्वा० प० धातु से 'वुन्' प्रत्यय के योग से **स्रवकः** 'अच्छी तरह चलनेवाला' रूप

भी बनता है।

(2) सूत्र में समभिहार का अर्थ 'अच्छी तरह कार्य करना' है। अतः जहाँ क्रिया अच्छी तरह से न होती हो, वहाँ क्रिया की आवृत्ति रहने पर भी यह प्रत्यय नहीं होता है।

2. विधि– आशिषि च 3.1.150

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो धातुमात्र से 'वुन्'।

अनु॰– वुन् (3.1.149)

अर्थ– जब कोई कर्ता आशीर्वाद जैसी प्रार्थनाविशेषरूपी क्रिया का निष्पादन करता हो।

प्रकृति– (1) धातुसामान्य, यथा– जीव् प्राणधारणे, भ्वादि, पर॰,

(2) नन्द् समृद्धौ, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– (1) जीवति = जीव् + वुन् = **जीवकः** 'जो चिरकाल तक जीए'।

(2) नन्दति = नन्द् + वुन् = **नन्दकः** 'प्रसन्न होनेवाला'।

सम्बद्धस्थल– (1) आशिषि चोपसंख्यानम् (वा॰ 7.3.45)

आशीर्वादार्थक 'वुन्' प्रत्ययस्थानीय ककार से पूर्व अकार के स्थान में भी इकारादेश का निषेध हो।

प्रयोग– जीवक + टाप् = **जीवका।** जीव् धातु से आशिषि च 3.1.150 से वुन्, युवोरनाकौ 7.1.1 से अक-आदेश, 'जीवक' शब्द से अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से टाप्, प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः 7.3.44 से जीवक-शब्द के ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश प्राप्त था, प्रस्तुत वार्तिक से उसका निषेध हुआ। नन्दक + टाप् = **नन्दका** (जीवका के समान)

श

श = अ। लशक्वतद्धिते 1.2.8 से श् की इत् संज्ञा और तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) सार्वधातुक (तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113)।

(2) शित् (1.3.8)। अतः तिङ्शित् 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा।

(3) ङित्। अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से ङिद्वद्भाव।

(4) अजादि।

1. विधि– पाघ्राध्माधेट्दृशः शः 3.1.137

उपसर्गसहित अथवा उपसर्गरहित पा, घ्रा आदि धातुओं से 'श'।

अनु॰– उपसर्गे (3.1.136)। कुछ विद्वानों के अनुसार यह 'उपसर्गे' अनुवर्तित नहीं होता है। तब उपसर्गरहित 'पा' आदि धातुओं से 'श' होता है। (उपसर्ग इति केचिन्नानुवर्तयन्ति– पश्यतीति पश्यः– काशिका),

अप॰– सोपसर्ग पा, घ्रा, ध्मा एवं धेट् से आतश्चोपसर्गे 3.1.136 से प्राप्त 'क' प्रत्यय का। अनुपसर्ग पा, घ्रा, ध्मा, धेट् से श्याद्व्यधा॰ 3.1.141 से (आकारान्त होने से) प्राप्त 'ण' प्रत्यय का। 'श' प्रत्यय उक्त क एवं ण प्रत्ययों का सरूप अपवाद है (अनुबन्ध श्, क् एवं ण् के लोप होने पर तीनों परस्पर सरूप हैं), अतः वाऽसरूपविधि (3.1.94) की प्रवृत्ति न होने से यह उक्त क एवं ण प्रत्ययों का नित्य बाधक है।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– सोपसर्ग अथवा अनुपसर्ग (1) पा पाने, भ्वा॰ प॰, (2) घ्रा गन्धोपादाने, भ्वा. प॰ (3) ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः, भ्वा॰ प॰, (4) धेट् पाने, भ्वा॰ प॰, (5) दृश् प्रेक्षणे, भ्वा॰ प॰

प्रयोग– (1) उत्पिबति = उत् – पा + श = **उत्पिबः** 'ऊपर उठकर 'पीनेवाला',

पिवति = (अनुपसर्ग) = पा + श = **पिबः** 'पीनेवाला' (पाघ्राध्मास्था० 7.3.78 से पा को 'पिब' आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश)।

(2) उज्जिघ्रति = उत् - घ्रा + श = **उज्जिघ्रः** 'ऊपर उठ कर सूँघनेवाला',

जिघ्रति = घ्रा + क = **जिघ्रः** 'सूँघनेवाला'

(पाघ्रा० 7.3.78 से घ्रा को 'जिघ्र' आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश)।

(3) उद्धमति = उत् - ध्मा + श = **उद्धमः** 'ऊपर फूँकनेवाला', धमति = ध्मा + श = **धमः** 'फूकनेवाला' (पाघ्रा० 7.3.78 से ध्मा को 'धम' आदेश। अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश)।

(4) उद्धयति = उत् - धे + श = **उद्धयः** 'ऊपर पीनेवाला', धयति = धे + श = **धयः**, 'पीनेवाला' एचोऽयवायावः 6.1.78 से एकार को 'अय्' आदेश)।

(5) उत्पश्यति = उत् - दृश् + श = **उत्पश्यः** 'ऊपर देखनेवाला'।

पश्यति = दृश् + श = **पश्यः** 'देखनेवाला' (पाघ्राध्मा० 7.3.78 से दृश् को 'पश्य' आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश)।

विशेष– जिघ्रतेः संज्ञायां प्रतिषेधो वक्तव्यः (वा० 3.1.137)

यदि कोई संज्ञा वाच्य हो तो 'घ्रा' धातु से 'श' प्रत्यय का निषेध हो।

प्रयोग– व्याजिघ्रति = वि-आ-घ्रा + क = **व्याघ्रः** 'बाघ-पशुविशेष की संज्ञा'। 'श' का निषेध होने से आतश्चोपसर्गे 3.1.136 से 'क', आतो लोप इटि च 6.4.64 से घ्रा के आकार का लोप।

2. विधि– अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च 3.1.13

उपसर्गरहित लिम्प् (लिप्) आदि धातुओं से भी 'श'।

अनु०– शः 3.1.137

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– उपसर्गरहित (1) लिप् उपदेहे, तुदा० उ०, (2) विद् लाभे, तुदा० उ०, (3) धृ धारणे, भ्वा० उ० + णिच् (प्रेरणार्थक) = धारि (4) पृ पालनपूरणयोः, जुहो० प० + णिच् (प्रेरणार्थक) = पारि, (5) विद् चेतनाख्याननिवासेषु, चुरा०, आ० वेदि, (6) उत् - एजृ कम्पने, भ्वा० आ० + णिच् (प्रेरणार्थक), (7) चित् संज्ञाने, भ्वा०प० + णिच् (प्रेरणार्थक), (8) साति (सौत्र धातु), प्रेरणार्थक णिच्-सहित), (9) सह् (षह्) मर्षणे, भ्वा० प० + णिच् (प्रेरणार्थक) = साहि।

प्रयोग– (1) लिम्पति = लिप् + श = **लिम्पः** 'लीपनेवाला'।
शे मुचादीनाम् 7.1.59 से धातु को नुम्-आगम।

(2) विन्दति = विद् + श = **विन्दः** 'पानेवाला'।
शे मुचादीनाम् 7.1.59 से धातु को नुम्-आगम।

(3) धारयति = धारि + श = **धारयः** 'धारण करनेवाला'।
सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से धातु के इकार को गुण से एकार, एचोऽय० 6.1.78 से एकार को अयादेश।

(4) पारयति = पारि + श = **पारयः** 'पार उतारनेवाला'।
रूपसिद्धि 'धारयः' जैसी।

(5) वेदयते = विद् + णिच् (स्वार्थे) + श = वेदि + श = **वेदयः** 'जाननेवाला'। रूपसिद्धि– 'धारयः' जैसी।

(6) उदेजयति = उत् + एज् + णिच् (प्रेरणार्थक) + श = उदेजि + श = **उदेजयः** 'कम्पानेवाला'। रूपसिद्धि 'धारयः' जैसी।

(7) चेतयति = चित् + णिच् (प्रेरणार्थक) + श = चेति + श = **चेतयः** 'चेतानेवाला'। रूपसिद्धि 'धारयः' जैसी।

(8) सातयति = साति (प्रेरणार्थक) + श = **सातयः** 'सहने की

प्रेरणा देनेवाला'। रूपसिद्धि 'धारयः' जैसी।

(9) साहयति = सह् + णिच् (प्रेरणार्थक) + श = साह + श = **साहयः** 'सहने की प्रेरणा देनेवाला'। रूपसिद्धि 'धारयः' जैसी।

विशेष– (1) 'अनुपसर्गात्' के उल्लेख से उपसर्गयुक्त लिप् आदि से 'श' प्रत्यय नहीं होता, अपि तु इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः 3.1.135 से इगुपध लिप् आदि धातुओंसे 'क'।

प्रयोग– प्रलिम्पति = प्रलिप् + क = **प्रलिपः** 'प्रलेप करनेवाला'।

विशेष– (2) नौ लिम्पेरिति वक्तव्यम् (वा॰ 3.1.138)

नि-पूर्वक लिम्प् धातु से 'श' होना चाहिए। सूत्र में कथित 'अनुपसर्गात्' का यह प्रतिप्रसव है।

प्रयोग– निलिम्पति = नि-लिम्प् + श = **निलिम्पः**। 'जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी..' –शिवताण्डवस्तोत्र 2

विशेष– (3) गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् (वा॰ 3.1.138)

यदि कोई संज्ञा वाच्य हो तो गो-आदि उपपद से युक्त 'विन्द्' धातु से 'श' प्रत्यय होना चाहिए।

प्रयोग– गां विन्दति = गो-विद् + श = **गोविन्दः** 'गायों का रक्षक'। अरान् चक्राङ्गानीव पत्राणि विन्दते = अर-विद् + श = **अरविन्दः** 'कमल' (शे मुचादीनाम् 7.1.59 से धातु को नुम्-आगम)।

3. विधि– ददातिदधात्योर्विभाषा 3.1.139

अनुपसर्ग दा एवं धा धातुओं से विकल्प से 'श'।

अनु॰– अनुपसर्गात् (3.1.138), शः (3.1.137)।

अप॰– आकारान्त होने से श्याद्व्यधा॰ 3.1.141 से प्राप्त 'ण' का विकल्प से बाधक।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– अनुपसर्ग (1) डुदाञ् दाने, जुहो॰ उ॰, (2) डुधाञ् धारणपोषणयोः, जुहो॰ उ॰।

प्रयोग– (1) ददाति = दा + श = **ददः** 'देनेवाला'। (कर्तरि शप् 3.1.68 से शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः 2.4.75 से शप् को श्लु (लोप), श्लौ 6.1.10 से धातु का द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, ह्रस्वः 7.4.59 से अभ्यास को ह्रस्व, अ(श) प्रत्यय के ङिद्वद्भाव होने से आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातु के आकार का लोप)। 'अभयंददः'– अवलोकितेश्वर, बुद्ध का पर्यायवाची।

(2) दधाति = धा + श = **दधः** 'धारण करनेवाला'। रूपसिद्धि 'ददः' जैसी। 'इडादध'– ऐतरेय ब्राह्मण का एक विशिष्ट इष्ट्ययन है।

विशेष– (1) 'श' के अभाव पक्ष में श्याद्व्यधा॰ 3.1.141 से यथाप्राप्त ण– ददाति = दा + ण = **दायः**, दधाति = धा + ण = **धायः** आतो युक् चिण्कृतोः 7.3.33 से युक्– आगम।

विशेष– (2) सूत्र में 'अनुपसर्गात्' की अनुवृत्ति होने से उपसर्गयुक्त दा एवं धा से आतश्चोपसर्गे 3.1.136 से 'क' प्रत्यय होता है। प्रददाति = प्रदा + क = **प्रदः**, प्रदधाति = प्र-धा + क = **प्रधः**, आतो लोप इटि च 6.4.64 से धातु के आकार का लोप।

4\. विधि– कृञः श च 3.3.100

कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्ग में कर्तृभिन्नकारक संज्ञा तथा भाव में 'श' और 'क्यप्' प्रत्यय। 'वावचनं कर्तव्यं क्तिन्नर्थम्' इस महाभाष्य वचन से 'क्तिन्' प्रत्यय भी यहाँ उद्दिष्ट है।

अनु॰– क्यप् (3.3.98), स्त्रियाम् (3.3.94) अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19), भावे (3.3.18)।

अर्थ– कर्तृभिन्न कारक एवं संज्ञा, भाव।

प्रकृति– कृञ् (डुकृञ्) करणे, तना॰ उ॰।

प्रयोग– करणम् = कृ + श + टाप् (स्त्रीत्व में अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से) = **क्रिया** 'काम, रचना' (सार्वधातुके यक् 3.1.67 से यक्,

रिङ् शयग्लिङ्क्षु 7.4.28 से धातु के ऋकार को रिङ् आदेश, ङकार का अनुबन्धलोप)।

'प्रयुक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव'– मेघदूत 114

विशेष– क्यप् के पक्ष में कृ + क्यप् + टाप् = **कृत्या** (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् 6.1.71 से तुक्-आगम)। क्तिन् के पक्ष में कृ + क्तिन् = **कृतिः** (क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध)।

5. विधि– इच्छा 3.3.101

भाव वाच्य में स्त्रीलिङ्ग में 'श'– प्रत्ययान्त 'इच्छा' शब्द का निपातन।

अनु॰– श (3.3.100), स्त्रियाम् (3.3.94), भावे (3.3.18)।

अर्थ– भाव (अप्रासङ्गिक होने से अकर्तरि च भावे॰ 3.3.19 का अनुवर्तन नहीं)।

प्रकृति– इष इच्छायाम्, तुदा॰प॰।

प्रयोग– इष् + श + टाप् (स्त्रीत्व में अजाद्यतष्टाप् 4.1.4 से) = **इच्छा** 'चाह' (इषुगमियमां छः 7.3.77 से षकार को छकार-आदेश, छे च 6.1.73 से तुक्-आगम, स्तोः श्चुना श्चुः 8.4.40 से तकार को श्चुत्व से छकार निपातन के कारण सार्वधातुके यक् 3.1.67 से यक् नहीं आया)। 'इच्छा काङ्क्षा स्पृहेहा तृड्' –अमर॰ 1.7.27

6. विधि– परिचर्यापरिसर्यामृगयाऽटाट्यानामुपसंख्यानम्(वा. 3.3.1010)

भाव वाच्य और स्त्रीलिङ्ग में शप्रत्ययान्त परिचर्या आदि का निपातन हो।

प्रयोग– (1) परि-चर् + श + टाप् = **परिचर्या** 'सेवा' (सार्वधातुके यक् 3.1.67 से यक्)। 'परिचर्यात्मकं कर्म॰' –गीता 18.44

(2) परि-सृ + श + टाप् = **परिसर्या** 'परिभ्रमण' (सार्वधातुके यक् 3.1.67 से यक्, निपातन से धातु के ऋकार को गुण, रपरत्व)

(3) मृग + णिच् (स्वार्थ) + श + टाप् = **मृगया** शिकार, आखेट, (अतो लोपः 6.4.48 से धातु के अकार का लोप, सार्वधातुकार्ध० 7.3.84 से इकार को गुण से एकार, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश)। 'मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः' अभि० शा० 2/5

(4) पुनः पुनः अटनम् = अट् + यङ् + श + टाप् = **अटाट्या** 'धार्मिक विचार से विविध स्थानों में घूमना'। (धातोरेकाचो० 3.1.22 से यङ्, सन्यङोः 6.1.9 से द्वित्व, दीर्घोऽकितः 7.4.83 से अभ्यास को दीर्घ आदेश)। 'व्रज्याटाट्या पर्यटनम्' – अमर० 2.7.35

7. विधि– जागर्तेरकारो वा (वा० 3.3.102)

भाव वाच्य स्त्रीलिङ्ग में जागृ धातु से विकल्प से 'अ', एक पक्ष में 'श' प्रत्यय।

प्रयोग– जागृ (निद्राक्षये, अदा०प०) + अ + टाप् = **जागरा।** जागृ + श + टाप् = **जागर्या** 'जागरण' (सार्वधातुके यक् 3.1.67 से यक्, जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु 7.3.85 से धातु के ऋकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व)। 'जागर्या जागरा द्वयोः' –अमर० 3.2.19

शतृ

शतृ = अत्। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से श् की और उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से ऋ की इत्संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. सार्वधातुक– 'शित्' होने के कारण तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से शतृ प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा। अतः (1) कर्तरि शप् 3.1.68 से धातु से शप्, यथा– पठ् + शप् + शतृ = पठ् + अ + अत् = पठत्, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा एकवचन में पठन्। (2) पुगन्तलघूपधस्य च 7.3.86 से उपधा गुण की प्राप्ति, क्ङिति च 1.1.5 से गुणनिषेध, यथा– द्विष् + शतृ = द्विषत्।

2. अजादि ङित् सार्वधातुक। शित् होने से तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से शतृ की 'सार्वधातुक' संज्ञा, अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से उसका 'ङिद्वद्भाव' और शकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाने से 'अजादि'।

(1) अजादि सार्वधातुक होने से हुश्नुवोः सार्वधातुके 6.4.87 से 'हु' धातु एवं श्नुप्रत्ययान्त धातु को यण् आदेश, यथा–

हु + शतृ = जुह्वत् (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः 2.4.75 से शप् को श्लु अर्थात् लोप, श्लौ 6.1.10 से धातु का द्वित्व, अभ्यासकार्य, प्रस्तुत सूत्र से हु के उकार को यणादेश से वकार, नाभ्यस्ताच्छतुः 7.1.78 से शतृ प्रत्यय के नुम्-आगम का निषेध)।

श्नु-प्रत्ययान्त, यथा– सु + श्नु + शतृ = सुन्वन्। श्नुप्रत्ययान्त होने से प्रस्तुत सूत्र से यणादेश, यह यणादेश असंयोगपूर्व श्नुप्रत्ययान्त धातु को होता है, अतः 'शक् नु अत्' में यह आदेश नहीं होगा, क्योंकि वहाँ क् एवं न का संयोग है। अतः शक् + नु + शतृ 'शक्नुवन्' (अचिश्नु॰ 6.4.77 से उवङ्)।

(2) सार्वधातुक ङित् होने से अत उत्सार्वधातुके 6.4.110 से कृ धातु के अकार के स्थान में उकार, यथा– कृ + शतृ = कुर्वन् (कृ + शतृ, तनादिकृञ्भ्य उः 3.1.79 से उ, कृ + उ + अत्, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व, कर् उ अत्। प्रस्तुत सूत्र से कर् के अकार को उकार, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश– कुर्वत्)।

(3) सार्वधातुक ङित् होने से श्नसोरल्लोपः 6.4.111 से श्नम् के अकार का एवं अस् धातु के अकार का लोप होता है। यथा– (क) भिद् + शतृ = **भिन्दन्**। भिदिर् विदारणे धातु से शतृ, रुधादिभ्यः श्नम् 3.1.78 से धातु के स्वर के बाद श्नम्, अनुबन्धलोप– भिन् द् + अत्। प्रस्तुत सूत्र से श्नम् के अकार का लोप—भिन्दत्। (ख) अस् + शतृ = **सन्**। अस् भुवि धातु से शतृ, अदादिगणीय होने से अस् धातु के बाद आये शप् का अदिप्रभृतिभ्यः शपः 2.4.72 से लोप– अस् + अत्। श्नसोरल्लोपः 6.4.111 से अस् के अकार का लोप– सत्।

(4) सार्वधातुक ङित् होने से श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से श्ना एवं अभ्यस्तसंज्ञक धातु के आकार का लोप होता है। यथा– (क) दा + शतृ = **ददत्**। दा दाने धातु जुहोत्यादिगणीय है, उससे शतृ, कर्तरि शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः 2.4.75 से शप् का श्लु अर्थात् लोप, श्लौ 6.1.10 से दा धातु का द्वित्व, अभ्यासकार्य– द दा + अत्। प्रस्तुत सूत्र से धातु के आकार का लोप ददत्। पुंल्लिङ्ग प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति के आने पर उगिदचां॰ 7.1.70 से शतृ को नुम्-आगम की प्राप्ति, किन्तु नाभ्यस्ताच्छतुः 7.1.78 से नुम् का निषध– ददत् (पुंल्लिङ्ग प्रथमा एकवचन)। ददत् ददतौ ददतः (पु॰ प्रथमा के रूप)। (ख) श्ना– क्री + शतृ = **क्रीणन्**। क्री धातु से

शतृ, कर्तरि शप्, शप् के स्थान में क्र्यादिभ्यः श्ना 3.1.81 से श्ना, अनुबन्धलोप–क्री-ना + अत्। प्रस्तुत श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से ना के आकार का लोप, णत्व– क्रीणत् (पुं॰ प्रथमा एकवचन में क्रीणन्)।

5. उगित्। उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 से ऋकार की इत् संज्ञा होने से शतृ + अत् प्रत्यय उगित् है। अतः पुंल्लिङ्ग प्रथमा के सु, औ, जस् तथा द्वितीया के अम् एवं औ विभक्तियों के रहते शतृ = अत् को उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः 7.1.70 से नुम् = न् आगम होता है। यथा– पच् + शतृ = पचत्। प्रथमा विभक्ति में नुम् के आने से पचन्, पचन्तौ, पचन्तः एवं द्वितीया विभक्ति एक और द्विवचन में नुम् के आने से पचन्तम्, पचन्तौ– ऐसे रूप बनते हैं। इस सूत्र में सर्वनामस्थान के उल्लेख से यह नुम् अनपुंसक सुट् (सुडनपुंसकस्य 1.1.43) में आता है; उसके बाद नहीं। यथा– पचत् + शस् = (द्वितीया बहुवचन में नुम् के नहीं आने से) पचतः रूप बनता है। उससे आगे भी नुम् के अभाव के कारण पचता, पचद्भ्याम् जैसे रूप बनते हैं।

6. सत्।तौ सत् 3.2.127 से शतृ एवं शानच् की 'सत्' संज्ञा। अतः पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन 2.2.11 से षष्ठी तत्पुरुष समास का निषेध– ब्राह्मणस्य कुर्वन्। (षष्ठी 2.2.8 से प्राप्त षष्ठी तत्पुरुष समास का यहाँ निषेध हुआ है)।

1. विधि– लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124

धातु से लट् के स्थान में शतृ और शानच् आदेश होते हैं, यदि अप्रथमान्त शब्द के साथ उस लट् का सामानाधिकरण्य हो। तङानावात्मनेपदम् 1.4.100 से शानच् = आन की आत्मनेपद संज्ञा होती है। अतः आत्मनेपदी धातुओं से शानच् तथा शेष परस्मैपदी धातुओं से शतृ प्रत्यय होते हैं।

अनु॰– वर्तमाने 3.2.123

अर्थ– वर्तमानकाल, कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– परस्मैपदी धातु अथवा उभयपदी धातु का परस्मैपद प्रसङ्ग, यथा– पच् धातु (परस्मैपदी), क्री धातु (उभयपदी)।

प्रयोग– पच् + शतृ = **पचन्**। पच् धातु से वर्तमाने लट् 3.2.123 से लट्, शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् 1.3.78 से परस्मैपद, लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से लट् के स्थान में शतृ, अनुबन्धलोप– पच् + अत्। शतृ की तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप् 3.1.68 से धातु से शप्, अनुबन्धलोप– पच् अ + अत्। अतो गुणे 6.1.97 से पूर्व अकार को पररूप एकादेश– पचत्। पुंल्लिङ्ग प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति– पचत् सु। सु के उकार का अनुबन्धलोप, हल्ङ्याब्भ्यो॰ 6.1.68 से सु के सकार का लोप, उगिदचां॰ 7.1.70 से शतृ के अकार के बाद नुम् (=न्) आगम-पचन् त्। संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23 से तकार का लोप– पचन्।

(ख) उभयपदी 'क्री' धातु से स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले 1.3.72 से एक पक्ष में आत्मनेपद, क्रियाफल कर्त्रभिप्राय न हो तो शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् 1.3.78 से परसमैपद, लट् के स्थान पर लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से शतृ, अनुबन्धलोप– क्री अत्। शतृ की सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप् की प्राप्ति, क्र्यादिभ्यः श्ना 3.1.81 से शप् को बाध कर श्ना, अनुबन्धलोप– क्री ना अत्। श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से श्ना के आकार का लोप, अट्कुप्वाङ् 8.4.2 से णत्व– क्रीणत्। पुं. प्रथमा एकवचन में **क्रीणन्** 'खरीदता हुआ'।

विशेष– 'अप्रथमासमानाधिकरणे' के कथन से प्रथमा समानाधिकरण में शतृ नहीं—देवदत्तः पचति। पूर्व सूत्र 3.2.123 से लट् के अनुवर्त्तन से कहीं-कहीं समानाधिकरण में भी शतृप्रत्यय प्रयुक्त होता है–**सन्** ब्राह्मणः अथवा अस्ति ब्राह्मणः।

2. विधि– सम्बोधने च 3.2.125

सम्बोधन विषय में भी धातु से लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् आदेश होते हैं।

अनु॰– लटः शतृशानचौ (3.2.124), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– सम्बोधन। सम्बोधने च 2.3.47 से सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। पूर्वसूत्र लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 में प्रथमा-समानाधिकरण में शतृ की प्रवृत्ति नहीं है। प्रस्तुत सूत्र से प्रथमा समानाधिकरण में शतृ की प्रवृत्ति सुनिश्चित की गयी।

प्रकृति– परस्मैपदी धातु, यथा– पठ्।

प्रयोग– पठ् + शतृ = पठन् (विधि सं. 1 के 'पचन्' के समान हे पठन् 'हे पढ़नेवाला')।

3. विधि– लक्षणहेत्वोः क्रियायाः 3.2.126

क्रिया के लक्षण तथा हेतु अर्थों में वर्तमान धातु से लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् आदेश।

अनु॰– लटः शतृशानचौ (3.2.124)।

अर्थ– लक्षण (जिससे दूसरी क्रिया लक्षित होती है), हेतु (दूसरी क्रिया का जनक)।

प्रकृति– लक्षण बतानेवाली धातु और हेतु बतानेवाली धातु (परस्मैपदी)।

प्रयोग– 1. लक्षण– **तिष्ठन्** उपदिशति आचार्यः 'खड़े-खड़े आचार्य उपदेश देते हैं'। यहाँ 'तिष्ठन्' क्रिया से उपदिशति क्रिया लक्षित हो रही है। अतः स्था धातु से प्रस्तुत सूत्र से शतृ, अनुबन्धलोप, सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप्, पाघ्राध्मा॰ 7.3.78 से स्था को तिष्ठ आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश।

2. हेतु–**उपदिशन्** भ्रमति 'उपदेश करने के हेतु घूमता है'। यहाँ घूमने का हेतु उपदेश करता है। अतः उप-दिश् से प्रस्तुत सूत्र से शतृ–उपदिशन् (विधि सं. 1 के 'पचन्' के समान)।

विशेष– 1. लक्षण एवं हेतु अर्थ न हो तो शतृ प्रत्यय नहीं होता, यथा– पचति, पठति।

2. क्रिया का लक्षण एवं हेतु होना चाहिए, द्रव्य या गुण का नहीं, यथा– यत् निषीदति तद् गुरु। यहाँ निषीदति क्रिया 'गुरुत्व' गुण का हेतु है। अतः नि-सद् धातु से शतृ प्रत्यय नहीं हुआ।

4. विधि– इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि 3.2.130

इङ् तथा धारि धातु से वर्तमानकाल में शतृ प्रत्यय, यदि जिसके लिए क्रिया कष्टसाध्य न हो ऐसा कर्त्ता वाच्य हो।

अनु॰– वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– अकृच्छ्री कर्त्ता (जिस कर्त्ता की क्रिया कृच्छ्र = कष्टसाध्य न हो)।

प्रकृति– 1. इङ् (सर्वदा 'अधि' पूर्वक) अध्ययने, अदा॰आत्म॰,

2. धृ + णिच् = धारि (प्रेरणार्थक), पर॰।

प्रयोग– 1. अधि – इ + शतृ = **अधीयन्** पारायणम् 'पारायण ग्रन्थ को पढ़नेवाला'। अधि + इ + अत्। अत् की सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप्, अदादिगणीय होने से अदिप्रभृतिभ्यः शपः 2.4.72 से शप् का लोप, अचि श्नुधातु॰ 6.4.77 से धातु के इकार के स्थान पर इयङ् आदेश– अधि + इय + अत्। अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश, अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 से धातु एवं उपसर्ग का सवर्णदीर्घ एकादेश– अधीयत्। पुँ॰ प्रथमा एकवचन में सु, उगिदचां॰ 7.1.70 से नुम्–आगम, सुलोप, संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23 से तकार का लोप– अधीयन्।

2. धृ अवस्थाने (तुदा॰ आत्म॰) से हेतुमति च 3.1.26 से प्रेरणार्थक णिच्, धृ + णिच् = धारि। धारि + शतृ = **धारयन्** उपनिषदम् 'उपनिषद् को सरलता से धारण करनेवाला'। धारि + अत्, शप्–धारि अ + अत्। सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के इकार को गुण से

एकार, एचोऽयवायावः 6.1.78 से अयादेश–धारयत्।
शेष विभक्तिकार्य 'पचन्' (विधि सं. 1) की तरह-धारयन्।

विशेष– अकृच्छ्री कर्त्ता अर्थ न हो तो 'शतृ' नहीं होगा, यथा– कृच्छ्रेण अधीते 'कष्टपूर्वक पढ़ रहा है'। कृच्छ्रेण धारयति 'कष्टपूर्वक पकड़ रहा है'।

5. विधि– द्विषोऽमित्रे 3.2.131

द्विष् धातु से अमित्र अर्थात् शत्रु कर्त्ता यदि वाच्य हो तो वर्तमान काल में शतृ प्रत्यय।

अनु॰– शतृ (3.2.130), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– अमित्र अर्थात् शत्रु कर्त्ता।

प्रकृति– द्विष् अप्रीतौ, अदा॰उभ॰।

प्रयोग– द्वेष्टि इति = द्विष् + शतृ = **द्विषन्** 'शत्रु'। 'पचन्' (विधि सं. 1) के समान रूप (केवल अदिप्रभृतिभ्यः शपः 2.4.72 से शप् का लोप ही विशिष्ट कार्य)।

विशेष– 'अमित्र' के कथन से 'द्वेष्टि भार्या पतिम्' में द्विष् धातु से शतृ प्रत्यय नहीं, क्योंकि भार्या पति से नाराज होती है, शत्रुता नहीं करती।

6. विधि– सुञो यज्ञसंयोगे 3.2.132

यज्ञ से संयुक्त अभिषव में वर्तमान सु (षुञ्) धातु से वर्तमान काल में शतृ प्रत्यय।

अनु॰– शतृ (3.2.130), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– सु (षुञ्) धातु का अर्थ ही अभिषव (षुञ् अभिषवे) है। अभिषव अर्थात् स्नपन = सींचना, पीडन = बहना, स्नान = नहाना, सुरासन्धान = रस निकालना है। यज्ञ से जुड़े सोमरस निकालने की क्रिया से युक्त कर्त्ता वाच्य हो तो यह शतृ प्रत्यय होता है।

प्रकृति– सु (षुञ्) अभिषवे, स्वादि॰ उभ॰।

प्रयोग– सु + शतृ = सुन्वन्। **सुन्वन्तः** यजमानाः 'सोमरस निचोड़नेवाले यजमान'। सु + अत्। अत् की तिङ्शित्॰

3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप् को बाधकर स्वादिभ्यः श्नुः 3.1.73 से श्नु, अनुबन्धलोप– सु नु अत्। नु की भी सार्वधातुक संज्ञा, अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से नु का ङिद्वद्भाव, अतः सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से प्राप्त गुण का क्ङिति च 1.1.5 से निषेध, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश– सुन्वत्। पुं॰ प्रथमा विभक्ति में उगिदचां॰ 7.1.70 से नुम् आगम होने से प्रथमा बहुवचन में 'सुन्वन्तः' रूप बना।

विशेष– 1. सूत्र में संयोग के ग्रहण से यज्ञ में साक्षात् सोमरस निकालने से जुड़े यजमान अर्थात् मुख्य कर्त्ता वाच्य है। अतः साधारण याजकों के प्रसङ्ग में यह शतृ प्रत्यय नहीं आता।

2. यज्ञ-संयोग नहीं हो तो शतृ प्रत्यय नहीं, यथा– सुनोति सुराम् 'रस निचोड़कर मद्य बनाता है'।

7. विधि– अर्हः प्रशंसायाम् 3.2.133

प्रशंसा अर्थ में अर्ह् धातु से वर्तमानकाल में शतृ प्रत्यय होता है।

अनु॰– शतृ (3.2.130), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– प्रशंसा।

प्रकृति– अर्ह् पूजायां योग्यत्वे च, भ्वा॰ पर॰।

प्रयोग– अर्ह् + शतृ = **अर्हन्** इह भवान् पूजाम् 'आप सत्कार के योग्य हैं'। अर्ह् + अत्। अत् की सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप्, पररूप, पुं॰ प्रथमा एकवचन में सु, विभक्तिलोप, नुम्-आगम, संयोगान्त लोप आदि 'पचन्' (विधि सं. 1) के समान।

विशेष– प्रशंसा अर्थ के न रहने से शतृ प्रत्यय नहीं होता, यथा– अर्हति दुष्टः दण्डम् 'दुष्ट दण्ड का भागी है'।

8. विधि– लृटः सद् वा 3.3.14

भविष्यत् काल में विहित लृट् लकार के स्थान में सत् संज्ञक शतृ एवं शानच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

अनु॰– क्रियायां क्रियार्थायाम् (3.3.10), भविष्यति (3.3.3)

अर्थ– क्रियार्थक क्रिया।

प्रकृति– परस्मैपदी धातुसामान्य, यथा– पठ्।

प्रयोग– पठ् + शतृ = **पठिष्यन्** 'जो पढेगा वह'। शतृ की सार्वधातुक संज्ञा, स्यतासी ल्लृलुटोः 3.1.33 से धातु से स्य, स्य की आर्धधातुक संज्ञा, आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से स्य के आदि में इट्-आगम-पठिस्य अत्। अतो गुणे 6.1.97 से पररूप, आदेशप्रत्ययोः 8.3.59 से सकार को मूर्धन्य आदेश–पठिष्यत्। पुं॰ प्रथमा एकवचन में सु, उगिदचां॰ 7.1.70 से नुम्–आगम, हलड्याब्भ्यो॰ 6.1.68 से सु का लोप, संयोगान्तस्य लोपः 8.2.23 से तकार का लोप–पठिष्यन्। वाक्य– **पठिष्यन्तं** बालकं पश्य 'जो बालक पढ़ेगा उसे देखो'।

विशेष– 1. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124 की तरह यहाँ भी अप्रथमासमानाधिकरण में यह शतृ प्रत्यय नित्य है, यथा– पठिष्यन्तं बालकं पश्य। किन्तु, प्रथमा समानाधिकरण में यह शतृ प्रत्यय विकल्प से आता है, यथा– पठिष्यन् श्रीरामः –पठिष्यति श्रीरामः।

2. सम्बोधने च 3.2.125 की तरह सम्बोधन में यह शतृ नित्य है, यथा– हे पठिष्यन्।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन 2.2.11 'सत्' अर्थात् शतृ एवं शानच् प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त पद का समास नहीं होता है।

तौ सत् 3.2.127 से शतृ एवं शानच् की 'सत्' संज्ञा।

षष्ठी 2.2.8 से षष्ठ्यन्त का किसी समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। प्रस्तुत सूत्र उसका अपवाद है।

प्रयोग– ब्राह्मणस्य कुर्वन्। कृ + शतृ = कुर्वन्। इस शतृप्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त 'ब्राह्मणस्य' का षष्ठी 2.2.8 से प्राप्त समास का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

सम्ब॰ (2) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

ल-आदेश शतृ एवं शानच्-प्रत्ययान्त के प्रयोग होने पर कृद्योग षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124 से लट् लकार के स्थान में परस्मैपदी धातु से शतृ (एवं आत्मनेपदी धातु से शानच्) प्रत्यय आते हैं। इसीप्रकार लृटः सद् वा 3.3.14 से लृट् लकार के स्थान में उभय शतृ एवं शानच् आते हैं। अतः उभय शतृ एवं शानच् लादेश प्रत्यय हैं। कृदतिङ् 3.1.93 से इन दोनों ही प्रत्ययों की 'कृत्' संज्ञा होती है। अतः शतृ एवं शानच् प्रत्ययान्त के योग में कर्ता एवं कर्म की कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है। प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध होता है।

प्रयोग– ग्रामं गच्छन् 'गाँव जाता हुआ'। गम् + शतृ = गच्छन् (लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से लट् के स्थान में शतृ)। ग्रामं गमिष्यन् 'जो गाँव जाएगा वह'। गम् + स्य + शतृ (लृटः सद् वा 3.3.14 से लृट् के स्थान में शतृ)। उभय वाक्यों में कर्म 'ग्राम' में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से प्राप्त षष्ठी का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

विशेष– लादेश 'शतृ' को एक प्रत्याहार माना गया है। अर्थात् लटः शतृ॰ 3.2.124 से 'श' से लेकर 'तृन्' 3.2.135 के तृ तक के प्रत्ययों को शतृ अर्थात् लादेश माना गया है। फलतः सीधे लट् के स्थान में विहित न होने पर भी इङ्धार्योः शत्र॰, द्विषोऽमित्रे॰ और सुञो यज्ञसंयोगे (3.2.130-132) से साधित शतृ के योग में भी षष्ठी विभक्ति का यह निषेध लागू होता है, यथा– अधीयन् पारायणम् (इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि 3.2.130 से शतृ)।

सम्ब॰ (3) उगितश्च 4.1.6

उगित्-अन्त प्रातिपदिक से भी स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् (ई) प्रत्यय होता है।

शतृ प्रत्यय का अन्तिम स्वर 'ऋ' उक् प्रत्याहार (उ, ऋ, ऌ) के अन्तर्गत है। इस ऋकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2 सूत्र से इत् संज्ञा होती है। अतः शतृ प्रत्यय का उक् ('ऋ') इत्संज्ञक होने से यह प्रत्यय उक् + इत् = उगित् है। इस शतृ प्रत्यय से बने प्रातिपदिक से स्त्रीत्व में ङीप् का विधान है।

प्रयोग– पठत् + ङीप् = पठन्ती 'पढ़नेवाली'। पठ् + शतृ = पठत् (विधि सं. 1. देखें)। स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6 से ङीप्, अनुबन्धलोप–पठत् + ई। शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81 से पठत् शब्द के अन्तिम स्वर के बाद (मिदचोऽन्त्यात् परः 1.1.47 से) नुम् आगम–पठ् नुम् त् ई। अनुबन्धलोप– पठन्त् ई = पठन्ती, प्रथमा एकवचन में पठन्ती (नदी के समान रूप)।

सम्ब॰ (4) द्विषः शतुर्वा वचनम् (वा॰ 3.2.128)

द्विषोऽमित्रे 3.2.131 से विहित शतृ प्रत्यय के योग में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है।

प्रयोग– चोरस्य द्विषन्– चोरं द्विषन् 'चोर से शत्रुता करनेवाला'। द्विष् धातु से अमित्र अर्थ में द्विषोऽमित्रे 3.2.131 से शतृ–द्विष् + अत् = द्विषन् (विधि सं॰ 5 देखें)। इस कृदन्त द्विषन् के योग में कर्म 'चोर' से कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति, न लोकाव्ययनिष्ठा॰ 2.3.69 से लादेश 'शतृ' के योग के कारण उक्त षष्ठी के नित्य निषेध की प्राप्ति, प्रस्तुत वार्तिक से उस षष्ठी का वैकल्पिक प्रयोग– **चौरस्य द्विषन्**। पक्ष में यथास्थित कर्म में द्वितीया–**चौरं द्विषन्**।

सम्ब॰ (5) शतुरनुमो नद्यजादी 6.1.173

नुमागम से रहित शतृप्रत्ययान्त शब्दों से परवर्ती नदीसंज्ञक प्रत्यय तथा अजादि असर्वनामस्थान विभक्तियाँ उदात्त हो जाती हैं।

प्रयोग– तुद् + शतृ + ङीप् = तुदती। लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से शतृ, तुदादिभ्यः शः 3.1.77 से श, अनुबन्धलोप, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश– तुदत्। स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6

से ङीप्, अनुबन्धलोप–तुदत् + ई। आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 से शतृ के अकार के बाद नुम् (=न्) आगम (विकल्प से) - तुदन्ती। नुम् के अभाव पक्ष में– तुदती। प्रस्तुत सूत्र से **तुदती** के ईकार की उदात्त संज्ञा।

सम्ब॰ (6) विदेः शतुर्वसुः 7.1.36

ज्ञानार्थक विद् धातु से विहित शतृ के स्थान में 'वसु' आदेश होता है।

प्रयोग– विद् ज्ञाने, अदादि पर॰ धातु से लटः शतृशानचा॰ 3.1.124 से लट् के स्थान में शतृ–विद् + शतृ। प्रस्तुत सूत्र से शतृ के स्थान में 'वसु' आदेश– विद्वस्। पुंल्लिङ्ग प्रथमा एकवचन में **विद्वान्** 'जाननेवाला'।

सम्ब॰ (7) नाभ्यस्ताच्छतुः 7.1.78

अभ्यस्तसंज्ञक अङ्ग से विहित शतृ प्रत्यय को नुम्–आगम नहीं होता है। उगिदचां सर्वनास्थानेऽधातोः 7.1.70 से प्राप्त नुम्–आगम का यह अपवाद है।

प्रकृति– अभ्यस्त संज्ञक धातु, यथा-दा दाने, जुहोत्यादि, श्लौ 6.1.10 से धातु का द्वित्व होने से उभे अभ्यस्तम् 6.1.5 से धातु की अभ्यस्त संज्ञा।

प्रयोग– दा + शतृ = **ददत्** 'देनेवाला'। उगिदचां॰ 7.1.70 से प्राप्त नुमागम का प्रस्तुत सूत्र से निषेध, प्रथमा विभक्ति के द्विवचन एवं बहुवचन में भी नुम् के अभाव में ददतौ, ददतः– ऐसे रूप होंगे।

सम्ब॰ (8) वा नपुंसकस्य 7.1.79

अभ्यस्तसंज्ञक अङ्ग से विहित शतृप्रत्यय, तदन्त नपुंसक शब्द को विकल्प से नुम्–आगम। जस् (प्रथमा बहुवचन) एवं शस् (द्वितीया बहुवचन) में नपुंसकस्य झलचः 7.1.72 से प्राप्त नित्य नुम्– आगम का यह वैकल्पिक प्रयोग है।

प्रकृति– अभ्यस्तसंज्ञक धातु, यथा– दा दाने, जुहोत्यादि। श्लौ 6.1.10 से धातु का द्वित्व होने से उभे अभ्यस्तम् 6.1.5 से धातु की अभ्यस्त संज्ञा।

प्रयोग– नपुंसक लिङ्ग प्रथमा बहुवचन– दा + शतृ = **ददन्ति** कुलानि– **ददति** कुलानि 'देनेवाले कुल'।

ददत् + जस्, ददत् + शस्। जश्शसोः शिः 7.1.20 से जस् एवं शस् के स्थान में शि आदेश, शि सर्वनामस्थानम् 1.1.42 से शि की सर्वनामस्थान संज्ञा, नपुंसकस्य झलचः 7.1.72 से अत् के अकार के बाद नुम्–आगम की नित्य प्राप्ति, वा नपुंसकस्य 7.1.79 से विकल्प से नुम्-आगम–ददनुम् त् शि। अनुबन्धलोप– ददन्ति। नुम् के अभाव पक्ष में– ददत् + शि = ददति।

सम्ब॰ (9) आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80

शी (क) तथा नदी (ख) के परे रहते अवर्णान्त अङ्ग से उत्तरवर्ती शतृ प्रत्यय को विकल्प से नुम्-आगम होता है। (क) नपुंसकाच्च 7.1.19 से नपुंसकलिङ्ग प्रथमा एवं द्वितीया द्विवचन में औ विभक्ति को शी आदेश होता है। (ख) यू स्त्र्याख्यौ नदी 1.4.3 से ई एवं ऊकार स्त्रीलिङ्ग में 'नदी' संज्ञक होते हैं। यथा– ङीप् = ई।

प्रकृति– 1. वर्तमानकाल में शतृप्रत्ययान्त 'श' विकरणवाली धातु, यथा– तुद् व्यथने, तुदादि, उभयपदी।

2. भविष्यत्काल में शतृप्रत्ययान्त धातु, यथा– पठ्।

प्रयोग– 1. नपुंसक लिङ्ग प्रथमा/ द्वितीया द्विवचन–

तुदत् + औ = **तुदन्ती–तुदती** कुले 'व्यथित होनेवाले दो कुल'। तुद् + श + शतृ (लटः शतृ॰ 3.2.124 से शतृ, तुदादिभ्यः शः 3.1.77 से श), अनुबन्धलोप, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप एकादेश– तुदत्। नपुं॰ प्रथमा/ द्वितीया द्विवचन में औ, नपुंसकाच्च 7.1.19 से औ को 'शी' आदेश, अनुबन्धलोप– तुदत् + ई। आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 से विकल्प से शतृ (=अत्) को नुम्– आगम– तुदन्ती, नुम् के अभाव पक्ष में तुदती।

स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6 से ङीप्– तुदत् + ङीप्, अनुबन्धलोप– तुदत् + ई। प्रस्तुत सूत्र से विकल्प से नुम् आगम– तुदती–तुदन्ती कन्या 'व्यथित होनेवाली कन्या'।

2. भविष्यत् काल में पठ् से लृटः सद् वा 3.3.14 से लृट् के स्थान में शतृ, स्यतासी लृलुटोः 3.1.33 से धातु से स्य, आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से इट्-आगम, आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से मूर्धन्यादेश– पठिष्यत्। नपुंसकलिङ्ग प्रथमा/द्वितीया द्विवचन में औ विभक्ति- पठिष्यत् + औ = **पठिष्यती-पठिष्यन्ती** मित्रे ' जो दो मित्र पढ़ेंगे वे'। नुपंसकाच्च 7.1.19 से 'औ' को शी आदेश, अनुबन्धलोप, आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 से विकल्प से शतृ (=अत्) को नुम्–आगम–पठिष्यन्ती (नुम् के अभाव में पठिष्यती।

स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6 से ङीप्– पठिष्यत् + ई = **पठिष्यन्ती-पठिष्यती** कन्या 'जो कन्या पढ़ेगी वह'। आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 से शतृ (=अत्) को विकल्प से नुम्-आगम–पठिष्यन्ती। नुम् के अभाव में– पठिष्यती।

सम्ब॰ (10) शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81

शप् तथा श्यन् से परवर्ती शतृ प्रत्यय को शी तथा नदी के परे नित्य नुम् आगम होता है। आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 सूत्र के वैकल्पिक नुम् का यह निषेध सूत्र है।

प्रकृति– 1. 'शप्' विकरण से युक्त धातु, यथा– पठ्।

2. 'श्यन्' विकरण से युक्त धातु, यथा– तुष् तुष्टौ, दिवादि, पर॰।

प्रयोग– 1. पठ् + शप् + शतृ = पठत् (लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से शतृ, कर्तरि शप् 3.1.68 से शप्, अतो गुणे 6.1.79 से पररूप एकादेश)। नपुंसकलिङ्ग प्रथमा/ द्वितीया द्विवचन में– पठत् + औ = **पठन्ती** मित्रे 'पढ़नेवाले दो मित्र'। नपुंसकाच्च 7.1.19 से औ को शी आदेश,

अनुबन्धलोप-पठत् + ई। आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 से प्राप्त वैकल्पिक नुम् को बाधकर शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81 से शतृ (=अत्) को नित्य नुम्- आगम, अनुबन्धलोप- पठन्ती।

स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6 से ङीप्, अनुबन्ध-लोप- पठत् + ई = **पठन्ती** बालिका 'पढ़नेवाली लड़की'। शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81 से शतृ (=अत्) को नित्य नुम्-आगम- पठन्ती।

2. तुष् + श्यन् + शतृ = तुष्यत् (लटः शतृशानच॰ 3.2.124 से शतृ, दिवादिभ्यः श्यन् 3.1.69 से श्यन्, अतो गुणे 6.1.79 से पररूप एकादेश, नपुंसकलिङ्ग प्रथमा/ द्वितीया द्विवचन में- तुष्यत् + औ = **तुष्यन्ती** कुले 'सन्तुष्ट होनेवाले दो कुल'। नपुंसकाच्च 7.1.19 से औ को शी आदेश, अनुबन्धलोप- तुष्यत् + ई। आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80 से प्राप्त वैकल्पिक नुम् को बाधकर शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81 से शतृ (=अत्) को नित्य नुम्, अनुबन्धलोप- तुष्य न् त् ई = तुष्यन्ती।

स्त्रीत्व में उगितश्च 4.1.6 से ङीप्। अनुबन्धलोप-तुष्यत् + ई = तुष्यन्ती महिला 'खुश होनेवाली महिला'। शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81 से शतृ (=अत्) को नित्य नुम् आगम- तुष्यन्ती।

शध्यै, शध्यैन्

शध्यै = अध्यै।

शध्यैन् = अध्यै। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से शकार की एवं शध्यैन् के नकार की हलन्त्यम् 1.3.3 से इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव– (1) सार्वधातुक (तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113)।

(2) शित् (1.3.8)। अतः तिङ्शित्॰ 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा।

(3) ङित्। अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से ङिद्वद्भाव।

(4) अजादि।

(5) अव्यय (कृन्मेजन्तः 1.1.39 से)– एजन्त होने के कारण।

(6) शध्यैन् में यह नित् है। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन् कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः 3.4.9

वैदिक प्रयोग में तुमर्थ में धातु से 'शध्यै' और 'शध्यैन्' (एवं से, सेन् आदि भी)।

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

अर्थ– भाव (तुम् का कोई विशिष्ट अर्थ न रहने के कारण)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– पा पाने, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– पा + शध्यै = **पिबध्यै।**

पा + शध्यैन् = **पिबध्यै।** (पाघ्रा॰ 7.3.78 से पा को 'पिब' आदेश, अतो गुणे 6.1.97 से पररूप (एकादेश)। शध्यैन् के योग में बने 'पिबध्यै' में आदि इकार की ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से उदात्त संज्ञा। पिबध्यै– ऋग्वेद 4.27.5

शानच्

शानच् = आन। हलन्त्यम् 1.3.3 से च् की और लशक्वतद्धिते 1.3.8 से श् की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय इत्संज्ञकों का लोप।

स्वभाव–

1. सार्वधातुक। 'शित्' (लशक्वतद्धिते 1.3.8) होने के कारण तिङ्शित्सार्वधातुकम् 3.4.113 से शानच् प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा। अतः (1) कर्तरि शप् 3.1.68 से धातु से शप्, यथा– लभ् + शप् + शानच् = लभमानः। (2) शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.21 से शी धातु के ईकार को गुण, यथा- शी + शानच् = शे + आन = शयानः।

2. अजादि ङित्। सार्वधातुक एवं अपित् होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से शानच् का ङिद्वद्भाव।

   शकार की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाने से शानच् एक अजादि प्रत्यय है।

   1. अजादि होने से हुश्नुवोः सार्वधातुके 6.4.87 से असंयोगपूर्व श्नुप्रत्ययान्त धातु को यण्-आदेश, यथा– सु + श्नु + शानच् = सु + नु + आन = **सुन्वानः**।
   2. सार्वधातुक ङित् होने से अत उत्सार्वधातुके 6.4.110 के कृ धातु के अकार के स्थान में उकार, यथा– कृ + उ + शानच् = क र् उ + आन = **कुर्वाणः** (कृ + शानच्, तनादिकृञ्भ्य उः 3.1.79 से उ, सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व एवं अत उत्॰ 6.4.110 से अकार को उकार, इको यणचि 6.1.77 से यणादेश)।
   3. सार्वधातुक ङित् होने से श्नसोरल्लोपः 6.4.111 से श्नम् के अकार का लोप होता है। यथा– भिद् + शानच् = **भिन्दानः** (भिद्(भिदिर्) विदारणे, धातु से आत्मनेपद

में लट् के स्थान में शानच्, रुधादिभ्यः श्नम् 3.1.78 से धातु के स्वर के बाद श्नम्, अनुबन्धलोप–भिनद् + आन। श्नसोरल्लोपः 6.4.111 से न के अकार का लोप– भिन्दानः)।

4. सार्वधातुक ङित् होने से श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से श्ना एवं अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार का लोप होता है। यथा– (क) श्नाप्रत्ययान्त धातु– क्री + शानच् = क्रीणानः 'खरीदनेवाला' (क्री द्रव्यविनिमये धातु उभयपदी है। इसके आत्मनेपद में 'लट्' के स्थान में शानच्, क्र्यादिभ्यः श्ना 3.1.81 से श्ना, अनुबन्धलोप– क्री + ना + आन। श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से ना के आकार का लोप– क्रीणानः।) (ख) अभ्यस्त संज्ञक धातु, यथा-दा + शानच् = **ददानः** 'देनेवाला'। (दा धातु उभयपदी है। उसके आत्मनेपद में लट् के स्थान में शानच्, कर्तरि शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः 2.4.75 से शप् का श्लु अर्थात् लोप, श्लौ 6.1.10 से दा धातु क द्वित्व, अभ्यासकार्य- द दा + आन। उभे अभ्यस्तम् 6.1.5 से दा धातु की अभ्यस्त संज्ञा, श्नाभ्यस्तयोरातः 6.4.112 से धातु के आकार का लोप– ददानः)।

3. सत्। तौ सत् 3.2.127 से शतृ एवं शानच् की सत् संज्ञा। अतः पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन 2.2.11 से षष्ठी तत्पुरुष समास का निषेध, यथा– ब्राह्मणस्य कुर्वाणः। कृ + शानच् = 'कुर्वाणः' के साथ 'ब्राह्मणस्य'– इस षष्ठ्यन्त पद का षष्ठी 2.2.8 से तत्पुरुष समास का पूरणगुण॰ 2.2.11 से निषेध।

4. विशेष्यनिघ्न– विशेष्य के लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार शानच् प्रत्ययान्त के लिङ्ग आदि होते हैं। शानच् प्रत्ययान्त शब्द के रूप पुंल्लिङ्ग में बालक, स्त्रीलिङ्ग में (टाप्-युक्त होने से) लता एवं नपुंसकलिङ्ग में फल के समान चलते हैं। यथा– शुभ् + शानच्

= शोभमान। पुं॰– शोभमानः पर्वतः, स्त्री॰– शोभमाना नगरी, नपुं॰– शोभमानं नगरम्।

5. आत्मनेपद– तङानावात्मनेपदम् 1.4.100 से आन अर्थात् शानच् की आत्मनेपद संज्ञा होती है।

1. विधि– लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124 धातु से लट् के स्थान में शतृ और शानच् आदेश होते हैं, यदि अप्रथमान्त शब्द के साथ उस लट् का समानाधिकरण हो।

शानच् की तङानावात्मनेपदम् 1.4.100 से आत्मनेपद संज्ञा होने से आत्मनेपदी धातुओं से ही लट् के स्थान में शानच् आदेश होता है।

अनु॰– वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– वर्तमानकाल, कर्त्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– आत्मनेपदी धातु अथवा उभयपदी धातु का आत्मनेपद रूप, यथा– (क) वृत् वर्तने, भ्वादि, आत्म॰, (ख) - कृ (डुकृञ्) करणे, तनादि॰, उभ॰।

प्रयोग– (क) वृत् + शानच् = **वर्तमानः** 'रहनेवाला'। वर्तमाने लट् 3.2.123 से लट्, अनुदात्तङित आत्मनेपदम् 1.3.12 से आत्मनेपद का विधान, लटः शतृशानचा॰ 3.2.123 से लट् के स्थान में शानच्, अनुबन्धलोप– वृत् + आन। तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113 से आन की सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप् 3.1.68 से शप्, अनुबन्धलोप– वृत् + अ + आन। सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के ऋकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व– वर्त आन। आने मुक् 7.2.82 से आन से पूर्व मुक् (=म्) आगम = वर्तमानः।

(ख) क्री + शानच् = क्रीणानः।

विशेष– सूत्र में 'अप्रथमासमानाधिकरणे' के कथन से प्रथमा समानाधिकरण में शानच् नहीं– देवदत्तः सेवते। परन्तु, कहीं-

कहीं समानाधिकरण में भी शानच्– वर्तमानः कालः अथवा वर्तते कालः।

2. विधि– सम्बोधने च 3.2.125

सम्बोधन में भी धातु से लट् के स्थान में शतृ एवं शानच् आदेश होते हैं।

अनु॰– लटः शतृशानचौ (3.2.124), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– सम्बोधन। पूर्वसूत्र लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से प्रथमासमानाधिकरण में शानच् की प्रवृत्ति नहीं है। प्रस्तुत सूत्र से प्रथमासमानाधिकरण में शानच् की प्रवृत्ति सुनिश्चित होती है, क्योंकि सम्बोधने च 2.3.47 से सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति ही होती है।

प्रकृति– आत्मनेपदी धातु, यथा– वृत्

प्रयोग– वृत् + शानच् = वर्तमान (विधि सं. 1 के समान)। हे वर्तमान! 'हे रहनेवाले'।

3. विधि– लक्षणहेत्वोः क्रियायाः 3.2.126

क्रिया के लक्षण तथा हेतु अर्थों में वर्तमान धातु से लट् के स्थान में शतृ और शानच् आदेश।

अनु॰– लटः शतृशानचौ (3.2.124)

अर्थ– लक्षण (जिससे दूसरी क्रिया लक्षित होती है), हेतु (दूसरी क्रिया का जनक)।

प्रकृति– लक्षण बतानेवाली धातु और हेतु बतानेवाली धातु (आत्मनेपदी)

प्रयोग– 1. लक्षण– बालः **शयानः** दुग्धं पिबति 'लेटा हुआ बालक दूध पी रहा है'। यहाँ 'शयान' क्रिया से पिबति क्रिया लक्षित हो रही है। अतः शी धातु से प्रस्तुत सूत्र से शानच्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः 2.4.72 से शप् का लोप– शी आन। शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.16 से धातु के ईकार को गुण से एकार, एचोऽयवायावः 6.1.78 से

अयादेश– शयानः।

2. हेतु– गुरुं **सेवमानः** वसति 'गुरु की सेवा के कारण से रहता है'। यहाँ रहने का हेतु सेवा करना है। अतः सेव् धातु से प्रस्तुत सूत्र से शानच्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुक संज्ञा, कर्तरि शप्, अनुबन्धलोप– सेव् + अ + आन। आने मुक् 7.2.82 से आन से पूर्व मुक् (म्) का आगम– सेवमानः।

4. विधि– लृटः सद् वा 3.3.14

भविष्यत् काल में विहित लृट् लकार के स्थान में सत् संज्ञक शतृ एवं शानच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं। तौ सत् 3.2.127 से शतृ एवं शानच् की 'सत्' संज्ञा।

अनु०– क्रियायां क्रियार्थायाम् (3.3.10), भविष्यति (3.3.3)।

अर्थ– क्रियार्थक क्रिया।

प्रकृति– आत्मनेपदी धातु, यथा– सेव्।

प्रयोग– सेव् + शानच् = **सेविष्यमाणः** 'जो सेवा करेगा वह'। शानच् की सार्वधातुक संज्ञा, स्यतासी लृलुटोः 3.1.33 से धातु से स्य, स्य की आर्धधातुक संज्ञा, आर्धधातुकस्येड् वलादेः 7.2.35 से स्य के आदि में इट्-आगम– सेवि स्य आन। आने मुक् 7.2.82 से आन से पहले मुक् (म्) आगम, आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से सकार को मूर्धन्य आदेश– सेविष्यमान। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि 8.4.2 से न को णत्व सेविष्यमाणः।

पुंल्लिङ्ग– **सेविष्यमाणं** शिष्यं पश्य 'जो शिष्य सेवा करेगा उसे देखो'। स्त्रीलिङ्ग– **सेविष्यमाणायाः** कन्यायाः गृहम् ' जो सेवा करेगी वैसी बेटी का घर'। नपुंसकलिङ्ग– **सेविष्यमाणाय** मित्राय इदम् 'जो मित्र सेवा करेगा उसके लिए यह'।

विशेष– 1. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे 3.2.124 से शतृ की तरह यहाँ भी अप्रथमासमानाधिकरण में यह शानच् प्रत्यय नित्य है। यथा– सेविष्यमाणं बालकं पश्य। किन्तु

प्रथमासमानाधिकरण में यह 'शानच्' प्रत्यय विकल्प से आता है। यथा– सेविष्यमाणः सेवकः– सेविष्यते सेवकः।

2. सम्बोधने च 3.2.125 की तरह सम्बोधन में यह शानच् नित्य है, यथा– हे सेविष्यमाण।

सम्बद्धस्थल–

सम्ब॰ (1) पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन 2.2.11

'सत्' अर्थात् शतृ एवं शानच् प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त पद का समास नहीं होता है।

तौ सत् 3.2.127 से शतृ एवं शानच् की 'सत्' संज्ञा। षष्ठी 2.2.8 से षष्ठ्यन्त किसी समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। प्रस्तुत सूत्र उसका अपवाद है।

प्रयोग– ब्राह्मणस्य कुर्वाणः। कृ + शानच् = कुर्वाणः। इस शानच्-प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त 'ब्राह्मणस्य' का षष्ठी 2.2.8 से प्राप्त समास का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

सम्ब॰ (2) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69

ल–आदेश शतृ एवं शानच्–प्रत्ययान्त के प्रयोग होने से कृद्योग षष्ठी विभक्ति नहीं होती है। लटः शतृ शानचा॰ 3.2.124 से लट् लकार के स्थान में और लृटः सद् वा 3.3.14 से लृट् लकार के स्थान में उभय शतृ एवं शानच् का आदेश होता है। अतः ये दोनों प्रत्यय 'लादेश' हैं। शानच् प्रत्ययान्त के योग में कर्ता एवं कर्म की कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है। प्रस्तुत सूत्र से उसका निषेध होता है।

प्रयोग– गुरुं सेवमानः 'गुरु की सेवा करनेवाला'। सेव् + शानच् = सेवमानः। (लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से लट् के स्थान में शानच्)।

गुरुं सेविष्यमाणः 'जो गुरु की सेवा करेगा वह'। सेव् + स्य + शानच् (लृटः सद् वा 3.3.14 से लृट् के स्थान में शानच्)। उभय वाक्यों में कर्म 'गुरु' में कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से

प्राप्त षष्ठी का प्रस्तुत सूत्र से निषेध हुआ।

सम्ब॰ (3) आने मुक् 7.2.82

आन के परे अङ्गसंज्ञक अ को मुक् आगम होता है।

प्रयोग– सेव् + शानच् = सेवमानः। (लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से लट् के स्थान में शानच्, कर्तरि शप्, प्रस्तुत सूत्र से मुक्–आगम)।

सेव् + स्य + शानच् = सेविष्यमाणः। (लृटः सद् वा 3.3.14 से लृट् लकार के स्थान में शानच्, स्य विकरण, प्रस्तुत सूत्र से मुक्-आगम, णत्व)।

सम्ब॰ (4) ईदासः 7.2.83

आस् धातु से उत्तरवर्ती आन को ई आदेश हो जाता है।

प्रकृति– आस् उपवेशने, आत्म॰।

प्रयोग– आस् + शानच् = **आसीनः** 'बैठनेवाला'। लटः शतृशानचा॰ 3.2.124 से लट् के स्थान में शानच्, अनुबन्धलोप– आस् + आन। कर्तरि शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः 2.4.72 से शप् का लोप, ईदासः 7.2.83 से आन के आकार को ईकार– आसीनः।

(5) ज्ञाजनोर्जा 7.3.79

शित् प्रत्यय के परे 'ज्ञा' तथा 'जन्' धातु के स्थान में 'जा' आदेश।

प्रयोग– जन् + शानच् = **जायमानः** 'जन्म लेनेवाला'।

शानन्

शानन् = आन। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से शकार की और हलन्त्यम् 1.3.3 से तकार की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) सार्वधातुक (तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113)।

(2) शित् (1.3.3)। अतः तिङशित् 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा।

(3) ङित्। अपित् सार्वधातुक होने से सार्वधातुकमपित् 1.2.4 से ङिद्वद्भाव।

(4) अजादि।

(5) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– पूङ्यजोः शानन् 3.2.128

पूङ् तथा यज् धातुओं से वर्तमानकाल में 'शानन्'।

अनु॰– वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (कर्तरि कृत् 3.4.67)।

प्रकृति– (1) पूङ् पवने, भ्वा॰ आ॰,

(2) यज् देवपूजासंगतिकरणयजनदानेषु, भ्वा॰ उ॰।

प्रयोग– (1) पवते = पू + शानन् = **पवमानः** 'पवित्र करनेवाला' (सार्वधातुक होने से कर्तरि शप् 3.1.68 से धातु से शप् का विधान– पू अ आन, शप् की सार्वधातुकता के कारण सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.86 से धातु के ऊकार को गुण से ओकार, एचोऽयवायावः 6.1.78 से ओकार को अवादेश, पव आन, आने मुक् 7.2.82 से पव के अन्तावयव में मुक् आगम)।

(2) यजते = यज् + शानन् = **यजमानः** 'यज्ञ करनेवाला' (कर्तरि शप् 3.1.68 से शप् का विधान – यज् अ आन, आने मुक् 7.2.82 से मुक् – आगम)

विशेष– 'सोमं पवमानः' जैसे प्रयोग में 'कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65 से सोम शब्द से कर्म में षष्ठी विधान का न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2.3.69 सूत्र से निषेध हुआ है।

प्रश्न– यह 'शानन्' लट् आदि किसी लकार के स्थान में नहीं आने से लादेश नहीं है। तब न लोका॰ 2.3.69 सूत्र से इसमें षष्ठी का निषेध कैसे हुआ?

उत्तर– न लोका॰ सूत्र में 'तृन्' प्रत्ययमात्र न होकर एक प्रत्याहार है जिसमें लटः शतृ॰ 3.2.124 के 'तृ' से लेकर 'तृन्' 3.2.135 के 'न्' तक आनेवाले प्रत्ययों का ग्रहण है। प्रस्तुत सूत्र 3.2.128 से विहित शानन् का भी इस 'तृन्' प्रत्याहार में ग्रहण होने से शानन् के योग में सिद्ध कृदन्त के योग में न लोका॰ 2.3.69 से षष्ठी का निषेध हो जाएगा– सोमं पवमानः।

शितप्

शितप् = ति। लशक्वतद्धिते 1.3.8 से शकार की एवं हलन्त्यम् 1.3.3 से पकार की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) सार्वधातुक (तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113)।

(2) शित् (1.3.8)। अतः तिङ्शित्॰ 3.4.113 से सार्वधातुक संज्ञा।

1. विधि– इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे इति वक्व्यम् (वा॰ 3.3.108)

धातु के निर्देश के लिए धातु से 'इक्' एवं 'शितप्' हो।

अर्थ– धातु का निर्देश।

प्रकृति– धातु सामान्य, यथा– भू सत्तायाम्, भ्वा॰ प॰।

प्रयोग– भू + शितप् = **भवतिः** 'भू धातु'। (कर्तरि शप् 3.1.68 से शप् - भू अ ति, सार्वधातुका॰ 7.3.86 से धातु के ऊकार को गुण से ओकार, एचोऽय॰ 6.1.78 से अवादेश)।

'भवतेरः' (अ॰ 7.4.73)

इसी प्रकार– श्रि + शितप् = **श्रयतिः** 'श्रि धातु',

यु + शितप् = यौतिः 'यु धातु'।

'उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः' (अ॰ 3.3.49)

षाकन्

षाकन् = आक। षः प्रत्ययस्य 1.3.6 से षकार की और हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की इत् संज्ञा, तस्य लोपः 1.3.9 से उभय का लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) अजादि।

(3) नित् (1.3.3)। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

(4) षित् (1.3.6)। अतः षाकन्-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व में षिद्गौरादिभ्यश्च 4.1.41 से ङीष् का विधान।

1. विधि– जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् 3.2.155

तच्छीलादि कर्ता हों तो वर्तमान काल में जल्प आदि धातुओं से 'षाकन्'।

अनु॰– तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (3.2.134), वर्तमाने (3.2.123)।

अर्थ– कर्ता (तच्छीलादि)।

प्रकृति– (1) जल्प व्यक्तायां वाचि, भ्वा॰ प॰, (2) भिक्ष भिक्षायाम्, भ्वा॰ आ॰, (3) कुट्ट प्रतापे अवसादने वा, चुरा॰ आ॰, (4) लुण्ट अथवा लुण्ठ स्तेये, चुरा॰ प॰, (5) वृङ् सम्भक्तौ, क्र्या॰ प॰।

प्रयोग– (1) जल्पति = जल्प् + षाकन् = **जल्पाकः** 'व्यर्थ बोलनेवाला'।

'श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा'– देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् 6

(2) भिक्षते = भिक्ष् + षाकन् = **भिक्षाकः** 'भिक्षा माँगनेवाला'।

(3) कुट्टयते = कुट्ट + षाकन् = **कुट्टाकः** 'सतानेवाला'।

(4) लुण्ठयति = लुण्ठ् + षाकन् = **लुण्ठाकः** 'लूटनेवाला'।

(5) वृणीते = वृ + षाकन् = **वराकः** 'चुननेवाला, बेचारा'

(सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से ऋकार को गुण, उरण् रपरः 1.1.51 से रपरत्व।

'तन्मया न युक्तं कृतं यत् स वराकोऽपमानितः' –पञ्चतन्त्रम् 1

विशेष– 'जल्पाक' आदि षाकन्-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व में षिद्गौरादिभ्यश्च 4.1.41 से ङीष्– जल्पाक + ङीष् = जल्पाकी (यस्येति च 6.4.148 से शब्द के अन्तिम अकार का लोप)।

इसी तरह – भिक्षाकी, कुट्टाकी, लुण्ठाकी एवं वराकी।

'तत् किमुज्जिहानजीवितां वराकीं नानुकम्पसे' -मातङ्गलीला 10

से, सेन्

से = से। हलन्त्यम् 1.3.3 से नकार की इत् संज्ञा एवं तस्य लोपः 1.3.9 से उसका लोप।

स्वभाव– (1) आर्धधातुक (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114)।

(2) अव्यय (कृन्मेजन्तः 1.1.39 से)– एजन्त होने से।

(3) सेन् में यह नित् है। अतः ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से आदि उदात्त।

1. विधि– तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः 3.4.9

वैदिक प्रयोग में तुमर्थ में धातु से 'से' एवं 'सेन्' (एवं असे, असेन् आदि भी)

अनु॰– छन्दसि (3.4.6)।

अर्थ– भाव (तुमर्थ का कोई विशिष्ट अर्थ न रहने के कारण)।

प्रकृति– धातुसामान्य, यथा– वच् परिभाषणे, अदादि, प॰, इ गतौ, अदा॰प॰।

प्रयोग– (1) वच् + से = **वक्षे**।

(चो॰ कुः 8.2.30 से चकार को ककार, आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से सकार को मूर्धन्यादेश)।

(2) इ + सेन् = **एषे**। (सार्वधातुकार्ध॰ 7.3.84 से धातु के इकार को गुण से एकार, आदेशप्रत्यययोः 8.3.59 से सकार को मूर्धन्यादेश)।

नित् प्रत्ययान्त होने से 'एषे' के आदि एकार की ञ्नित्यादिर्नित्यम् 6.1.197 से उदात्त संज्ञा। 'तवामेषे रथानाम्'– ऋग्वेद 5.66.3।

उपसंहृति

निरुक्तकार यास्क ने प्राक्पाणिनि काल में ही शब्दों की व्यापकता स्वीकारते हुए कहा था–'व्याप्तिमत्त्वात्तु शब्दस्य' (निरुक्त 1.1) और शब्दों की व्याप्ति को पुष्ट करने के लिए विविध प्रत्ययों की कल्पना की थी। यास्क के युग में शब्द चतुर्विध माने जाते थे– (1) नाम, (2) आख्यात, (3) उपसर्ग एवं (4) निपात। सभी नामपदों अर्थात् सुबन्तों को आख्यातज अर्थात् धातु से निष्पन्न सर्वथा माना जाय कि नहीं, इस विषय में विवाद भी होने लगा। नामपद का आख्यातजन्य होना कृत् प्रत्ययों की कल्पना पर आश्रित था। परन्तु कृत् प्रत्ययों की चर्चा इस विवाद में नहीं की जाती थी। विवाद का मुख्य प्रश्न यह था कि किसी नामपद में मूल धातु का स्वरूप एवं अर्थ क्या है। नामपद अर्थात् प्रातिपदिक केवल धातु से निष्पन्न नहीं होते आपितु कृत् प्रत्ययों के योग से ही प्रातिपदिक का निर्माण होता है। किन्तु केवल कृत्प्रत्ययान्त शब्द तक प्रातिपदिक की सीमा नहीं है। महर्षि पाणिनि ने कुछ प्रातिपदिकों को अव्युत्पन्न माना है (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् अ॰ 1.2.45)। व्युत्पन्न प्रातिपदिकों में भी कृदन्त के अतिरिक्त तद्धित और समास भी आते हैं (कृत्तद्धितसमासाश्च अ॰ 1.2.46)। परन्तु तद्धित एवं समास के लिए भी अव्युत्पन्न अथवा कृदन्त प्रातिपदिकों पर निर्भर करना पड़ता है। अतः नामपदों अर्थात् प्रातिपदिकों के निर्माण में प्राथमिकता एवं मौलिकता की दृष्टि से कृत् प्रत्ययों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः आधुनिक भाषाविज्ञान में इन्हें प्रारम्भिक परसर्ग (Primary Suffix) की आख्या दी गयी है।

यहाँ ध्यातव्य है कि सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र एक अन्वाख्यान शास्त्र है। सिद्ध व्यवहार्य शब्दों का किसी भी उपाय से 'व्युत्पादन' ही इस शास्त्र का साध्य प्रयोजन है। नये-नये अव्यवहृत अथवा अव्यवहार्य शब्दों का उत्पादन इसका ध्येय नहीं है। इसीलिए शिष्ट प्रयोगों की साधुता को कल्पित प्रकृति प्रत्ययादि द्वारा सजाने एवं दर्शाने का काम पाणिनि आदि आचार्यों ने बड़ी निष्ठा से की है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी के तृतीयाध्यायगत 'धातोः' (3.1.91)– इस अधिकार में तृतीयाध्याय की परिसमाप्ति तक जो तिङ्भिन्न प्रत्यय धातु से विहित किये गये हैं उन्हें कृत् कहते हैं (कृदतिङ् 3.1.93)। इस लक्षण के कारण धातु से विहित तिङ्भिन्न-प्रत्यय णिच्, सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यप्, यङ्, स्य, तास्, शप्, श्यन् आदि कृत् नहीं हैं, क्योंकि ये 'धातोः' (3.1.91) से पूर्व विहित हैं। शतृ, शानच् आदि 'शित्' कृत् प्रत्यय 'सार्वधातुक' हैं (तिङ्शित् सार्वधातुकम् 3.4.113) एवं शिद्भिन्न कृत् प्रत्यय 'आर्धधातुक' (आर्धधातुकं शेषः 3.4.114) हैं। कृत् प्रत्यय मुख्य रूप से कर्तृवाचक हैं (कर्तरि कृत् 3.4.67)। 'कृत्' का अर्थ है– करनेवाला (करोति इति कृत्)। निरुक्त में आचार्य यास्क ने कृत् को 'नामकरण' कहा है– 'नामानि करोति इति नामकरणः' बाहुलकात् कर्तरि ल्युट्। कृत्-प्रत्ययान्त की प्रातिपदिक संज्ञा है (कृत्तद्धितसमासाश्च 1.2.46), अतः कृदन्त प्रातिपदिक से सु, औ आदि सुप् विभक्तियों को लाकर सुबन्त पद बनाते हैं, जिन्हें वाक्य में प्रयुक्त किया जाता है। तुमुन्, क्त्वा आदि कृदन्त अव्ययों से भी सुप् लाकर उनका लोप कर दिया जाता है (अव्ययादाप्सुपः 2.4.82), जिससे वे भी पद बनकर वाक्य में प्रयोगार्ह हो जाते हैं।

महर्षि पाणिनि के बाद महर्षि कात्यायन ने शिष्ट परन्तु पाणिनि द्वारा अज्ञात प्रयोगों की पुष्टि हेतु पाणिनीय व्यवस्था में ही कुछ कृत् प्रत्ययों का उल्लेख किया है। अद्यतन व्याकरण-अध्ययन व्यवस्था से इन कृत् प्रत्ययों का सामान्य एवं व्यस्त बोध सम्भव हो पाता है। परन्तु इन प्रत्ययों का विशिष्ट तथा सामग्रिक बोध सर्वदा जिज्ञासा का विषय बना हुआ रहता है। फलतः उभय पाणिनीय व्याकरण के अध्यापक एवं अध्येताओं के उपयोग के लिए इन प्रत्ययों के व्यापक तथा विविध आयामों का स्पष्टीकरण अपेक्षित है, इसी उद्देश्य से पाणिनीय कृत् प्रत्ययों का एकैकशः पूर्ण विवरण तथा विश्लेषण करने हेतु यह पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है। इससे कृत्-प्रत्ययों की प्रातिपदिकप्रजनन (Word-Generating) क्षमता के पूर्ण बोध होने के साथ शब्दों के स्तरीकरण (Stratification) में उनकी उपयोगिता का सम्यक् बोध सम्भव हो पाएगा।

पुस्तक में अकारादि क्रम से कृत्-प्रत्ययों का संकलन, विश्लेषण एवं

विवेचन किया गया है। ऐसे ये प्रत्यय 139 हैं। उणादि प्रत्ययों को अध्ययन के परिसर से बाहर रखा गया है (केवल 'उण्' प्रत्यय का अन्तर्भाव हुआ है)। महर्षि पाणिनि ने अ, तव्य जैसे निरनुबन्ध एवं अण् (अ), तव्यत् (तव्य) जैसे सानुबन्ध प्रत्ययों का साभिप्राय प्रयोग किया है। अतः प्रत्येक प्रत्यय को उसके उपदेशकाल के स्वरूप के साथ उसके व्यावहारिक (अनुबन्धरहित अथवा आदिष्ट, यथा-ल्युट् = अन) रूप का कथन हुआ है। प्रत्येक सानुबन्ध प्रत्यय में इत्संज्ञा एवं इत्-लोप का ससूत्र उल्लेख हुआ है।

सामान्यतः सभी कृत् प्रत्यय स्वतन्त्र हैं। किन्तु कुछ प्रत्यय ऐसे भी हैं, जो अनुबन्धरहित होने पर परस्पर समान होते हैं, जैसे– यत् = (य), ण्यत् (=य) एवं क्यप् (=य)। अ और क (=अ)। यदि ये एक ही वर्ग में अन्तर्भूत हैं तो उन्हें उनके मूल (उपदेशकाल के) रूप के अनुसार क्रमशः संकलित किया गया है, यथा– क्यप्, ण्यत् एवं यत्।

1. प्रत्यय-स्वभाव (सामान्य/विशेष)

प्रत्यय की भूमिका में कुछ मौलिक सामान्य स्वभाव के सम्बन्ध में स्पष्टता दी गयी है, यथा– 'अण्' के णित् होने से धातु (प्रकृति) के स्वर को 'अचो ञ्णिति' 7.2.115 से वृद्धि, अत उपधायाः 7.2.116 से उपधा-वृद्धि आदि। इसप्रकार स्वभाव कथन से पूरे विवरण में प्रत्यय से सम्बद्ध लोप, आगम, वर्णविकार आदि का सामान्य बोध अध्येता के चित्त में प्रभावी हो, यही उद्देश्य है।

2. सूत्र/वार्त्तिक

साधित कृदन्त प्रातिपदिकों के साधन में कृत् के वैयक्तिक एवं तत्सम्बद्ध पक्षों की स्पष्टता इस पुस्तक की अभीष्ट है। अतः प्रत्येक प्रत्यय के विधायक सूत्र अथवा वार्तिक को व्यष्टिगत रूप में विश्लेषण का मूल आधार माना गया है। सूत्र अथवा वार्तिक के उल्लेख में अष्टाध्यायी क्रम का पालन किया गया है, जिससे यह सिद्ध हो कि सम्बद्ध प्रत्ययविशेष का विधान किस क्रम से और किस (स्वतन्त्र अथवा पर्यायगत) उद्देश्य से अष्टाध्यायी में उपनिबद्ध है। सूत्र या वार्तिक के उल्लेख के साथ ही उसका हिन्दी में सीधा, सम्बद्ध एवं सरल अनुवाद दिया गया है।

3. अनुवर्तन एवं अधिकार

'सूत्रष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र' (सिद्धान्तकौमुदी, संज्ञाप्रकरण) के अनुसार कृत्-प्रत्ययविधायक सूत्र में सूत्रान्तर से आगत पद, पदांश अथवा वाक्य का अनुवर्तन सूत्रनिर्देशपूर्वक किया गया है। कुछ सामान्य अधिकार, यथा– धातोः 3.1.91, प्रत्ययः, परश्च 3.1.1, 2 आदि का उल्लेख भूमिका में किया गया है। कुछ विशेष अधिकार का उल्लेख सम्बद्ध प्रत्यय में किया गया है, यथा– स्त्रियां क्तिन् 3.3.94 से 'स्त्रियाम्'।

4. उत्सर्ग/अपवाद

उत्सर्ग, अपवाद अथवा निपातन की रीति से विधिसूत्र उपदिष्ट हुए हैं। प्रत्ययविधि में सूत्र 'उत्सर्ग' होने पर कोई संकेत नहीं दिया गया है। परन्तु अपवाद होने पर 'अप॰' लिखा गया है और उससे सम्बद्ध उत्सर्ग विधि का भी उल्लेख किया गया है।

5. अर्थ

कर्ता, कर्म, करण, ताच्छील्य, भाव आदि प्रत्यय का सामान्य अथवा विशिष्ट अर्थ को सप्रमाण दर्शाया गया है।

6. प्रकृति

प्रत्येक प्रत्यय की प्रकृति-सापेक्षता अवश्य स्वीकार्य है। अर्थात् किसी भी प्रत्यय का प्रकृति-निरपेक्ष अध्ययन न तो सम्पूर्ण है और न ही व्यावहारिक। अतः प्रत्येक कृत् के सामग्रिक विवेचन में तत्सम्बद्ध प्रकृति अर्थात् धातु का प्रसङ्ग अनिवार्य है। यदि धातुसामान्य प्रकृति हो तो वैसा उल्लेख कर किसी एक-दो धातु से प्रयोगों की पुष्टि की गयी है। धातुविशेष/विशेषों के 'प्रकृति' के रूप में रहने पर उनका स्पष्ट विवरण दिया गया है।

7. प्रयोग

सामान्य प्रकृति अर्थात् धातु से सम्बद्ध प्रत्यय के योग से निष्पन्न एक-दो रूप दिखाये गये हैं। विशेष प्रकृति (धातु) से प्रत्यय-संयोग से निष्पन्न सभी रूप बताये गये हैं। गणगत प्रकृति की दशा में एक/दो उदाहरण ही प्रदर्शित हुए हैं। प्रायः प्रत्येक प्रयोग अर्थात् प्रातिपदिक का हिन्दी में अर्थ भी

उसके पास दिया गया है। साथ ही प्रयोग-सिद्धि में आए संज्ञा, विधि आदि सूत्रों के उल्लेख के साथ तत्सम्बद्ध किये गये परिवर्तन को दर्शाया गया है। यथेष्ट लौकिक एवं वैदिक प्रयोगों का उल्लेख कर इन रूपों की व्यावहारिकता दर्शायी गयी है।

8. विशेष

लिङ्ग, वचन आदि विशेष प्रसङ्ग में यदि कोई सूत्र/वार्त्तिक सम्बद्ध विधि के किसी विशेष पक्ष को बताता हो तो उसका उल्लेख किया गया है।

9. सम्बद्धस्थल

प्रत्ययविधि के अतिरिक्त उस प्रत्यय से सम्बद्ध आदेश, विकार, परिभाषा, नियम आदि का भी उल्लेख करना अनिवार्य समझा गया है। अतः सम्बद्ध सूत्र/वार्त्तिक के उल्लेख के साथ प्रत्यय के उन सम्बद्ध पक्षों को सप्रयोग दर्शाया गया है, जिनके कथन के विना सम्बद्ध प्रत्यय का सम्पूर्ण एवं सामग्रिक अध्ययन अधूरा रहता। ये सम्बद्धस्थल प्रत्यय के विधिक्षेत्र (अष्टाध्यायी के 3-5 अध्याय) से बाहर ही हैं, यथा– अप्। सम्बद्धस्थल– घञपोश्च 2.4.38 से अप् के परे रहते अद् को 'घस्लृ' आदेश। अतः वि-अद् + अप् (उपसर्गेऽदः 3.3.59 से अप्) = 'विघसः' होता है।

निष्कर्ष

1. कृत्-प्रत्ययों की सामूहिक क्षेत्रसीमा तथा प्रत्येक प्रत्यय की व्यक्तिगत सम्बद्धसीमा का स्पष्ट बोध हुआ है।
2. प्रत्येक प्रत्यय से सम्बद्ध सामान्य एवं विशेष अधिकारों की व्यावहारिकता का बोध हुआ है।
3. विहित (सूत्र/वार्त्तिक से) प्रत्यय तथा सौत्र (सूत्र/वार्त्तिक से अविहित होने पर भी सूत्रकार अथवा वार्त्तिककार के वचन से अभिप्रेत) प्रत्ययों का परिचय प्राप्त हुआ है।
4. प्रत्ययों की सामान्य/विशेष संज्ञाएँ तथा उनकी यथोद्देश्यता एवं कार्यकालता स्पष्ट हुई हैं।
5. जालवत् परस्पर-सम्बद्ध प्रत्यय-विधि-विषयक पाणिनीयता स्पष्ट हुई है।

6. 'लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः' (महा॰, पस्पशाह्निक) के अनुसार शब्दप्रयोग के विविध शास्त्रीय एवं/अथवा लौकिक व्यवहारगत स्तरों (Stratification) में प्रत्ययविधि की विशिष्ट भूमिका का बोध हुआ है।
7. निपातित प्रत्ययान्तों में प्रत्ययों की कल्पना में पाणिन्युत्तर आचार्यों का स्वातन्त्र्य परिलक्षित हुआ है।
8. शब्दानुशासन ही व्याकरण का प्रयोजन है (अथ शब्दानुशासनम्– म॰भा॰)। अतः कृदन्त शब्दों के अनुशासन में कृत् प्रत्ययों की अर्थावबोधकता अर्थात् प्रयोगाभिमुखता के विविध एवं व्यापक पक्ष स्पष्ट हुए हैं।
9. 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि प्रत्ययः' (महाभाष्य, अनभिहिते 2.3.1)– इस उक्ति की पुष्टि के साथ प्रकृति की परस्पर साकाङ्क्षता का व्यावहारिक पक्ष स्पष्ट हुआ है।
10. नये शब्दों के प्रजनन (Generating) में कृत् की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट हुई है। कृदन्त शब्दों में संस्कृत भाषा का शब्दभण्डार ही नहीं, अपितु संस्कृत से पुष्ट भारतीय भाषाओं का शब्दभण्डार पर्याप्त समृद्ध हुआ है।

आपाततः कृत् के शब्दस्तरीकरण-स्वभाव (Word-stratifying nature) एवं शब्दप्रजनन-क्षमता (Word-generating ability) के व्यापक एवं विवरणात्मक स्वरूप लेकर यह पुस्तक सभी सहृदयों के समक्ष समुपस्थित है।

●

परिशिष्ट–1

प्रयोगसूची

पुस्तक में उल्लिखित कृत्-प्रत्ययान्त प्रयोगों के स्थलों को जानने के लिए यह सूची प्रस्तुत की जा रही है। इसमें प्रयोगों का अकारादि क्रम से उल्लेख है। प्रत्येक प्रयोग के दाहिने धातु एवं प्रत्यय का उल्लेख है। प्रत्यय के दाहिने दी गयी संख्या उस प्रत्यय के विश्लेषण क्रम में आयी 'विधि' संख्या को दर्शाती है। यथा– **'अंशहरः अंश–हृ अच् 6'** में प्रयोग 'अंशहरः' की पूरी प्रक्रिया एवं उससे जुड़े सभी प्रसङ्गों को जानने के लिए 'अच्' प्रत्यय के विश्लेषण स्थल में विधि संख्या 6 (छह) द्रष्टव्य है।

जहाँ प्रत्यय से दाहिने 'सम्ब०' लिखा गया है वहाँ उस प्रयोग के सन्दर्भ में प्रत्यय से जुड़े 'सम्बद्धस्थल' को देखा जाय। 'सम्ब०' के दाहिने दी गयी संख्या उस सम्बद्धस्थलविशेष को बताती है। यथा– **'अक्षद्युः अक्ष-दिव् क्विप् सम्ब०6'** में प्रयोग 'अक्षद्युः' को जानने के लिए 'क्विप्' प्रत्यय के सम्बद्धस्थल संख्या 6 (छह) को देखना चाहिए।

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
अंशहरः	अंश-हृ	अच् 6	अग्रणीः	अग्र-नी	क्विप् 1
अकरणिः	न-कृ	अनि1	अग्रतःसरः	अग्रतः-सृ	ट 3
अकृतकारम्	अकृत-कृ	णमुल् 14	अग्रेगाः	अग्रे-गम्	विट् 1
अक्षद्युः	अक्ष-दिव्	क्विप् सम्ब०6	अग्रेगावा	अग्रे-गम्	वनिप् 2
अक्षिनिकाणम्	अक्षि-नि-कण्	णमुल् 32	अग्रे/प्रथमं/पूर्वंभुक्त्वा	भुज्	क्त्वा 6
अक्षिनिकाणम्	अक्षि-नि-कण्	णमुल् 32	अग्रेसरः	अग्रे-सृ	ट 3
अगदङ्कारः	अगद-कृ	अण् सम्ब० 5	अङ्गगत्	अङ्ग-गम्	क्विप् सम्ब० 4
अग्निचित्	अग्नि-चि	क्विप् 8	अङ्गमेजयः	अङ्ग-एज्	खश् 1
अग्निष्टोमयाजी	अग्निष्टोम-यज्	णिनि 12	अङ्गुष्ठः	अङ्गु-स्था	क 7
अग्निष्ठः	अग्नि-स्था	क 7	अजः	न-जन्	ड 14

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
अजस्रम्	न-जस्	र 1	अन्तर्घनः अन्तर्घणः	अन्तर्-हन्	अप् 23
अजर्यम्	न-जॄ	यत् 12			
अञ्चितः	अञ्च्	क्त सम्ब॰ 89	अन्तर्धा	अन्तर्-धा	अङ् 3
अण्डसूः	अण्ड-सू	क्विप् 1	अन्तर्धिः	अन्तर्-धा	कि 4
अतिक्रम्य पर्वतम्	अति-क्रम्	क्त्वा 2	अन्धकरणम्	अन्ध-कृ	ख्युन् 1
अतिचारी	अति-चर्	घिनुण् 2	अन्धंभविष्णुः	अन्ध-भू	खिष्णुच् 1
अतीसारः	अति-सृ	घञ् 2	अन्धंभावुकः	अन्ध-भू	खुकञ् 1
अत्यन्तगः	अत्यन्त-गम्	ड 2	अन्यथाकारम्	अन्यथा-कृ	णमुल् 5
अत्ययी	अति-इण्	इनि 3	अन्यादृक्	अन्य-दृश्	क्विन् 4
अत्यायः	अति-इण्	ण 3	अन्यादृक्षः	अन्यद्-दृश्	क्स 1
अत्यासम्	अति-अस्	णमुल् 35	अन्यादृशः	अन्य-दृश्	कञ् 2
अद्मरः	अद्	क्मरच् 1	अन्वग्भावम्	अन्वक्-भू	णमुल् 42
अधीयन्	अधि-इङ्	शतृ 4	अन्वग्भूय	अन्वक्-भू	क्त्वा 12
अध्यायः	अधि-इ	घञ् 6	अन्वेषणा	अनु-इष्	युच् 9
अध्येषणा	अधि-इष्	युच् 9	अपघनः	अप-हन्	अप् 26
अध्वगः	अध्वन्-गम्	ड 2	अपचितः	अप-चाय्	क्त सम्ब॰ 79
अनन्तकरः	अनन्त-कृ	ट 6	अपचितिः	अप-चि	क्तिन् सम्ब॰ 2
अनन्तगः	अनन्त-गम्	ड 2	अपत्रपिष्णुः	अप-त्रप्	इष्णुच् 1
अनाश्वान्	नञ्-अश्	क्वसु 3	अपमित्य अपमाय	अप-मेङ्	ल्यप् सम्ब॰ 15
अनित्यकायः	अनित्य-चि	घञ् 26			
अनुजः	अनु-जन्	ड 14	अपमित्य	अप-मा	क्त्वा 2
अनुजातः	अनु-जन्	क्त 6	अपलाषी	अप-लष्	घिनुण् 4
अनुजीर्णः	अनु-जॄ	क्त 6	अपलाषुकम्	अप-लष्	उकञ् 1
अनुत्तम्	न-उन्द्	क्त सम्ब॰ 115	अपलुपम्	अप-लुप्	कमुल् 1
अनुरोधी	अनु-रुध्	घिनुण् 2	अपष्ठः	अप-स्था	क 7
अनूकाशः	अनु-काश्	अच् सम्ब॰ 15	अपस्करः	अप-कृ	अप् सम्ब॰ 3
अनूषितः	अनु-वस्	क्त 6	अपाकर्तोः	अप-आ-कृ	तोसुन् 2
अनूषिवान्	अनु-वस्	क्वसु 2	अप्राप्य नदीम्	न-प्र-आप्	क्त्वा 3
अन्तकरः	अन्त-कृ	ट 6	अब्जाः	अप्-जन्	विट् 1
अन्तगः	अन्त-गम्	ड 2	अभयंकरः	अभय-कृ	खच् 6

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
अभिचरितोः	अभि-चर्	तोसुन् 1	अवग्राहः	अव-ग्रह्	घञ् 28
अभिजः	अभि-जन्	ड 14	अवचक्षे	अव-चक्षिङ्	एश् 1
अभिशीनम्	अभि-श्या	क्त सम्ब॰ 37	अवतानः	अव-तन्	ण 2
अभिश्यानम्			अवतारः	अव-तॄ	घञ् 39
अभिह्वः	अभि-ह्वे	अप् 17	अवद्यम्	न-वद्	यत् 8
अभ्यर्णा	अभि-अर्द्	क्त सम्ब॰ 74	अवनायः	अव-नी	घञ् 11
अभ्यमी	अभि-अम्	इनि 3	अवमत्य	अव-मन्	ल्यप् सम्ब॰ 9
अभ्याघाती	अभि-आ + हन्	घिनुण् 2	अवयाः	अव-यज्	ण्विन् 2
अभ्यान्तः	अभि-अम्	क्त सम्ब॰ 77	अवशीनम्	अव-श्या	क्त सम्ब॰ 37
अभ्यमितः			अवश्यानम्		
अभ्यूषखादिका	अभ्यूष-खाद्	ण्वुल् 5	अवश्यंकारी	अवश्य-कृ	णिनि 14
अभ्रंकषः	अभ्र-कष्	खच् 5	अवश्यपाच्यम्	अवश्य-पच्	ण्यत् सम्ब॰ 10
अभ्रंलिहः	अभ्र-लिह्	खश् 6	अवश्यायः	अव-श्यै	ण 3
अभ्रविलिप्ती	अभ्र-वि-लिप्	क्त सम्ब॰ 26	अवसाय	अव-सा	ल्यप् सम्ब॰ 14
अम्बष्ठः	अम्ब-स्था	क 7	अवसायः	अव-सो	ण 3
अम्बाष्ठः	अम्बा-स्था	क 7	अवस्करः	अव-कृ	अप् सम्ब॰ 2
अयः	इण्	अच् 17	अवहारः	अव-हृ	ण 3
अयोघनः	अयस्-हन्	अप् 27	अवायः	अव-इ	घञ् 14
अरविन्दः	अर-विद्	श 2	अवोदः	अव-उन्द्	घञ् सम्ब॰ 5
अरित्रम्	ऋ	इत्र 1	अव्यथिष्यै	न-व्यथ्	इष्यै 1
अरिन्दमः	अरि-दम्	खच् 9	अव्यथी	न-व्यथ्	इनि 3
अरुन्तुदः	अरु-तुद्	खश् 9	अव्यथ्यः	नञ्-व्यथ्	क्यप् 12
अरुष्करः	अरुः-कृ	ट 6	अश्राद्धभोजी	अश्राद्ध-भुज्	णिनि 8
अर्च्यम्	ऋच्	ण्यत् सम्ब॰ 11	अश्वयुक्	अश्व-युज्	क्विप् 1
अर्धभाक्	अर्ध-भज्	ण्वि 1	असूयकः	असूय	वुञ् 1
अर्यः	ऋ	यत् 10	असूर्यम्पश्याः	असूर्य-दृश्	खश् 10
अर्हन्	अर्ह्	शतृ 7	अस्तुंकारः	अस्तु-कृ	अण् सम्ब॰ 6
अलंकरिष्णुः	अलम्-कृ	इष्णुच् 1	अहस्करः	अहन्-कृ	ट 6
अलंकृत्वा	अलम्-कृ	क्त्वा 1	आकायम्	आ-चि	घञ् 26
अवगाहे	अव-गाह्	केन् 1	आक्रीडी	आ-क्रीड्	घिनुण् 2

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
आक्रोशकः	आ-क्रुश्	कञ् 2	आपणः	आ-पण्	घ 2
आखः	आ-खन्	ड 15	आपात्यः	आ-पत्	ण्यत् 12
आखनः	आ-खन्	घ 3	आप्लावः	आ-प्लु	घञ् 33
आखनिकः	आ-खन्	इक 1	आप्लाव्यः	आ-प्लु	ण्यत् 12
आखनिकवकः	आ-खन्	इकवक 1	आमात्	आम-अद्	विट् 2
आखरः	आ-खन्	डर 1	आमोषी	आ-मुष्	घिनुण् 2
आखानः	आ-खन्	घञ् 44	आयतस्तूः	आयत-स्तु	क्विप् 11
आख्यायकः आख्शायकः	आ-चक्षिङ्	ण्वुल् सम्ब॰ 6	आयामी आयासी	आ-यम् आ-यस्	घिनुण् 2 घिनुण् 2
आगम्य	आ-गम्	ल्यप् सम्ब॰ 9	आयुधम्	आ-युध्	क 12
आगामुकम्	आ-गम्	उकञ् 1	आरा	ऋ	अङ् 1
आघातुकम्	आ-हन्	उकञ् 1	आरावः	आ-रु	घञ् 33
आचार्यः	आ-चर्	यत् 7	आरूढः	आ-रुह्	क्त 6
आचाम्यम्	आ-चम्	ण्यत् 6	आर्यशीः	अर्य-शास्	क्विप् सम्ब॰ 2
आचोषखादिका	आ-चोष-खाद्	ण्वुल् 5	आविधः	आ-व्यध्	क 12
आजिः	अज्	इण् 1	आशंसुः	आ-शंस्	उ 1
आढ्यंकरणम्	आढ्य-कृ	ख्युन् 1	आशिका	अश्	ण्वुल् 4
आढ्यंभावुकः	आढ्य-भू	खुकञ् 1	आशितंभवः	आशित-भू	खच् 8
आतिः	अत्	इण् 1	आशीः	आ-शास्	क्विप् सम्ब॰ 3
आतृदः	आ-तृद्	कसुन् 2	आश्चर्यम्	आ-चर्	यत् सम्ब॰ 7
आत्मम्भरिः	आत्मन्-भृ	इन् 3	आसना	आस्	युच् 7
आदिः	अद्	इण् 1	आसाव्यम्	आ-सु	ण्यत् 6
आदिकरः	आदि-कृ	ट 6	आसितम्	आस्	क्त सम्ब॰ 25
आदिवान्	अस्	क्वसु सम्ब॰ 3	आसीनः	आस्	शानच् 4
आदृत्य	आ-दृ	क्यप् 4	आस्तीर्णम्	आ-स्तृ	क्त सम्ब॰ 1
आदेवकः	आ-देव् णिच्	वुञ् 2	आस्रावः	आ-स्रु	ण 3
आद्यूनः	आ-दिव्	क्त सम्ब॰ 102	आस्वान्तः आस्वनितः	आ-स्वन्	क्त सम्ब॰ 77
आधारः	आ-धृ	घञ् 41			
आनायः	आ-नी	घञ् 43	आहवः	आ-ह्वे	अप् 18
आनाय्यः	आ-नी	ण्यत् 7	आहारः	आ-हृ	घञ् 4

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
आहावः	आ-ह्वे	अप् 19	उक्तः	वच्	क्त सम्ब॰ 31
आहुवध्यै	आ-हु	कध्यै 1	उक्तम्	ब्रू	क्त सम्ब॰ 20
इक्षुभक्षिका	इक्षु-भक्ष्	ण्वुच् 1	उक्थशाः	उक्थ-शंस्	ण्विन् 1
इखः	इख्	क 1	उखः	उख्	क 1
इच्छा	इष्	श 5	उखास्रत्	उखा-स्रंस्	क्विप् 2
इच्छुः	इष्	उ 2	उग्रम्पश्यः	उग्र-दृश्	खश् 11
इत्थंकारम्	इत्थम्-कृ	णमुल् 5	उच्चैः कारम्	उच्चैः कृ	णमुल् 37
इत्यः	इण्	क्यप् 4	उच्चैः कृत्वा	उच्चैः कृ	क्त्वा 7
इत्वरः	इण्	क्वरप् 1	उच्चैः कृत्य		
इध्मप्रव्रश्चनः	इध्म-प्र-व्रश्च्	ल्युट् 3	उच्छ्रायः	उत्-श्रि	घञ् 32
इरम्मदः	इरा-मद्	खश् 2	उठः	उठ्	क 1
इलः	इल्	क 1	उतः	वे	क्त सम्ब॰ 31
इषः	इष्	क 1	उत्कारः	उत्-कृ	घञ् 15
इष्टः	यज्	क्त सम॰ 31	उत्तानशयः	उत्तान-शी	अच् 16
इष्टिः	यज्	क्तिन् 3	उत्पचिष्णुः	उत्-पच्	इष्णुच् 1
ईजः	ईज्	क 1	उत्पतिष्णुः	उत्-पत्	इष्णुच् 1
ईडः	ईड्	क 1	उत्पावः	उत्-पू	घञ् 32
ईदृक्षः	इदम् - दृश्	क्स 1	उत्फुल्लः	उत्-फल्	क्त सम्ब॰ 109
ईदृशः	इदम्-दृश्	कञ् सम्ब॰ 3	उत्साही	उत्-सह्	णिनि 1
ईरः	ईर्	क 1	उदक्तम्	उत्-अञ्च्	क्त सम्ब॰ 101
ईशः	ईश्	क 1	उदङ्कः	उत्-अञ्च्	घञ् 42
ईश्वरः	ईश्	वरच् 1	उदजः	उत्-अज्	अप् 14
ईषः	ईष्	क 1	उदधिः	उदक-धा	कि सम्ब॰ 2
ईषत्करः	ईषत्-कृ	खल् 1	उदपेषम्	उदक-पिष्	णमुल् 16
ईषत्पानः	ईषत्-पा	युच् 11	उदरशयः	उदर-शी	अच् 14
ईषत्प्रलम्भः	ईषत्-प्र-लभ्	खल् सम्ब॰ 3	उदरपूरम्	उदर-पूर्-णिच्	णमुल् 9
ईषदाढ्यंकरः	ईषद्-आढ्य-कृ	खल् 2	उदासारिण्यः	उत्-आ-सृ	णिनि 4
ईषदाढ्यंभवम्	ईषत्-आढ्य-भू	खल् 2	उदितः	वद्	क्त सम्ब॰ 31
ईहः	ईह्	क 1	उदेजयः	उत्-एज्-णिच्	श 2
ईहा	ईह्	अ 3	उदेतोः	उत्-इ	तोसुन् 2

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
उद्गीतिः	उत्-गा	क्तिन् 3	उपयमः	उप-यम्	अप् 8
उद्गारः	उत्-गॄ	घञ् 14	उपशयितः	उप-शी	क्त 6
उद्ग्राभम्	उत्-ग्रह्	घञ् 20	उपश्लिष्टः	उप-श्लिष्	क्त 6
उद्ग्राहः	उत्-ग्रह्	घञ् 20	उपसरः	उप-सृ	अप् 16
उद्घः	उद्-हन्	अप् 31	उपस्थानीयः	उप-स्था	अनीयर् 2
उद्घनः	उत्-हन्	अप् 25	उपस्थायुकः	उप-स्था	उकञ् 1
उद्भिदः	उत्-भिद्	क 1	उपस्थितः	उप-स्था	क्त 6
उद्दालकपुष्पभञ्जिका	उद्दालकपुष्प-भञ्ज्	ण्वुल् 5	उपह्वः	उप-ह्वे	अप् 17
उद्दासी	उत्-दास्	णिनि 1	उपाचरध्यै	उप-आ-चर्	अध्यै 1
उद्द्रावः	उत्-द्रु	घञ् 32	उपाधिः	उप-आ-धा	कि 4
उद्ध्यः	उज्झ्	क्यप् 13	उपाध्यायः	उप-अधि-इ	घञ् 6
उद्भासी	उद्-भास्	णिनि 1	उपाध्यायी	उप-अधि-इ	घञ् 6
उद्यावः	उत्-यु	घञ् 32	उपानत्	उप-नह्	क्विप् सम्ब॰ 1
उद्वेजनीयः	उद्-विज्	अनीयर् सम्ब॰ 2	उपालम्भः	उप-आ-लभ्	खल् सम्ब॰ 2
उपनिषत्	उप-नि-सद्	क्विप् 1	उपासितः	उप-आस्	क्त 6
उपयट्	उप-यज्	विच् 1	उपेयिवान्	उप-इण्	क्वसु 3
उपरावः	उप-रु	घञ् 7	उप्तः	वप्	क्त सम्ब॰ 31
उपशायः	उप-शी	घञ् 24	उप्त्रिमम	वप्	क्त्रि 1
उपशुश्रुवान्	उप-श्रु	क्वसु 2	उभौ	उभ्	क 1
उपसरजः	उपसर-जन्	ड 10	उरःपेषम्	उरस्-पिष्	णमुल् 33
उपसर्या	उप-सृ	यत् 11	उरगः	उरस्-गम्	ड 4
उपसेदिवान्	उप-सद्	क्वसु 2	उल्लाघः	उत्-लाघ्	क्त सम्ब॰ 108
उन्नायः	उत्-नी	घञ् 11	उशितः	वश्	क्त सम्ब॰ 32
उन्मदिष्णुः	उत्-मद्	इष्णुच् 1	उषः	उष्	क 1
उपदा	उप-दा	अङ् 3	उषितः	वस्	क्त सम्ब॰ 31
उपदाय	उप-दी	ल्यप् सम्ब॰ 7	उष्ट्रक्रोशी	उष्ट्र-क्रुश्	णिनि 7
उपदेष्टा	उप-दिश्	तृन् 1	उष्णभोजी	उष्ण-भुज्	णिनि 3
उपधा	उप-धा	अङ् 3	उष्णिक्	उत्-स्निह्	क्विन् 2
उपपादुकम्	उप-पद्	उकञ् 1	उहः	उहिर्	क 1
उपमा	उप-मा	अङ् 3	ऊः	अव्	क्विप् सम्ब॰ 7

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
ऊठः	ऊठ्	क।	कन्यादर्शम्	कन्या-दृश्	णमुल् 7
ऊढः	वह्	क्त सम्ब॰ 31	कपाटघ्नः	कपाट-हन्	टक् 4
ऊतिः	अव्	क्तिन् 7	कम्प्रा	कम्प्	र 1
ऊयः	ऊय्	क 1	कम्बलदः	कम्बल-दा	क 4
ऊर्क्	उर्ज्	क्विप् 10	कम्रा	कम्	र 1
ऊर्ध्वपूरम्	ऊर्ध्व-पूर्	णमुल् 22	करः	कृ	अघ् 1
ऊर्ध्वशोषम्	ऊर्ध्व-शुष्	णमुल् 22	करणीयम्	कृ	अनीयर् 1
ऊहः	ऊह्	क 1	करीषंकषा	करीष-कष्	खच् 5
ऋचः	ऋच्	क 1	कर्णेजपः	कर्णे-जप्	अच् 11
ऋजः	ऋज्	क1	कर्तवे	कृ	तवेन् 1
ऋणः	ऋण्	क 1	कर्तव्यम्	कृ	तव्य/तव्यत् 1
ऋणम्	ऋ	क्त सम्ब॰ 114	कर्ता	कृ	तृच् 1
ऋतिंकरः	ऋति-कृ	खच् 6	कर्तृकरः	कर्तृ-कृ	ट 6
ऋतीषट्	ऋति-सह्	क्विप् सम्ब॰ 1	कर्त्वम्	कृ	त्वन् 1
ऋत्विक्	ऋतु-यज्	क्विन् 2	कर्मकरः	कर्म-कृ	ट 7
ऋधः	ऋध्	क 1	कर्मकृत्	कर्मन्-कृ	क्विप् 6
ऋफः	ऋफ्	क1	कवचहरः	कवच-हृ	अच् 8
ऋषः	ऋष्	क 1	कव्यवाहनः	कव्य-वह्	ञ्युट् 1
एककरः	एक-कृ	ट 6	कषायपायिणः	कषाय-पा	णिनि 9
एतवै	इ	तवै 1	कष्टम्	कष्	क्त सम्ब॰ 71
एधः	इन्ध्	घञ् सम्ब॰ 5	कस्वरः	कस्	वरच् 1
एवंकारम्	एवम्-कृ	णमुल् 5	काण्डलावः	काण्ड-लू	अण् 1,7
एषे	इ	सेन् 1	कामदुघा	काम-दुह्	कप् 1
ओदनभोजनम्	ओदन-भुज्	ल्युट् 2	कामुकाः	कम्	उकञ् 1
ओदनभोजिका	ओदन-भुज्	ण्वुच्	कारकः	कृ	ण्वुल् 1
ओकः	उच्	क 1	कारणा	कारि	युच् 7
कटजः	कट-जन्	ड 10	कारा	कृ	अङ् 1
कटप्रूः	कट-प्रु	क्विप् 11	कारिः	कृ	इञ् 2
कथङ्कारम्	कथम्-कृ	णमुल् 5	कारिका	कृ	ण्वुल् 6
कथा	कथ्	अङ् 2	कारितम्	कृ + णिच्	क्त सम्ब॰ 59

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
कारुः	कृ	उण्	कुरुचरः कुरुचरी	कुरु-चर्	ट 1
कार्यम्	कृ	ण्यत् 4			
काष्ठभित्	काष्ठ-भिद्	क्विप् 1	कुलदमनः	कुल-दम्	ल्यु 1
किङ्करः	किम्-कृ	ट 6	कुलमुद्रुजः	कुल-उत्-रुज्	खश् 5
किंकरा	किम्-कृ	अच् 7	कुलमुद्वहः	कुल-उत्-वह	खश् 5
किंकरी	किम् -कृ	अच् 7	कुष्ठः	कु-स्था	क 7
किंशारुकम्	किम्-शॄ	उकञ् 1	कुष्ठम्	कुष्	क्थन् 1
किटः	किट्	क1	कूपखाः	कूप-खन्	विट् 1
किरः	कॄ	क 1	कूलंकषा	कूल-कष्	खच् 5
किलः	किल्	क 1	कृतम्	कृ	क्त 1
कीदृक्षः	किम्-दृश्	क्स 1	कृतवान्	कृ	क्तवतु 1
कीदृशः	किम्-दृश्	कञ् सम्ब॰ 3	कृतिः	कृ	क्तिन् 1
कीर्णः	कॄ	क्त सम्ब॰ 94	कृत्यम्	कृ	क्यप् 18
कीर्णिः	कॄ	क्तिन् सम्ब॰ 1	कृत्रिमम्	कृ	क्त्रिन् 1
कीर्तिः	कृत्	क्तिन् 7	कृपा	क्रप्	अङ् 1
कीलः	कील्	क 1	कृशः	कृश्	क्त सम्ब॰ 108
कुचः	कुच्	क 1	कृशः	कृश्	क 1
कुजः	कुज्	क 1	कृषः	कृष्	क 1
कुटः	कुट्	क 1	कृषिः	कृष्	इक् 2
कुट्टाकः	कुट्ट	षाकन् 1	कृष्टपच्या	कृष्ट-पच्	क्यप् 12
कुण्डपाय्यः	कुण्ड-पा	ण्यत् 10	केशग्राहम्	केश-ग्रह्	णमुल् 28
कुथः	कुथ्	क 1	कौमारहरः	कौमार-हृ	अच् 8
कुपः	कुप्	क 1	क्रय्यः	क्री	यत् सम्ब॰ 3
कुप्यम्	गुप्	क्यप् 12	क्रव्यात्	क्रव्य-अद्	विट् 3
कुमारघाती	कुमार-हन्	णिनि 2	क्रिया	कृ	श 4
कुमुदम्	कु-मुद्	क 6	क्रीडः	क्रीड्	क 1
कुम्बा	कुबि	अङ् 2	क्रीणन्	क्री	शतृ 1
कुम्भकारः	कुम्भ-कृ	अण् 1	क्रीत्रिमम्	क्री	क्त्रि 1
कुम्भकारी	कुम्भ-कृ	अण् सम्ब॰ 1	क्रुङ्	क्रुञ्च्	क्विन् 2
कुरः	कुर्	क 1	क्रोधनः	क्रुध्	युच् 4

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
क्रौञ्चबन्धम्	क्रौञ्च-बन्ध्	णमुल् 20	क्षेमकारः	क्षेम-कृ	अण् 3
क्लमी	क्लम्	घिनुण् 1	क्ष्वेदितः	क्ष्विद्	क्त सम्ब॰ 2
क्लिष्टः, क्लिशितः	क्लिश्	क्त सम्ब॰ 86	खनित्रम्	खन्	इत्र 1
			खशयः	ख-शी	अच् 13
क्लीबः	क्लीब्	क 1	खलुकृत्वा	खलु-कृ	क्त्वा 1
क्लेशकः	क्लिश्	वुञ् 1	खादकः	खाद्	वुञ् 1
क्लेशापहः	क्लेश-अप-हन्	ड 9	खारिन्धमः	खारि-ध्मा	खश् 4
क्वणः	क्वण्	अप् 10	खारिन्धयः	खारि-धेट्	खश् 4
क्षत्ता	क्षद्	तृन् 1	खारिम्पचः	खारि-पच्	खश् 7
क्षत्रियजम्	क्षत्रिय-जन्	ड 14	खेयम्	खन्	क्यप् 8
क्षमा	क्षम्	अङ् 1	ख्यातः	ख्या	क्त सम्ब॰ 111
क्षमी	क्षम्	घिनुण् 1	ख्यातम्, क्शातम्	चक्षिङ्	क्त सम्ब॰ 21
क्षयः	क्षि	अच् 17			
क्षयः	क्षि	घ सम्ब॰ 1	गतः	गम्	क्त 6
क्षयी	क्षि	इनि 3	गतिः	गम्	क्तिन् 1
क्षय्यः	क्षि	यत् सम्ब॰ 2	गत्वरः	गम्	क्वरप् 2
क्षामः	क्षै	क्त सम्ब॰ 106	गद्यम्	गद्	यत् 6
क्षिपः	क्षिप्	क 1	गमः	गम्	अप् 2
क्षिपा	क्षिप्	अङ् 1	गर्ज्यम्	गर्ज्	ण्यत् सम्ब॰ 7
क्षिप्नुः	क्षिप्	क्नु 1	गर्धनः	गृध्	युच् 3
क्षिया	क्षि	अङ् 1	गाथकः	गै	थकन् 1
क्षीणाः	क्षि	क्त सम्ब॰ 99	गायनः	गा	ण्युट् 1
क्षीणायुः, क्षितायुः	क्षि	क्त सम्ब॰ 61	गिरिशः	गिरि-शी	ड 1
			गीर्णः	गॄ	क्त सम्ब॰ 94
क्षीबः	क्षीब्	क्त सम्ब॰ 108	गीर्णिः	गॄ	क्तिन् सम्ब॰ 1
क्षीरपायिणः	क्षीर-पा	णिनि 9	गुरुतल्पगः	गुरुतल्प-गम्	ड 7
क्षुब्धः	क्षुभ्	क्त सम्ब॰ 67	गुरुसेवम्	गुरु-सेव्	णमुल् 23
क्षुरः	क्षुर्	क 1	गुहः	गुहू	क 1
क्षेत्रकरः	क्षेत्र-कृ	ट 6	गुहा	गुहू	अङ् 1
क्षेमंकरः	क्षेम-कृ	खच् 7	गुह्यम्	गुहू	क्यप् 5

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
गूनः	गु	क्त सम्ब॰ 95	ग्रामोपघ्नः	ग्राम-उप-हन्	अप् 30
गूर्त्तम्	गूर्	क्त सम्ब॰ 115	ग्रावस्तुत्	ग्राव-स्तु	क्विप् 10
गृध्नुः	गृध्	क्नु 1	ग्राहः	ग्रह्	ण 5
गृहम्	गृह्	क 1	ग्राही	ग्रह्	णिनि 1
गृहयालुः	गृह्	आलुच् 1	ग्लहः	ग्रह्	अप् 15
गृहस्थः	गृह-स्था	क 5	ग्लानः	ग्ला	क्त 6
गृहाः	ग्रह्	क 3	ग्लानिः	ग्ला	नि 1
गृहीतः	ग्रह्	क्त सम्ब॰ 32	ग्लास्नुः	ग्ला	क्स्नु 1
गृह्यकाः	ग्रह्	क्यप् 17	घटग्रहः	घट-ग्रह्	अच् 6
गेहानुप्रवेशम्	गेह-अनु-प्र-विश्	णमुल् 34	घटिन्धमः	घटी-ध्मा	खश् 5
गेहावस्कन्दम्	गेह-अव-स्कन्द्	णमुल् 34	घटिन्धयः	घटी-धेट्	खश् 4
गेयः	गै	यत् 15	घटीग्रहः	घटी-ग्रह्	अच् 6
गेहानुप्रपातम्	गेह-अनु-प्र-पत्	णमुल् 34	घट्टना	घट्ट	युच् 8
गोघ्नः	गो-हन्	टक् 5	घनः	हन्	अप् 22
गोचरः	गो-चर्	घ 2	घनाघनः	हन्	अच् सम्ब॰ 4
गोदायः	गो-दा	अण् 7	घस्मरः	घस्	क्मरच् 1
गोदोहनी	गो-दुह्	ल्युट् 3	घातः	हन् + घञ्	क्यप् 3
गोधा	गुध्	अङ् 1	घासः	अद्	घञ् सम्ब॰ 1
गोविन्दः	गो-विद्	श 2	घुष्टा	घुष्	क्त सम्ब॰ 72
गोषाः	गो-सन्	विट् 1	घृतपावा	घृत-पा	वनिप् 1
गोष्ठः	गो-स्था	क 7	घृतस्पृक्	घृत-स्पृश्	क्विन् 1
गोष्पदप्रम्, गोष्मदपूरम्	गोष्पद-पूर्-णिच्	णमुल् 10	घ्राणः, घ्रातः	घ्रा	क्त सम्ब॰ 11
गोसंख्यः	गो-सम्-ख्या	क 8	चक्रम्	कृ	क सम्ब॰ 1
गोसनिः	गो-सन्	इन् 4	चक्रबन्धम्	चक्र-बन्ध्	णमुल् 19
ग्रहः	ग्रह्	अच् 4	चक्रिः	कृ	कि 2
ग्रहः	ग्रह्	अप् 2	चङ्क्रमणः	चङ्क्रम्य	युच् 3
ग्रामगः	ग्राम-गम्	ड 7	चत्यम्	चत्	यत् 2
ग्रामगृह्या (सेना)	ग्राम-ग्रह्	क्यप् 17	चयः	चि	अच् 17
ग्रामणीः	ग्राम-नी	क्विप् 1	चराचरः	चर्	अच् सम्ब॰ 2

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
चरित्रम्	चर्	इत्र 1	जग्मिः	गम्	कि 1
चरिष्णुः	चर्	इष्णुच् 1	जग्मिवान् जगन्वान्	गम्	क्वसु सम्ब॰ 4
चर्चा	चर्च्	अङ् 2			
चर्मपूरम्	चर्मन्-पूर्-णिच्	णमुल् 9	जघ्निः	हन्	कि 1
चर्यम्	चर्	यत् 6	जघ्निवान् जघन्वान्	हन्	क्वसु सम्ब॰ 4
चलः	चल्	अच् 1			
चलनः	चल्	युच् 1	जङ्घाकरः	जङ्घा-कृ	ट 6
चलाचलः	चल्	अच् सम्ब॰ 2	जज्ञिः	जन्	कि 1
चाचलिः	चल् + यङ्	कि 3	जञ्जपूकः	जप् + यङ्	ऊक 2
चार्वाघाटः चार्वाघातः	चारु-आ-हन्	अण् 5	जनमेजयः	जन-एज्	खश् 1
			जनार्दनः	जन-अर्द्	ल्यु 1
चिकीर्षा	चिकीर्ष(कृ+सन्)	अ 2	जन्यः	जन्	यत् 15
चिकीर्षुः	चिकीर्ष	उ 1	जन्यम्	जन्	यत् 2
चित्रकरः	चित्र-कृ	ट 6	जपः	जप्	अप् 6
चिन्ता	चिति	अङ् 2	जप्यम्	जप्	यत् 4
चूडा	चुद्	अङ् 1	जयः	जि	घ सम्ब॰ 2
चूर्णपेषम्	चूर्ण-पिष्	णमुल् 13	जयी	जि	इनि 3
चूषः	चूष	क 1	जय्यः	जि	यत् सम्ब॰ 2
चोरङ्कारम्	चोर-कृ	खमुञ् 1	जरती	जॄ	अतृन् सम्ब॰ 1
च्युतः	च्युतिर्	क 1	जरन्	जॄ	अतृन् 1
चोपनः	चुप्	युच् 1	जरा	जॄ	अङ् 1
छदिः	छद्+णिच्	इस् 1	जलधिः	जल-धा	कि 5
छन्नः छादितः	छद् + णिच् क्त सम्ब॰ 76		जलस्पृक्	जल-स्पृश्	क्विन् 1
			जल्पनः	जल्प्	ल्यु 1
छिद्	छिद्	क्विप् 11	जल्पाकः	जल्प्	षाकन् 1
छिदा	छिद्	अङ् 1	जवः	जु	अच् 19
छिदुरा	छिद्	कुरच् 1	जवनः	जु	युच् 3
जक्षिवान्	अद्	क्वसु 1	जागरा	जागृ	अ 1
जक्षिवान्	दा	क्वसु सम्ब॰ 3	जागरूकः	जागृ	ऊक 1
जगत्	गम्	क्विप् 11	जागर्या	जागृ	श 7

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
जायमानः	जन्	शानच् 5	ततुरिः	तॄ	कि 1
जायाघ्नः	जाया-हन्	टक् 2	तत्करः	तत्-कृ	ट 6
जाराः	जॄ+णिच्	घञ् 5	तत्करा	तत्-कृ	अच् 7
जिगीषा	जिगीष (जि+सन्)	अ 2	तथाकारम्	तथा-कृ	णमुल् 6
जिघ्रः	घ्रा	श 1	तन्तिः	तन्	क्तिच् 1
जित्यः	जि	क्यप् 15	तन्तुवायः	तन्तु-वा	अण् 2
जित्वरः	जि	क्वरप् 1	तन्द्रालुः	तत्-द्रा	आलुच् 1
जिष्णुः	जि	क्स्नु 1	तपः	तप्	अच् 1
जीनः	ज्या	क्त सम्ब॰ 94	तपनः	तप्	ल्यु 1
जीनः	ज्या	क्त सम्ब॰ 32	तमितोः	तम्	तोसुन् 2
जीर्णः	जॄ	क्त सम्ब॰ 94	तमी	तम्	घिनुण् 1
जीवः	जीव्	क 1	तमोपहः	तमः-अप-हन्	ड 9
जीवकः	जीव्	वुन् 2	तरीतत्	तरि-तन्	क्विप् सम्ब॰ 1
जीवग्राहम्	जीव-ग्रह्	णमुल् 14	तर्षम्	तृष्	णमुल् 35
जीवनाशम्	जीव-नश्	णमुल् 21	ताडघः	ताड-हन्	क 10
जीवसे	जीव्	असे1 असेन् 1	तादृक्	तद्-दृश्	क्विन् 3
जुष्यः	जुष्	क्यप् 4	तादृशः	तद्-दृश्	क्स 1
जूः	जु	क्विप् 11	तादृशः	तद्-दृश्	कञ् 1
जूतिः	जु	क्तिन् 7	तारा	तॄ	अङ् 1
जुहूः	हु	क्विप् 11	तालभञ्जिका	ताल-भञ्ज	ण्वुल् 5
ज्यानिः	ज्या	नि 1	तिर्यक्कारम्	तिर्यक्-कृ	णमुल् 38
ज्वलः	ज्वल्	अच् 2	तिर्यक्कृत्य	तिर्यक्-कृ	क्त्वा 8
ज्वालः	ज्वल्	ण 1	तिलन्तुदः	तिल-तुद्	खश् 2
ज्ञः	ज्ञा	क 1	तुदः	तुद्	क 1
ज्ञप्तः, ज्ञापितः	ज्ञप् + णिच्	क्त सम्ब॰ 76	तुन्दपरिमृजः	तुन्द-परि-मृज्	क 6
			तुराषाट्	तुर-सह्	ण्वि 2
ज्वलनः	ज्वल्	युच् 3	तूः	त्वर्	क्विप् सम्ब॰ 7
झरा	झॄ	अङ् 1	तुतुजानः	तुज्	कानच् 1
तक्यम्	तक्	यत् 2	तूर्णः, त्वरितः	त्वर्	क्त सम्ब॰ 77
ततिः	तन्	क्तिन् 1			

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
तूलः	तूल्	क 1	दन्दशूकः	दंश्+यङ्	ऊक 2
तूष्णींभावम्	तूष्णीम्-भू	णमुल् 41	दन्द्रमणः	दन्द्रम्य	युच् 3
तूष्णींभूय	तूष्णीम्-भू	क्त्वा 11	दमनः	दम्	ल्यु 1
तृष्णक्	तृष्	नजिङ् 1	दमी	दम्	घिनुण् 1
तोमरग्रहः	तोमर-ग्रह्	अच् 6	दयालुः	दय्	आलुच् 1
त्यागः	त्यज्	घञ् 3	दरः	दृ	अप् 2
त्यागी	त्यज्	घिनुण् 2	दरी	दृ	इनि 3
त्याज्यम्	त्यज्	ण्यत् 12	दर्पणः	दृप्	ल्यु 1
त्यादृक्	त्यद्-दृश्	क्विन् 3	दवः	दु	अच् 3
त्यादृशः	त्यद्-दृश्	कञ् 1	दर्शनीयम्मन्यः	दर्शनीय-मन्	खश् 12
त्रपा	त्रप्	अङ् 1	दर्शनीयमानी	दर्शनीय-मन्	णिनि 11
त्रस्नुः	त्रस्	क्नु 1	दस्तः, दासित	दस्+णिच्	क्त सम्ब॰ 76
त्राणः, त्रातः	त्रा	क्त सम्ब॰ 110	दान्तः, दमितः	दम् + णिच्	क्त सम्ब॰ 76
त्राप्यम्	त्रप्	ण्यत् 6	दायः	दा	ण 3
त्रिकरः	त्रि-कृ	ट 6	दाराः	दृ	घञ् 5
त्रिष्ठः	त्रि-स्था	क 7	दारुः	दा	रु 1
त्वष्टा	त्विष्	तृन् 1	दार्वाघाटः	दारु-आ-हन्	अण् 4
दंक्ष्णुः	दंश्	क्स्नु 1	दावः	दु	ण 4
दण्डोपघातम्	दण्ड-उप-हन्	णमुल् 26	दाशः	दाश्	अच् 20
ददः	दा	श 3	दाश्वान्	दाश्	क्वसु सम्ब॰ 2
ददत्	दा	शतृ सम्ब॰ 7	दिक्	दिश्	क्विन् 2
ददिवान्	दा	क्वसु सम्ब॰ 3	दिग्धसहशयः	दिग्धसह-शी	अच् 15
ददृशिवान्, ददृश्वान्	दृश्	क्वसु सम्ब॰ 5	दित्यवाट्	दित्य-वह्	ण्वि 3
दधः	धा	श 3	दिदृक्षेण्यः	दिदृक्ष (दृश्+सन्)	केन्य 1
दधिः	धा	कि 2	विद्युत्	द्युत्	क्विप् 11
दधिक्राः	दधि-क्रम्	विट् 1	दिवाकरः	दिवा-कृ	ट 6
दधृक्	धृष्	क्विन् 2	दिविष्ठः	दिवि-स्था	क 7
दन्तच्छदः	दन्त-छद्	घ 1	दीपः	दीपी	क 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
दीप्तिः	दीप्	क्तिन् 2	द्रोणम्पचः	द्रोण-पच्	खश् 7
दीप्रम्	दीप्	र 1	द्रोही	द्रुह्	घिनुण् 2
दुःखहः	दुःख-हन्	ड 8	द्विकरः	द्वि-कृ	ट 6
दुराढ्यंकरः	दुर्-आढ्य-कृ	खल् 2	द्विजः	द्वि-जन्	ड 14
दुराढ्यंभवम्	दुर्-आढ्य-भू	खल् 2	द्विधाकारम्	द्विधा-कृ	णमुल् 40
दुर्गः	दुर्-गम्	ड 5	द्वैधंकारम्	द्वैध-कृ	णमुल् 40
दुर्दर्शनः	दुर्-दृश्	युच् 14	द्विधाभावम्	द्विधा-भू	णमुल् 40
दुर्धर्षणः	दुर्-धृष्	युच् 14	द्वैधंभावम्	द्वैध-भू	णमुल् 40
दुर्मर्षणः	दुर्-मृष्	युच् 14	द्विपः	द्वि-पा	क 5
दुर्योधनः	दुर्-युध्	युच् 14	द्विषन्	द्विष्	शतृ 1
दुर्लभम्	दुर्-लभ्	खल् सम्ब॰ 2	द्विषन्तपः	द्विषत्-ताप्	खच् 2
दुःशासनः	दुस्-शास्	युच् 14	द्विष्ठः	द्वि-स्था	क 7
दुष्करः	दुर्-कृ	खल् 1	द्वैषी	द्विष्	घिनुण् 2
दुष्पानः	दुस्-पा	युच् 11	द्व्यङ्गुलोत्कर्षम्	द्व्यङ्गुल-उत्-कृष्	णमुल् 29
दुष्प्रलम्भः	दुस्-प्र-लभ्	खल् सम्ब॰ 3	धनमदः	धन-मद्	अप् 12
दुह्यम्	दुह्	क्यप् 5	धनुर्ग्रहः	धनुष्-ग्रह्	अच् 6
दूनः	दु	क्त सम्ब॰ 95	धनुष्करः	धनुः-कृ	ट 6
दूरगः	दूर-गम्	ड 2	धमः	ध्मा	श 1
दूषणः	दुष्-णिच्	ल्यु 1	धयः	धे	श 1
दृढः	दृंह्	क्त सम्ब॰ 69	धर्मकरः	धर्म-कृ	ट 5
दृतिहरिः	दृति-हृ	इन् 2	धर्षितः	धृष्	क्त सम्ब॰ 2
दृशे	दृश्	के 1	धवित्रम्	धू	इत्र 1
देयम्	दा	यत् सम्ब॰ 8	धान्यमायः	धान्य-मा	अण् 2
देवदत्तः	देव-दा	क्त 5	धायः	धा	ण 3
देवहूयः	देव-ह्वेञ्	क्यप् 20	धाय्या	धा	ण्यत् 9
दोषी	दुष्	घिनुण् 2	धारयः	धारि	श 2
द्युतितम्, द्योतितम्	द्युत्	क्त सम्ब॰ 4	धारयन्	धारि	शतृ 1
			धारयिष्णुः	धारि	इष्णुच् 2
द्रुघनः	द्रु-हन्	अप् 27	धारा	धृञ्	अङ् 1
द्रुहः	द्रुह्	क 1	धारुः	धा	रु 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
धीः	ध्या	क्विप् 11	नायः	नी	घञ् 9
धूः	धूर्वी	क्विप् 10	नायः	नी	ण 4
धूनः	धूञ्	क्त सम्ब॰ 94	नासिकन्धमः	नासिका-ध्मा	खश् 3
धृषः	धृषा	क 1	नासिकन्धयः	नासिका-धेट्	खश् 3
धृष्टः	धृष्	क्त सम्ब॰ 68	निकायः	नि-चि	घञ् 26
धृष्णक्	धृष्	नजिङ् 1	निकाय्यः	नि-चि	ण्यत् 9
धृष्णुः	धृष्	क्नु 1	निक्वणः	नि-क्वण्	अण् 10
ध्यातः	ध्या	क्त सम्ब॰ 111	निगदः	नि-गद्	अप् 9
ध्वस्तिः	ध्वंस्	क्तिन् 2	निगमः	नि-गम्	घ 2
ध्वाङ्क्षरावी	ध्वाङ्क्ष-रु	णिनि 7	निग्राभम्	नि-ग्रह्	घञ् 20
ध्वान्तम्	ध्वन्	क्त सम्ब॰ 67	निग्राहः	नि-ग्रह्	घञ् 28
नखम्पचा	नख-पच्	खश् 8	निघसः	नि-अद्	अप् 5
नगरकारी	नगर-कृ	अण् सम्ब॰ 1	निघाः	नि-हन्	अप् 32
नग्नंकरणम्	नग्न-कृ	ख्युन् 1	निघानः	नि-हन्	चानश् 1
नग्नंभविष्णुः	नग्न-भू	खिष्णुच् 1	निचायः	नि-चि	घञ् 5
नग्नंभावुकः	नग्न-भू	खुकञ् 1	निद्रालुः	नि-द्रा	आलुच् 1
नतिः	नम्	क्तिन् 1	निधिः	नि-धा	कि 4
नन्दनः	नन्द्	ल्यु 1	निनदः	नि-नद्	अप् 9
नम्रम्	नम्	र 1	निन्दकः	निद्	कुञ् 1
नवेदाः	न-विद्	असुन् 1	निमयः	नि-मी	अच् सम्ब॰ 6
नश्वरः	नश्	क्वरप् 1	निमाय	नि-मि	ल्यप् सम्ब॰ 7
नसत्तम्	न-सद्	क्त सम्ब॰ 115	निमूलकाषम्	निमूल-कष्	णमुल् 12
नाडिन्धमः	नाडि-ध्मा	खश् 4	नियमः	नि-यम्	अप् 8
नाथहरिः	नाथ-हृ	इन् 2	नियोज्यः	नि-युज्	ण्यत् सम्ब॰ 14
नानाकारम्	नाना-कृ	णमुल् 40	निराकरिष्णुः	निर्-आ-कृ	इष्णुच् 1
नानाकृत्य	नाना-कृ	क्त्वा 9	निर्गः	निर्-गम्	ड 6
नानाभावम्	नाना-भू	णमुल् 40	निर्वाणः	निर्-वा	क्त सम्ब॰ 103
नान्दीकरः	नान्दी-कृ	ट 6	निलिम्पः	नि-लिम्प्	श 2
नामग्राहम्	नाम-ग्रह्	णमुल् 36	निशाकरः	निशा-कृ	ट 6
नामादेशम्	नाम-आ-दिश्	णमुल् 36	निश्चयः	निस्-चि	अप् 2

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
निषत्तम्	नि-सद्	क्त सम्ब॰ 115	पचा	पच्	अङ् 1
निष्कुषितः	नि-कुष्	क्त सम्ब॰ 83	पण्या	पण्	यत् 8
निष्पावः	निर्-पू	घञ् 13	पतः	पत्	अच् 1
निस्वनः	नि-स्वन्	अप् 9	पतनः	पत्	युच् 3
निहवः	नि-ह्वे	अप् 17	पतयालुः	पत्	आलुच् 1
नीकाशः	नि-काश्	अच् सम्ब॰ 15	पतापतः	पत्	अच् सम्ब॰ 2
नीचैः कारम्	नीचैः-कृ	णमुल् 37	पतिघ्नी	पति-हन्	टक् 2
नीचैः कृत्वा	नीचैः-कृ	क्त्वा 2	पतिवंरा	पति-वृ	खच् 9
नीचैः कृत्य			पदनः	पद्	युच् 10
नीरुक्	नि-रुच्	क्विप् सम्ब॰ 1	पदाजिः	पाद-आजि	इण् सम्ब॰ 1
नीलः	णील्	क 1	पदातिः	पाद-आति	इण् सम्ब॰ 1
नीवारः	नि-वृ	घञ् 31	पन्नगः	पन्न-गम्	ड 3
नीवृत्	नि-वृत्	क्विप् सम्ब॰ 1	पपिः	पा	कि 1
नुन्नः	नुद्	क्त सम्ब॰ 110	परन्तपः	पर-तप्	खच् 2
नुत्तः			परमेष्ठः	परमे-स्था	क 7
नेष्टा	नी	तृन् 1	परलोकदृश्वा	परलोक-दृश्	क्वनिप् 3
न्यर्णः	नि-अर्द्	क्त सम्ब॰ 73	परिक्षेपकः	परि-क्षिप्	वुञ् 1
न्यादः	नि-अद्	ण 7	परिक्षेपी	परि-क्षिप्	घिनुण् 2
न्यायः	नी	घञ् 22	परिखा	परि-खन्	ड 14
न्योकः	नि-उच्	क सम्ब॰ 5	परिग्राहः	परि-ग्रह्	घञ् 30
पक्ता	पच्	तृन् 1	परिघः	परि-हन्	अप् 29
पक्तिः	पच्	क्तिन् 5	पलिघः		
पक्त्रिमम्	पच्	क्त्रि 1	परिचर्या	परि-चर्	श 6
पक्वः	पच्	क्त सम्ब॰ 105	परिचाप्यः	परि-चि	ण्यत् 10
पचन्	पच्	शतृ 1	परिजाः	परि-जन्	ड 14
पठितुम्	पठ्	तुमुन् 1	परिणायः	परि-नी	घञ् 22
पठिष्यन्	पठ् + लृट्	शतृ 8	परिदाही	परि-दह्	घिनुण् 2
पण्डितमानी	पण्डित-मन्	णिनि 11	परिदेवी	परि-देव्	घिनुण् 2
पण्डितम्मन्यः	पण्डित-मन्	खश् 12	परिप्लूय	परि-प्लु	ल्यप् सम्ब॰ 12
पचः	पच्	अच् 1	परिभविनी	परि-भू	इनि सम्ब॰ 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
परिभवी	परि-भू	इनि 3	पाणितोभावम्	पाणितः भू	णमुल् 39
परिभावः	परि-भू	घञ् 38	पाण्युपकर्षम्	पाणि-उप-कृष्	णमुल् 27
परिमार्ग्यः	परि-मृज्	ण्यत् 11	पाण्युपघातम्	पाणि-उप-हन्	णमुल् 15
परिमृज्यः	परि-मृज्	क्यप् 11	पाण्युपरोधम्	पाणि-उप-रुध्	णमुल् 27
परिमोही	परि-मुह्	घिनुण् 2	पातुम्	पा	तुमुन् 2
परिराटकः	परि-रट्	वुञ् 1	पादः	पद्	घञ् 1
परिराटी	परि-रट्	घिनुण् 2	पादपः	पाद-पा	क 5
परिवादी	परि-वद्	घिनुण् 2	पापकृत्	पाप-कृ	क्विप् 6
परिव्याय	परि-व्येञ्	ल्यप् सम्ब॰ 6	पापतिः	पत् + यङ्	कि 3
परिवीय			पापलिः	पल् + यङ्	कि 3
परिव्राज्यम्	परि-व्रज्	ण्यत् सम्ब॰ 8	पामा	पा	मनिन् 2
परिसर्या	परि-सृ	श 6	पायं पायम्	पा	णमुल् 2
परिसारी	परि-सृ	घिनुण् 2	पाय्यम्	मा	ण्यत् 9
पर्यायः	परि-इ	घञ् 23	पारगः	पार-गम्	ड 2
पर्येषणा	परि-इष्	युच् 10	पारयः	पारि	श 2
पलितंकरणम्	पलित-कृ	ख्युन् 1	पार्श्वशयः	पाश्व-शी	अच् 14
पलितंभविष्णुः	पलित-भू	खिष्णुच् 1	पार्श्वोपपीडम्	पार्श्व-उप-पीड्	णमुल् 27
पलितंभावुकः	पलित-भू	खुकञ् 1	पाव्यम्	पू	ण्यत् 5
पवमानः	पू	शानन् 1	पितृव्यघाती	पितृव्य-हन्	णिनि 13
पवितः	पूङ्	क्त सम्ब॰ 5	पित्तघ्नम्	पित्त-हन्	टक् 3
पवित्रम्	पू	इत्र 2	पिबः	पा	श 1
पश्यः	दृश्	श 1	पिबध्यै	पा	शध्यै/शध्यैन् 1
पश्यतोहरः	पश्यतः-हृ	अच् सम्ब॰ 13	पिषः	पिष्	क 1
पाकः	पच्	घञ् 3	पीडा	पीड्	अङ् 1
पाक्यम्	पच्	ण्यत् 4	पीनम्	प्याय्	क्त सम्ब॰ 39
पाटूपटः	पट् + णिच्	अच् सम्ब॰ 5	पुञ्जिष्ठः	पुञ्ज-स्था	क 7
पाणिघः	पाणि-हन्	क 10	पुण्यकृत्	पुण्य-कृ	क्विप् 6
पाणितः कारम्	पाणितः-कृ	णमुल् 39	पुमनुजः	पुम्-अनु-जन्	ड 13
पाणिन्धमाः	पाणिध्मा	खश् 11	पुरःसरः	पुरः-सृ	ट 3
पाणिसर्ग्या	पाणि-सृज्	ण्यत् 1	पुरीष्यवाहनः	पुरीष्य-वह्	ञ्युट् 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
पुरोडाः	पुरः-दाश्	ण्विन् 2	प्रघणः प्रघाणः	प्र-हन्	अप् 24
पुष्पाहरः	पुष्प-आ-हृ	अच् 9			
पुष्यः	पुष्	क्यप् 14	प्रघसः	प्र-अद्	अच् सम्ब॰ 1
पुरन्दरः	पुर्-दार्	खच् 4	प्रघातः	प्र-हन् + घञ्	क्यप् 3
पुरीषवाहनः	पुरीष-वह्	ञ्युट् 1	प्रचरितोः	प्र-चर्	तोसुन् 2
पुरुषवाहम्	पुरुष-वह्	णमुल् 21	प्रचर्चिका	प्र-चर्च्	ण्वुल् 3
पूः	पॄ	क्विप् 10	प्रचायः	प्र-चि	घञ् 25
पूजा	पूज्	अङ् 2	प्रच्छर्दिका	प्र-छर्द्	ण्वुल् 3
पूजार्हः	पूजा-अर्ह्	अच् 10	प्रजग्ध्य	प्र-अद्	ल्यप् सम्ब॰ 2
पूजितः	पूज्	क्त 3	प्रजनिष्णुः	प्र-जन्	इष्णुच् 1
पूतः पवितः	पू	क्त सम्ब॰ 87	प्रजवी	प्र-जु	इनि 2
			प्रजाः	प्र-जन्	ड 12
पूनाः	पूञ्	क्त सम्ब॰ 96	प्रजावा	प्र-जन्	वनिप् 2
पूनिः	पू	क्तिन् सम्ब॰ 1	प्रज्याय	प्र-ज्या	ल्यप् सम्ब॰ 4
पूरः	पूरी	क 1	प्रणयः	प्र-नी	अच् 3
पूर्त्तः	पॄ	क्त सम्ब॰ 111	प्रणाय्यः	प्र-नी	ण्यत् 8
पूर्णः पूरितः	पूर्+णिच्	क्त सम्ब॰ 76	प्रणीयः	प्र-नी	क्यप् 20
			प्रतिगृह्यम्	प्रति-ग्रह्	क्यप् 16
पूर्वसरः	पूर्व-सृ	ट 3	प्रतिपत्	प्रति-पद्	क्विप् 13
पृष्टः	प्रच्छ्	क्त सम्ब॰ 32	प्रतिपत्तिः	प्रति-पद्	क्तिन् 4
पृष्ठतोभूय	पृष्ठतः भू	क्त्वा 9	प्रतिभूः	प्रति-भू	क्विप् 12
पृष्ठशयः	पृष्ठ-शी	अच् 14	प्रतिशीनः	प्रति-श्या	क्त सम्ब॰ 36
पेस्वरः	पिस्	वरच् 1	प्रतिष्कशः	प्रति-कश्	अच् सम्ब॰ 7
पेयम्	पा	यत् 1	प्रतूर्तम्	प्र-त्वर्	क्त सम्ब॰ 115
प्रकथय्य	प्र-कथ्-णिच्	ल्यप् सम्ब॰10	प्रत्यासारिण्यः	प्रति-आ-सृ	णिनि 4
प्रक्षीणः	प्र-क्षि	क्त सम्ब॰ 60	प्रदवः	प्र-दु	अच् 3
प्रक्षीय	प्र-क्षि	ल्यप् सम्ब॰ 13	प्रदा	प्र-दा	अङ् 3
प्रगाय	प्र-गा	ल्यप् सम्ब॰ 14	प्रदाय	प्र-दा	ल्यप् सम्ब॰ 14
प्रगृह्यम्	प्र-ग्रह्	क्यप् 17	प्रदिः	प्र-दा	कि 4
प्रग्राहः	प्र-ग्रह्	घञ् 29	प्रद्रावः	प्र-द्रु	घञ् 12

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
प्रद्रावी	प्र-द्रु	घिनुण् 5	प्रवासी	प्र-वस्	घिनुण् 5
प्रपा	प्र-पा	क+टाप् 12	प्रवाहिका	प्र-वह्	ण्वुल् 3
प्रपातुकः	प्र-पत्	उकञ् 1	प्रवृषः	प्र-वृष्	क सम्ब॰ 3
प्रपाय	प्र-पा	ल्यप् सम्ब॰ 14	प्रशान्	प्र-शम्	क्विप् सम्ब॰ 5
प्रपीतिः	प्र-पा	क्तिन् 5	प्रश्नः	प्रच्छ्	नङ् 1
प्रभाकरः	प्रभा-कृ	ट 6	प्रश्रथः	प्र-श्रन्थ्	घञ् सम्ब॰ 5
प्रभावुकम्	प्र-भू	उकञ् 1	प्रष्ठः	प्र-स्था	क 7
प्रभुः	प्र-भू	डु 1	प्रसवी	प्र-सू	इनि 3
प्रमदः	प्र-मद्	अप् 13	प्रसारी	प्र-सृ	घिनुण् 5
प्रमयः	प्र-मी	अच् सम्ब॰ 6	प्रसूः	प्र-सू	क्विप् 2
प्रमा	प्र-मा	अङ् 3	प्रस्तारः	प्र-स्तृ	घञ् 17
प्रमाथी	प्र-मथ्	घिनुण् 5	प्रस्तीमः	प्र-स्त्या	क्त सम्ब॰ 107
प्रमादी	प्र-मद्	घिनुण् 1	प्रस्तीतः		
प्रमाय	प्र-मी	ल्यप् सम्ब॰ 7	प्रस्थः	प्र-स्था	क 2
प्रमित्रः	प्र-मिद्	क्त सम्ब॰ 66	प्रस्थम्पचा	प्रस्थ-पच्	खश् 7
प्रमेदितः			प्रस्थातुम्	प्र-स्था	तुमुन् 2
प्रयै	प्र-या	कै 1	प्रस्थाय	प्र-स्था	ल्यप् सम्ब॰ 14
प्रयोज्यः	प्र-युज्	ण्यत् सम्ब॰ 14	प्रस्थितिः	प्र-स्था	क्तिन् 5
प्रलम्भः	प्र-लभ्	घञ् सम्ब॰ 61	प्रष्ठवाट्	प्रष्ठ-वह्	ण्वि 3
प्रलापी	प्र-लप्	घिनुण् 5	प्रस्तावः	प्र-स्तु	घञ् 12
प्रवकः	प्रु	वुन् 1	प्रस्नः	प्र-स्ना	क 12
प्रवचनीयः	प्र-वच्	अनीयर् 2	प्रस्रावः	प्र-स्रु	घञ् 12
प्रवदितोः	प्र-वद्	तोसुन् 2	प्रहाय	प्र-हा	ल्यप् सम्ब॰ 14
प्रवर्षकः	प्र-वृष्	उकञ् 1	प्रहृत्य	प्र-हृ	ल्यप् 1
प्रवादिनी	प्र-वद्	घिनुण् सम्ब॰ 1	प्रह्लन्नः	प्र-ह्लाद्	क्त सम्ब॰ 62
प्रवादी	प्र-वद्	घिनुण् 5	प्राङ्	प्र-अञ्च्	क्विन् 2
प्रवाद्यम्	प्र-वद्+ण्यत्	क्यप् 1	प्राट्	प्रच्छ्	क्विप् 11
प्रवाय	प्र-वे	ल्यप् सम्ब॰ 3	प्रातरित्वा	प्रातः-इ	क्वनिप् 2
प्रवायकः	प्र-अज्	ण्वुल् सम्ब॰ 7	प्रापय्य	प्र-आप्-णिच्	ल्यप् सम्ब॰ 11
प्रवाच्यम्	प्र-वच्	ण्यत् सम्ब॰ 11	प्राप्य		

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
प्रावारः	प्र-वृ	घञ् 37	ब्रह्मभूयम्	ब्रह्मन्-भू	क्यप् 2
प्रावृट्	प्र-वृष्	क्विप् सम्ब॰ 1	ब्रह्मवद्यम्	ब्रह्मन्-वद्	यत् 13
प्रासः	प्र-अस्	घञ् 4	ब्रह्मवनिः	ब्रह्मन्-वन्	इन् 4
प्रियः	प्री	क 1	ब्रह्मवादिनः	ब्रह्म-वद्	णिनि 6
प्रियंकरः	प्रिय-कृ	खच् 7	ब्रह्महत्या	ब्रह्मन्-हन्	क्यप् 3
प्रियंकरणम्	प्रिय-कृ	ख्युन् 1	ब्रह्महा	ब्रह्म-हन्	क्विप् 4
प्रियकारः	प्रिय-कृ	अण् 3	ब्रह्मोद्यम्	ब्रह्मन्-वद्	क्यप् 1
प्रियंभविष्णुः	प्रिय-भू	खिष्णुच् 1	ब्राह्मणजः	ब्राह्मण-जन्	ड 14
प्रियंभावुकः	प्रिय-भू	खुकञ् 1	ब्राह्मणवेदम्	ब्राह्मण-विद्	णमुल् 7
प्रियंवदः	प्रिय-वद्	खच् 1	ब्राह्मणिब्रुवा	ब्राह्मणी-ब्रू	अच् सम्ब॰ 14
प्रेषे	प्र-इण्	क्से 1	भक्षंकारः	भक्ष-कृ	अच् 7
फलनिकायः	फल-नि-चि	घञ् 26	भगन्दरः	भग-दारि	खच् 4
फाण्टम्	फण्	क्त सम्ब॰ 67	भङ्गुरम्	भञ्ज्	घुरच् 1
फलेग्रहिः	फल-ग्रह्	इन् 3	भयम्	भी	अच् 18
फुल्लः	फल्	क्त सम्ब॰ 108	भयंकरः	भय-कृ	खच् 6
बर्हिष्ठः	बर्हि-स्था	क 7	भवः	भू	अच् 5
बलिकरः	बलि-कृ	ट 6	भवतिः	भू	श्तिप् 1
बहुकरः	बहु-कृ	ट 6	भविष्णुः	भू	इष्णुच् 3
बहुकरा	बहु-कृ	अच् 7	भव्यम्	भू	यत् 15
बहुक्षामः	बहु-क्षम्	ण 9	भाः	भास्	क्विप् 10
बाढम्	बाह्	क्त सम्ब॰ 67	भागी	भज्	घिनुण् 2
बालः	बल्	ण 1	भावः	भू	घञ् 9
बालरोदम्	बाल-रुद्	णमुल् 23	भावः	भू	ण 6
बाहुकरः	बाहु-कृ	ट 6	भावकः	अस्	ण्वुल् सम्ब॰ 4
बिभ्राणः	भृ	चानश् 1	भासुरम्	भास्	घुरच् 1
बिलम्	बिल्	क 1	भास्करः	भास्-कृ	ट 6
बिसम्	बिस्	क 1	भास्वरः	भास्	वरच् 1
बुद्धः	बुध्	क्त 3	भिक्षाकः	भिक्ष्	षाकन् 1
बुद्धिजः	बुद्धि-जन्	ड 11	भिक्षाचरः	भिक्षा-चर्	ट 2
बुधः	बुध्	क 1	भिक्षुः	भिक्ष्	उ 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
भित्तम्	भिद्	क्त सम्ब॰ 113	मतिः	मन्	क्तिन् 1
भिद्	भिद्	क्विप् 11	मत्तः	मद्	क्त सम्ब॰ 111
भिदा	भिद्	अङ् 1	मदनः	मद्+णिच्	ल्यु 1
भिदिः	भिद्	इक् 1	मद्यम्	मद्	यत् 6
भिदुरम्	भिद्	कुरच् 1	मद्रंकरः	मद्र-कृ	खच् 7
भिद्यः	भिद्	क्यप् 13	मद्रकारः	मद्र-कृ	अण् 3
भिन्नः	भिद्	क्त 2	मधुसूदनः	मधु-सूद्	ल्यु 1
भिन्नवान्	भिद्	क्तवतु सम्ब॰ 1	मन्त्रकृत्	मन्त्र-कृ	क्विप् 6
भीरुः	भी	क्रु 1	मन्त्रस्पृक्	मन्त्र-स्पृश्	क्विन् 1
भीरुकः	भी	क्रुकन् 1	मन्त्री	मन्त्र्	णिनि 1
भीलुकः	भी	क्लुकन् 1	मन्दुरजः	मन्दुर-जन्	ड 10
भुक्त्वा भुक्त्वा	भुज्	क्त्वा 5	मर्मावित्	मर्म-आ-व्यध्	क्विप् सम्ब॰ 1
भुक्त्वा	भुज्	क्त्वा 4	मर्षितः	मृष्	क्त 3
भुजः	भुज्	क 1	मस्करः	मा-कृ	अच् सम्ब॰ 8
भूतः	अस्	क्त सम्ब॰ 19	मार्गः	मृज्	घञ् 40
भूमिष्ठः	भूमि-स्था	क 7	मातृधायम्	मातृ धे	णमुल् 23
भूरिदावा	भूरि-दा	वनिप् 1	मातृहा	मातृ-हन्	क्विप् 5
भूषयमाणाः	भूष्+णिच्	चानश् 1	मांसकामः	मांस-कम्-णिच्	ण 8
भूष्णुः	भू	क्स्नु 1	मांसभक्षः	मांस-भक्ष्	ण 8
भृत्यः	भृ	क्यप् 9	मांसशीलः	मांस-शील	ण 8
भृष्टः	भ्रस्ज्	क्त सम्ब॰ 32	मितङ्गमः	मित-गम्	खच् 1
भोजं भोजम्	भुज्	णमुल् 2	मितद्रुः	मित-द्रु	डु 1
बोजकः	भुज्	ण्वुल् 2	मितम्पचा	मित-पच्	खश् 8
भोज्यम्	भुज्	ण्यत् सम्ब॰ 15	मित्रद्विट्	मित्र-द्विष्	क्विप् 1
भ्रमी	भ्रम्	घिनुण् 1	मित्रध्रुक्	मित्र-द्रुह्	क्विप् 1
भ्रूणहा	भ्रूण-हन्	क्विप् 4	मित्रयुः	मित्र-क्यच्	ड 3
भ्रूविक्षेपम्	भ्रू-वि-क्षिप्	णमुल् 32	मित्रिमम्	मि	क्त्रि 1
मञ्जिष्ठः	मञ्जि-स्था	क 7	मित्रः	मिद्	क्त सम्ब॰ 65
मण्डनः	मण्ड्	युच्	मिलः	मिल्	क 1
मतः	मन्	क्त 3	मीढ्वान्	मिह्	क्वसु सम्ब॰ 2

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
मुखतःकारम्	मुखतः कृ	णमुल् 39	यमः	यम्	अप् 8
मुखतःकृत्य	मुखतः कृ	क्त्वा 11	यम्यम्	यम्	यत् 6
मुखतोभावम्	मुखतः-भू	णमुल् 39	यवनः	यु	ल्यु 1
मुण्डयमानः	मुण्ड्+णिच्	चानश् 1	यशस्करी	यशस्-कृ	ट 5
मुषः	मुष्	क 1	यष्टिग्रहः	यष्टि-ग्रह्	अच् 6
मुष्टिन्धमः	मुष्टि-ध्मा	खश् 4	यष्टिग्राहम्	यष्टि-ग्रह्	णमुल् 31
मुष्टिन्धयः	मुष्टि-धेट्	खश् 4	याच्ञा	याच्	नङ् 1
मूः	मव्	क्विप् सम्ब॰ 7	याच्यम्	याच्	ण्यत् सम्ब॰ 11
मूर्त्तः	मूर्च्छ्	क्त सम्ब॰ 111	याज्यम्	यज्	ण्यत् सम्ब॰ 11
मूलकपणः	मूलक-पण्	अप् 11	यायजूकः	यज्+यङ्	ऊक 2
मूलकोपदंशम्	मूलक-उप-दंश्	णमुल् 25	यायावरः	या-यङ्	वरच् 2
मूलविभुजः	मूल-वि-भुज्	क 6	यादृक्	यद्-दृश्	क्विन् 3
मृगया	मृग-णिच्	श 6	यादृशः	यद्-दृश्	कञ् 1
मृजा	मृज्	अङ् 1	यादृक्षः	यद्-दृश्	क्स 1
मृडः	मृड्	क 1	यावद्वेदम्	यावत्-विद्	णमुल् 8
मृषोद्यम्	मृषा-वद्	क्यप् 12	याव्यम्	यु	ण्यत् 6
मेघंकरः	मेघ-कृ	खच् 6	युक्	युज्	क्विप् 11
मेदितः	मिद्	क्त सम्ब॰ 2	युगन्धरः	युग-धारि	खच् 9
मेदुरः	मिद्	घुरच् 1	युग्यम्	युज्	क्यप् 19
मेधा	मेध्	अङ् 1	युजः	युज्	क 1
म्लानिः	म्ला	नि 1	यूतिः	यु	क्तिन् 7
म्लिष्टम्	म्लेच्छ्	क्त सम्ब॰ 67	योगी	युज्	घिनुण् 2
यजमानः	यज्	शानन् 1	योग्यम्	युज्+ण्यत्	क्यप् 19
यज्ञः	यज्	नङ् 1	यौतिः	यु	श्तिप् 1
यज्वा	यज्	ङ्वनिप् 1	रक्ष्णः	रक्ष्	नङ् 1
यतिः	यम्	क्तिन् 1	रज्जुच्छिद्	रज्जु-छिद्	क्विप् 1
यत्करः	यत्-कृ	ट 6	रणः	रण्	अप् 3
यत्करा	यत्-कृ	अच् 7	रतिः	रम्	क्तिन् 1
यथाकारम्	यथा-कृ	णमुल् 6	रथन्तरम्	रथ-तॄ	खच् 1
यत्नः	यत्	नङ् 1	रमणः	रम्	ल्यु 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
रवणः	रु	युच् 1	लवकः	लू	वुन् 1
रागः	रञ्ज्	घञ् सम्ब॰ 3	लवणः	लू	ल्यु 1
रागी	रञ्ज्	घिनुण् 2	लवित्रम्	लू	इत्र 1
राजकृत्वा	राजन्-कृ	क्वनिप् 4	लषणः	लष्	युच् 3
राजघः	राजन्-हन्	क 11	लाव्यम्	लू	ण्यत् 5
राजयुध्वरी	राज-युध्	क्वनिप् सम्ब॰ 1	लाप्यम्	लप्	ण्यत्
राजयुध्वा	राजन्-युध्	क्वनिप् 4	लिपिकरः	लिपि-कृ	ट 6
राजसूयः	राजन्-षुञ्	क्यप् 12	लिबिकरः	लिबि-कृ	ट 6
रातिः	रा	क्तिन् 6	लिम्पः	लिप्	श 2
राद्धिः	राध्	क्तिन् 2	लिहः	लिह्	क 1
राप्यम्	रप्	ण्यत् 6	लीनः	ली	क्त सम्ब॰ 94
रिक्थहरः	रिक्थ-हृ	अच् 5	लुण्ठाकः	लुण्ठ्	षाकन् 1
रुचः	रुच्	क 1	लुभः	लुभ्	क 1
रुच्यः	रुच्	क्यप् 12	लुभितः / लुब्धः	लुभ्	क्त सम्ब॰ 90
रुषः	रुष्	क 1			
रुष्टः / रुषितः	रुष्	क्त सम्ब॰ 77	लूनः	लू	क्त सम्ब॰ 94
			लूनिः	लू	क्तिन् सम्ब॰ 1
रुहः	रुह्	क 1	लेखः	लिख्	घञ् 40
रूक्षपेषम्	रूक्ष-पिष्	णमुल् 13	लेहः	लिह्	ण 3
रेट्	रिष्	क्विप् 1	वक्ता	वच्	तृन् 1
रेखा/लेखा	लिख्	अङ् 1	वक्षे	वच्	से 1
रोगः	रुज्	घञ् 1	वचनकरः	वचन-कृ	ट 5
रोचनः	रुच्	ल्यु 1	वञ्च्यम्	वञ्च्	ण्यत् सम्ब॰ 9
रोच्यम्	रुच्	ण्यत् सम्ब॰ 11	वदः	वद्	अच् 1
रोचिष्णुः	रुच्	इष्णुच् 1	वदावदः	वद्	अच् सम्ब॰ 3
रोहिष्यै	रुह्	इष्यै 1	वधः	हन्	अप् 21
लग्नः	लज्	क्त सम्ब॰ 63	वध्यः	हन्	यत् 3
लग्नम्	लज्	क्त सम्ब॰ 67	वन्दना	वन्द्	युच् 8
लब्ध्रिमम्	लभ्	क्त्रि 1	वन्दारुः	वन्द्	आरु 1
ललाटन्तपः	ललाट-तप्	खश् 10	वपः	वप्	अच् 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
वपा	वप्	अङ् 1	वापिः	वप्	इञ् 1
वमी	वम्	इनि 3	वाप्यम्	वप्	ण्यत् 6
वरः	वृ	अप् 2	वायुः	वा	उण्
वराकः	वृ	षाकन् 1	वारणपुष्पप्रचायिका	वारपुष्प-प्र-चि	ण्वुल् 5
वर्णसंघाटः वर्णसंघातः	वर्ण-सम्-हन्	अण् 6	वारिजम्	वारि-जन्	ड 10
			वावहिः	वह् + यङ्	कि 3
वर्तनः	वृत्	युच् 2	वाशनः	वश्-णिच्	ल्यु 1
वर्तमानः	वृत्	शानच् 1	वासिः	वस्	इञ् 1
वर्तिष्णुः	वृत्	इष्णुच् 1	वासुदेवगृह्या	वासुदेव-ग्रह्	क्यप् 17
वर्द्धनः	वृध्-णिच्	ल्यु 1	विकत्थी	वि-कत्थ्	घिनुण् 3
वर्धनः	वध्	युच् 2	विकाषी	वि-कष्	घिनुण् 3
वर्धिष्णुः	वृध्	इष्णुच् 1	विक्षावः	वि-क्षु	घञ् 10
वर्या	वृ	यत् 8	विख्ये	वि-ख्या	के 1
वर्षम्	वृष्	अच् 18	विग्नः	विज्	क्त सम्ब॰ 63
वर्ष्यम्	वृष्+ण्यत्	क्यप् 18	विघनः	वि-हन्	अप् 27
वशः	वश्	अप् 3	विघसः	वि-अद्	अप् 4
वशंवदः	वश-वद्	खच् 1	विघ्नः	वि-हन्	क 12
वसा	वस्	अङ् 1	विचितः	व्यच्	क्त सम्ब॰ 32
वहः	वह्	घ 2	विजनितोः	वि-जन्	तोसुन् 2
वहंलिहः	वह-लिह्	खश् 6	विजावा	वि-जन्	वनिप् 2
वह्यम्	वह्	यत् 9	विटः	विट्	क 1
वाक्	वच्	क्विप् 11	वित्तिः	विद्	क्तिन् 6
वाचकः	ब्रू	ण्वुल् सम्ब॰ 5	विदा	विद्	अङ् 1
वाचंयमः	वाच्-यम्	खच् 3	विद्यामदः	विद्या-मद्	अप् 12
वाच्यम् वाक्यम्	वच्	ण्यत् 13	विद्वान्	विद्	शतृ सम्ब॰ 6
			विधा	वि-धा	अङ् 3
वातन्धमः	वात-ध्मा	खश् 4	विनाकारम्	विना-कृ	णमुल् 40
वातन्धयः	वात-धेट्	खश् 4	विनाभावम्	विना-भू	णमुल् 40
वातमजाः	वात-अज्	खश् 2	विनाशकः	विनश्-णिच्	क्रञ् 1
वाद्यम्	वद्+ण्यत्	क्यप् 1	वित्तः	विद्	क्त सम्ब॰ 112

प्रयोग	धातु	प्रत्यय
वित्तविनाशनः	वित्त-वि-नश्-णिच्	ल्यु 1
विदः	विद्	क 1
विदुरः	विद्	कुरच् 1
विद्धः	व्यध्	क्त सम्ब॰ 32
विद्युत्	वि-द्युत्	क्विप् 10
विधुन्तुदः	विधु-तुद्	खश् 9
विधुरः	व्यध्	कुरच् 2
विधूतः	वि-धू	क्त सम्ब॰ 64
विनीयः	वि-नी	क्यप् 15
विन्दः	विद्	श 2
विन्दुः	विद्	उ 2
विन्नः	विद्	क्त सम्ब॰ 110
वित्तः		
विपत्	वि-पद्	क्विप् 13
विपत्तिः	वि-पद्	क्तिन् 4
विपूयः	वि-पू	क्यप् 15
विप्रलम्भः	वि-प्र-लभ्	घञ् सम्ब॰ 6
विभाकरः	विभा-कृ	ट 6
विभाजम्	वि-भज्	णमुल् 1
विभीषणः	वि-भी-णिच्	ल्यु 1
विभुः	वि-भू	डु 1
विभूः	वि-भू	क्विप् 12
विभ्राट्	वि-भ्राज्	क्विप् 10
वियमः	वि-यम्	अप् 8
वियूय	वि-यु	ल्यप् सम्ब॰ 12
विलाय	वि-ली	ल्यप् सम्ब॰ 9
विलीय		
विरावः	वि-रु	घञ् 7
विरिब्धः	वि-रेभ्	क्त सम्ब॰ 67
विलयः	वि-ली	अच् सम्ब॰ 6
विलिखः	वि-लिख्	कसुन् 1
विलासी	वि-लस्	घिनुण् 3
विलाषी	वि-लष्	घिनुण् 4
विविदिवान्	विद्	क्वसु सम्ब॰ 4
विविद्वान्		
विविशिवान्	विश्	क्वसु सम्ब॰ 4
विविश्वान्		
विवेकी	वि-विच्	घिनुण् 2
विशस्तः	वि-शस्	क्त सम्ब॰ 68
विश्नः	विश्	नङ् 1
विश्रयी	वि-श्रि	इनि 3
विश्वम्भरः	विश्व-भृ	खच् 9
विष्किरः	वि-किर्	क सम्ब॰ 2
विकिरः		
विष्टारपङ्क्तिः	वि-स्तृ	घञ् 19
विष्ठा	वि-स्था	क 2
विसारः	वि-सृ	घञ् 2
विसृपः	वि-सृप्	कसुन् 2
विस्कन्नः	वि-स्कन्द्	क्त सम्ब॰ 115
विस्तारः	वि-स्तृ	घञ् 18
विस्तीर्णम्	वि-स्तृ	क्त सम्ब॰ 92
विस्रम्भी	वि-स्रम्भ्	घिनुण् 3
विहङ्गमः	विहायस्-गम्	खच् 1
विहवः	वि-ह्वे	अप् 17
वीकाशः	वि-काश्	अच् सम्ब॰ 15
वीतः	अज्	क्त सम्ब॰ 22
अजितः		
वीतिः	वी	क्तिन् 6
वृक्णः	व्रश्च्	क्त सम्ब॰ 91
वृक्षमेजयः	वृक्ष-एज्	खश् 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
वृत्तम्	वृत्	क्त सम्ब॰ 75	शत्रुञ्जयः	शत्रु-जि	खच् 9
वृत्यः	वृ	क्यप् 4	शत्रुंतयः	शत्रु-तप्	खच् 9
वृत्यम्	वृत्	क्यप् 7	शत्रुदमनः	शत्रु-दम्	ल्यु 1
वृत्रहा	वृत्र-हन्	क्विप् 4	शत्रुंसहः	शत्रु-सह्	खच् 9
वृषः	वृष्	क 1	शत्रुहः	शत्रु-हन्	ड 8
वृष्यम्	वृष्	क्यप् 18	शद्रुः	शद्	रु 1
वृष्टिः	वृष्	क्तिन् 6	शब्दनः	शब्द्	युच् 1
वेदना	विद्	युच् 8	शब्दप्राट्	शब्द-प्रच्छ्	क्विप् सम्ब॰ 6
वेदयः	वेदि	श 2	शप्यम्	शप्	यत् 4
वेदवित्	वेद-विद्	क्विप् 1	शमी	शम्	घिनुण् 1
वेदाध्यायः	वेद-अधि-इ	अण् 1	शम्ब॰वः	शम्-भू	अच् 12
वेपथुः	वेप्	अथुच् 1	शम्बु॰ः	शम्-भू	डु 1
वेशः	विश्	घञ् 1	शयानः	शी	शानच् 3
व्यजः	व्यज्	घ 2	शयालुः	शी	आलुच् 1
व्यधः	व्यध्	अप् 6	शयितः	शी	क्त सम्ब॰ 2
व्यर्णः	वि-अर्द्	क्त सम्ब॰ 73	शय्योत्थायम्	शय्या-उत्-स्था	णमुल् 30
व्याधः	व्यध्	ण 3	शरारुः	शॄ	आरु 1
व्याधिः	वि-आ-धा	कि 4	शर्द्धञ्जहाः	शर्द्ध-हा	खश् 2
व्याभाषकः.	वि-आ-भाष	वुञ् 1	शंस्थः	शम्-स्था	क 9
व्यावक्रोशः	वि-अव-क्रुश्	णच् 1	शंस्थाः	शम्-स्था	क्विप् 3
व्रजः	व्रज्	घ 2	शंस्यम्	शंस्	क्यप् 5
व्रुडः	व्रुड्	क 1	शस्यम्	शस्	यत् 2
शकृत्करिः	शकृत्-कृ	इन् 1	शान्तः }	शम्	क्त सम्ब॰ 76
शक्तिग्रहः	शक्ति-ग्रह्	अच् 6	शमितः }		
शक्यम्	शक्	यत् 5	शायिका	शी	ण्वुच् 1
शङ्करः	शम्-कृ	अच् 12	शारः	शॄ	घञ् 6
शङ्कुष्ठः	शङ्कु-स्था	क 7	शालभञ्जिका	शाल-भञ्ज्	ण्वुल् 5
शङ्खभित्री	शङ्ख-भिद्	क्त सम्ब॰ 26	शास्त्रप्रज्ञः	शास्त्र-प्र-ज्ञा	क 7
शतंदायी	शत-दा	णिनि 14	शिरःपेषम्	शिरःपिष्	णमुल् 33
शत्रुजित्	शत्रु-जि	क्विप् 1	शिष्यः	शास्	क्यप् 4

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
शीतभोजी	शीत-भुज्	णिनि 3	श्रमी	श्रम्	घिनुण् 1
शीधुपः शीधुपी	शीधु-पा	टक् 1	श्रयतिः	श्रि	श्तिप् 1
			श्रायः	श्रि	घञ् 9
शीनम्	श्या	क्त सम्ब॰ 35	श्रियसे	श्रि	कसेन् 1
शीर्णः	शॄ	क्त सम्ब॰ 94	श्रीः	श्रि	क्विप् 11
शीर्णिः	शॄ	क्तिन् सम्ब॰ 1	श्रुतिः	श्रु	क्तिन् 3
शीर्षघाती	शीर्ष-हन्	णिनि 2	श्रूः	श्रिव्	क्विप् सम्ब॰ 7
शीलः	शील्	क 1	श्लेषः	श्लिष्	ण 3
शुकः	शुक्	क 1	श्लेष्मघ्नम्	श्लेष्मन्-हन्	टक् 3
शुचिषत्	शुचि-सद्	क्विप् 1	श्वासः	श्वस्	ण 3
शुधः	शुध्	क 1	श्वेतवाः	श्वेत-वह्	ण्विन् 1
शुनिन्धयः	शुनी-धेट्	खश् 2	संक्रन्दनं	सम्-क्रन्द्	ल्यु 1
शुभः	शुभ्	क 1	संग्राहः	सम्-ग्रह्	घञ् 21
शुषः	शुष्	क 1	संघः	सम्-हन्	अप् 31
शुष्कः	शुष्	क्त सम्ब॰ 104	संघुष्टौ संघुषितौ	सम्-घुष्	क्त सम्ब॰ 77
शुष्कपेषम्	शुष्क-पिष्	णमुल् 13			
शूनः	श्वि	क्त सम्ब॰ 31	सङ्कर्षणः	सम्-कृष्	ल्यु 1
शूरः	शूरी	क 1	संचाय्यः	सम्-चि	ण्यत् 10
शूलः	शूल्	क 1	सञ्चरः	सम्-चर्	घ 2
शृतम्	श्रा	क्त सम्ब॰ 38	संजाय संजन्य	सम्-जन्	ल्यप् सम्ब॰ 16
शेकुष्ठः	शेकु-स्था	क 7			
शोकजः	शोक-जन्	ड 11	संज्वारी	सम्-ज्वर्	घिनुण् 2
शोकापनुदः	शोक-अप-नुद्	क 6	सत्यङ्कारः	सत्य-कृ	अप् सम्ब॰ 5
शोचनः	शुच्	युच् 3	संदावः	सम्-दु	घञ् 8
शोभनः	शुभ्	ल्यु 1	सदृक्	समान-दृश्	क्विन् 4
शोभनमानी	शोभन-मन्	णिनि 10	सदृक्षः	समान-दृश्	क्स 1
श्येनचित्	श्येन-चि	क्विप् 9	सदृशः	समान-दृश्	कञ् 2
श्रद्धा	श्रद्-धा	अङ् 1	संद्रावः	सम्-द्रु	घञ् 8
श्रद्धालुः	श्रत्-धा	आलुच् 1	संपत्	सम्-पद्	क्विप् 13
श्रन्थना	श्रन्थ्	युच् 7	समक्तः	सम्-अञ्च्	क्त सम्ब॰ 101

प्रयोग	धातु	प्रत्यय
समर्णः	सम्-अर्द्	क्त सम्ब॰ 73
संभार्याः	सम्-भृ	ण्यत् 3
संभृत्यः	सम्-भृ	क्यप् 10
समजः	सम्-अज्	अप् 14
संमदः	सम्-मद्	अप् 13
समवसर्ग्या	सम्-अव-सृज्	ण्यत्
समाधिः	सम्-आ-धि	कि 1
समीरः	सम्-ईर्	क 1
समुन्नः, समुत्तः	सम्-उन्द्	क्त सम्ब॰ 110
समूलकाषम्	समूल-कष्	णमुल् 12
समूलघातम्	समूल-हन्	णमुल् 14
सम्पत्तिः	सम्-पद्	क्तिन् 4
सम्पर्की	सम्-पच्	घिनुण् 2
सम्मर्दी	सम्-मर्द	णिनि 1
सम्फुल्लः	सम्-फल्	क्त सम्ब॰ 197
सम्भार्यः	सम्-भृ+ण्यत्	क्यप् 10
सम्भुः	सम्-भू	डु 1
संयमः	सम्-यम्	अप् 8
संयावः	सम्-यु	घञ् 8
सरकः	सृ	वुन् 1
सरणः	सृ	युच् 3
संरावः	सम्-रु	घञ् 7
सर्वंकषः	सर्व-कष्	खच् 5
सर्वगः	सर्व-गम्	ड 2
सर्वत्रगः	सर्वत्र-गम्	ड 3
सर्वप्रदः	सर्व-प्र-दा	क 7
सर्वंसहः	सर्व-सह	खच् 4
सवः	सु	अच् 19
सवित्रम्	सू	इत्र 1
संवीतः	सम्-व्येञ्	क्त सम्ब॰ 31
सस्याद्	सस्य-अद्	विट्
संस्रावः	सम्-स्रु	ण 3
संसर्गी	सम्-सृज्	घिनुण् 2
संस्कारजः	संस्कार-जन्	ड 11
संस्तावः	सम्-स्तु	घञ् 16
संस्थातोः	सम्-स्था	तोसुन् 2
सस्रिः	सृ	कि 2
संस्वेद्युः	संस्वेद+क्यङ्	उ 3
सहकृत्वा	सह-कृ	क्वनिप् 5
संहर्षणः	सम्-हृष्	ल्यु 1
सहनः	सह्	ल्यु 1
सहयुध्वा	सह-युध्	क्वनिप् 5
संहारः	सम्-हृ	घञ् 41
सहित्रम्	सह्	इत्र 1
सहिष्णुः	सह्	इष्णुच् 1
सह्यम्	सह्	यत् 5
सातयः	साति	श 2
सातिः	सा	क्तिन् 7
सांद्राविणम्	सम्-द्रु	इनुण् + अण् 1
साधनः	सिध्-णिच्	ल्यु 1
साधुकारी	साधु-कृ	णिनि 5
साधुदायी	साधु-दा	णिनि 5
सान्नाय्यम्	सम्-नी	ण्यत् 9
सामगः, समगी	सामन्-गा	टक्1
सारः	सृ	घञ् 2
सांराविणम्	सम्-रु	इनुण् +अण् 1
सासहिः	सह् + यङ्	कि 3
साहयः	सह-णिच्	श 2

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
साह्वान्	सह्	क्वसु सम्ब॰ 1	सूत्रग्रहः	सूत्र-ग्रह्	अच् 6
सिद्ध्यः	सिध्	क्यप् 1	सूपसदनः	सु-उप-सद्	युच् 12
सिनः	सि	क्त सम्ब॰ 97	सूर्त्तम्	सृ	क्त सम्ब॰ 115
सुकरः	सु-कृ	खल् 1	सूर्यः	सू (षू)/सृ	क्यप् 12
सुकृत्	सु-कृ	क्विप् 6	सृत्वरः	सृ	क्वरप् 1
सुखप्रतीक्षः	सुख-प्रति-ईक्ष्	ण 9	सृमरः	सृ	क्मरच् 1
सुगः	सु-गम्	ड 5	सेदिः	सद्	कि 1
सुग्लः	सु-ग्ला	क 2	सेधनम्	सिध्+ल्युट्	क्यप् 14
सुतङ्गमः	सुत-गम्	खच् 10	सेनाचरः	सेना-चर्	ट 2
सुत्वरी	सु	ङ्वनिप् सम्ब॰ 1	सेनानीः	सेना-नी	क्विप् 1
सुत्वा	सु	ङ्वनिप् 1	सेरुः	सि	रु 1
सुदानः	सु-दा	युच् 11	सेविष्यमाणः	सेव्-लृट्	शानच् 4
सुदामा	सु-दा	मनिन् 1	सोमविक्रयी	सोय-वि-क्री	इनि 1
सुदोहनाम्	सु-दुह्	युच् 13	सोमसुत्	सोम-सु	क्विप् 7
सुधीवा	सु-धा	क्वनिप् 1	सौवीरपायिणः	सौवीर-पा	णिनि 9
सुन्वन्	सु	शतृ 6	स्तनन्धयः	स्तन-धेट्	खश् 3
सुप्तः	स्वप्	क्त सम्ब॰ 31	स्तनयित्नुः	स्तन	इत्नु 1
सुप्रलम्भः	सु-प्र-लभ्	खल् सम्ब॰ 2	स्तम्बकरिः	स्तम्ब-कृ	इन् 1
सुप्रलम्भः	सु-प्र-लभ्	घञ् सम्ब॰ 7	स्तम्बघनः	स्तम्ब-हन्	अप् 28
सुभगंकरणम्	सुभग-कृ	ख्युन् 1	स्तम्बघ्नः	स्तम्ब-हन्	क 13
सुभगंभविष्णुः	सुभग-भू	खिष्णुच् 1	स्वम्बेरमः	स्तम्बे-रम्	अच् 11
सुभगंभावुकः	सुभग-भू	खुकञ् 1	स्तवः	स्तु	अप् 1
सुमृयुः	सुमृ + क्यष्	उ 3	स्तीर्णः	स्तृञ्	क्त सम्ब॰ 94
सुरापः	सुरा-पा	टक् 1	स्तुतिः	स्तु	क्तिन् 3
सुरापी			स्तुत्यः	स्तु	क्यप् 4
सुरूपमानी	सुरूप-मन्	णिनि 10	स्तूपः	स्तूप्	क 1
सुलभम्	सु-लभ्	खल् सम्ब॰ 2	स्थण्डिलशायी	स्थण्डिल-शी	णिनि 8
सुलाभः	सु-लभ्	घञ् सम्ब॰ 7	स्थायी	स्था	णिनि 1
सुशर्मा	सु-शृ	मनिन् 2	स्थावरः	स्था	वरच् 1
सूतवे	सू	तवेङ् 1	स्थास्नुः	स्था	क्स्नु 1

प्रयोग	धातु	प्रत्यय	प्रयोग	धातु	प्रत्यय
स्थूलंकरणम्	स्थलू-कृ	ख्युन् 1	स्वादुङ्कारम्	स्वादुमकृ	णमुल् 3
स्थूलंभविष्णुः	स्थूल-भू	खिष्णुच् 1	स्वान्तम्	स्वन्	क्त सम्ब॰ 67
स्थूलंभावुकः	स्थूल-भू	खुकञ् 1	स्वेदितः	स्विद्	क्त सम्ब॰ 2
स्नानीयम्	स्ना	अनीयर् सम्ब॰ 2	हतिः	हन्	क्तिन् 1
स्निहः	स्निह्	क 1	हवः	ह्वे	अप् 20
स्पर्शः	स्पृश्	घञ् 1	हविर्मथिः	हविष्-मथ्	इन् 4
स्पष्टः स्पाशितः	स्पश	क्त सम्ब॰ 76	हसनम्	हस्	ल्युट् 1
			हसितम्	हस्	क्त 4
स्पृहयाय्यः	स्पृह्	आय्य 1	हस्तग्राहम्	हस्त-ग्रह्	णमुल् 17
स्पृहयालुः	स्पृह्	आलुच् 1	हस्तवर्त्तम्	हस्त-वृत्-णिच्	णमुल् 17
स्फीतः	स्फाय्	क्त सम्ब॰ 33	हस्तिघ्नः	हस्तिन्-हन्	टक् 4
स्फुटः	स्फुट्	क 1	हानिः	हा	नि 1
स्फूर्जथुः	स्फूर्ज्	अथुच् 1	हायनः	हा	ण्युट् 2
स्मेरम्	स्मि	र 1	हारा	हृ	अङ् 1
स्त्रयगारगः	स्त्र्यगार-गम्	ड 7	हित्रिमम्	धा	क्त्रि 1
स्त्र्यनुजः	स्त्री-अनु-जन्	ड 13	हिमश्रथः	हिम-श्रन्थ्	घञ् सम्ब॰ 5
स्रक्	सृज्	क्विन् 2	हिंसकः	हिंस्	वुञ् 1
स्वर्गह्वायः	स्वर्ग-ह्वा	अण् 2	हेतिः	हन्	क्तिन् 7
स्वप्रक्	स्वप्	नजिङ् 1	हिंस्रः	हिंस्	र 1
स्वपोषम्	स्व-पुष्	णमुल् 18	हूतः	ह्वेञ्	क्त सम्ब॰ 31
स्वप्रक्	स्वप्	नजिङ् 1	हृषः	हृष्	क 1
स्वनः	स्वन्	अप् 7	हृष्टानि हृषितानि	हृष्	क्त सम्ब॰ 78
स्वप्नः	स्वप्	नन् 1			
स्वाढ्यंकरः	सु-आढ्य-कृ	खल् 2	होतोः	हु	तोसुन् 2
स्वाढ्यंभवम्	सु आढ्य-भू	खल् 2	ह्रीणः ह्रीतः	ह्री	क्त सम्ब॰ 110

परिशिष्ट–2

सहायकग्रन्थसूची

संस्कृत-हिन्दी

1. अमरसिंहः	अमरकोष (रामाश्रमी टीका)	हरगोविन्दशास्त्री (सं.), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वि॰सं॰, 1982
2. डॉ॰ आजाद मिश्र	संस्कृत के प्रत्ययों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	मधुकर प्रकाशन, गोमती नगर, लखनऊ, प्र॰सं॰, 1989
3. प्रो॰ उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'	संस्कृत व्याकरण में कारकतत्त्वानुशीलन	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1994
4. का॰वा॰ अभ्यंकर (सं॰)	परिभाषासंग्रहः	भण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन, मंदिर, पुणे, प्र॰सं॰ 1967
5. पं॰ केशवदेव शास्त्री पाण्डेय (व्या॰)	रूपमाला (विमलसूरि)	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1973
6. गुण्डेराव हरकारे	प्रत्ययकोशः	उसमानिया विश्वविद्यालयः, हैदराबाद, 1983
7. पं॰ गोपाल शास्त्री	बृहदृजुपाणिनीयम्	उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ, प्र॰सं॰ 1983
8. चारुदेव शास्त्री	व्याकरणचन्द्रोदयः (द्वितीय खण्ड)	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्र॰सं॰, 1970
9. जिनेन्द्र बुद्धिपाद	न्यास (काशिकाविवरणपञ्जिका) भाग 1-2	सं॰ डॉ. पुल्लेल श्रीरामचन्द्र, संस्कृत परिषद्, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, प्र॰सं॰, 1985
10. नागेशभट्टः	ज्ञापकसंग्रहः	ना॰स॰ रामानुज ताताचार्य (सं॰), तिरुपति केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, तिरुपति, प्र॰सं॰ 1972
11. नागेशभट्टः	परिभाषेन्दुशेखरः (हिन्दी टीका)	श्री नारायणमिश्र (सं॰), चौखम्भा ओरिएण्टालिया, वाराणसी, प्र॰सं॰ 1981

12.	नागेशभट्टः	परिभाषेन्दुशेखरः ('गदा' टीका, वैद्यनाथ पायगुण्डेकृता)	श्रीमान् गणपतराव यादवराव नातू (सं), आनन्दाश्रम संस्कृत-ग्रन्थावलिः, ग्रन्थाङ्क-72, पुना, प्र॰सं॰ 1978
13.	नागेशभट्टः	परमलघुमञ्जूषा	पण्डित अलखदेव शर्मा (सं॰), चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, द्वि॰सं॰ 1974
14.	नागेशभट्टः	बृहच्छब्देन्दुशेखरः (प्रथमो भागः)	डॉ. श्री सीताराम शास्त्री (सं॰), वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्र॰सं॰ 1960
15.	पतञ्जलिः	व्याकरणमहाभाष्यम्	एफ्॰ कीलहार्ण (सं॰), का॰वा॰ अभ्यंकर (संशोधक), भण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पुणे, द्वि॰सं॰ 1965
16.	पतञ्जलिः	व्याकरणमहाभाष्यम् भाग-3	एवम्
17.	पतञ्जलिः	व्याकरणमहाभाष्यम् (नवाह्निकम्) 'प्रदीप-उद्द्योत'टीकासमेतम्	श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदः (सं॰), चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1954
18.	पतञ्जलिः	व्याकरणमहाभाष्यम् नवाह्निकम् (हिन्दी अनुवाद)	चारुदेव शास्त्री (अनुवादक), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्र॰सं॰, संवत् 2025
19.	पी॰. रामचन्द्र (सं॰)	पदमञ्जरी (हरदत्तमिश्रकृत) दो भाग	उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1981
20.	पं॰ ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा प्रज्ञादेवी (व्या॰)	अष्टाध्यायी भाष्य 3 खण्ड	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, 1984
21.	पं. ब्रह्मदत्त द्विवेदी (व्या॰)	वैयाकरणभूषणसारः	चौखम्भा औरियंटालिया, वाराणसी, 1985
22.	भट्टोजिदीक्षितः	सिद्धान्तकौमुदी ('तत्त्व-बोधिनी टीका' ज्ञानेन्द्र-सरस्वतीकृता)	वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर (सं॰), पाण्डुरंग जवजी श्रेष्ठी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बे, षष्ठ सं॰, 1929
23.	भट्टोजिदीक्षितः	सिद्धान्तकौमुदी (बाल-मनोरमासमेता) प्रथम खण्ड	गोपालदत्त पाण्डेय (सं॰), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वि॰सं॰, 1981

24.	भट्टोजिदीक्षितः	सिद्धान्तकौमुदी (बाल-मनोरमासमेता), द्वितीय खण्ड	श्री गोपाल शास्त्री नेने (सं), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1983
25.	भट्टोजिदीक्षितः	सिद्धान्तकौमुदी (बाल-मनोरमासमेता), तृतीय खण्ड	श्री गोपालशास्त्री नेने (सं॰), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
26.	भट्टोजिदीक्षितः	सिद्धान्तकौमुदी (बाल-मनोरमासमेता), चतुर्थ खण्ड	श्री गोपालशास्त्री नेने (सं॰), चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, च॰सं॰, 1967
27.	भर्तृहरिः	वाक्यपदीयम्	का॰वा॰ आभ्यंकर, वि॰प्र॰ लिमये (सं॰), पुणे विश्वविद्यालय, पुणे, प्र॰सं॰ 1965
28.	यास्कः	निरुक्तम् (दुर्गाचार्यकृतटीका)	मुकुन्द शर्मा (सं॰), मेहरचन्द लछमन दास, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित, 1982
29.	युधिष्ठिर मीमांसक	संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग-1 से 3	भारतीय प्राच्यविद्या प्रकाशन, रामगंज, अजमेर, प्र॰सं॰ संवत् 2019
30.	वामनजयादित्यौ	काशिका	श्री नारायण मिश्र (सं॰), चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, च॰सं॰ 1969
31.	वामन शिवराम आप्टे	संस्कृत-हिन्दी कोश	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1993
32.	डॉ॰ वीणा शर्मा	कृत्प्रत्ययविमर्श	भी॰ 33, विद्यापुरी, पटना-20, प्र॰सं॰ 1996
33.	श॰ रामसुब्रह्मण्य-शास्त्री	कृदन्तरूपमाला	मद्रपुरीसंस्कृतविद्यासमिति, 16, पूर्वमाडवीथी, मद्रास-4, 1989
34.	श्रीधरशास्त्रीपाठक, सिद्धेश्वरशास्त्री चित्रावो (सं॰)	पाणिनीय सूत्रपाठस्य तत्परिशिष्टग्रन्थानां च शब्दकोशः	भण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरम्, पुणे, प्र॰सं॰ 1935
35.	श्रीधरशास्त्रीपाठक, सिद्धेश्वरशास्त्री चित्रावो (सं॰)	महाभाष्यशब्दकोशः	भण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधन-मन्दिरम्, पुणे, प्र॰सं॰ 1927
36.	श्रीसिद्धार्थकृष्णः (सं॰)	अष्टाध्यायी	श्री कैलाश विद्या प्रकाशन, कैलास आश्रम, ऋषिकेश, 2005

English

1.	Bhattoji Dikshita	Siddhanta Kaumudi (Vol. I & II)	Late S.C. Vasu (Edt.), Moti Lal Banarsi Dass, Delhi, Reprint, 1982
2.	George Cardona	PANINI : A Survey of Research	Motilal Banarsi Dass, Delhi, Ist Edn., 1980
3.	G.V. Devasthali	Anubandhas of Panini	University of Poona, Poona, 1967
4.	K. Madhava Krishna Sharma	Panini, Katyayana and Patanjali	Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Delhi, 1st Edn., March 1968
5.	K.V. Abhyankar	A Dictionary of Sanskrit Grammar	Gaekwad's Oriental Series, Baroda, 1961
6.	Sir Monier Monier-Williams	Sanskrit-English Dictionary	Motilal Banarsi Dass, Delhi, 1981
7.	Nagesa Bhatta	Paribhasendusekhara (with Tattvadarsa) Part-I	K.V. Abhyankar (Edt.) Bhandarkar Oriental Research Istitute, Poona, Ist Edn., 1962
8.	Nagesa Bhatta	Paribhasendusekhara, Part-II	F. Kielhorn (Translator), K.V. Abhyankar (Edt.), BORI, Poona, IInd Edn., 1960
9.	P.V. Kane	History of Sanskrit Poetics	Motilal Banarsi Dass, Delhi, IIIrd Edn., 1961
10.	Panini	Astadhyayi (Vol. I & II	Late S.C., Vasu (Edt.), Motilal Banarsi Dass, Delhi, Reprint, 1980
11.	S. D. Joshi	Panini : As a Variationist	C.A.S.S., Poona, Ist Edn., 1980
12.	S.K. Balvelkar	An account of the different existing systems of Sanskrit Grammar	Poona, 1915
13.	S.N. Das Gupta	A History of Sanskrit Literature (Vol. I)	University of Calcutta, Calcutta, IInd edn., 1975
14.	S.N. Das Gupta	A History of Sanskrit Literature (Vol. V)	Motilal Banarsi Dass, Delhi, Ist Indian Edn., 1975
15.	Theodor Gold Stucker	PANINI : His place in Sanskrit Literature	Prof. Surendranath Sastri (Editor), Choukhambha Sanskrit Series Office, Varanasi, Ist Edn., 1965

पुरी
श्रेणी मे
बं०) से
प्रथम;
दरभङ्ग
पटना
ritical
र सिंह
प्रत्ययों
ध्ययनों

से वीर
इकाइ
लेज मे
९८८
डिर);
सिंह
००४
भाग,
य मे

geśa
नी';
कृत);
ण)';

तथ

डॉ० गोपबन्धु मिश्र

जन्म : १३.१०.१९५९ ग्राम/पो० बिरुडा, जिला-नयागढ़ (ओड़िशा)।

पितरौ : स्व० अपर्त्ति मिश्र एवं स्व० सुना देवी।

शिक्षा : श्रीसदाशिवकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठ, पुरी (ओड़िशा) से व्याकरणशास्त्री में प्रथम श्रेणी में प्रथम; विश्वभारती, शान्तिनिकेतन (प०बं०) से एम्०ए० (संस्कृत) में प्रथम श्रेणी में प्रथम; का.सिं. दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभङ्गा से व्याकरणाचार्य; पटना विश्वविद्यालय, पटना से 'Paribhāṣenduśekhara-A Critical Study' विषय पर पी-एच्०डी०; वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा से 'पाणिनीय कृत्-प्रत्ययों का विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन' शीर्षक पर डी०लिट्०।

अध्यापन : मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (१९९२ से वीर कुँवर सिंह वि०वि० आरा) की अङ्गीभूत इकाई महाराजा कालेज तथा ह०प्र० दास जैन कालेज में क्रमशः १९८०-९६, १९९६-९८ (१९८८ में मेधा-प्रोन्नति के अन्तर्गत प्रोन्नत रीडर); स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, वी०कुँ० सिंह विश्वविद्यालय, आरा में १९९८ से २००४ तक; सितम्बर, २००४ से संस्कृत विभाग, कला सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रीडर।

प्रकाशन : 'Studies in Paribhāṣās of Nāgeśa'; 'संस्कृतभारती'; 'संस्कृत अभ्यासिनी'; यू०जी०सी०जे०आर०एफ०/नेट (संस्कृत); 'अलका टीका, सिद्धान्तकौमुदी (कृत्यप्रकरण)'; 'अमरभारतीदीपिका'।

सम्पादन : 'आरण्यक' (अर्धवार्षिक संस्कृत शोधपत्र) तथा अन्य १० पुस्तकों का।

शोध-निर्देशन : १२ पी-एच्०डी० शोधप्रबन्धों का।